* ओम् *

भारतवर्ष का इतिहास

आदियुग से गुप्त-साम्राज्य के अन्त तक



वैदिक वाङ्मय का इतिहास आदि ग्रन्थों के रचयिता,
विविध लुप्त संस्कृत ग्रन्थों के उद्धारक,
दयानन्द महाविद्यालय लाहौर के
भूतपूर्व अनुसन्धानाध्यक्ष तथा
महिला विद्यापीठ, लाहौर
के संस्थापक

BHAGWADDATTA

पण्डित भगवद्दत्त बी॰ ए॰
द्वारा
रचित

...ीय संस्करण
...००० प्रति

संवत् २००३ 1946

मूल्य १५ रुपये

पञ्चनद प्रेस लिमिटिड में श्री सुरेन्द्रकुमार जी के प्रबन्ध से पं॰ भगवद्दत्त, अध्यक्ष वैदिक अनुसन्धान संस्थान माडलटाऊन (पंजाब) के लिए मुद्रित हुआ।

पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित

अथवा रचित ग्रन्थ

१. ऋषि दयानन्द का स्वरचित (लिखित वा कथित) जीवनचरित।
२. ऋग्मंत्रव्याख्या।
३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, चारभाग (अप्राप्य)
४. गुरुदत्त लेखावली—हिंदी अनुवाद, सहकारी अनुवादक श्री संतराम (अप्राप्य)
५. अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका। ६. ऋग्वेद पर व्याख्यान।
७. माण्डूकी शिक्षा।
८. बार्हस्पत्य सूत्र की भूमिका। ९. आथर्वण ज्योतिष।
१०. वाल्मीकीय रामायण (पश्चिमोत्तर पाठ) बालकाण्ड, तथा अरण्यकाण्ड का।
११. उद्‌गीथाचार्य रचित ऋग्वेद भाष्य-दशम मण्डल का कुछ भाग।
१२. वैदिक कोष की भूमिका।
१३. वैदिक वाङ्मय का इतिहास-तीन भाग।
प्रथम भाग—वेदों की शाखाएं।
द्वितीय भाग—वेदों के भाष्यकार।
तृतीय भाग—ब्राह्मणग्रन्थ।
१४. भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम संस्करण। मूल्य १५) (अप्राप्य)
१५. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन—बृहत् संस्करण मूल्य ५॥।)।

लेख

१. बैजवाप गृह्यसूत्र संकलनम्।
२. शाकपूणि का निरुक्त और निघण्टु।
३. शूद्रक-अग्निमित्र-इन्द्राणीगुप्त।
४. साहसांक विक्रम और चन्द्रगुप्त विक्रम की एकता।
५. Date of Visvarupa. आदि।

—०—

आर्य संस्कृति के महान् रक्षक,

असाधारण संस्कृतज्ञ,

यति-प्रवर

और

अपने ग्रन्थों द्वारा

मेरे सदृश जन में इतिहास की असीम-रुचि

उत्पन्न कराने वाले

परमगुरु

महामुनि दयानन्द सरस्वती

की

पवित्र स्मृति में

वैदिक अनुसन्धान संस्थान द्वारा मुद्रित

तथा

मुद्र्यमाण अन्य ग्रन्थ

१. Sakas in India by Sri Satya Shrava M.A. मूल्य ८)

२. ब्राह्मणग्रन्थों के द्रष्टा तथा आयुर्वेदादि के कर्ताओं का अभेद,
पं० ईश्वरचन्द्र कृत ।

३. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक कृत ।

४. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, भारतीय इतिहास के स्रोत,
पं० भगवद्दत्त कृत ।

भूमिका

नमस्कार—वाल्मीकि, अथर्वाङ्गिरस और व्यास आदि मुनियों तथा गुणाढ्य आदि विद्वानों को नमस्कार कर के मैं भारतवर्ष का इतिहास लिखने में प्रवृत्त होता हूँ। इन्हीं महापुरुषों की अपार कृपा से भारतीय इतिहास के पुरातन तत्त्वों को समझने में मैं कुछ समर्थ हुआ हूँ।

भारतीय इतिहास का अनिष्ट—भारतीय इतिहास इस समय बहुत विकृत कर दिया गया है। सत्य को असत्य प्रदर्शित किया जाता है और असत्य को सत्य बनाने का यत्न हो रहा है। मैक्समूलर और वैबर तथा मैक्डानल और कीथ प्रभृति पाश्चात्य ग्रन्थकारों ने भारत-युद्ध के अस्तित्व में ही सन्देह उत्पन्न कर दिया है। रैपसन और स्मिथ आदि इतिहास-लेखक सगर्व कह रहे हैं कि ईसा से अधिक से अधिक २४०० वर्ष पहले आर्य लोग भारत में प्रविष्ट हुए। उस के पश्चात् उन के वेद आदि शास्त्र बने। यकोबी और कीथ तो अर्थशास्त्र को विष्णुगुप्त चाणक्य की कृति ही नहीं मानते। फ्लीट और रैपसन तथा जायसवाल और राय चौधरी ने तो उज्जयन के प्रसिद्ध विक्रमादित्य का नाम ही इतिहास से मिटा देने का यत्न किया है। क्या कहें कितने और लेखकों ने क्या क्या अन्य अनर्थ नहीं किए।

इस का भयंकर दुष्परिणाम—इस का फल अत्यन्त भयंकर हुआ है। भारतीय छात्र अपना भूत भूल गए हैं। वे इन मिथ्या कल्पनाओं को ही सत्य समझने लगे हैं। औरों की क्या कहें महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी और देशभक्त पण्डित जवाहर लाल नेहरू भी उसी उलटे मार्ग पर चले हैं। महात्मा गांधी भारत-युद्ध को एक पूर्ण ऐतिहासिक घटना नहीं मानते और पं० जवाहर लाल तो आर्यों को इस पवित्र भूमि का आदि वासी ही नहीं समझते।

मेरे गत पच्चीस वर्ष—सन् १९१५ में मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। बी० ए० में अध्ययन करते हुए ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अपना सारा जीवन भारतीय संस्कृति और इतिहास के पाठ तथा स्पष्टीकरण में लगाऊँगा। आज इस बात को २५ से अधिक वर्ष हो गए। छः वर्ष हुए, मैंने दयानन्द कालेज से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। कालेज के अधिकारियों की आर्य-संस्कृति-विरोधिनी नीति मुझे रुचिकर नहीं लगी।

मेरी कठिनाइयां—सन् १९३६ में मैंने महिला विद्यापीठ, लाहौर की स्थापना की। मैंने किसी से एक पाई नहीं मांगी। अब यह संस्था लाहौर में हिन्दी-शिक्षा का एक अच्छा केन्द्र है। इस में मुझे स्वयं पढ़ाना पड़ता है। छोटी छोटी बालिकाओं को हिन्दी का पढ़ाना, फिर पञ्जाब ऐसे उर्दू-प्रधान-प्रान्त में हिन्दी का पढ़ाना कोई सुकर कार्य नहीं है। इस में मुझे पर्याप्त समय देना पड़ता है। इस के अतिरिक्त मैं कई सर्व-जन-हितकारी आन्दोलनों में भाग लेता रहता हूँ। इन कामों से समय बचा कर मैं इतिहास शोधन के काम में लगा रहा हूं। मेरी आय का अधिकांश भाग पुस्तकों के मूल्य लेने में जाता है और समय का अधिकांश भाग इतिहासाध्ययन में ही गया है।

मूल-ग्रन्थों का पाठ—पूर्वोक्त अध्ययन का फल यह ग्रन्थ है। इस अध्ययन में भारतीय-इतिहास पर लिखे गए लगभग सभी अनुसन्धान-पूर्ण ग्रन्थों का पाठ सम्मिलित है। मैं ने

वैदिक और लौकिक-संस्कृत-साहित्य का यथेष्ट मन्थन किया है। मैंने मूल ग्रन्थ पढ़े हैं। अनेक लेखकों के समान मैंने उन ग्रन्थों के अंग्रेज़ी अनुवादों से काम नहीं चलाया। इस लिए विशाल संस्कृत साहित्य के पारायण का मुझ पर जो प्रभाव पड़ा है वह अनुवाद पढ़ने वालों पर नहीं पड़ सकता। सुतरां उनके और मेरे मत में भूतलाकाश का अन्तर हो गया है। मेरी उस वाङ्मय में श्रद्धा बढ़ी है। मेरे हृदय पर उस के तथ्य अङ्कित हुए हैं। मैं अब मानने लगा हूँ कि आर्य ऋषि साधारणतया ३०० या ४०० वर्ष तक जीते थे।

ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रौतसूत्र, रामायण और महाभारत, अर्थशास्त्र और आयुर्वेदीय ग्रन्थ अश्वघोष और दूसरे बौद्ध लेखकों की रचनाएँ तथा कालिदास और बाण की कृतियां अब मेरे लिए सजीव बन रही हैं। इनको पढ़कर मैं उस समय की परिस्थितियों में विचरता हूँ। इन ग्रन्थों ने मेरे अन्दर भाव-विशेष जागृत किए हैं।

अनेक नए प्रमाण—पर मैंने इन ग्रन्थों को आंख बन्द करके नहीं देखा। मैंने इनका संतोलन किया है। मैंने इन ग्रन्थों में से यथार्थ ऐतिहासिक घटनाएँ निकाली हैं। पाठक अगले पृष्ठों में इतिहास सम्बन्धी इतने नए प्रमाण देखेंगे, कि जितने उन्हें वर्तमान काल के अन्य इतिहास-ग्रन्थों में नहीं मिलेंगे। कहीं कहीं तो प्रत्येक पृष्ठ पर दो-दो तीन-तीन नए अन्वेषण लिखे गए हैं। भारत-युद्ध काल की भौगोलिक परिस्थितियों के विषय में अनेक ऐसी बातें लिखी गई हैं, जो ऐतिहासिक संसार के सामने पहली बार ही रखी जा रही हैं।

कल्पनाओं का अभाव—मैंने रैपसन और स्मिथ, पार्जिटर और प्रधान तथा जायसवाल और राय चौधरी से अनेक बातों में मतभेद दर्शाया है। मैंने अपने कथन की पुष्टि में सर्वत्र प्रमाण दिए हैं। अनेक ऐतिहासिकों के समान मैंने कल्पनाएं, नहीं नहीं, सारहीन कल्पनाएं नहीं की हैं। कल्पना से मैं डरता हूँ। मेरा विश्वास है कि कल्पना से बहुधा नए असत्य खड़े हो जाते हैं। इतिहास तो अनवच्छिन्न परम्परा के सुदृढ़-प्रमाणों की आधारशिला पर ही खड़ा हो सकता है। इसी लिए मैंने अपने जीवन का एक बहुमूल्य भाग उस आधारशिला की खोज में लगाया है। अब भी मेरी यही धारणा है कि भारत के सब विश्वविद्यालयों को पुरातन खोज के काम में अधिक अग्रसर होना चाहिए। जिन लोगों ने पुरातत्त्व के कामों में अर्थात् शिलालेखों और मुद्राओं आदि के अन्वेषण में परिश्रम किया है, भारत उन का चिर ऋणी रहेगा। परन्तु दो-एक स्वनामधन्य व्यक्तियों को छोड़ कर उन में कितने हैं जिन्होंने उदरपूर्ति के विचार से रहित हो कर इधर ध्यान दिया है। ये उञ्छवृत्ति आर्य ऋषि ही थे, जो सत्यभाव से प्रेरित हो कर वा सत्य का दर्शन करके अपने ग्रन्थ लिखते थे।

यह इतिहास संक्षिप्त है—मैंने यह इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त लिखा है। यहां इतिहास का क्रममात्र जोड़ा गया है। सुप्रसिद्ध घटनाएं बहुत कम लिखी गई हैं। सब से बड़ा यत्न किया गया है तिथि-क्रम को ठीक करने का। इस विषय में मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि पुराणों का लेख बहुत विश्वसनीय और महत्त्वपूर्ण है। पुराणों में जो त्रुटि आई है, वह लेखक-प्रमाद का फल है। वर्तमान ऐतिहासिकों ने जहां पुराणों का मत त्यागा है, उन्होंने बहुधा वहीं भूल की है।

तिथियों का अभाव—इस इतिहास में भारत-युद्ध से पहली घटनाओं की ऐतिहासिक तिथियां नहीं लिखी गई। मैं लिख चुका हूँ कि मैं कल्पनाओं से डरता हूँ। जब पुरातन युग-समस्या समझ में आ जायगी, तो सब तिथियां अनायास प्रतीत पड़ने लगेंगी। तब तक हमें तिथियां घड़नी नहीं चाहिएं। स्थूल रूप से मैं इतना कह सकता हूँ कि वैवस्वत मनु से ले कर भारत-युद्ध तक ५००० वर्ष से अधिक समय हुआ होगा, कम नहीं।

आर्य-भाषा में ग्रन्थ लिखने का कारण—मेरा यह इतिहास हिन्दी में है। हिन्दी के साथ भारत के भविष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा बन रही है। हिन्दी भारत के जातीय-जीवन का प्राण है। हिन्दी मेरी भाषा है। इस के साथ मेरा असीम प्रेम है। मेरी धारणा है कि जो पठित भारतीय हिन्दी नहीं जानता, वह नाम-मात्र का भारतीय है। अतः कथित पढ़े-लिखों के इस अंग्रेज़ी-प्रधान युग में अपना ग्रन्थ हिन्दी में लिख कर मैं गौरवानुभव करता हूं। मेरा ग्रन्थ पढ़ने के लिए कई देशीय-विदेशीय विद्वानों को हिन्दी सीखनी पड़ेगी।

एक त्रुटि—गत २५ वर्ष में सब पढ़ा लिखा कण्ठस्थ रखने का ही मुझे अभ्यास रहा है। मैंने अपनी स्मृति के लिए किसी टिप्पणि-पुस्तक या कागज़ पर बहुत कम टिप्पणियां लिखी हैं। अतः इतिहास लिखते समय जब पुराने पढ़े हुए अनेक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सके, तो मैंने उनका पूरा प्रमाण नहीं दिया। अगले संस्करणों में यह स्वल्प-त्रुटि दूर कर दी जायगी।

इस सम्बन्ध में एक दुःख की बात—दुःख से कहना पड़ता है कि पुस्तकें देखने में इस बार मुझे पञ्जाब विश्वविद्यालिय के पुस्तकालय की कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकी है। इस के विपरीत कई बार अड़चन ही पड़ी है। विश्वविद्यालय की यह नीति विद्या-वर्धन में कितनी सहायकारिणी है, यह विद्वान् सोच सकते हैं।

सूचियों का अभाव—इस ग्रन्थ में कई कारणों से उपयोगी सूचियां नहीं दी जा सकीं। यह भारी अभाव है। सहृदय पाठक क्षमा करें।

मुद्रण-कार्य—यह ग्रन्थ सन् १९३९ के अगस्त मास में मुद्रित होना आरम्भ हुआ था। अब इस बात को लगभग एक वर्ष हो चला है। इस लम्ब काल में मित्रवर महावैयाकरण श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा मीमांसक-प्रवर श्री पण्डित युधिष्ठिर जी ने कहीं कहीं बड़ी सहायता दी है। इन महानुभावों का मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। मेरी धर्मपत्नी पण्डिता सत्यवती शास्त्रिणी का स्थायी सहयोग भी इस ग्रन्थ की समाप्ति में बड़ा प्रधान अंग बना रहा है। पर सब से बढ़ कर मेरी कन्या कुमारी सूनृता शास्त्रिणी और उसके भ्राता सत्यश्रवा का इस ग्रन्थ की पूर्ति में भाग है। ग्रन्थों का बार बार निकालना, उनके प्रमाणों का चुनना और लिखना उन्हीं का काम रहा है। उन्ही के अनथक परिश्रम से मैं इस ग्रन्थ को लिख सका हूं। हिन्दी भवन-यन्त्रणालय के संचालक श्रीयुत देवचद्र और इन्द्रचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ के प्रूफ-संशोधन का भार सदा उठाए रखा है। उनकी सहायता के बिना मुद्रण में और भी देर लग जाती। अतः वे भी मेरी कृतज्ञता के पात्र हैं। आशा है प्रभु की असीम-कृपा से इतिहास-लेखक और पाठक मेरे इस परिश्रम से लाभ उठायेंगे।

वैदिक अनुसन्धान संस्थान, माडल टाऊन १०-७-४० भगवद्दत्त

द्वितीय संस्करण की भूमिका

विलम्ब का कारण—इस इतिहास का प्रथम संस्करण संवत् १९९७ के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुआ था। वह बहुत शीघ्र समाप्त हो गया। संसार व्यापी युद्ध से उत्पन्न कठिनाइयों के कारण उस का पुनर्मुद्रण दुष्कर था। अब एक वर्ष के बहुत यत्न से यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

इस संस्करण की विशेषताएं—इस संस्करण में दूसरा, बत्तीसवां और तेतालीसवां अध्याय सर्वथा नए जोड़े गए हैं। चवालीसवां अध्याय पहले बयालीसवें (पुरातन चालीसवें) अध्याय का अंग था। अब ये दो अध्याय हैं। अन्य अध्यायों में पर्याप्त नई सामग्री दी गई है। गत सौ वर्ष के अनुसन्धान में पहली बार इसी ग्रन्थ से विद्वानों को पता लगेगा कि आपस्तम्ब धर्म सूत्र में उद्धृत कुछ पुराण वचन वायुपुराण में मिलते हैं। दो तीन स्थानों पर पूर्व लेख का शोधन किया गया है। नई सामग्री की प्राप्ति पर वह करना आवश्यक था। इस प्रकार यह संस्करण पर्याप्त परिवर्धित और संशोधित है। इस में सत्यान्वेषी पाठक को विक्रमपूर्व १२, १३ सहस्र वर्ष के इतिहास का अपूर्व दिग्दर्शन मिलेगा। विद्वान् इस के पाठ से प्रमुदित होंगे।

हमारे परिणाम—इन छः वर्षों के सतत परिश्रम से हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि पहले संस्करण में भारतीय इतिहास का जो कलेवर हम ने परंपरागत ऐतिह्य के आश्रय पर खड़ा किया था, वह सत्य था। जर्मन, फ्रैञ्च और अंग्रेज लेखकों ने हमारे इतिहास का जो रूप बना दिया है, वह अधिकांश असत्य, कल्पित और डार्विन के मिथ्या विकासवाद के आधार पर बनाया गया है। हम जितनी गम्भीरता में जा रहे हैं, पुरातन ऐतिह्य उतना ही सत्य प्रमाणित हो रहा है। रामायण, ब्राह्मणग्रन्थ, महाभारत और वायुपुराण सब एक बात कह रहे हैं। आयुर्वेद और ज्योतिष के वैज्ञानिक ग्रन्थों में भी वही बातें पाई जाती हैं। जलप्लावन, ब्रह्मा का प्रादुर्भाव, देव और असुर सृष्टि, अमृतमन्थन, आदि अनेक घटनाएं इन सब ग्रन्थों में मिलती हैं। ये इतने ऐतिहासिक सत्य हैं जितना दिन दिन सूर्य का उदय। इन का और ऐसी अन्य अनेक घटनाओं का यथार्थ स्वरूप हमारे शीघ्र प्रकाशित होने वाले, पन्द्रह भागों में विभक्त बृहद् इतिहास में होगा।

शास्त्रार्थ का निमन्त्रण—सत्य पर पहुंचने का एक सुलभ उपाय सप्रेम विचार विनिमय अथवा आग्रह रहित शास्त्रार्थ है। वर्तमान लेखक इस से दूर भागते हैं। उन का ज्ञान एकदेशीय और अपनी संग्रहीत टिप्पणियों पर आश्रित होता है। उन्हें सत्य भाव प्रेरित हो कर शास्त्रार्थ के क्षेत्र में उतरना चाहिए। साक्षात् शास्त्रार्थ में अपनी सत्यता वा असत्यता का ज्ञान शीघ्र होता है। अतः भारत के विश्वविद्यालयों के इतिहासाध्यापकों से हमारा नम्र निवेदन है कि सभाएं बुला कर अनेक विषयों का हमारे साथ शीघ्र निर्णय कर लें। निरुत्तर हुआ व्यक्ति अपना पक्ष त्याग देगा। इस से संसार का महान् कल्याण होगा। हम ने भेरी ताडित कर दी है।

संस्कृत भाषा की महत्ता—इस ग्रन्थ में भारतीय इतिहास की मूल घटनाएं हैं, और वे भी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में। इन को पूर्णतया समझने के लिए संस्कृत भाषा का श्रेष्ठ ज्ञान अनिवार्य है। यही नहीं, मौलिक ग्रन्थों का गहरा अभ्यास भी अभीष्ट है। संस्कृत संसारमात्र की मूल भाषा है। उस का ज्ञान न करना और उस के विकृत शब्दों अथवा अपभ्रंशों द्वारा अपना काम साधना मनुष्य का दुर्भाग्य है। इस ग्रन्थ में उद्धृत अनेक संस्कृत वचनों का हम ने अभिप्रायमात्र लिखा है। विद्वान् पाठक उन का यथार्थ अर्थ स्वयं समझ सकते हैं। जर्मन और अंग्रेज़ ग्रन्थकारों ने यहूदी और ईसाई पक्षपात के कारण संस्कृत के विषय में अनेक भ्रान्तियें फैलाई हैं। उन्हों ने भाषाविज्ञान के अनेक मूल नियम असत्य प्रकार के बना दिए हैं। वे परीक्षा पर पूरे नहीं उतरते। अतः विद्वानों को इन भ्रान्तियों का शीघ्र विश्लेषण करना चाहिए। एकदेशीय ज्ञान रखने वाले लोग उन में श्रद्धा रख सकते हैं। सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय पढ़ने वाले पाठक हमारे कथन की सत्यता का प्रमाण इस इतिहास के पृष्ठ २ पर देखेंगे।

इस इतिहास की परम आवश्यकता—अंग्रेज़ी राज्य भारतभूमि पर से उठ जायगा, पर अंग्रेज़ी प्रभाव और अंग्रेज़ी छाप जो विद्या और विज्ञान के नाम पर अंग्रेज़ी पढ़े लिखे भारतीय के मस्तिष्क पर पड़ी है, वह देर में यहां से हटेगी। उस प्रभाव से प्रभावित लोग सत्य के नाम पर असत्य, सूक्ष्म तर्क के नाम पर कुतर्क और विज्ञान के नाम पर अनृत ज्ञान फैला रहे हैं। सर जदूनाथ सरकार ने लिखा है—अब तक हमारे ऐतिहासिकों की पूंजी पवित्र कहानियां, युगों की सड़ी परंपरा, अतिस्तुति की कविताएं, और घटनाओं और कल्पनाओं के सम्मिश्रण की नवीनकाल की रचनाएं रही हैं। हमारे भूतकाल का हिन्दू युग, जो लगभग दो सहस्र वर्ष का था, अन्धकारमय था और यह अन्धकार संस्कृत काव्य नाटकों के मिथ्या प्रकाश द्वारा प्रायः अधिक उलटी दिशा को ले जाने वाला हो जाता था, इति। (ए० न्यू हिस्ट्री आफ दि इण्डियन पीपल, भाग ६, सन् १९४६, प्राक्कथन, पृ० १)

रामायण और महाभारत पवित्र कहानियां हैं, आर्यों का इतिहास केवल दो सहस्र वर्ष का है, संस्कृत काव्य और नाटक समूल मिथ्या हैं, सत्य से विपरीत ऐसा असंगत लेख कोई विदेशीय उच्छिष्टभोजी ऐतिहासिकब्रुव ही कर सकता है। जदूनाथ जी ने प्रछन्न रूप से वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष और कालिदास आदि का महान् अपमान किया है। प्राचीन इतिहास तो अन्धकारमय नहीं था, सरकार जी स्वयं घोर अन्धकार में निमग्न हैं।

श्री जवाहर लाल जी लिखते हैं—यूनानी, चीनी, और अरबों के समान भूतकाल में भारतीय ऐतिहासिक नहीं थे, इति। (डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ० १०६) पुनः—कुछ भी हो, यह सत्य है कि भारतीय लोग परंपरा और रिपोर्ट को बिना सूक्ष्म विवेचन और पूर्ण परीक्षा के इतिहास मान लेने के विचित्र रूप से भागी हैं, इति। (पृ० १०९) तथा—भारत [भरत ?] आर्य जाति का legendry मनघड़त संस्थापक था, इति। (पृ० ११२) ऐसे लेख अंग्रेज़ी छाप का फल हैं। अपने कालेज के दिनों में हम भी एक दो ऐसी बातें कहा करते थे। ईश्वर कृपा से हम ने वह छाप उतार दी और तथ्य की परीक्षा की। उसका फल यह इतिहास है। भारत के एक एक व्यक्ति को इसे पढ़ा देना चाहिए।

आर्थिक सहायता और धन्यवाद—इस अभूतपूर्व कार्य की पूर्ति धन की भारी सहायता के बिना नहीं हो सकती। हमारे अनेक सहृदय मित्र और धनी मानी महाशय इस काम में हमारी सहायता कर रहे हैं। उन में से श्री ला० जगन्नाथ जी भण्डारी एम० ए० भूतपूर्व दीवान, ईडर राज्य, श्री लाला योधराज जी बी० ए० जैनरल मैनेजर पञ्जाब नैशनल बैंक लाहौर, श्री प्रो० वेदव्यास जी एम० ए०, एडवोकेट लाहौर, श्री ला० खुशीराम जी कोले के व्यापारी, शिमला, श्री रामलाल कपूर एण्ड संज़, लाहौर, कविराज श्री हरनामदास जी बी० ए०, श्री महात्मा खुशहालचन्द जी, तथा दीवान रामनाथ जी कश्यप, माडल टाऊन हमारी विशेष सहायता कर रहे हैं। पं० दीनानाथ जी शर्मा बी० ए० शिमला, तथा श्री देवेन्द्र जी बी० ए० कराची धनसंग्रह में विशेष प्रयत्नशील हैं। इन और अन्य सब सहायकों के हम रोम रोम से ऋणी हैं। इन महाशयों की कृपा से भारतीय जाति के उत्थान का यह काम सम्पन्न हो रहा है।

मेरे पुत्र चिरञ्जीव सत्यश्रवा एम० ए०, पं० ईश्वरचन्द्र जी तथा पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने प्रूफ आदि के शोधन में बड़ी सहायता की है। समय समय पर इन्होंने मेरे लिए नई सामग्री खोजी है। इस यज्ञ की पूर्ति में ये मेरे अङ्ग सङ्ग हैं। पञ्चनद प्रेस के संचालक श्री बा० हंसराज जी, प्रबन्धकर्त्ता ला० दीनानाथ जी और फोरमैन पं० मोहनलाल जी ने इस ग्रन्थ को सुन्दर और शीघ्र मुद्रण करने में विशेष प्रयत्न किया है। मैं इन का धन्यवाद करता हूँ। ईश्वर कृपा से यह इतिहास संसार को मार्ग दिखाने वाला बने।

भगवद्दत्त

माडल टाऊन
मंगलवार संवत् २००३
३१ दिसम्बर १९४६

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ

———

भारतवर्ष का इतिहास

प्रथम अध्याय

भारतीय इतिहास के स्रोत

भारतीय इतिहास के स्रोतों के विषय में आधुनिक ऐतिहासिकों के भिन्न भिन्न मत हैं। पाश्चात्य पद्धति का अनुसरण करने वाले लेखक हमारे इतिहास के कई वास्तविक स्रोतों को काल्पनिक कह देते हैं। अतः इस अध्याय में सर्वस्वीकृत स्रोतों का सामान्य और विवादास्पद स्रोतों का कुछ विशेष वर्णन किया जाता है। इस को पढ़ कर विज्ञ पाठक अपना मत स्वयं निर्धारित कर सकते हैं।

भारतीय इतिहास का प्रथम स्रोत—वैदिक ग्रन्थ

इस वाङ्मय के निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

(क) वेदों की वे शाखाएं जिन में ब्राह्मण-पाठ सम्मिलित हैं, अथवा इन शाखाओं के वे मन्त्र जिन में कुछ पाठान्तर किया गया है।

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थ। इन ग्रन्थों में ऐतिहासिक देवासुर संग्रामों की अनेक घटनाएं वर्णित हैं। योरुपीय पद्धति के अनुसार इन ग्रन्थों के पढ़ने वाले लोग कल्पित कथाएं (mythology) कह कर उनका वृथा अनादर करते हैं। वस्तुतः यह उनका अपना अज्ञान है।

(ग) कल्प सूत्र।

(घ) आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ।

इन ग्रन्थों का प्रवचन-काल

वैसे तो ये ग्रन्थ ब्रह्मा, स्वायंभवमनु, पृथु वैन्य तथा महाराज पुरूरवा आदि के काल से चले आ रहे हैं, परन्तु उपलब्ध ग्रन्थों में से अधिकांश का प्रवचन भारत-युद्ध के लगभग १०० वर्ष पूर्व से आरम्भ हुआ और युद्ध के ४०० वर्ष पश्चात् तक होता रहा। इस प्रवचन के कर्ता थे कृष्णद्वैपायन और उन के शिष्य प्रशिष्य। इन्हीं ऋषियों और मुनियों ने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और आयुर्वेदीय ग्रन्थों की लोकभाषा अर्थात् आर्यभाषा में रचना की।

इन ग्रन्थों में भारत-युद्ध काल से सहस्रों वर्ष पूर्व की अनेक ऐतिहासिक घटनाएं वर्णित हैं। उन का क्रम-बद्ध उपयोग आधुनिक काल में किसी भी ऐतिहासिक ने नहीं किया। हम ने इन ग्रन्थों के कतिपय ऐतिहासिक अंशों का संकेतमात्र अपने "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" (ब्राह्मण भाग) में किया था। इस इतिहास में हम ने इन ग्रन्थों की प्रायः सब ही ऐतिहासिक बातों के यथास्थान रखने का प्रयत्न किया है।

भारतीय इतिहास में वैदिककाल, उपनिषत्काल और कथात्मक महाकाव्य काल नहीं थे।

वर्तमान पाश्चात्य लेखकों ने मिथ्या भाषा-विज्ञान के आधार पर भारतीय इतिहास के पूर्वोक्त काल स्थिर कर दिए हैं। उन की बात सर्वथा कल्पित और निराधार है। आज तक किसी भी ऋषि, मुनि या पण्डित ने ऐसी बात नहीं लिखी थी। जो ऋषि इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्र आदि के लेखक थे, वही ऋषि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों के प्रवचनकर्ता थे। ब्रह्मा जी से ले कर भारत-युद्ध के ४०० वर्ष पश्चात् तक वैदिककाल था और तभी उपनिषत्काल और महाकाव्य काल भी था। उपनिषद् ज्ञान ब्रह्मा जी के काल से चला आ रहा है। इस इतिहास के पाठ से यह सत्य सुविदित हो जायगा।[1] अतः इस इतिहास में यह कल्पित काल विभाग नहीं है।

भारतीय इतिहास का दूसरा स्रोत— वाल्मीकीय रामायण

इस समय यह ग्रन्थ तीन मुख्य पाठों में उपलब्ध है। इन तीनों पाठों में सूर्यवंश की प्राचीन वंशावली का कुछ भाग थोड़ा सा विकृत हो गया है। प्राचीन इतिहास के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है। पश्चिमीय और एतद्देशीय वर्तमान इतिहास-लेखकों ने इस ग्रन्थ का यथार्थ गौरव अभी तक नहीं समझा। पेरिस-निवासी परलोकगत प्रोफेसर सिल्वन लेवी ने इस का ऐतिहासिक महत्त्व समझना आरम्भ किया था, परन्तु वे भी इस के विषय में अधिक नहीं लिख पाए।

काश्मीरिक आनन्दवर्धन[2] सुप्रसिद्ध कवि भवभूति, निरुक्त व्याख्याकार दुर्ग, शकारि चन्द्रगुप्त का समकालिक महाकवि कालिदास, भदन्त अश्वघोष और सुप्रथित-यशा भास आदि प्राचीन कविगण रामायण के प्रसंगों से अपने ग्रन्थों की सामग्री लेते और उस के आख्यानों को लिखते आए हैं। इन में से कलि संवत् ३७४० में शतपथभाष्य रचने वाले हरिस्वामी के गुरु स्कन्दस्वामी का पूर्ववर्ती आचार्य दुर्ग तो वाल्मीकि के श्लोक भी उद्धृत करता है।[3]

वाल्मीकीय रामायण के अनेक श्लोक अथवा उनकी छाया महाभारत में विद्यमान है। महाभारत के नलोपाख्यान में ऐसे अनेक श्लोक मिलते हैं। संवत् १९९९ के अन्त में परलोक सिधारने वाले महाभारत के सम्पादक श्री विष्णु सीताराम-सुक्थङ्कर ने बहुत परिश्रम से दो लेख लिखे थे। दुःख से कहना पड़ता है कि वे आंगल भाषा में हैं। पहला लेख नलोपाख्यान और

---

१. इसका विशेष वर्णन वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० ९१-९६ पर देखो।

२. रामायणे हि करुणो रसः······स्वयमादिकविना सूत्रितः—शोकः श्लोकत्वमागतः—इत्येवं वादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता। चतुर्थ उद्द्योत।

३. आचार्य दुर्ग निरुक्तवृत्ति ४।१९॥ में लिखता है—"शिरीषकुसुमप्रख्याः केचित्पिङ्गलकप्रभाः।
वानरा.............................॥
इति यश्रून्ते रामायणे।"

रामायण के विषय में है।[1] उसमें बताया गया है कि महाभारत अन्तर्गत आरण्यक पर्वस्थ नलोपाख्यान के अनेक श्लोक वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड के श्लोकों की प्रतिलिपि मात्र हैं।

दूसरा लेख आरण्यक पर्वान्तर्गत रामोपाख्यान का मूल रामायण को बतलाता है।[2] लेखक ने ऐसे ८६ वचन दिए हैं जो महाभारत में रामायण से लिए गए हैं। इन लेखों से सर्वथा स्पष्ट है कि कृष्णद्वैपायन व्यास जो निश्चय ही आरण्यकपर्व का भी कर्ता था, वाल्मीकि का ऋणी है।

प्रसिद्ध कवि राजशेखर इस परम्परागत सत्य को जानता था कि व्यास ने वाल्मीकि का अध्ययन किया है।[3]

महाभारत वनपर्व १४९। ११॥ में रामायण नाम भी स्पष्ट रूप से मिलता है।[4] रामायण युद्धकाण्ड ८१। २८॥ श्लोक महाभारत द्रोणपर्व अध्याय १४३ में मिलता है—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवंगम ॥८५॥

पाराशर्य व्यास के लिए राम रावण युद्ध पुराकाल का एक दृष्टान्त हो चुका था—

यादृशं हि पुरावृत्तं रामरावणयोर्मृधे। द्रोणपर्व ६९। २८॥

इस से ज्ञात होता है कि कृष्णद्वैपायन व्यास से बहुत पूर्व अथवा वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत पहले भार्गव वाल्मीकि ने रामायण रची थी। रामायण के उत्तर काण्ड की कथा का मूल भी बहुत पुराना है। मैथिली-निर्वासन और रामपुत्रों का वाल्मीकि द्वारा पालन अश्वघोष को ज्ञात था।[5]

भारतीय इतिहास का तीसरा स्रोत—महाभारत

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यास की यह रचना भारतीय इतिहास का एक अनुपम ग्रन्थ है। इसका साहित्यिक मूल्य कुछ थोड़ा नहीं। इसकी सुन्दर पदावली, इसकी बहुविध ज्ञान-गरिमा, इसमें वर्णित घटनाओं की सरसता, और इसकी ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्णता आदि ऐसी बातें हैं जो इस ग्रन्थ को हमारी असीम श्रद्धा का पात्र बना देती हैं। कभी इस देश में

---

१. A Volume of Eastern and Indian Studies in honour of Prof. F. W. Thomas, Pages 294—303.

२. A Volume of Studies in Indology presented to Prof. P. V. Kane, Poona, 1941—Epic Studies The Rama Episode and the Ramayana, Pages 472—487.

३. प्रचण्डपाण्डव अङ्क १, विष्कंभक।

४. रामायणेऽतिविख्यातः श्रीमान्वानरपुङ्गवः॥

५. सौन्दरनन्द १।२६॥

महाभारत सदृश अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ थे। व्यास और उनके शिष्यों को उन इतिहासों का पूर्ण ज्ञान था। भगवान् व्यास के किसी शिष्य ने इस बात का उल्लेख करके भारतीय इतिहास का महान् उपकार किया है।

महाभारत आदिपर्व के प्रथमाध्याय में पहले चौबीस पुरातन राजाओं का नाम-कीर्तन है। व्यास-शिष्य इतने कथन-मात्र से संतुष्ट नहीं हुआ, उसके विशाल इतिहास परिचय की इतिश्री यहीं नहीं हो गई। वह पुनः पचास से कुछ अधिक अन्य प्रतापी राजाओं का स्मरण करके कहता है—

इन राजाओं के दिव्यकर्म तथा त्याग आदि का कथन पुराने विद्वान् कविसत्तमों ने किया है।[1]

भगवान् व्यास और उनके शिष्यों को उन पुराने कविसत्तमों के ग्रन्थरत्न पढ़ने अथवा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे सब ग्रन्थ अब कहां चले गए? गत ११०० वर्ष की हमारी इतिहास-अरुचि के कारण लुप्त हो गए। उनके अभाव में कतिपय संशयारूढ लोगों को हमारे पुराने इतिहास में सन्देह ही सन्देह उत्पन्न हो रहे हैं।

महाभारत ग्रन्थ की स्थिति

महाभारत या भारत ग्रन्थ कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की ही कृति है, और इसका वर्तमान आकार प्रकार गत तीन सहस्र वर्ष में कुछ अधिक विकृत नहीं हुआ। हां, कहीं कहीं श्लोकों या अध्यायों में किंचित् न्यूनाधिक्य या पाठान्तर तो हुए हैं, परन्तु मूल कथा तथा प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री परिवर्तन का पात्र नहीं बनी। यह हमारी प्रतिज्ञा है और इसके साधक प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं—

१. संवत् १०८७ के समीप का संस्कृत-विद्या का अध्ययन करने वाला मुसलमान ऐतिहासिक अलबेरूनी लिखता है—महाभारत के १८ पर्वों में १००,००० श्लोक हैं।[2] इससे ज्ञात होता है कि अलबेरूनी के काल में महाभारत ग्रन्थ की स्थिति लगभग वर्तमान काल के समान ही थी।

२. संवत् १०५७ के लगभग होने वाला शैव शास्त्र का अद्वितीय विद्वान्, तथा भरत-मुनि के नाट्यवेद का व्याख्याकार आचार्य अभिनवगुप्त लिखता है कि महाभारत शास्त्र में शत-सहस्र श्लोक थे।[3]

---

१. येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम्।१८१॥
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः।१८२॥

२. अलबेरूनी का भारत, अध्याय १२।

३. द्वैपायनेन मुनिना यदिदं व्यधायि शास्त्रं सहस्रशतसम्मितमत्र मोक्षः।
भगवद्गीता-भाष्य, भूमिका श्लोक २।

३. संवत् ९७७ के समीप[1] माघप्रणीत शिशुपालवध महाकाव्य पर टीका लिखने वाला वल्लभदेव महाभारत का श्लोक परिमाण सपादलक्ष—१२५,००० मानता है।[2]

४. संवत् ९५७ के समीप का राजशेखर अपनी काव्य-मीमांसा में भारतसंहिता को शतसाहस्री कहता है।[3]

५. ध्वन्यालोक वृत्ति ३।१५॥ में आनन्दवर्धनाचार्य (८वीं शती) महाभारतस्थ गृध्रगोमायु-संवाद[4] का उल्लेख करता है। वह अनुक्रमणी और हरिवंश को महाभारत का भाग मानता है।[5]

६. संवत् ६८७ के समीप का वलभीविनिवासी ऋग्वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में भारतान्तर्गत अनेक आख्यानों का निर्देश करता है।[6]

७. स्थाण्वीश्वर महाराज श्रीहर्षवर्धन की राजसभा को सुशोभित करने वाले गद्यकवि भट्टबाण ने कादम्बरी और हर्षचरित दो ग्रन्थ-रत्न लिखे थे। ये दोनों ग्रन्थ महाभारतान्तर्गत अनेक सरस कथाओं और घटनाओं से भरे पड़े हैं।[7] हर्षचरित के आरम्भ में भट्ट बाण ने स्पष्ट

---

१. वल्लभदेव का पुत्र चन्द्रादित्य और पौत्र कय्यट था। कय्यट ने देवीशतक की विवृति में अपना काल कलिसंवत् ४०७८ अर्थात् संवत् १०३३ लिखा है।

२. सपादलक्षं श्रीमहाभारतम्। २। ३८॥ इसमें हरिवंश का पाठ भी सम्मिलित होगा।

३. पृ० ७।

४. शान्तिपर्व अध्याय १५२।

५. ननु महाभारते यावान् विवक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तः। महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः। चतुर्थ उद्द्योत का अन्त।

६. भारते तु ऋषयः शापात्सरस्वतीं मोचयामासुरित्याख्यानम्।
ऋग्वेदभाष्य १।११२।९॥ तुलना करो महाभारत शल्यपर्व, अ० ४४।

७. पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, पृ० ६७। विराटनगरीव कीचकशतावृता, पृ० ६७। भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, पृ० १०७। पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, पृ० १०७, १०८। महाभारते शकुनि-वधः, पृ० १४३। महाभारत-पुराण-रामायणानुरागिणा, पृ० १७९। आस्तीकतनुरिव आनन्दितभुजङ्गलोका, पृ० १८२। महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम्, पृ० १९९। महाभारत-पुराणेतिहासरामायणेषु, पृ० २६३। महाभारतमिवानन्तगीताकर्णनानन्दितनरम्, पृ० ३१४। इत्यादि, कादम्बरी, पूर्वभाग, हरिदासकृत कलिकत्ता संस्करण, शक १८५७।

विविधवीररसरामणीयकेन महाभारतमपि लंघयन्, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६३९। पाण्डवः सव्य-साची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसम्पदे क्रुध्यद् गन्धर्वधनुष्कोटिटाङ्कारकूजितकुञ्जं हेमकूटपर्वतं पराजैष्ट। सप्तम उच्छ्वास पृ० ७५८। हर्षचरित जीवानन्द संस्करण, कलिकाता, सन १९१८।

लिखा है कि भारत का रचयिता व्यास था।[1] ये दोनों ग्रन्थ संवत् ६८० के समीप लिखे गए होंगे।

८. लगभग इसी काल का व्याकरण काशिकाकार जयादित्य अपनी काशिका वृत्ति १।१।११॥ तथा ५।४।१२२॥ में महाभारत शान्तिपर्व के दो श्लोक १७६।१२॥ तथा १०।१॥ क्रमशः उद्धृत करता है। काशिकाकार जयादित्य महाभारत नाम से भी परिचित था।[2]

९. संवत् ६४७ के समीप अथवा उसके कुछ पहले मीमांसा-वार्तिकों का लिखने वाला,[3] बौद्धमत-विध्वंसक भट्ट कुमारिल भी महाभारत के अनेक श्लोक उद्धृत करता है और महाभारत का एक श्लोक उद्धृत करते हुए वह इसे पाराशर्य की कृति ही मानता है।[4]

१०. दिग्गज बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति भी भारत की रचना में अपने काल के लोगों की अशक्ति मानता है। यथा—भारतादिष्वपि इदानीन्तनानां अशक्तावपि कस्यचित् शक्तिसिद्धेः।[5]

११. इस से कुछ पूर्वकाल का काव्यालंकारसूत्र-प्रणेता भामह महाभारत-वर्णित अनेक कथाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ में करता है।[6]

१२. मत्स्यपुराण का वर्तमान रूप इन दिनों से उत्तरकाल का नहीं है। उसमें महाभारत के एक लाख श्लोकों का स्पष्ट वर्णन है।[7] वायुपुराण का प्रथमाध्याय इस काल से पहले का है। वहां व्यास को भृगुवाक्य-प्रवर्तक और महाभारत का कर्ता कहा गया है।[8]

१३. संवत् ६२७ से पूर्ववर्ती शब्दब्रह्मवादी वाक्यपदीय का कर्ता महावैयाकरण भर्तृ-

---

१. नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे। चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥४॥

२. नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते ४।१।१०३॥

३. प्रतापशील अर्थात् प्रभाकरवर्धन संवत् ६६२ में परलोक सिधारा। उसका समकालीन विश्वरूप अपनी बालक्रीडा में कुमारिल के श्लोक उद्धृत करता है। संवत् ६८७ के समीप के ऋग्वेदभाष्य रचयिता स्कन्दस्वामी ने अपने निरुक्तभाष्य में कुमारिल को उद्धृत किया है।

४. प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि ॥२।
इदं पुण्यमिदं पापम्। श्लोकवार्तिक औत्पत्तिकसूत्र।

५. प्रमाणवार्तिक, पृ० ४४७, ४४८।

६. ३।५॥ ३।७॥ ५।३९॥ ५।४२॥ इत्यादि। भामह स्कन्दस्वामी से उद्धृत किया गया है।

७. भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्।
लक्षेणैकेन यत्प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥५३।७०॥

८. श्लोक ४२ तथा ४५।

हरि[1] भी महाभारत के कई श्लोक उद्धृत करता है। एक स्थान पर उसने आश्वमेधिकपर्व के कई श्लोक उद्धृत किए हैं।[2] इस से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि के काल में आश्वमेधिकपर्व के वे स्थल विद्यमान थे।

१४. इन से पूर्व की अथवा गुप्तकाल के मध्य की प्रतिपदश्लेष को कहने वाली सुबन्धु की वासवदत्ता का भी यही वृत्त है। इस ग्रन्थ में महाभारतस्थ घटनाओं का उल्लेख उदार मन से किया गया है।[3]

१५. वासवदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार शैव आचार्य उद्योतकर सूत्र ४।१।२१॥ पर अपने वार्तिक में महाभारत वनपर्व का एक श्लोक ३०।२८॥ उद्धृत करता है।

१६. उद्योतकर के न्यायवार्तिक में व्यास के योगभाष्यस्थ एक वचन का उद्धरण मिलता है। योगभाष्य उस काल से पहले का ग्रन्थ है। योगभाष्य १।४७॥[4] और २।४२॥ में महाभारत के दो श्लोक उद्धृत हैं।[5]

१७. मध्यभारत के उच्चकल्प कुल के महाराज सर्वनाथ के ताम्रपत्र में महाभारत के एक लाख श्लोक माने गए हैं।[6] महाराज सर्वनाथ के शिलालेख संवत् १९१-२१४ तक के मिल चुके हैं।[7]

१८. इन से पूर्वकाल का मीमांसाभाष्यकार शबर अपने भाष्य ८।१।२॥ में महाभारत आदिपर्व १।४९॥ को उद्धृत करता है।

---

१. नालन्दा के आचार्य धर्मपाल ने भर्तृहरि-रचित "पेइ-न" प्रकीर्णक (?) पर एक टीका लिखी थी। (इत्सिङ्ग, भाषा-संस्करण, पृ० २७६) धर्मपाल का जीवनकाल संवत् ५९६-६२७ था। वह ३२ वर्ष की आयु में मरा। (Introduction to Vaisheshika Philosophy according to the Dashapadarthi Shastra by H. Ui, 1917, p. 10) अतः धर्मपाल ने संवत् ६२७ से पूर्व वाक्य-पदीय पर टीका लिख दी होगी।

२. वाक्यपदीय प्रथमकाण्ड ४०, ४३।

३. इस सुबन्धु का काल अभी पूर्णतया निश्चित नहीं किया जा सका। हां, वह बाण से अवश्य पहले हुआ था।

बृहन्नलानुभावोऽपि, पृ० २३। दुःशासनदर्शनं महाभारते, पृ० २८। कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठितः, पृ० ४७। भीमोऽपि न बकद्वेषी, पृ० ८२। भारतसमरभूम्येव, पृ० ११३। उत्तरगोग्रहण समरभूम्येव वर्धमानबृहन्नलया, पृ० ११८। विराटलक्ष्म्येव आनन्दितकीचकशतया, पृ० १२०। कुरुसेनामिव उलूकद्रोणशकुनिसनाथाम्, पृ० ३१६।

कृष्णमाचार्य संस्करण। उपर्युक्त उद्धरण सम्पादक की भूमिका पृ० २३, २४ से लिए गए हैं।

४. महाभारत, शान्तिपर्व, १७।२०॥१५१।११॥

५. महाभारत, शान्तिपर्व, १७४।४६॥ १७७।५१॥७७।७॥

६. उक्तं च महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन वेदव्यासेन व्यासेन। गुप्त शिला-लेख, भाग ३, पृ० १३४।

७. पाश्चात्य पद्धति के कई लेखक इस संवत् को कलचुरी संवत् मानते हैं। उसी पद्धति के

इस प्रमाण को उद्धृत करने से शबर मानता है कि ऋषि व्यास ने ही महाभारत का अनुक्रमणीपर्व भी बनाया। अनुक्रमणी के अनुसार महाभारत की श्लोक गणना वर्तमान काल सदृश ही थी। अतः शबर से कई सौ वर्ष पहले भी महाभारत ग्रन्थ लगभग एक लाख श्लोकात्मक ही था।

१९. कामसूत्रकार वात्स्यायनमुनि (१।४॥) इसी श्लोक का उत्तरार्ध उद्धृत करते हैं।

२०. लगभग इसी काल अथवा इस से कुछ पूर्व काल का निरुक्तवृत्तिकार दुर्ग महाभारत के अनेक श्लोक उद्धृत करता है।[1] आचार्य दुर्ग संवत् ६८७ में वर्तमान ऋग्भाष्यकार स्कन्दस्वामी से पहले का ग्रन्थकार है। उसका महाभारत से उद्धृत किया हुआ एक श्लोक बताता है कि युद्ध काण्डों की अवस्था में कोई अन्तर-विशेष नहीं हुआ।[2]

यही नहीं, दुर्ग का तो मत है कि निरुक्तकार यास्क आख्यान सहित भारतसंहिता को जानता था।[3] यदि दुर्ग का यह मत सत्य सिद्ध हो जाए तो मानना पड़ेगा कि महाभारत का वर्तमान आकार प्रकार भारत-युद्ध के ३०० वर्ष के अन्दर ही अन्दर बन चुका था। यास्क का काल भारत-युद्ध से ३०० वर्ष के पश्चात् का नहीं है।

२१. महायानिक सगाथक लंकावतारसूत्र में व्यास और भारत का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[4]

दूसरे लेखक इसे फ्लीट-कल्पित गुप्तसंवत् मानते हैं। हमारे विचारानुसार ये दोनों मत असङ्गत हैं। गुप्त संवत् के आरम्भ के सम्बन्ध में फ्लीटमत निराधार है।

१. निरुक्तभाष्य ४। १ ॥ में महाभारत आदिपर्व १। ४९ ॥ उद्धृत है। निरुक्तभाष्य ३। ४॥ में सुभद्राहरण सम्बन्धी भगवान् वासुदेव का कहा हुआ एक वाक्य पढ़ा गया है। वह वचन टूटे फूटे पाठ में अब भी महाभारत में मिलता है। देखो आदिपर्व २१३।४॥ फिर दुर्ग निरुक्तभाष्य ६।३०॥ में लिखता है—इति भारते श्रूयते। निरुक्तभाष्य ७। ३ ॥ में भगवद्गीता ३। १३ ॥ उद्धृत है।

२. तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद् धनञ्जयः।
निरुक्तवृत्ति ३। १३ ॥ भीष्मपर्व ५५। ३७ ॥ देखो निरुक्तवृत्ति ७। १४ ॥

३. एष चाख्यानसमयः।७।७॥ पर दुर्ग लिखता है—भारते चाख्यानसमयः। इसके आगे वह महाभारत के कई आख्यानों का निर्देश करता है।

४. व्यासः कणाद ऋषभः कपिलशाक्यनायकः।
निर्वृते मम पश्चात्तु भविष्यन्त्येवमादयः ॥७८४॥
मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा।
पाण्डवाः कौरवा राम पश्चान्मौर्यी भविष्यति ॥७८५॥
मौर्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः।
म्लेच्छान्ते शस्त्रसंक्षोभः शस्त्रान्ते च कलियुगः ॥७८६॥

इन गाथाओं का चीनी अनुवाद संवत् ५७० में हो गया था। देखो, Preface, The Lankavatara Sutra, बुन्यिउ नञ्जियो का संस्करण Kyoto, 1923, pp. VIII, IX.

२२. वाररुच निरुक्तसमुच्चय नाम का एक ग्रन्थ मिलता है। उस में वेद्-मन्त्रों का विवरण है । वररुचि की कृति होने से यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी विक्रम की रचना है । यह वररुचि सुप्रसिद्ध विक्रमादित्य का पुरोहित था। उस के ग्रन्थ में महाभारत के कई श्लोक उद्धृत हैं।[1] वह निरुक्तसमुच्चय के उपोद्घात में व्यास को भारत का कर्ता मानता है—

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रचलिष्यति । इति व्यासवचनम् ।

२३. पैशाची बृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य ने भी वर्तमान काल ऐसे महाभारत का अध्ययन किया था। उसने अपने ग्रन्थ में उन अनेक आख्यानों का कथन किया है जो महाभारत ही में मिलते हैं। कथा-सरित्-सागर से तो यही प्रतीत होता है।[2]

२४. साकेत में लब्धजन्म महाकवि महावादी भिक्षु आचार्य अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दोनों महाकाव्यों में महाभारत में वर्णित घटनाओं का एक अद्भुत आनन्द अनुभव होता है।[3]

भदन्त अश्वघोष बौद्धों के महायान सम्प्रदाय का प्रकाण्ड पण्डित था। उसका काल विक्रम की पहली शताब्दी से पूर्व का है । उस के दोनों महाकाव्यों का पाठ यह निश्चय कराता है कि उस के काल में महाभारत ग्रन्थ की स्थिति लगभग वर्तमान काल ऐसी ही थी। नष्ट वेद का सारस्वत द्वारा उपदेश एक आख्यान के रूप में महाभारत में सम्मिलित था। बुद्धचरित १।४७॥ में अश्वघोष सारस्वत की उस कथा का निदर्शन करता है।[4] जब इस प्रकार के आख्यान उस समय महाभारत में विद्यमान थे, तो कुरु-पाण्डवों की ऐतिहासिक घटनाओं का कहना ही क्या।

२५. जैन सम्प्रदाय के उत्तराध्ययन सूत्र नवमाध्ययन की नमि प्रव्रज्या की गाथा १४ में महाभारत शान्तिपर्व १७।१९॥१७८।५६॥ अथवा २८२।४॥ उद्धृत है।

२६. मृच्छकटिक प्रकरण का कर्ता शूद्रक जो विक्रम सम्वत् से पूर्व का है, अपने प्रकरण

---

१. २।३६॥ २।४२॥

२. कथा० स० सागर — महाभारत

रुरुमुनि कथा १४।७६ ॥	आदिपर्व अध्याय ८॥
सुन्दोपसुन्द कथा १५।१३५ ॥	,, ,, २०१॥
कुन्ति-दुर्वासा ,, १६।३६॥	,, ,, ११३।३२ ॥
पाण्डु-मुनिवध कथा २१।२०॥	,, ,, १०९ ॥
शकुन्तला ,, ३२।१०८ ॥	,, ,, ६२ ॥ इत्यादि ।

३. बुद्धचरित १।४२॥१।४५॥४।७६॥४।७९॥११।१५॥११।१८॥११।३२॥
सौन्दरनन्द ७।२९॥७।३१॥७।३८॥७।४१॥७।४४॥९।१८॥९।२०॥

४. महाभारत शल्यपर्व, अध्याय ५२ ॥

में महाभारत के इतिवृत्तों की ओर बहुधा संकेत करता है।[1] वह आर्य राजा विद्वान् था और उसे महाभारत सम्बन्धी ज्ञान की पूर्ण परिचिति थी।

२७. शुङ्ग-वंश प्रवर्तक सम्राट् पुष्यमित्र[2] का याज्ञिक पुरोहित आचार्य पतञ्जलि अपने व्याकरण महाभाष्य में किसी पुरातन नाटक का एक श्लोक उद्धृत करता है।[3] यह श्लोक महाभारत के एक श्लोक की प्रतिध्वनिमात्र है।[4] महाभाष्य ४।२।६०॥ में आख्यान के दृष्टान्त में तीन उदाहरण दिये हैं—यावक्रीतक। प्रैयङ्गविक।[5] यायातिक। इन में से प्रथम महाभारत वनपर्व अध्याय १३७–१४१ में मिलता है। तीसरा महाभारत आदिपर्व अध्याय ७१ से आरम्भ होता है। यहां से यह तीसरा मत्स्य पुराण ने लिया है।

महाभाष्य ३।३।१६७॥ में एक श्लोक कालः पचति भूतानि उद्धृत है। यह श्लोक ठीक इसी रूप में महाभारत आदिपर्व १।१८८॥ है। पुराणों में यह श्लोक कुछ पाठान्तर से मिलता है। महाभाष्य ४।१।४८॥ में उद्धृत एक श्लोक कुछ रूपान्तर से वनपर्व १।२७॥ है। पुनः महाभाष्य में कई ऐसे वचन हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पतञ्जलि महाभारत की कथाओं से परिचित था।[6]

२८. आयुर्वेद की चरकसंहिता का तीसरा अध्याय दृढबल से पूर्वकाल का है। यह अध्याय पतञ्जलि से भी पहले का है। उस में लिखा है—

---

१. एषोऽहं गृहीत्वा केशहस्तं दुःशासनस्यानुकृतिं करोमि। १।२९॥
मार्गो हि एष नरेन्द्र सौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना। ३।११॥
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिरः। पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः। ५।६॥
भीमस्यानुकरिष्यामि बाहुः शस्त्रं भविष्यति। ६।१७॥
पाश्चात्य लेखक मृच्छकटिक को अकारण छटी शताब्दी ईसा का ग्रन्थ कहते हैं।

२. पतञ्जलि किस सुन्दर प्रकार से पुष्यमित्र का स्मरण करता है—
महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुष्यमाणवाः।
एष प्रयोग उपपन्नो भवति।७।२।२३॥

३. यस्मिन्दश सहस्राणि पुत्रे जाते गवां ददौ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रियाख्येभ्यः सोऽयमुञ्छेन जीवति॥ इति।१।४।३॥

४. यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति॥ द्रोणपर्व १९७।३१॥

५. तुलना करो—प्रैयङ्गवम् तै० ब्रा० ३।१।४।४॥ ऐ० ब्रा० ८।१६॥

६. धर्मेण स्म कुरवो युध्यन्ते। ३।२।१२२॥ इत्यादि।
असिद्वितीयो अनुससार पाण्डवम्। ३।२।२४॥
इस वचन में असिं जग्राह—कर्णपर्व ७२।१॥ (कुम्भघोण संस्करण) की घटना का उल्लेख प्रतीत होता है।

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति ॥[1]३१२ ॥

इस पर चक्रपाणि आदि टीकाकारों ने लिखा है कि ये नामसहस्र महाभारत में हैं। इस की दूसरी व्याख्या हो ही नहीं सकती। जब चरक के प्रतिसंस्कार के समय महाभारत ग्रन्थ में विष्णुसहस्रनाम विद्यमान था तो उस समय महाभारत का कलेवर वर्तमान काल ऐसा ही था।

२९. मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का महामन्त्री आचार्य विष्णुगुप्त अपने अर्थशास्त्र में महाभारत के अनेक श्लोकों की छाया का प्रदर्शन करता है। निम्नलिखित स्थान देखने योग्य हैं—

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ उद्योगपर्व ३३ । ४२ ॥
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ अर्थशास्त्र, आदि से १३४ अध्याय ।

३०. महाकवि भास के अनेक नाटक[2] महाभारत की कई घटनाओं के आधार पर लिखे गए हैं। उन सब नाटकों के उपलब्ध पाठों से यह बात प्रतीत होती है कि भास ने भी लगभग इसी प्रकार के महाभारत का अध्ययन किया था।

३१. आचार्य पाणिनि इन से बहुत पूर्वकाल का था । वह अपने एक सूत्र से महाभारत शब्द की सिद्धि बताता है।[3] अष्टाध्यायी ६।२।३८॥ द्वारा गाण्डीव शब्द की सिद्धि की गयी है । पाणिनि महाभारत से परिचित था। उसका गण-पाठ थोड़ा सा विकृत तो हुआ है, पर अधिकांश पुरातन सामग्री रखता है। उसके निम्नलिखित पद देखने योग्य हैं—

विश्वक्सेनार्जुनौ[4] २।२।३१॥ — गाण्डीव २।४।३१॥
सात्यकि २।४।५९॥ — श्वाफल्कि[5] २।४।६१॥
भीमः । भीष्मः ३।४।७४॥ — क्षेमवृद्धिन् ४।१।९६॥
कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम । ४।१।९६॥
जरत्कारु ४।१।११२॥ — रुक्मिणि ४।१।१२३॥
कुरु ४।१।१५१॥ — कितव[6] ४।१।१५४॥
कौरव्य ४।१।१५४॥ — आशोकेय[7] ४।१।१७३॥

---

१. तुलना करो—अनुशासनपर्व १५४।८॥—
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततं स्थितः ॥

२. पञ्चरात्र, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और ऊरुभंग ।

३. महान् व्रीहि–अपराह्ण–गृष्टि–इष्वास–जाबाल–भार–भारत–हैलिहिल–रौरव–प्रवृद्धेषु ।६।२।३८॥

४. कृष्णार्जुन । ५. अक्रूर । ६. शकुनि ।

७. प्रो० राय चौधरी ने महाभारत आदिपर्व ६१।१४॥ में उल्लिखित एक प्राचीन असुर अशोक

३२. आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।५॥ में भारत और महाभारत दो नाम मिलते हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र शौनक-शिष्य आश्वलायन की कृति है। यह शौनक भारत-युद्ध से लगभग ३०० वर्ष पश्चात् एक दीर्घसत्र कर रहा था।

कौषीतकि गृह्यसूत्र २।५।३॥ में भी महाभारत नाम पठित है। शौनक गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत दोनों नाम पढ़े गए हैं।[1]

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रमाणों से हम देख सकते हैं कि महाराज विक्रम के काल में और उस से बहुत पूर्व भी भारतवर्ष के धुरन्धर आचार्य महाभारत के भिन्न भिन्न पर्वों के श्लोक अपने ग्रंथों में उद्धृत कर रहे थे। महाभारत के आदिपर्व के श्लोकों का प्रमाण दुर्ग, शबर और योगसूत्रभाष्यकार व्यास ने दिया है। दुर्ग के अनुसार तो यास्क भी आख्यान सहित भारतसंहिता को जानता था। और व्यास का भारत ग्रन्थ कौरव-पाण्डव युद्ध के पश्चात् तीन सौ वर्ष के अन्दर ही महाभारत नाम से प्रख्यात हो चुका था।

ऐसी परिस्थिति में महाभारत ऐसे अनुपम ऐतिहासिक ग्रन्थ को भारतीय इतिहास लिखने में पर्याप्त प्रमाण न मानना एक भारी भूल है। माना कि महाभारत के कुछ आख्यान वा वर्णन समझ में नहीं आते[2] पर इतने मात्र से ऐतिहासिक ग्रन्थों में महाभारत की प्रतिष्ठा न्यून नहीं हो जाती। हमें स्मरण रखना चाहिए कि मैगस्थनीज़ के वृत्तान्त और ह्यूनसांग के विवरण में भी ऐसी कई बातें हैं, जो हमारी समझ में नहीं आतीं।

जिस व्यक्ति ने महाभारत के युद्ध-प्रकरण ध्यान से पढ़े हैं, उसे निश्चय हो जायगा कि यह इतिहास कितना सत्य है। कृष्ण द्वैपायन ने एक एक व्यक्ति की कुलपरम्परा को स्पष्ट करने के लिए उसके नाम के साथ बहुधा ऐसे विशेषण जोड़े हैं कि उस का वास्तविक इतिहास तत्क्षण सामने आता है। काल्पनिक इतिहास में यह बात हो न सकती थी।

आन्ध्र और गुप्तकाल के शिलालेखों में महाभारत काल के अनेक व्यक्ति स्मरण किए गए हैं। तब तक भारतीय वाङ्मय सर्वथा सुरक्षित था। यदि इतने बड़े सम्राटों के राज-पण्डित इस इतिहास में विश्वास रखते रहे हैं, तो इस के ऐतिहासिक तथ्यों का कल्पित होना दुष्कर क्या असम्भव है।

महाभारत में प्राचेतस मनु[3], उशना[4] अथवा भार्गव,[5] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र,[6]

को अशोक मौर्य समझने की भूल की है। देखो चौधरी रचित—प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, सन् १९३८, पृ० ४।

१. स्मृतिचन्द्रिका, आह्निककाण्ड तर्पण प्रकरण, पृ० ५१९ पर उद्धृत।

२. द्रौपदी-तथा धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति आदि।

३. शान्तिपर्व ५५।४३॥

४. शान्तिपर्व ५५।२८—॥

५. शान्तिपर्व ५५।४०॥९४।९॥

६. शान्तिपर्व ५५।३८॥

विश्वावसु[१], इन्द्र[२], मार्कण्डेय[३] और प्रह्लाद[४] के श्लोक उद्धृत हैं। तथा रसातल निवासियों की एक गाथा[५] भी उद्धृत है। भगवान् व्यास की महती कृपा से यह सामग्री अब भी सुरक्षित है और वर्तमान योरुपीय मिथ्या भाषाविज्ञान का खण्डन कर रही है। इस सामग्री से ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध से सहस्रों वर्ष पूर्व भी संस्कृतभाषा का लगभग वर्तमान काल सदृश रूप था। इस संस्कृत भाषा से संसार की समस्त भाषाएं निकली हैं। ऐसी अनुपम सामग्री रखने वाले महाभारत का जितना आदर हो थोड़ा है।

महाभारत और यवन शब्द

वैबर आदि जर्मन लेखक और उनका अनुकरण करने वाले राय चौधरी[६] आदि ऐतिहासिक महाभारत में भारत के पश्चिम में रहने वाले कुछ लोगों के लिए यवन शब्द का प्रयोग देखकर तत्काल कह उठते हैं कि महाभारत के ये प्रकरण सिकन्दर के पश्चात् लिखे गए होंगे। इसको हम भ्रान्ति के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं। यवन लोगों का इतिहास यूनान में बसने के बहुत काल पहले से आरम्भ होता है। उनकी भाषा बताती है कि वे कभी विशुद्ध आर्य थे।[७] तब वे भारत के उत्तर-पश्चिम में बसते थे। सहस्रों वर्ष यहां रह कर उनका एक भाग वर्तमान योरोप की ओर गया। देवकीपुत्र कृष्ण का कशेरुमान् यवन को मारना कोई कल्पना नहीं है।[८] जब भारत का यथार्थ प्राचीन इतिहास सुप्रमाणित हो जायगा, तो ये सब बातें स्वयं स्पष्ट हो जायेंगी।

इसी प्रकार अनेक पाश्चात्य लेखकों ने यवन शब्द के प्रयोग के कारण अष्टाध्यायी और मनुस्मृति आदि का काल भी बहुत नया मान लिया है। यह भी उन लेखकों की कल्पना है। वस्तुतः ये ग्रन्थ महाराज नन्द के काल से बहुत पूर्व के हैं। उस समय सिकन्दर का कोई अस्तित्व न था।

महाभारत के हस्तलिखित ग्रन्थों का साक्ष्य

महाभारत ग्रन्थ में अधिक हेर फेर न होने का एक और भी प्रमाण है। जो विद्वान् पुरातन ग्रन्थों के कुशल-सम्पादक हैं, वे किसी ग्रन्थ के दस बीस लिखित कोशों को तुलनात्मक रीति से देख कर बता देते हैं कि उस ग्रन्थ में कितना अन्तर हुआ है। अब विचारने का स्थान है कि महाभारत के तीन संस्करण[९] इस समय तक निकल चुके हैं। महाभारत की अनेक पुरानी टीकाएं भी मिल गई हैं। इन्हीं दिनों पूना की भाण्डारकर अनु-

---

१. वनपर्व ८८।१७॥ २. वनपर्व ८८।६॥ ३. वनपर्व ८६।५॥

४. उद्योगपर्व १६०।१३॥ पूना संस्करण, परिशिष्ट। ५. उद्योगपर्व १००।१४॥

६. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, सन् १९३८, पृ० ४।

७. मनुस्मृति १०।४३, ४४॥ अनुशासनपर्व ६८।२१–२३॥७०।१९, २०॥

८. सभापर्व ६१।६॥ वनपर्व १२।३३॥ ९. कलकत्ता, मुम्बई और कुम्भघोण संस्करण।

सन्धान संस्था का महाभारत का संस्करण भी निकल रहा है। उस के लिए शतशः पुरातन कोश एकत्र किए गए हैं। वे कोश हैं भी विभिन्न प्रान्तों के। उन में से लगभग ६० अत्युपयोगी कोशों के आधार पर वह संस्करण निकाला जा रहा है। परन्तु उस संस्करण का क्या परिणाम निकला है? यही कि आदि और विराट पर्वों को छोड़ कर शेष पर्वों में कोई अधिक भेद नहीं है। हमने इस संस्करण के उद्योगपर्व के पूर्वार्ध का अध्ययन किया है। वह स्पष्ट बताता है कि यह उद्योगपर्व कुम्भघोण संस्करण के उद्योगपर्व से कुछ अधिक भिन्न नहीं। इस पर्व में न्यूनाधिकता भी न के तुल्य है।

इस से ज्ञात होता है कि महाभारत के अनेक पर्व अब भी लगभग वैसे ही हैं, जैसे आज से सहस्रों वर्ष पूर्व थे। और विक्रम से पूर्व जब आर्य-परम्परा सुरक्षित थी, तब इन ग्रन्थों में हेर फेर करने का कोई साहस नहीं कर सकता था। फलतः हम कह सकते हैं कि कृष्ण द्वैपायन व्यास का रचा महाभारत आर्य इतिहास का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

भारतीय इतिहास का चौथा स्रोत—पुराण

पुराण-साहित्य की प्राचीनता

१. नवम शताब्दी का भट्ट मेधातिथि लिखता है—पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि।[1]

२. संवत् ६८७ के समीप ऋग्भाष्य करने वाला आचार्य स्कन्दस्वामी पुराणों के कई श्लोक प्रमाण रूप से लिखता है।[2] ये श्लोक वर्तमान पुराणों में स्वल्प पाठान्तरों से मिलते हैं।[3]

३. ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका २३ के भाष्य में आचार्य गौडपाद—पुराणानि पद का प्रयोग करता है।

४. आचार्य दुर्ग वसिष्ठोत्पत्ति सम्बन्धी एक कथा का भाव देकर लिखता है—इति पुराणे श्रूयते।[4] यह कथा मत्स्य पुराण २०। २३-२९॥ में मिलती है।

५. विक्रम की पहली शताब्दी में होने वाला आचार्य वररुचि अपने निरुक्तसमुच्चय में लिखता है—तथा चाहुः पौराणिकाः।[5]

---

१. मनुभाष्य ३।२२२॥

२. (क) इति पुराणे श्रुतत्वात्। १।२०।७॥ (ख) एवं हि पौराणिकाः स्मरन्ति। १।२४।१॥ (ग) इति पुराणेषु प्रसिद्धम्। १।२५।१३॥ (घ) पौराणिकाः हि कक्षीवन्तमाङ्गिरसं स्मरन्ति। एवं ह्याहुः—इनके साथ वाले श्लोक ऋग्भाष्य १।११६।७॥ में देखें।

३. (ख) मत्स्य १४५।६३।६४॥ ब्रह्माण्ड २।३२।६८।६९॥ वायु ५९।६१।६२॥ (घ) वायु ५९।१०२॥

४. निरुक्तवृत्ति ५।१४॥ ५. द्वितीय कल्प का आरम्भ।

६. ब्राह्मण सम्राट् शूद्रक अपने पद्मप्राभृतक में लिखता है—

भो. अघो पुराणकाव्यपदच्छेद्—[1]

७. न्यायभाष्यकार वात्स्यायन किसी पुरातन ब्राह्मण ग्रन्थ का यह वाक्य लिखता है—
प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते—ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन्।[2] इतिहासपुराण पञ्चमं वेदानां वेद इति।[3] ४।६२॥

अर्थात्—वे अथर्वाङ्गिरस ऋषि ही थे, जिन्होंने इतिहास और पुराण का प्रवचन किया। वात्स्यायन के अनुसार इतिहास और पुराण के लेखक ही मन्त्रब्राह्मण के द्रष्टा थे—
य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च [प्रवक्तारः] ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।[4]

ब्राह्मणग्रन्थ वर्णित इतिहास और पुराण के प्रवक्ता ये अथर्वाङ्गिरस कौन थे

(क) काव्य ग्रन्थों का प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ किरातार्जुनीय १०।१०॥ की टीका करता हुआ लिखता है—अथर्वणा वसिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः चतुर्थवेद इत्यर्थः। अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वशिष्ठकृत इत्यागमः। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वसिष्ठ और उसका कुल अथर्वा कुल भी कहा जा सकता है।

(ख) अथर्वा और भृगु लोग एक ही थे। मत्स्यपुराण ५१।१०॥ में लिखा है—भृगोः प्रजायताथर्वा ह्यङ्गिराथर्वणः स्मृतः। पुराणों में १९ भृगु ऋषि कहे गए हैं। उनमें काव्य उशना और सारस्वत ध्यान देने योग्य हैं।[5]

(ग) पुराणों में ३३ अङ्गिरा ऋषि गिने गए हैं। उनमें शरद्वान् और वाजश्रवा नाम विचार योग्य हैं।

(घ) अथर्वा अथवा वासिष्ठ कुल में वसिष्ठ, शक्ति, पराशर और द्वैपायन नाम ध्यान देने योग्य हैं।

(ङ) रामायण का कर्त्ता ऋक्ष अथवा वाल्मीकि एक भार्गव था। वह अथर्वाओं के अन्तर्गत है।

इस प्रकार (१) काव्य उशना (२) सारस्वत (३) शरद्वान् (४) वाजश्रवा (५) वसिष्ठ (६) शक्ति (७) पराशर (८) द्वैपायन और (९) ऋक्ष या वाल्मीकि ये ९ ऋषि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

---

१. चतुर्भाणी पृ० ५।

२. तुलना करो—ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्। छा० उप० ३।४।२॥

३. छा० उ० ७।७।२॥ ४. न्यायभाष्य ४।६२॥

५. देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४२।

(च) अथर्वाङ्गिरा ऋषियों में पूर्वोक्त नौ नाम ऐसे ऋषियों के हैं जो वायुपुराणस्थ अगली सूची के अनुसार इतिहास पुराण के प्रवक्ता थे। वायुपुराण २३ । ११४—२२६॥ तक सब व्यासों की एक परम्परा पढ़ी गई है। पुनः इस पुराण के अन्त में पुराण के कहने वाले ऋषियों की इस परम्परा से लगभग मिलती हुई निम्नलिखित परम्परा दी गई है—

१. ब्रह्मा	२. मातरिश्वा=वायु	३. उशना *
४. बृहस्पति	५. सविता	६. मृत्यु=यम
७. इन्द्र	८. वसिष्ठ*	९. सारस्वत*
१०. त्रिधामा	११. शरद्वान्*	१२. त्रिविष्ट
१३. अन्तरिक्ष	१४. वर्षि	१५. त्रय्यारुण
१६. धनञ्जय	१७. कृतञ्जय	१८. तृणञ्जय
१९. भरद्वाज	२०. गौतम	२१. निर्यन्तर
२२. वाजश्रवा*	२३. सोमशुष्म	२४. तृणबिन्दु
२५. ऋक्ष[1]*	२६. शक्ति*	२७. पराशर*
२८. जातुकर्ण	२९. द्वैपायन*	

इन २९ नामों में से ९ नाम ऊपर आ गए हैं। इन्हीं ऋषियों ने वे दिव्य इतिहास और पुराण लिखे होंगे जिनका उल्लेख कृष्ण द्वैपायन ने पुराणैः कविसत्तमैः[2] पदों से किया है। उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों के लिखने वाले ऋषि अपनी इस परम्परा को यथार्थ रूप से जानते थे। उन्होंने एक वाल्मीकि अथवा एक व्यास का नाम न लेकर अथर्वाङ्गिरस कहने से इतिहास पुराण के प्रवक्ता अनेक ऋषियों का स्मरण किया है। वे निश्चय भार्गव वाल्मीकि अथवा ऋक्ष की रामायण अथवा वायु के पुराण से परिचित थे।

८. पतञ्जलि अपने व्याकरण महाभाष्य में पुरातन वाङ्मय का परिगणन करता हुआ पुराण का स्मरण करता है—

वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमिति।[3]

९. कौटल्य भी किन्हीं पुराणों को जानता था—इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्।[4]

पुनः कौटल्य अपने सुप्रसिद्ध वाक्य में पौराणिक सूत और सारथी सूत का भेद बताता है—पौराणिकस्त्वन्यः सूतः।[5]

१०. स्कन्द, शूद्रक, वात्स्यायन, पतञ्जलि और कौटल्य के काल से बहुत पहले याज्ञवल्क्य स्मृति के कर्ता को पुराण साहित्य का ज्ञान था।[6]

---

१. चौबीसवें परिवर्त में ऋक्ष ही एक व्यास था। वायु २३।२०६॥

२. देखो पृष्ठ ३ का टिप्पण।

३. कीलहार्न का संस्करण भाग १, पृ० ९।

४. अध्याय ९६, अन्त।

५. प्रारम्भ से अध्याय ६४।

६. या० स्मृ० १।३॥३।१८०॥

११. पाणिनि मुनि के काल से बहुत पहले कभी एक काश्यपीय पुराणसंहिता भी थी। यह नाम भोजराजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण ४।३।२२९ की नारायण दण्डनाथ विरचित टीका में मिलता है।

१२. गौतम धर्मसूत्र-भाष्यकार मस्करी सूत्र १।३९॥ के भाष्य में कण्व धर्मसूत्र का एक वचन लिखता है। अथर्ववेदेतिहासपुराणानि ध्यायन्........। इति। इस से ज्ञात होता है कि कण्वधर्मसूत्रकार को कई पुराणों का ज्ञान था।

१३. गौतमधर्मसूत्र ८।६॥ और ११।२१॥ में पुराण शब्द का प्रयोग मिलता है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र और वायुपुराण

१४. आपस्तम्बधर्मसूत्र १।६।१९।१३,१४॥ में किसी पुराण से दो श्लोक उद्धृत किए गए हैं। आप० २।९।२३।३,४॥ में किसी पुराण के दो अन्य श्लोक उद्धृत हैं। ये श्लोक वायुपुराण ५०।२१३,२१५, २१८, २२०॥ तथा ६१।९९-१०१, १२२, १२३॥ से बहुत अधिक समता रखते हैं। वर्तमान वायुपुराण का पाठ थोड़ा सा विकृत प्रतीत होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१०।२९।७॥ में किसी पुराण का एक गद्य वचन है। और २।९।२४।६॥ में भविष्यत्पुराण का एक वचन उद्धृत है—

पुनः सर्गे बीजार्था भवन्ति, इति भविष्यत्पुराणे।

यह वचन वायुपुराण ८।२४॥ तथा ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग ७।२४॥ में मिलता है—

प्रवर्तन्ते पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि॥

इस तुलना से निश्चय होता है कि आपस्तम्बधर्मसूत्रकार ने या तो ये वचन वायुपुराण से लिए हैं अथवा आ० धर्मसूत्र और वायुपुराण ने किसी पुरातन पुराण से याथातथ्य के साथ ले लिए हैं। उत्तर पक्ष में यह कहना पड़ेगा कि वर्तमान वायुपुराण का बहुत सा भाग नया नहीं है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में पुराण वचन क्यों उद्धृत हैं

आपस्तम्ब भार्गव और आङ्गिरस हैं।[1] अथर्वाङ्गिरस ऋषि इतिहास और पुराण के प्रवक्ता थे, ऐसा पूर्व दर्शा आए हैं। अतः आपस्तम्ब का पुराण वचन उद्धृत करना स्वाभाविक था।

१५. भगवान् बुद्ध से बहुत पहले की चरकसंहिता के शारीरस्थान, अध्याय ४।४४॥ में लिखा है—श्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषु कुशलम्।

इस वाक्य से प्रतीत होता है कि उस अत्यन्त प्राचीन काल में भी अनेक पुराण थे।

---

१. मत्स्यपुराण, पृ० ४३२, ४३३।

१६. नारद स्मृति के भाष्यकार भवस्वामी के अनुसार नारदस्मृति के २०४,२०५ श्लोक पुराणप्रोक्त हैं।

१७. धर्मशास्त्रों के पूर्ववर्ती आरण्यकों और ब्राह्मणों में भी पुराणों वा पुराण का उल्लेख है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः। तै० आ० २।९॥

तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित्पुराणमाचक्षीत्। शतपथ १३।४।३।१३॥

१८. भगवान् पराशर अपनी ज्योतिष संहिता में लिखते हैं—

वेदवेदाङ्गेतिहास-पुराण-धर्मशास्त्रावदातं।[1]

१९. वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड अध्याय ८ में ग्रन्थवाची पुराण शब्द पढ़ा गया है—

एवमुक्तो नृपतिना सुमन्त्रो वाक्यमब्रवीत्।
नरेन्द्र श्रूयतां तावत्-पुराणे यन्मया श्रुतम् ॥५॥
सनत्कुमारो भगवान् पुरा कथितवान् कथाम।
भविष्यं विदुषां मध्ये तव पुत्रसमुद्भवम् ॥६॥

२०. अथर्ववेद १५।३०।१॥ में अनेक विद्याओं के साथ पुराण शब्द भी पढ़ा है—

तमितिहासं च पुराणं च।

स्मरण रखना चाहिए कि अथर्ववेद से अथर्वाङ्गिरा अथवा भृग्वङ्गिरा ऋषियों का ही अधिक सम्बन्ध था। उन्होंने अथर्ववेद से ही इतिहास तथा पुराण विद्याओं के निर्माण की शिक्षा ली थी।

अठारह पुराण—इन में से कुछ एक के प्राचीन वाङ्मय में नाम

१. अब रही इन अठारह पुराणों की बात। प्रसिद्ध ऐतिहासिक अलबेरूनी (सम्वत् १०८७) १८ पुराणों की स्वल्प भेद वाली दो सूचियां देता है।

२. राजशेखर (सम्वत् ९५७) काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में अष्टादश पुराणों का कथन करता है—तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायं पुराणमष्टादशधा।

पुनः बालभारत में राजशेखर लिखता है—अष्टादशपुराणसारसंग्रहकारिन् पृ० ४।

३. मनुस्मृति-भाष्यकार मेधातिथि मनु ३।२३२॥ के भाष्य में पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि लिखता है। व्यासादि लिखने से वह मानता है कि व्यास के अतिरिक्त भी कोई पुराण रचयिता थे।

४. गौतमधर्मसूत्र ८।६॥ के भाष्य में मस्करी लिखता है—पुराणं ब्रह्माण्डादि।

---

१. बृहत् संहिता, भट्ट उत्पल की टीका, पृ० ८१।

५. वाचस्पतिमिश्र (वि० संवत् ८९८) योगभाष्य की व्याख्या में प्रायः विष्णुपुराण का नाम लेकर उस के प्रमाण देता है।[1] वह वायुपुराण का भी नाम स्मरण करता है।[2] वाचस्पति द्वारा उद्धृत इन पुराणों के श्लोक मुद्रित संस्करणों में अब भी मिलते हैं।

६. वाचस्पति के पूर्ववर्ती आचार्य शंकर कई पुराणों के नाम लेकर उन से प्रमाण देते हैं। यथा—भविष्योत्तर पुराण[3], विष्णुपुराण[4], ब्रह्म[5] और पद्मपुराण[6]। शंकर ने विष्णु पुराण को पराशर की कृति माना है।[7]

७. सम्वत् ६७७ के समीप हर्षचरित में भट्टबाण ने लिखा है—पवनप्रोक्तं पुराणं पपाठ।[8]

महाभारत वनपर्व १९१।१६॥ में वायुप्रोक्त पुराण का उल्लेख है। महाभारत दाक्षिणात्य पाठ में पुराणविदों की दाशरथि राम विषयक कतिपय गाथाएं उद्धृत हैं। ये सब गाथाएं वायुपुराण ८८।१९१॥ में हैं। दोनों ग्रन्थों में ये गाथाएं किसी प्राचीन पुराण से ली गई हैं। पूर्वोक्त संख्या १४ के साथ इन बातों के मिलाने से निश्चय होता है कि वायुपुराण में प्राचीन पुराण सामग्री बहुत सुरक्षित है।

८. बाण से पहले होने वाला आचार्य भट्ट कुमारिल भी पुराणों के भविष्य कथनों को प्रामाणिक मानता था। उसके काल में पुराणों में भविष्यकथन ऐसे ही था जैसा सम्प्रति मिलता है। तन्त्रवार्तिक १।३॥ के पुराण प्रामाण्य से यह स्पष्ट है।

९. सांख्यकारिका की माठरवृत्ति (संभवतः प्रथम शताब्दी विक्रम) में पुराण-वर्णित भविष्य के कलकी का उल्लेख है।

१०. योगसूत्र पर जो व्यासभाष्य है, उस का एक वचन न्यायवार्तिक और न्यायभाष्य में मिलता है।[9] अतः योगभाष्य न्यून से न्यून विक्रम की पहली या दूसरी शताब्दी में विद्यमान होगा। व्यास भाष्य संभवतः महाभाष्य से भी पुराना है। व्यासभाष्य ४।३३ में लिखा है—यस्मिन् परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम्। व्याकरण महाभाष्य में पतञ्जलि ने नित्य का अपना लक्षण लिखा। वह नित्य के इस एक लक्षण से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने आगे लिखा—तदपि नित्यं यस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते।[10] इस पंक्ति को

---

१. २।३२,५२,५४ इत्यादि। २. १।१९, २५॥४।१३॥
३. विष्णुसहस्रनाम टीका, श्लोक १०। ४. विष्णुसहस्रनाम टीका, श्लोक १०।
५. ,, ,, १०। ६. ,, ,, ५६।
७. ,, ,, १४।
८. उच्छ्वास तीसरा, आरम्भ। ब्रह्माण्ड को भी वायुप्रोक्त कहते हैं।
९. योग ३।१३॥ न्यायभाष्य १।६॥ तदेतत् त्रैलोक्यं......। जैन ग्रन्थों के अनुसार यह वार्षगण्य का वचन है।
१०. कीलहार्न का संस्करण भाग १ पृ० ७ पं० २२।

लिखते हुए व्यासभाष्यान्तर्गत पूर्वोक्त लक्षण का ध्यान पतञ्जलि के मन में होगा। अब व्यासभाष्य में लिखा है—

तथा चोक्तम्—स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

वाचस्पतिमिश्र इस पर लिखता है—अत्रैव वैयासिकीं गाथामुदाहरति।

यह वचन विष्णुपुराण ६।६।२॥ में मिलता है। अतः यह प्रतीत होता है कि वाचस्पतिमिश्र के अनुसार योगभाष्यकार को यहां विष्णुपुराण का श्लोक अभिमत था। वाचस्पति उसे व्यास-प्रोक्त मानता है। ध्यान रहे कि पराशर भी एक व्यास था।[1]

११. बाण अपने हर्षचरित में पुरूरवा के मरने की एक कथा लिखता है।[2] सुबन्धु अपनी वासवदत्ता में यही बात लिखता है।[3] अश्वघोष ने भी अपने एक श्लोक में इसका कथन किया है।[4] अर्थशास्त्रकार कौटल्य भी इस घटना का संकेत करता है।[5] पुरूरवा सम्बन्धी यह कथा वायुपुराण में मिलती है।[6] अन्यत्र हमारे देखने में नहीं आई। इस से ज्ञात होता है कि कौटल्य तक को वायु-पुराण का अथवा वायुपुराणस्थ इन श्लोकों का ज्ञान था।

इस प्रकार विज्ञ पाठक समझ सकते हैं कि पुराण-साहित्य चिर-काल से प्रचलित रहा है। आधुनिक पुराणों में से भी कई एक बहुत पुराने हैं। इन की सामग्री के एक विशेष अंश का कृष्णद्वैपायन वेद-व्यास से भी सम्बन्ध है। वाचस्पतिमिश्र के अनुसार व्यास-भाष्य में उद्धृत वचन एक वेद-व्यास का है। वायु[7] तथा ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में लिखा है कि कृष्णद्वैपायन ने पहले एक पुराण संहिता बनाई। वही एक पुराणसंहिता उस के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा अनेक भागों में विभक्त हुई।

महाभारत के बनने से पहले भी कोई पुराण था।[8] उस पुराण से महाभारत के पूर्वकाल की कई वंशावलियां महाभारत में ली गई हैं। महाभारत आदिपर्व अध्याय ११२ में किसी पुरातन पुराण में गायी पुरुवंश के महाराज व्युषिताश्व की एक गाथा उद्धृत है—

अप्यत्र गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः। १३।

वह सारी गाथा वर्तमान पुराणों में नहीं मिलती। इससे पता चलता है कि व्यास से पहले भी पुराण ग्रन्थ विद्यमान थे।

---

१. वायुपुराण २३।२१२॥

२. पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया दयितेन आयुषा व्ययुज्यत। जीवानन्द संस्करण पृ० २४२।

३. पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। दाक्षिणात्य सं० पृ० ३३७।

४. बुद्धचरित ११।१५॥ ५. १।६॥ ६. ३।२०—२३॥ ७. ६०।१२—२१॥

८. आदिपर्व ५९।३७ तथा ५० ॥ वायु १।३१।३२ ॥

सभापर्व अध्याय ३८ के अन्त में पुराणविदों की हलमुखी छन्दोबद्ध एक और गाथा उद्धृत है—

गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
अन्तरात्मनि विनिहिते रौषि पत्ररथ वितथम् ।
अण्डभक्षणमशुचि ते कर्म वाचमतिशयते ॥४०॥

इतने लेख से यह ज्ञात हो जाता है कि पुराणों के कर्ताओं में व्यास, पराशर, वायु अथवा पवन और कई अथर्वांगिरस ऋषियों के नाम चिरकाल से स्मरण में आ रहे हैं। परन्तु वर्तमान पुराणों के साम्प्रदायिक भाग बहुत पुराने नहीं हैं । हां, महाभारत काल से पूर्वकाल की ऐतिहासिक सामग्री हेर फेर से रहित है। महाभारतोत्तर काल की ऐतिहासिक सामग्री भी जितनी पुराणों में सुरक्षित है, उतनी अन्य किसी ग्रन्थ में सुरक्षित नहीं रही। पुराणों और महाभारत की ऐतिहासिक सामग्री शिलालेखों की अपेक्षा अल्प प्रामाणिक नहीं है । हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों से यह बात सुविदित हो जायगी ।

भारत का इतिहास लिखने वालों को पुराणों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यद्यपि इङ्गलेण्ड देशोत्पन्न पार्जिटर महाशय ने पुराणों पर परिश्रम किया था, तथापि उनका लेख पक्षपात के कारण अधिक प्रामाणिक नहीं। पुराणों की कलि-काल की वंशावलियों के प्रामाणिक संस्करण अभी निकलने हैं। पुराणों में मगध, कोसल और हस्तिनापुर के राजवंशों के अतिरिक्त अन्य राजवंशों का भी इतिहास था।[1] वह अब ग्रन्थों के पाठ-भ्रष्ट होने के कारण नष्ट सा हो रहा है। यत्नविशेष से उस के मिलने की सम्भावना हो सकती है।

पुराणों में महाभारत से पूर्व के राजाओं के राज्य की काल-गणना में जो सहस्रवर्ष पद बहुधा प्रयुक्त हुआ है, उसका अर्थ पुरूरवा के वर्णन में स्पष्ट हो जायगा।

मूल पुराण और वाल्मीकीय रामायण ब्राह्मण-ग्रन्थों से बहुत पूर्वकालीन हैं

वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थ भारतयुद्धकाल से लगभग सौ वर्ष पूर्व से कृष्णद्वैपायन व्यास और उन के शिष्यों द्वारा संकलित होने आरम्भ हुए। उन में पुराण वाङ्मय का स्मरण किया गया है। इस से निश्चित होता है कि पुराण ग्रन्थ इन ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले विद्यमान थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रधान प्रवचनकर्ता व्यास जी वाल्मीकीय रामायण को बहुत पढ़ते थे, अतः रामायण ग्रन्थ भी ब्राह्मणग्रन्थों से पूर्वकाल का है।

भारतीय इतिहास का पांचवां स्रोत—विशाल संस्कृत-वाङ्मय

आर्य विद्वान् अपना इतिहास सदा लिखते रहते थे। महाभारत के एक वचन से पहले दिखाया गया है कि भगवान् व्यास से भी पहले आर्य कविसत्तम पुरातन राजर्षियों के चरितों को लिखते थे।[2] हमारे पास वैसा एक चरित अब रह गया है । वह है वाल्मीकि-रचित रामायण।

---

१. मत्स्य ५०।७४–७६॥ वायु ९९।२६८, २६९॥ २. पृ० ३।

(क) रघुवंश—प्रतीत होता है कि महाराज रघु का कोई चरित रचा गया था। महाभारत आदिपर्व १।१७२॥ में उस को दृष्टि में रख कर—विक्रमी रघुः प्रयोग किया गया है। कालिदास ने उस की सहायता से रघुवंश की रचना की होगी। पाश्चात्य-विचार-प्राप्त कुछ लेखकों का कहना है कि सम्राट् समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन ही कालिदास ने रघु के नाम से कर दिया है। यह बात सत्य नहीं। क्या रघु की विजय-यात्रा कुछ अल्प महत्त्वपूर्ण थी? भारत के पुराने इतिहास से अनभिज्ञ लोग ऐसा समझें तो समझें, पर विद्वान् लोग रघु के पराक्रम और उसकी दिग्विजय-यात्रा को एक सत्य बात मानते हैं। गद्यकवि बाण ने भी बड़े गौरवयुक्त शब्दों में रघु की इस विजय का उल्लेख किया है।[1]

अश्मकवंश—भामह ने अपने अलंकारशास्त्र १।३३॥ में अश्मकवंश नामक किसी इतिहास ग्रन्थ का परिचय दिया है।

(ख) नाटक ग्रन्थ—उदयन सम्बन्धी स्वप्न, वीणावासवदत्ता, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण तथा तापस वत्सराज, किसी मागध राजा का वर्णन करने वाला कौमुदी महोत्सव, शुङ्ग-काल का प्रदर्शक मालविकाग्निमित्र तथा गुप्त-काल में रचे गए मुद्राराक्षस और देवीचन्द्रगुप्त आदि नाटक सुप्रसिद्ध ही हैं। इनमें से केवल देवीचन्द्रगुप्त अभी तक नहीं मिला। मायामदालस[2] तथा महाकवि भीम का प्रतिज्ञाचाणक्य[3] अथवा प्रतिभाचाणक्य[3] ऐसे नाटक थे जो ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण थे। इनका आधार सत्य घटनाएं थीं, जिन पर विख्यात कवियों ने नाटकों की सृष्टि की। इसी प्रकार के और भी ऐतिहासिक नाटक अभी अन्वेषण-योग्य हैं। उन से इतिहास की प्रभूत सामग्री मिलेगी। अभिनवगुप्त ने बिन्दुसार सम्बन्धी किसी नाटक का पता दिया है।[4]

(ग) इसी प्रकार बृहत्कथा, शूद्रककथा आदि कथा-ग्रन्थ थे। वे अब लुप्तप्राय हैं। बृहत्कथा का थोड़ा सा सार कथासरित्सागर आदि में मिल सकता है। उज्जयन के एक राजवंश का इतिहास लिखने में कथासरित्सागर ने अच्छी सहायता की है।

(घ) चरित ग्रन्थ—इन में से प्राचीन काल का अब हर्षचरित ही विद्यमान है। इस ग्रन्थ में पुरातन इतिहास की भी एक बड़ी राशि है—साहसांकचरित भी बहुत उपादेय होगा, परन्तु अब यह लुप्तप्राय है।

चन्द्रचूडचरित—यह चरित चन्द्रगुप्त मौर्य का चरित था और उसी के कालमें रचा गया था। निम्नलिखित श्लोक इस में प्रमाण है—

---

१. अप्रतिहतरथरंहसा रघुणा लघुना एव कालेन अकारि ककुभां प्रसादनम्। हर्षचरित पृ० ७५८।

२. सागरनन्दिकृत नाटकलक्षणरत्नकोश में उद्धृत। पृ० १२, १४ आदि।

३. अभिनवगुप्तकृत भरतनाट्यशास्त्र व्याख्या पृ० १६१ तथा ४२५।

४. भरत नाट्यशास्त्र व्याख्या पृ० ४१४।

निष्पन्ने सति चन्द्रचूडचरिते तत्तन्नृपप्रक्रियाजातैः सार्द्धमरातिराजकशिरोरत्नावलीनां त्रयम् ।
तप्तस्वर्णशतानि विंशतिशतीरूप्यस्य लक्षत्रयं ग्रामाणां शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचन्द्रो ददौ ॥ उमापतेः ।[1]

चरित और कथा ग्रन्थों के आरम्भ में पुराने कवियों की स्तुति प्रायः गायी जाती है। उससे ऐतिहासिक कालक्रम के निश्चित करने में सहायता मिलती है।

(ङ) व्याकरण ग्रन्थ—भारतीय इतिहास के निर्माण में आधुनिक ऐतिहासिकों ने व्याकरण ग्रन्थों का अत्यल्प प्रयोग किया है। हमने इन ग्रन्थों से भी इस इतिहास में पर्याप्त सहायता ली है। भारतीय भूगोल की कई बातों के जानने में व्याकरण ग्रन्थ बड़े काम के हैं।

(च) ज्योतिष ग्रन्थ—ज्योतिष ग्रन्थों से भारत में प्रचलित कई संवतों का ज्ञान हो सकता है। उन ग्रन्थों की ओर ऐतिहासिकों ने ध्यान नहीं दिया। भट्टोत्पल[2] ने यवन स्फुजिध्वज और उस से पहले के जिस यवन संवत् का परिचय दिया है, उस पर अभी तक विचार नहीं किया गया। केवल गार्गीसंहिता के युगवृत्तान्त प्रकरण से थोड़ी सी सहायता ली गई है।

अलबेरूनी निर्दिष्ट श्रुद्धव ग्रन्थ की खोज होनी चाहिए। इस ग्रन्थ से विक्रमादित्य विषयक समस्या की पूर्त्ति में सहायता मिल सकती है।

यल्लयार्य के ज्योतिषदर्पण में निम्नलिखित संवत् देखने योग्य हैं—

बाणवेदनवचन्द्रवर्जिता १९४५ स्तेपि शूद्रकसमाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्यः विक्रमसमा भवन्ति वै नागनन्दवियदिन्दुवर्जिताः १०९८ । ६४ ॥
भारताद्वा वसुजिनैर्युक्ताः स्युः कलिवत्सराः २४८ ॥७०॥
कल्यद्वा रूपरहिताः पाण्डवाद्वाः प्रकीर्तिताः।
बाणाब्धिगुणदस्रोना २३४५ शूद्रकाद्वाः कलेर्गताः ॥७१॥
गुणाब्धिव्योमरामोना ३०४३ विक्रमाद्वाः कलेर्गताः।
खाक्षयुक्तशकवर्षेषु ५० भोजराजस्य वत्सराः ॥७२॥
प्रतापाब्दाः कृताब्ध्यर्कै १२४४ रूनिता शकवत्सराः।
जिनविश्वोनितं शाके १३२४ श्रीहरिहरवत्सराः ॥७३॥

(छ) महेश्वरगौरी सम्वाद नामक एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ अभी अभी मिला है।[3]

(ज) संस्कृत के अन्य सामान्य ग्रन्थ भी कभी कभी पुरातन इतिहास के लिए बड़ी सहायता देते हैं।

---

१. सदुक्तिकर्णामृत, लाहौर संस्करण, पृ० २९७।

२. बृहज्जातक टीका ७।९॥

३. इण्डियन हि० क्वा० सितम्बर १९४२ में मुद्रित।

भारतीय इतिहास का छठा स्रोत—अर्थशास्त्र

इस समय कौटल्य का अर्थशास्त्र ही उपलब्ध है। कौटल्य से पूर्व के अनेक अर्थशास्त्र अब नामावशेष हैं। बृहस्पति और विशालाक्ष के अर्थशास्त्रों के कुछ उद्धरण यत्र तत्र मिलते हैं।[1]

विष्णुगुप्त, चाणक्य अथवा कौटल्य एक प्रकाण्ड पण्डित था।[2] वह एक महा साम्राज्य का महामन्त्री था। उस में और महाभारत युद्ध में केवल १६०० वर्ष का अन्तर था। तब तक भारतीय वाङ्मय सुलभ और अत्यन्त सुरक्षित था। इस लिए कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र के आरम्भ में सगर्व लिखा कि पृथिवी के लाभ और पालन करने में यावंति अर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यों ने लिखे, उन सब का संग्रह उसने किया है। विष्णुगुप्त की इस प्रतिज्ञा के उदाहरण उसके ग्रन्थ में मिलते हैं।

विष्णुगुप्त ने अपने अर्थशास्त्र में चार स्थानों पर प्राचीन आर्य इतिहास की बहुत उपयोगी बातें लिखी हैं।[3] उन सब का प्रयोग हमने यथास्थान किया है।

कौटल्य-अर्थशास्त्र के विषय में जालि प्रभृति कई लेखकों का मत है कि यह ग्रन्थ ईसा की तीसरी शताब्दी में रचा गया।[4] जर्मन अध्यापक जालि और उनके साथी पाश्चात्य लेखक भयभीत रहते हैं कि यदि भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य पुराना सिद्ध हो गया तो उनका बनाया भारतीय संस्कृति के इतिहास का कलेवर सर्वथा निर्मूल हो जायगा। अतः वे भारतीय ग्रन्थों के निर्माण-काल के विषय में ऐसी सारहीन कल्पनाएं करते रहते हैं।

भारतीय विद्वान् जानते हैं कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री ने ही यह अर्थशास्त्र रचा था। दण्डी अपने दशकुमारचरित में स्पष्ट लिखता है कि आचार्य विष्णुगुप्त ने ६००० श्लोकों के परिमाण में अर्थशास्त्र रचा।[5] दण्डी ऐसा आचार्य अपनी परम्परा को जानता था। भट्टबाण कादम्बरी में लिखता है—अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रम्।

---

१. बृहस्पति के उद्धरणों के लिए याज्ञवल्क्य स्मृति पर बालक्रीडा टीका का व्यवहारकाण्ड देखना चाहिए। इस ग्रन्थ की ओर मैंने ही पहले पहल जर्मन अध्यापक जालि का ध्यान आकृष्ट किया था। इसके पश्चात् उन्होंने जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री मद्रास में बृहस्पति-विषयक एक लेख लिखा।

२. वराहमिहिर बृहज्जातक ७।७॥ और २१।३॥ में विष्णुगुप्त के किसी ज्योतिष विषयक मत का उल्लेख करता है। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में यहां पर विष्णुगुप्त के मूल श्लोक लिखे हैं। रुद्र अपनी टीका में लिखता है—विष्णुगुप्तः चाणक्यः। बृहत् संहिता २।४॥ श्लोक भट्टोत्पल के अनुसार विष्णुगुप्त का श्लोक है।

३. अध्याय ६, १३, २० और ९५॥

४. अर्थशास्त्र, लाहौर संस्करण, सन् १९२३। भूमिका, पृ० ४३।

५. इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। अष्टम उच्छ्वास।

वात्स्यायन अपने न्याय-भाष्य में अर्थशास्त्र के एक वचन को उद्धृत करता है। अर्थशास्त्र अध्याय ३१ में लिखा है—पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ।

वात्स्यायन के न्यायभाष्य २।१।५४॥ में शब्दार्थ का विचार करते हुए लिखा है—

पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्ताविति।

यहां इति पद केवल यह दर्शाने के लिए है कि वात्स्यायन यह वचन किसी और स्थान से उद्धृत कर रहा है। वह स्थान है कौटल्य अर्थशास्त्र का पूर्व-प्रदर्शित प्रकरण।

इस से भी बढ़ कर न्यायभाष्य १।१।१॥ में लिखा है—

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥

और आश्चर्य है कि यह श्लोक चतुर्थ पाद के भेद से अर्थशास्त्र के विद्यासमुद्देश प्रकरण में मिलता है। चतुर्थ पाद का यह भेद स्थाननिर्देश के कारण आवश्यक ही था। न्यायभाष्य बहुत पुराना ग्रन्थ है।[1] प्रथम शताब्दी विक्रम के पश्चात् का नहीं है। उस में उद्धृत होने से अर्थशास्त्र तीसरी शताब्दी से पहले का है।

अर्थशास्त्र चाणक्य-निर्मित है। और चाणक्य कोई कल्पित व्यक्ति नहीं था, इस विषय में अष्टाङ्ग-संग्रह-कर्ता वाग्भट प्रमाण है। यह वाग्भट संवत् ७०० से कुछ पहले हो चुका था। अपने उत्तर तन्त्र के विष-प्रकरण में वाग्भट लिखता है—

श्वेतपुष्करतुल्यांशैर्जीवन्त्याः कुसुमैः कृतः।
रुक्मपिष्टो मणिर्धार्यश्चाणक्येष्टो विषापहः॥

इस की टीका में इन्दु लिखता है—चाणक्यस्य कौटिल्यस्य॥

इस की तुलना अर्थशास्त्र अध्याय १४९ के निम्नलिखित वाक्यों से कीजिए—

रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः।
जीवन्ती-श्वेतामुष्ककपुष्प-वन्दाकानामक्षीवे[2] जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

वाग्भट ठीक अर्थशास्त्र के शब्दों की प्रतिलिपि करता है। यह तत्काल स्पष्ट हो रहा है कि अर्थशास्त्र का वर्तमान पाठ भ्रष्ट है। यह पाठ ऐसा चाहिए—

जीवन्ती-श्वेतपुष्करपुष्प......।

महाकवि शूद्रक भी चाणक्य को स्मरण करता है—चाणक्केणेव्व दोवदी।[3]

चाणक्के वा धुन्धुमाले तिशङ्कू॥[4]

अब विचारने का स्थान है कि जिस के ग्रन्थ को वाग्भट और दण्डी, उद्योतकर और

---

१. न्यायवार्तिक का काल द्वितीय शताब्दी विक्रम से पश्चात् का नहीं है। उसमें लिखा है—दृष्टश्च तन्त्रान्तरे पञ्चम्यपदेशोऽनर्थान्तरे-सन्धिविग्रहाभ्यां षाड्गुण्यं सम्पद्यत इति। यह वचन अर्थशास्त्र अध्याय ९९ के आरम्भ में है।

२. यह पाठ गणपति शास्त्री के संस्करण का है। जालि के पाठ में—०नामक्षिपे है। इस पाठ की शुद्धि हम नहीं कर सके।

३. मृच्छकटिक १।३९॥

४. मृच्छकटिक ८।३४॥

वात्स्यायन तथा जिस के नाम को वराहमिहिर वा शूद्रक आदि विद्वान् जानते थे, क्या वह भारतीय इतिहास का एक वास्तविक व्यक्ति नहीं था। नहीं, वह एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और उस का अर्थशास्त्र वस्तुतः मौर्यराज्य के आरम्भ में लिखा गया था।

भारतीय इतिहास का सातवां स्रोत—बौद्ध और जैन ग्रन्थ

कुछ बौद्ध और जैन ग्रन्थों ने भी यत्र तत्र ऐतिहासिक सामग्री सुरक्षित रखी है। परन्तु ये ग्रन्थ अधिकतर भिक्षु-सम्प्रदाय की रचना हैं। और हैं ये रचनाएं विक्रम से कोई पांच सौ वर्ष पश्चात् की। श्री बुद्ध और श्री महावीर जी के पश्चात् उत्तर भारत में कई वार भयंकर दुर्भिक्ष पड़े। उन दुर्भिक्षों में सहस्रों भिक्षु मर गए। कई दक्षिण को चले गए। इस कारण बौद्ध परम्परा और बहुत सा जैनशास्त्र छिन्न भिन्न हुआ॥

जैन परम्परा—अन्ततः विक्रम की चौथी और पांचवीं शताब्दियों में जैन मत वालों ने पुनः अपनी सम्प्रदाय-परम्परा एकत्र की और अपना शास्त्रसंग्रह किया॥

जैनों का यह संग्रह-कृत्य माथुरी और वालभी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। इस संग्रह काम में कई भूलें अनायास हो गईं। इसी कारण जैन परम्परा में कहीं-कहीं बहुत भेद दिखाई देता है। एक कल्की की काल-गणना के ही विषय में जैनाचार्यों के निम्नलिखित मत हैं—

१—तित्थोगाली के अनुसार वीरनिर्वाण के १९२८ वर्ष बीतने पर कल्की हुआ।

२—कालसप्ततिका प्रकरण के अनुसार वीरनिर्वाण से १९१२ वर्ष और ५ मास बीतने पर कल्की हुआ।

३—जिनसुन्दर सूरि के दीपमालाकल्प में यह काल १९१४ वर्ष का माना है।

४—क्षमाकल्याण के दीपमालाकल्प में निर्वाण सम्वत् ५९९ में कल्की का होना लिखा है।

५—नेमिचन्द्र अपने तिलोयसार ग्रन्थ में निर्वाण सम्वत् १००० में कल्की को मानता है।

जैन ग्रन्थों का पूर्वोक्त विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ४ में मिलता है। यह विवरण श्री मुनि कल्याणविजय जी का किया है।[1]

इस भेद का कारण परम्परा-विच्छेद ही है। महावीर जी का निर्वाण बहुत पुराने काल की बात थी। जब जैन भिक्षु उस पुरातन काल को भूल गए, तो उन्होंने विक्रम से लगभग ४७० वर्ष पहले वीर-निर्वाण मान लिया। बस इसी भूल से उनकी काल-गणना में एक भारी भेद पड़ गया।

ऐसी परिस्थिति में भी अनेक जैन ग्रन्थ भारतीय इतिहास के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। पर उन का उपयोग बड़ी सावधानी से होना चाहिए।

बौद्ध परम्परा—अब रही बौद्ध परम्परा की बात। वह ह्यूनसांग जो नालन्दा विश्व-विद्यालय में वर्षों पढ़ता रहा और जिस ने भारत के अनेक बौद्ध आचार्यों का साक्षात्कार

---

१. काशी, माघसंवत् १९८६, पृ० ६२१।

किया, भगवान् बुद्ध के निर्वाण-काल के विषय में कहता है कि उस के काल से १२००, १३००, १५०२ और ९०० से १००० वर्ष पूर्व तक का काल भिन्न भिन्न विद्वान् मानते हैं।[1]

अब बुद्ध-निर्वाण-काल के विषय में सन् ४०१ से लेकर कई वर्ष तक भारत में भ्रमण करने वाले फाहियान के कथन को देखिए—

१. मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल से तीन सौ वर्ष पीछे हुई। उस समय हान देश में चाव वंशी महाराज पिंग का राज्य था।[2]

अर्थात् बुद्ध का निर्वाण ईसा से पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी (अधिक से अधिक ईसा-पूर्व १०५०) में हुआ।

२. परिनिर्वाण को १४९७ वर्ष हुए। अर्थात् ईसा से कोई १०९० वर्ष पूर्व।

सिंहलदेश की उपलब्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध-निर्वाण की और ही तिथि है।[3] पाश्चात्य लेखकों ने अन्य सब मतों का तिरस्कार करके उसे ही प्रधानता दी है। जब बौद्ध सम्प्रदाय में अपने धर्मप्रवर्तक के काल विषय में इतने मत हैं, तो अन्य ऐतिहासिक विषयों में उन का कितना प्रामाण्य हो सकता है? ये बौद्ध ग्रन्थ ही हैं जिन में सीता को राम की भगिनी लिखा है[4] और वासवदत्ता को चण्ड महासेन की।[5]

ऐसी स्थिति में बौद्ध ग्रन्थों का प्रामाणिक रूप से उपयोग नहीं होना चाहिए। पाश्चात्य पद्धति वाले लेखकों ने यही किया है और इस लिए उन के ग्रन्थों में भयंकर भूलें हुई हैं।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बौद्धधर्म का सातवां प्रधान पुरुष वसुमित्र था। चीनी ग्रन्थों के अनुसार उसका मृत्युकाल विक्रम से ५३३ वर्ष पूर्व था।[6] बारहवां प्रधान पुरुष अश्वघोष था। अश्वघोष से अगली परम्परा निम्नलिखित है—

१. अश्वघोष	२. कपिमल	३. नागार्जुन	४. काणदेव	५. राहुलक
६. संघनन्दी	७. संघयशा	८. कुमारात	९. जयट	१०. वसुबन्धु

यह परम्परा अनेक तिथियों के शुद्ध करने में बड़ी उपयोगिनी है। अतः यहां दी गई है। ध्यान रहे कि इस परम्परा में भी नागार्जुन के विषय में कुछ गड़बड़ है।

मंजुश्रीमूलकल्प—ट्रावनकोर राज्यान्तर्गत त्रिवन्द्रम राजधानी से परलोकगत सुहृद्वर पं० गणपति शास्त्री ने मंजुश्रीमूलकल्प नाम का एक लुप्त बौद्धग्रन्थ सन् १९२५ में प्रकाशित

---

१. हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०४। तथा शमन ह्वी ली कृत ह्यूनत्सांग का जीवनचरित, एस. बील का अंग्रेजी अनुवाद, सन् १९१४, पृ० ९८।

२. हिन्दी अनुवाद, पृ० १६। इस स्थान पर अनुवादक की टिप्पणी इस प्रका है—
पिंग का शासन काल ७५०—७१९ तक ईसा के पूर्व में था।

३. ईसा से पूर्व पांचवीं शताब्दी। ४. दशरथ जातक। ५. धम्मपद टीका।

६. तत्त्वसंग्रह भूमिका पृ० ४५।

किया था। उस में ऐतिहासिक सामग्री का पर्याप्त अंश है, पर वह ऐतिहासिक सामग्री काल-गणना के विषय में कुछ अधिक प्रकाश नहीं डालती।

भारतीय इतिहास का आठवां स्रोत—नीलमतपुराण और राजतरंगिणी

हमने इन का पृथक् उल्लेख इसलिए आवश्यक समझा है कि नीलमतपुराण शुद्ध भूगोल का और राजतरंगिणी शुद्ध इतिहास का ग्रन्थ है।

राजतरंगिणीकार कल्हण पंडित अपने पूर्वज ऐतिहासिकों के लेखों का बड़ी सावधानता से उपयोग करता है। यद्यपि उस के ग्रन्थ में एक राजा का राज्य-काल ३०० वर्ष दिया गया है, तथापि यह भूल सकारण है। यह निश्चय ही उस राजा के वंश का काल है और उस एक राजा का नहीं। कल्हण ने काल-रक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा किया कि वह काल बिना बिगाड़े याथातथ्य रूप से दे दिया। कल्हण के ग्रन्थ में अनेक भूलें रही हैं। उनमें से एक दो यथा-स्थान निर्दिष्ट की गई हैं।

नीलमतपुराण में भूगोल सम्बन्धी अत्यन्त उपयोगी बातें हैं। विद्वानों ने अभी इस का यथार्थ उपयोग नहीं किया।

भारतीय इतिहास का नवमस्रोत—विदेशी यात्रियों के ग्रन्थ

१. यूनानी यात्री—ज्ञात विदेशी यात्रियों में सब से पहला स्थान मैगस्थनीज़ का है। उसका लेख है बड़े महत्त्व का, पर कई स्थानों पर कल्पित बातों ने उस का गौरव कुछ अल्प कर दिया है। मैगस्थनीज़ का मूल ग्रन्थ नष्ट हो चुका है। प्लायनि, सोलिन और अरायन नाम के तीन यूनानी ग्रन्थकारों ने मैगस्थनीज़ के उस नष्ट यात्रा-वृत्तान्त के बहुत से उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। उन्हें एक जर्मन विद्वान् ने एकत्र कर दिया है। उस संग्रह का अंगरेज़ी अनुवाद अब उपलब्ध है।

२. चीनी यात्री—प्रथम शताब्दी विक्रम से लेकर आठवीं शताब्दी विक्रम तक लगभग १०० प्रसिद्ध चीनी यात्री भारतवर्ष में आए थे। इन में से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं, अर्थात् फाह्यान, युवनच्वङ्ग या ह्यूनत्सांग और इत्सिंग। इन तीनों के ग्रन्थों का भाषानुवाद इस समय मिलता है।

इत्सिंग की भूल—इन यात्रियों की लिखी हुई सब बातें सच्ची नहीं हैं। इत्सिंग के अनुसार वाक्यपदीय और महाभाष्य-विवरण का कर्ता भर्तृहरि बौद्ध था। यह कोरी गप्प है। यह भर्तृहरि वैदिक था। सम्वत् ११९७ में गणरत्नमहोदधि नामक प्रशस्त ग्रन्थ लिखने वाला जैन लेखक वर्धमान विवरणकार भर्तृहरि के विषय में लिखता है—

यस्त्वयं वेदविदामलंकारभूतः वेदाङ्गत्वात् प्रमाणितशब्दशास्त्रः।[1]

इत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध लिख कर भारी भूल की है।

---

१. कारिका १८१।

३. मुसलमान यात्री—सब से पुराने मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर का ग्रन्थ अब हिन्दी में मिलता है।[1] उसके पश्चात् अबूरिहां अलबेरूनी का बृहद् ग्रन्थ भारतीय इतिहास का एक रत्न है। इस अरबीग्रन्थ का भाषानुवाद भी अब सुलभ है।[2] इनके अतिरिक्त अरब (=ताजिक) लेखकों ने भारत सम्बन्धी और भी कई ग्रन्थ लिखे थे। वे अब अरबी भाषा में प्राप्त होने लगे हैं। उन का वर्णन मौलाना सुलेमान नदवी ने "अरब और भारत के सम्बन्ध" नामक ग्रन्थ में किया है।[3]

नदवी का पक्षपात—इस ग्रन्थ के आरम्भ में नदवी जी ने बड़े पक्षपात से काम लिया है। वे लिखते हैं कि पुराने काल में हमारे समस्त देश का कोई एक नाम नहीं था। न जाने एकेडेमी के संचालकों ने ऐसी मिथ्या बात कैसे छपने दी।

४. तिब्बती ग्रन्थकार—गत तेरह सौ वर्ष से तिब्बत देश का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। तिब्बत के विद्वान् बौद्धधर्म की शिक्षा के लिए पञ्जाब और वङ्ग देश में प्रायः आने जाने लगे थे। उन्हों ने समय समय पर भारत विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे। उन में से लामा तारानाथ का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हो चुका है।

तिब्बत के ग्रन्थों से पता चला है कि तिब्बत के लेखकों के पास मागध पण्डित इन्द्रभद्र तथा इन्द्रदत्त और मालव पण्डित भटभद्र के भारतीय इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ विद्यमान थे। ये ग्रन्थ तिब्बत में १८वीं शती विक्रम में उपलब्ध थे। संभव है तिब्बत के किसी विहार में अब भी पड़े मिल जाएं।[4]

तिब्बत के ग्रन्थों से निश्चित होता है कि पूर्वकाल के भारतीय विद्वान् अपने अपने देश का इतिहास सदा सुरक्षित रखते थे। तिब्बत के ग्रन्थों का शीघ्र ही आर्यभाषा में अनुवाद होना चाहिए।

भारतीय इतिहास का दसवां स्रोत—शिलालेख, ताम्रपत्र और मुद्राएं

भारतीय इतिहास का यह स्रोत अत्यन्त आवश्यक और उपादेय है। इसके विना हमारे इतिहास की सुदृढ़ आधार-शिला रखी ही न जा सकती थी। संवत् १९६१ में लार्ड कर्जन ने भारत के पुरातत्त्व विभाग का आरम्भ किया था। तब से अब तक इस विभाग के कर्मचारियों ने पुरातन इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री खोज ली है। परन्तु एक बात कहे विना हम नहीं रह सकते। जितना धन इस विभाग पर व्यय किया गया है, उतना काम इसने नहीं किया। कारण एक ही है। इस विभाग में उन व्यक्तियों की भारी न्यूनता है जिन्हें पुरातन इतिहास की खोज से अगाध प्रेम हो। बहुत से लोग तो वेतन-भोगी सैनिकों के समान अपना काम करते हैं, अस्तु।

---

१. साधु महेशप्रसाद का भाषा अनुवाद।

२. इण्डियन प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित। ३. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३०।

४. बिहार और ओड़ीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २७, अंक २ सन् १९४०, पृ० २४१।

शिलालेख—इनमें से अशोक के शिलालेख कई संस्करणों में मिलते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण बहुत अच्छा है। गुप्त-लेखों का संग्रह डा० फ्लीट के संस्करण में ही है। इन दोनों के अतिरिक्त विभिन्न वंशों के शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों के संग्रह अभी प्रस्तुत नहीं किए गए। उन के बिना इतिहास-निर्माण में बड़ी कठिनाई होती है। ऐसा काम भारतीय विश्वविद्यालयों को शीघ्र हाथ में लेना चाहिए।

अत्यन्त पुराने शिलालेख—विक्रमखोल का शिलालेख सुप्रसिद्ध है। इस का मुद्रण श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने सन् १९३३ के इण्डियन अण्टीकेरी, मार्च मास के अंक में किया था। अभी अभी मकसूदनपुर जिला गया से भी एक बहुत पुराना शिलालेख मिला है।[1]

पाश्चात्य-पद्धति के लेखक और शिलालेख—इन शिलालेखों से पाश्चात्य-पद्धति के लेखकों ने काम लिया है, पर उन्होंने कई बातों के विषय में अकारण मौन धारण कर रखा है। अनेक ऐतिहासकों के अनुसार महाराज अशोक मौर्य और शुङ्ग पुष्यमित्र के काल में ६० वर्ष से अधिक का अन्तर नहीं है। पुष्यमित्र के काल का अथवा उस से कुछ उत्तरवर्ती काल का एक छोटा सा शिलालेख अयोध्या से मिला था। उस की लिपि और अशोक के लेखों की ब्राह्मी लिपि में भूतलाकाश का अन्तर है। इतने स्वल्प समय में लिपि का यह महदन्तर असम्भव था। पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक इस विषय में चुप हैं। हम इस के कारणों पर यथास्थान विचार करेंगे।

शिलालेख और संस्कृत साहित्य—शिलालेखों का अन्वेषण करने वाले और केवल उनही पर आश्रित हो कर ऐतिहासिक-परिणाम निकालने वाले अनेक लेखक विशाल संस्कृत-वाङ्मय से बहुधा पराङ्मुख हो जाते हैं। इसी प्रकार अनेक साहित्य-पाठी लोग शिलालेखों के महत्त्व को नहीं समझते हैं। हमारा मत है कि ये दोनों श्रेणियां भूल करती हैं। शिलालेखों का स्पष्टीकरण वाङ्मय पर आश्रित है और वाङ्मय का स्पष्टीकरण शिलालेख करते हैं। यदि संस्कृत वाङ्मय साहसाङ्क शकारि और चन्द्रगुप्त गुप्त को एक मानता है और उसे ही संवत्-प्रवर्तक कहता है, तो शिलालेखों के चन्द्रगुप्त की संगति इस चन्द्रगुप्त से आवश्यक होगी। जो ऐतिहासिक इस तथ्य से पराङ्मुख होगा वह पक्षपाती कहा जायगा।

लिपि-समता से निकाले परिणाम कई बार भ्रान्ति-जनक होते हैं—भारतीय इतिहास लेखकों में एक पक्षपात कुछ घर कर गया है। कुछ लेखक पहले बहुत से पुरातन लेखों की लिपि-समता कल्पित कर लेते हैं। पुनः उस से कुछ परिणाम निकालते हैं। वे बहुधा भूल कर बैठते हैं।

---

१. बिहार और ओडीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २६, अंक २, सन् १९४०, पृ० १६२—१६७। सम्पादक ए० बैनर्जी शास्त्री।

उनका ध्यान हम बर्हुत शिलालेखों की ओर दिलाते हैं। श्री बेनीमाधव बरुआ और कुमार गङ्गानन्दसिंह ने इस विषय पर एक उत्कृष्ट लेख लिखा है।[1] उन्हों ने लिपि की दृष्टि से बूह्लर और चन्द महाशय का खण्डन किया है। बूह्लर एक प्रकाण्ड लिपि-विशेषज्ञ माना जाता है, पर वह भूल कर सकता है।

इस विषय में प्रसिद्ध अध्यापक डूब्रेउइल का मत देखने योग्य है—

The alphabets differ much according to the scribes who have engraved the plates; and the documents of the same reign do not sometimes resemble one another.[2]

That palaeography was generally a bad auxiliary to the chronology of dynasties. Very often two documents dated in the same reign differ much from each other.[3]

अर्थात् वंशों का कालक्रम निश्चित करने में लिपि-विद्या प्रायः एक बुरी सहायता है।... डूब्रेउइल महाशय पाश्चात्य पद्धति के ही पण्डित हैं, परन्तु उन्हों ने यह निन्दा अकारण नहीं की। वस्तुतः लिपि-विद्या से ऐतिहासिक परिणाम निकालने में हमें बहुत सावधान होना चाहिए।

शिलालेखों पर दिए गए संवत्—अनेक वर्तमान लेखक अपने ग्रन्थों में शिलालेखस्थ मूल संवत् उद्धृत नहीं करते और फ्लीट आदि लोगों के कथन को बाबा-वाक्य मान कर उन सम्वतों के ईसा सन् के साथ कल्पित संतोलित वर्षों को ही लिखते हैं। इस से भारतीय इतिहास अत्यन्त विकृत हो गया है। सत्यप्रिय ऐतिहासिकों को यह प्रणाली त्याग देनी चाहिए। भारतीय संवतों पर गवेषणात्मक ग्रन्थों की अभी न्यूनता है। संवतों के निश्चय में मलमासों की तिथियां बड़ी सहायक हैं। आश्चर्य है कि फ्लीट आदि की कल्पित तिथियां जब मलमास गणना से विरुद्ध पड़ती हैं, तो अनेक वर्तमान अध्यापक उन्हें कैसे स्वीकार करते जा रहे हैं।

ताम्रशासन—ताम्रशासनों के विषय में याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के निम्न-लिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

दत्त्वा भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत्।
आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥३१४॥
पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रापरिचिह्नितम्।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतिः ॥३१५॥
प्रतिग्रहपरीमाणं दानाच्छेदोपवर्णनम्।
स्वहस्तकालसंपन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥३१६॥

इनकी टीका करने वाला संभवतः सम्राट् श्रीहर्ष का समकालिक आचार्य विश्वरूप किन सुन्दर शब्दों में लिखता है—

१. बर्हुत शिलालेख, अंग्रेजी में, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, सन् १९२६, पृ० १०८—११२।

२. Ancient History of the Deccan, 1920, Pondicherry, pages 65, 66. ३. वही—पृ० ९७।

"परिशब्दात् प्रज्ञादृतकस्वहस्तमुद्रास्कन्धावारसमावासनामदेशादिचिह्नितम । आदावेवाभिलेखनीयाः पूर्वपुरुषास्त्रयः । वंश्यत्ववचनाच्च स्त्रियोऽपि । अनन्तरमात्मानम् । ततः प्रतिग्रहपरीमाणम । अस्मिन् देशेऽमुकनामधेयान ग्राम इत्यादि । ततो दानाच्छेदमुपवर्ण्य—एतद् दानफलम्, एतदाच्छेदनफलं—

"षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥"[1] इत्यादि
लेखकनामाङ्कितं स्वहस्तसंयुक्तम ।

विश्वरूप का उपर्युक्त व्याख्यान आज तक मिले शतशः ताम्रपत्रों में दृष्टिगोचर हो रहा है ।

मुद्राएं—**अब तक पुरातन मुद्राएं पर्याप्त संख्या में मिल चुकी हैं । जैनरल कनिंघम के काल से लेकर अब तक मुद्राओं के विषय में अनेक ग्रन्थ निकल चुके हैं। उन में से एलन महाशय के ग्रन्थ बहुत विचार-पूर्ण हैं और परिश्रम से लिखे गये हैं। विचार-धारा उन की यद्यपि स्वभावतः पाश्चात्त्य-रीति की है ।**

आहत-मुद्राएं—**भारत की सब से पुरानी मुद्राएं आहत मुद्राएं हैं। इनकी ग्रन्थियां सुलझाने का महान् यत्न हो रहा है। उन पर पाए गए चिन्ह अब समझ में आने लगे हैं । कभी ये चिन्ह पूर्णतया समझे जाते थे। याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय के निम्नलिखित दो श्लोक ध्यान देने योग्य हैं—**

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।
छिन्ने भिन्ने तथा दग्धे लेख्यमन्यत्तु कारयेत् ॥९४॥
सन्दिग्धार्थविशुद्ध्यर्थं स्वहस्तलिखितं तु यत् ।
युक्तिप्राप्तिक्रिया-चिह्न-सम्बन्धागमहेतुभिः ॥९५॥

पहले श्लोक से एक बात स्पष्ट है कि कई बार ताम्रशासन दोबारा लिखे गए हैं । अतः उन्हें सहसा बनावटी कह देना अयुक्त है ।

दूसरी बात विश्वरूप की टीका से ज्ञात होती है। वह चिन्ह शब्द पर लिखता है— चिह्नं मुद्रालिपिविशेषादिकम्। **हमारा निश्चय है कि यह मुद्रालिपिविशेष जो शतशः पुरातन मुद्राओं पर है, अब भी जाना जा सकता है ।**

---

१. शतशः ताम्रशासनों के अनुसार यह श्लोक व्यासरचित है। यह सत्य है । स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार-काण्ड, भाग १, पृ० १२७ पर यह श्लोक व्यासस्मृति के नाम से लिखा गया है। भारतकृत व्यास ही व्यास-स्मृति का कर्ता था। आचार्य विश्वरूप (सातवीं शती विक्रम) व्यासस्मृति से परिचित था । देखो बालक्रीडा भाग १, पृ० १३ । ताम्रशासनों के लेखक परम्परा से व्यासस्मृति को जानते थे। स्मृतिचन्द्रिका के लेख्य प्रकरण के पाठ से ज्ञात होता है कि ताम्रशासनों में बहुधा-पठित—याचते रामभद्रः—वाला श्लोक व्यासस्मृति में विद्यमान था।

प्राचीन मुद्राओं का वर्णन मनुस्मृति, मत्स्यपुराण, अष्टाध्यायी और अर्थशास्त्र आदि में मिलता है। दीनार के रूपों पर नारदस्मृति का भवस्वामीभाष्य देखने योग्य है।[1] अत्यन्त प्राचीन काल की केवल "आहत"[2] मुद्राएं अभी तक मिली हैं, परन्तु शुङ्ग-काल तक की कई राज-नामांकित मुद्राएं भी मिल गई हैं। उनसे इतिहास-निर्माण में बड़ी सहायता मिल रही है।

स्रोतों का संक्षिप्त वर्णन यहीं समाप्त किया जाता है। इन में से अनेक स्रोत-ग्रन्थ विदेशी भाषाओं में हैं। भारतीय इतिहास के प्रेमियों को इन्हें आर्यभाषा में कर लेना चाहिए।

१. त्रिवन्दरम संस्करण, पृ० १०९, १९२।

२. निघातिकाताडनादिना दीनारादिषु रूपं यदुत्पद्यते तदाहतमित्युच्यते। व्याकरणकाशिकावृत्ति ५।२।१२०॥

दूसरा अध्याय

पृथ्वी का भौगोलिक स्वरूप और प्राचीन भारतवर्ष

पद्माकारा पृथिवी—योरुप के लोगों ने जो बात कुछ ही काल से जानी है, आर्य लोग उसे सहस्रों वर्ष पूर्व जानते थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

इयं [पृथिवी] वै पुष्करपर्णम्। ७।४।१।१२॥

महाभारत शान्तिपर्व में भी पृथिवी को पद्मरूप कहा है—

तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥१८०।३८॥

वायुपुराण अध्याय ४१ में लिखा है—

चतुर्महाद्वीपवती सेयमुर्वी प्रकीर्तिता। ८३॥
चत्वारो नैकवर्णाढ्या महाद्वीपाः परिश्रुताः।
भद्राश्च भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः।
उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥८५॥[1]
सैषा चतुर्महाद्वीपा नानाद्वीपसमाकुला।
पृथिवी कीर्तिता कृत्स्ना पद्माकारा मया द्विजाः ॥८६॥
पद्मेत्यभिहिता कृत्स्ना पृथिवी बहुविस्तरा॥८७॥

वसुधा सर्वदा पद्माकारा रही है। यह एक स्थायी सत्य है जो वैदिक ऋषियों को आरम्भ से ज्ञात था। मत्स्यपुराण में इस विषय का अत्यन्त स्पष्ट वर्णन है—

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्भूरितेजसम्।
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥१॥
यस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते।
सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम् ॥२॥
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम्।
नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥३॥
या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते॥४॥ अध्याय १६९॥

भारतवर्ष—भरतद्वीप ही कभी विस्तृत भारतवर्ष था। संकुचित होते होते फिर यह बहुत छोटा हो गया। उसी संकुचिताकार भारतवर्ष का वर्णन हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों में होगा। भारत का विस्तार पुराणों के निम्नलिखित श्लोकों से बहुत स्पष्ट हो जाता है।

---

१. भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥४४॥ मत्स्यपुराण अध्याय ११३।

योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥८०॥
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥८१॥[1]

पुराण लिखने वाले की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म थी। उसने दक्षिणोत्तर का पूरा विस्तार दे दिया। कुमारी दक्षिण की चरम सीमा है और गंगा का प्रभव उत्तर का अन्तिम स्थान। इन दोनों की दूरी एक सहस्र योजन है। इस से ज्ञात होता है कि उन दिनों का क्रोश और योजन का परिमाण वर्तमान काल सदृश नहीं था।

जलप्लावन और ब्रह्मा का प्रादुर्भाव—इस पृथ्वी पर जलप्लावन आया। उस के पश्चात् पृथ्वी जल से बाहर निकलने लगी। तब योगियों में परमश्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा का प्रादुर्भाव उस कमलाकारा पृथ्वी पर हुआ। ब्रह्माजी ने वेद और सम्पूर्ण ज्ञान का उपदेश इस सृष्टि के आरम्भ में कर दिया। वेदातिरिक्त सारा ज्ञान संस्कृत भाषा में दिया। उस संस्कृत भाषा का अपभ्रंश पृथ्वी की वर्तमान बोलियां हैं।

भारतवर्ष—हमारे देश के लिए भारतवर्ष शब्द का प्रयोग काश्मीरिक आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में मिलता है—

रतिर्हि भारतवर्षोचितेनैव व्यवहारेण दिव्यानामपि वर्णनीयेति स्थितिः ।[2]

आनन्दवर्धन का पूर्वकालिक भट्ट बाण इस समूचे देश का नाम भारतवर्ष समझता है—

इतश्च नातिदूरे तस्यास्मद्भारतवर्षादुत्तरेणानन्तरे किम्पुरुषनाम्नि वर्षे वर्ष-पर्वतो हेमकूटो नाम निवासः ।[3]

---

१. वायुपुराण अध्याय ४५। मत्स्यपुराण अध्याय ११४ श्लोक ९, १० का भी लगभग यही पाठ है।
२. तृतीयोद्द्योतः। ३. कादम्बरी—महाश्वेताजन्मवृत्तान्तः।

तीसरा अध्याय

वैदिक ग्रन्थों में महाभारत-काल के व्यक्ति

इस ग्रन्थ के अगले पृष्ठों में भारत-युद्ध-काल के आधार पर सब तिथियां निश्चित की गई हैं, अतः वैदिक ग्रन्थों में भारत-युद्ध-काल के समीप के व्यक्तियों का उल्लेख-प्रदर्शन बड़े महत्त्व का है। वह इस अध्याय में किया जाता है।

१. धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य—काठकसंहिता १०।६॥ में लिखा है—नैमिष्या वै सत्रमासत तान्वको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि।

यहां विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यही धृतराष्ट्र दुर्योधन का पिता था।

दाल्भि और दाल्भ्य एक ही व्यक्ति थे। काठक की कथा का दाल्भि महाभारतान्तर्गत उसी प्रकार की कथा में दाल्भ्य कहा गया है।[1] पाणिनि के अनुसार दाल्भि आग्रायण नहीं था।[2] छान्दोग्योपनिषद् १।३।२।१३॥ में उसे नैमिषीयों का उद्गाता और बक दाल्भ्य लिखा है।

दि केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया के पञ्चम अध्याय का लेखक अध्यापक आर्थर बैरिडेल कीथ इस धृतराष्ट्र को काशेय समझता है। यह कल्पनामात्र है। महाभारत का वर्णन इस कल्पना को खड़ा नहीं होने देता।

२. प्रातिपीय बल्हिक—शतपथ ब्राह्मण १२।९।३।३॥ में लिखा है—

तदु ह बल्हिकः प्रातिपीयः शुश्राव। कौरव्यो राजा……………।

इस की तुलना उद्योगपर्व अध्याय २३ के इस वचन से करनी चाहिए—

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा।
महाराजो बाल्हिकः प्रातिपीयः[3] कच्चिद्विद्वान् कुशली सूतपुत्र ॥५॥

यह प्रतीपपुत्र बाह्लिक भारत-युद्ध में भीम से मारा गया।[4] भारत-युद्ध के समय वह लगभग १७५ वर्षीय होगा। वर्तमान कलिकाल के लोगों के लिए यह आश्चर्य की बात है कि इतनी आयु का योद्धा समर-भूमि में लड़ता था।

३. नग्नजित्—शतपथ ब्राह्मण ८।१।४।१०॥ में लिखा है—

अथ ह स्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः………।

---

१. देखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, ब्राह्मणों का संकलनकाल। २. काशिका ४।१।१०२॥ ३. मुद्रित पाठ प्रातिपेयः है। पूना संस्करण में भी प्रातिपेयः पाठ छपा है। तथापि पूना संस्करण के काश्मीरी शाखा के अधिकांश देवनागरी कोषों में प्रातिपीयः पाठ मिलता है।

४. द्रोणपर्व १५८।११—१५॥

इसी नग्नजित् की कन्या से देवकीपुत्र कृष्ण ने अपना एक विवाह किया था। इस का और भी एक नाम है। इस का उल्लेख गान्धार के वर्णन में किया जायगा।

४. व्यास पाराशर्य—तैत्तिरीयारण्यक १।९।३५॥ में लिखा है—स होवाच व्यासः पाराशर्यः।

यही पराशरपुत्र व्यास भारतेतिहास का कर्ता था। इसी पाराशर्य व्यास का उल्लेख शतपथ के वंश में है— पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्। १४।५।५।२१॥

यहां अत्यन्त स्पष्ट रूप से बताया गया है कि व्यास ने जातूकर्ण्य से विद्या प्राप्त की। यह जातूकर्ण्य व्यास का चचा था। इस तथ्य के विशेष परिज्ञान के लिए देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, पृ० ६५, ६६।

५. कृष्ण देवकीपुत्र—छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।६॥ में लिखा है—

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाच............

कृष्ण का यह विशेषण महाभारत में बहुधा मिलता है—

को हि राधासुतं कर्णं शक्तो योधयितुं रणे।
अन्यत्र रामाद् द्रोणाद्वा कृपाद्वापि शरद्वतः ॥२८॥
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्फल्गुनाद्वा परंतपात् ॥२९॥ आदिपर्व अध्याय १८१।

६. वैशम्पायन—तै० आरण्यक १।७।५॥ में इस का उल्लेख है।

७. सौबल—ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४ में लिखा है— तदेतत्सौबलाय सर्पिर्वात्सिः शशास।

यहां गान्धार-राजा सुबल के शकुनि आदि किसी पुत्र का उल्लेख संभव है।

८. याज्ञसेन[1] शिखण्डी—कौषीतकि ब्राह्मण ७।४॥ में लिखा है—

केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्योवाच.........। तौ ह संप्रोचाते स ह स आसोलो वार्ष्णिवृद्ध इटन्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनो यो वा स आस स स आस।

इस वचन में यज्ञसेन के पुत्र शिखण्डी का उल्लेख है। वह दर्भ के पुत्र केशी का समकालीन था। यज्ञसेन सुप्रसिद्ध पञ्चालाधिपति महाराज द्रुपद का दूसरा नाम या विरुद था। इसी लिए महाभारत में शिखण्डी को याज्ञसेन लिखा है।[2] द्रुपद और शिखण्डी आदि पाञ्चाल वेदवित् थे।[3] उन्होंने अवभृथ स्नान किए थे।[4] इसी लिए ब्राह्मण ग्रन्थों के याज्ञिक प्रकरणों में शिखण्डी का वर्णन मिलता है। इस शिखण्डी के समकालीन राजकुमार केशी की वंश परंपरा ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है। वह निम्नलिखित वचनों से निर्मित की जा सकती है—

---

१. जैमिनीय ब्रा० में भी एक याज्ञसेन उल्लिखित है। डा० कालेण्ड का संक्षेप १२४।

२. शिखण्डिनं याज्ञसेनिम्। द्रोणपर्व १०।४५॥ याज्ञसेनं शिखण्डिनम्। द्रोणपर्व २५।३७॥

३. द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥४॥
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ॥६॥ उद्योगपर्व, अध्याय १५१॥

४. वेदान्तावभृथस्नाताः सर्व एतेऽपराजिताः ।१७।
शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।१८। उद्योगपर्व, अध्याय १९४॥

गोविनतेन शतानीकः सात्राजित ईजे । श० १३।५।४।१९॥

दर्भमु ह वै शातानीकं पञ्चाला राजानं सन्तं नापचायं चक्रुः । जै० ब्रा० २।१००॥

केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोर्दिदीक्षे । जै० ब्रा० २।५३॥

सत्राजित्
|
शतानीक
|
दर्भ = दल्भ—पत्नी, कौरव्य-उच्चैःश्रवा की भगिनी
|
केशी

महाभारत के युद्धपर्वों में इनमें से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने भारत युद्ध में भाग नहीं लिया था।

केशी दार्भ्य और उच्चैःश्रवा कौरव्य—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३।२९।१॥ में लिखा है—उच्चैःश्रवा ह कौपयेयः[1] कौरव्यो राजास । तस्य ह केशी दार्भ्यः पाञ्चालो राजा स्वस्रीय आस । अर्थात्—उच्चैःश्रवा की भगिनी का पुत्र केशी दार्भ्य था।

महाभारत आदिपर्व की प्रथम वंशावली में जनमेजय द्वितीय के भ्राता अभिषवान् के आठ पुत्रों में एक उच्चैःश्रवा है।[2] आदिपर्व की यह वंशावली बहुत त्रुटित है। प्रतीत होता है कि इस उच्चैःश्रवा का सम्बन्ध पर्यश्रवा अर्थात् प्रतीप से था। यदि कौरव्य उच्चैःश्रवा प्रतीप के काल के समीप हुआ, तो पुराणों की कौरव वंशावली में उस के साथ के आठ नाम ठीक नहीं होंगे।

---

१. जैमिनीय ब्राह्मण में भी यह नाम मिलता है। कालेण्ड का संक्षेप १५३॥

२. ८९।४५-४८॥

चौथा अध्याय

चाक्षुष मन्वन्तर-(वर्तमान चतुर्युगी का कृतयुग[1])

वेनपुत्र पृथु=पृथुरश्मि, प्रथम आर्य-राजा[2]

बहुत अतीत काल की वार्ता है। जल-प्लावन आदि दैव प्रकोप से उत्तरकाल की ओर ब्रह्मा, स्वायंभव मनु आदि से परकाल की कथा है । है यह कथा सच्ची । वैदिक ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है ।

जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है---तीन कुमार थे। रायोवाज, पृथुरश्मि और बृहद्गिरि। उनमें से प्रत्येक की कामना पूछी गई। पृथुरश्मि ने कहा, क्षेत्रकाम हूं। उसके लिए क्षेत्र दिया गया। वह ही पृथु वैन्य था।[3]

अथर्ववेद ८।१०॥ तथा २०।१४०।५॥ में दो पद हैं—पृथी-वैन्य। क्या यहीं से लेकर उस राजा ने अपना नाम पृथु वैन्य रक्खा। आथर्वण पैप्पलाद संहिता १६।१३५।२॥ में भी पृथी-वैन्य पाठ है। अतः पृथु ने अपना नाम पृथी न रख कर पृथु क्यों रक्खा, यह चिन्त्य है।

इस पृथु वैन्य की पूर्वज परंपरा शांतिपर्व में निम्नलिखित प्रकार से दी गई है[4]—

विरजा---नारायण का मानसपुत्र (एक नारायण ऋग्वेद १०।९०॥ का ऋषि है।)
|
कीर्तिमान्
|
कर्दम---प्रजापति
|
अनङ्ग---अथवा अङ्ग[5] सांख्यज्ञान प्रवर्तक कपिल मुनि
|
अतिबल---नीतिमान् (भार्या, मृत्यु-दुहिता सुनीथा)
|
वेन
|
पृथु=मंत्रद्रष्टा (ऋग्वेद १०।१४८॥)[6]

---

१. वायुपुराण में स्पष्ट कर दिया गया है कि वैन्य काल वैवस्वत अन्तर में था—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः।
वैन्येनेयं मही दुग्धा यथा ते कीर्तितं मया ॥६३।१९॥

२. पृथुर्ह वै वैन्यो मनुष्याणां प्रथमोऽभिषिषिचे। शत० ब्रा० ५।३।५।४॥

३. अथाब्रवीत् पृथुरश्मिः क्षेत्रकामोऽहमस्मीति। तस्मै क्षेत्रं प्रायच्छत्। स एव पृथुर्वैन्यः ।१।१८६॥

४. ५८।९६—१३६॥   ५. वायुपुराण में इसे अत्रिवंशज लिखा है। ६२।१०७॥

६. मत्स्य १४५।१००॥ के अनुसार वह एक भृगु मन्त्रकृत् था।

महाभारत और पुराण-पाठों में कुछ अन्तर है। पुराणों में सुनीथा नाम्नी मृत्यु-दुहिता अङ्ग प्रजापति की पत्नी कही गई है।[1] इस से प्रतीत होता है कि पुराणों के मुद्रित पाठों के अनुसार अङ्ग और वेन के मध्य में दूसरा कोई नाम नहीं होना चाहिए। हम समझते हैं कि महाभारत का पाठ कुछ बिगड़ गया है।

पृथिवी का स्वभाव है कि मन्वन्तर के पश्चात् यह समतल नहीं रहती।[2] जल-प्लावन और समुद्र क्षोभ के कारण अनेक स्थानों पर शैल आदि निकल आते हैं। उस समय नगर आदि का कोई विभाग नहीं रहता।[3] पृथिवी की यह दशा देर तक रही। छठे अर्थात् चाक्षुष मन्वन्तर में पृथु ने पृथिवी के अधिकांश भाग को समतल बनाया। यह मन्वन्तर-विभाग ज्योतिष सम्बन्धी प्रतीत नहीं होता, प्रत्युत सतयुग का दिखाई देता है। वायुपुराण में चाक्षुष मन्वन्तर में पृथ्वी का समतल होना कह कर फिर तत्काल वैवस्वत अन्तर में ऐसा होना कहा है।[4] अतः हम निश्चय से इतना कह सकते हैं कि पृथु वैन्य का काल प्राचेतस दक्ष, वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु, पुरूरवा आदि आर्य ऋषियों और राजाओं से पहले का है।

वेन एक पापी राजा था। वह ऋषियों का क्रोधभाजन बना। उस की मृत्यु हो गई।[5] उस का पुत्र पृथु था। पृथु की उत्पत्ति दक्षिण पाणि से विचित्र प्रकार से कही गई है। वह हमारी बुद्धि में नहीं आई।[6] पृथु-जन्म की यह कथा अश्वघोष को भी ज्ञात थी।[7] पृथु का इतिहास अवश्य सत्य है। यह पृथु धार्मिक राजा था।

पृथुवैन्य का कुछ वर्णन शांतिपर्व २८।१३७–१४२॥ में भी मिलता है। पृथुवैन्य की कथा अत्यन्त अतीत-काल की है। महाभारत के काल में भी यह श्रुतिमात्र ही थी।[8] अतः इस का अधिक स्पष्टीकरण अभी हमारी पहुंच से परे है। इस से आगे स्पष्ट इतिहास की पहली रश्मियां हम तक पहुंचती हैं।

अभिषेक—पृथु वैन्य के अभिषेक का वर्णन वायु ६२।१३६॥ में मिलता है—

सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरङ्गिरसः सुतैः। आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥

पृथु वैन्य का प्रदेश—पृथु वैन्य के प्रदेश के सम्बन्ध में हम इतना ही जानते हैं कि

---

१. वायु ६२।९३॥ ब्रह्माण्ड पूर्वभाग, पाद २, ३६।१०८॥ मत्स्य १०।३॥
२. मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही। म० शान्तिपर्व ५८।१२४॥
३. वायुपुराण ६२।१७०–१७२॥ महाभारत, द्रोणपर्व, ६९।२७॥
४. वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः॥६२।१७२॥
५. वेन अविनय से नष्ट हुआ। मनुस्मृतति ७।३४॥
६. वायुपुराण ६२।१२५॥　　७. पृथोश्च हस्तात्। बुद्धचरित १।१०॥
८. श्रुतिरेषा परा नृपु। महा० शा० ५८।१२१॥

उसने मगध और आनूप भूमियां क्रमशः मागध और सूत को दीं।[1] अतः उसका राज्य मगध आदि पर अवश्य होगा।

पुरातन इतिहास और पुराण—पृथु वैन्य के काल में मागध और सूत बन गए। वे पुरातन आर्य इतिहासों और पुराणों को गाते थे। वह पुरानी इतिहास और पुराण सामग्री थोड़ी सी बच गई है। ऋषियों की कृपा से महाभारत और वायुपुराण में उस का थोड़ा सा अंश मिल जाता है। भारत-युद्ध-काल के आस पास वर्तमान ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रवचन हुआ और उसी काल में महाभारत और मूल वायुपुराण रचे गए।

आद्य धनु—महाराज पृथु ने आद्य धनु बनाया।[2]

सतयुग के अन्त में असुर प्रभाव

दैत्य—महाराज पृथु के चिरकाल पश्चात् संसार पर असुर प्रभाव छा गया।

मारीच कश्यप के दिति से दो बली पुत्र हुए, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष।

इसी प्रकार दनु के पुत्र दानव हुए। उन्हों ने पृथ्वी के सब प्रदेश संभाल लिए। वाल्मीकीय रामायण में यह भाव बहुत स्पष्ट शब्दों में दर्शाया गया है—

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥ अरण्यकाण्ड, १४।१५,१६॥

वैदिक घटनाओं को आख्यानों के साथ समझाने के लिए उन्हें असुर कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—असुराणां वा इयं (पृथिवी) अग्र आसीत् ।३।२।९।६॥

दैत्य और दानव प्रजापति कश्यप मारीच के पुत्र थे। उनके पश्चात् कश्यप से बारह देवों अथवा आदित्यों का जन्म हुआ।

बारह देव—चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में अथवा सतयुग के अन्त में मारीच कश्यप और दक्ष कन्या अदिति के बारह पुत्र जन्मे। वे थे धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु।[3] ये ही बारह आदित्य या देव कहाए। इन के नाम वेदमन्त्रों से लेकर रखे गए।

इस अभिप्राय से ताण्ड्य ब्राह्मण कहता है—देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन्। १८।१।२॥ असुर ज्येष्ठ और देव कनिष्ठ थे, यह बात ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित है—

कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः। शतपथ १४।४।१।१॥

देवों ने राज्य मांगा—जब देव बड़े हुए तो उन्हों ने दैत्यों और दानवों से कुछ भूमि-राज्य मांगा। काठकसंहिता में लिखा है—असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति। ३१।८॥ दैत्यों ने यह बात स्वीकार न की। दोनों में घोर युद्ध आरम्भ हुए। संख्या में ये बारह

---

१. महा० शा० ५८।१२२॥ वायु ६२।१४७॥ २. शान्तिपर्व १६४।८६॥

३. वायुपुराण ६६।६५-६७॥ ६७।४३-४४॥

थे। संस्कृत वाङ्मय में ये संग्राम देवासुर संग्रामों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पर उन्हीं दिनों ग्रन्थ रचे गए। उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर रामायण और महाभारत में राम-रावण युद्ध और भारत-युद्ध के वर्णनों में देवासुर संग्रामों की उपमाएं पदे पदे दी गई हैं।

मन्त्रों में इतिहासोक्त देवासुर वर्णित नहीं—वेदमन्त्रों में देवासुर वर्णित है। पर वह आधिदैविक है, ऐतिहासिक नहीं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वत् उद्यत इतिहासे त्वत् ॥११।१।६।९॥

अमृत मन्थन—इन संग्रामों में चतुर्थ संग्राम अमृत-मन्थन था। इस की कथा अनेक तथ्यों पर प्रकाश डालती है। इतिहास और पुराणों के अतिरिक्त इस का उल्लेख चरक संहिता आदि आर्षग्रन्थों में मिलता है।

इन्हीं देवासुर संग्रामों के विषय में महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२ में लिखा है—

इदं तु श्रूयते पार्थ युद्धे देवासुरे पुरा।
असुरा भ्रातरो ज्येष्ठा देवाश्चापि यवीयसः ॥१३॥
तेषामपि श्रीनिमित्तं महानासीत्समुच्छ्रयः।
युद्धं वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभवत्किल ॥१४॥
एकार्णवां महीं कृत्वा रुधिरेण परिप्लुताम्।
जघ्नुर्दैत्यांस्तथा देवास्त्रिदिवं चाभिलेभिरे ॥१५॥

पाचवां अध्याय

प्राचेतस दक्ष प्रजापति

(दक्ष से वैवस्वत मनु तक) आद्य त्रेता युग[1]

वनस्पतियां उत्पन्न हुईं—वायुपुराण ८।१५६॥ के अनुसार आद्य त्रेता में वनस्पतियां उत्पन्न हुईं। उस समय जलप्लावन के प्रभाव हट चुके थे। महाराज पृथु की कृपा से भूमि पुनः वासयोग्य हो गई थी। आर्य इतिहास में अपने प्रारम्भ की कुछ घटनाएं सुरक्षित हैं। उनमें ब्रह्मा के कुछ मानस पुत्रों का उल्लेख है। मानस-पुत्रों से क्या तात्पर्य है, यह अभी हम पूरा नहीं समझ सके। सम्भव है, ब्रह्मा के साथ वे भी जल-प्लावन से बचे हों और चतुर्वेदज्ञाता मान कर उन्होंने ब्रह्मा को अपना पिता वरा हो।

दक्ष प्रथम—वायुपुराण में ब्रह्मा के नव मानस-पुत्र कहे गए हैं।[2] मत्स्यपुराण में ब्रह्मा के दस मानस और कई शारीर-पुत्र कहे गए हैं।[3] उत्पत्ति उनकी भी विलक्षण ढंग से कही गई है। इन दोनों सूचियों में एक दक्ष प्रजापति स्मरण किया गया है।[4] मत्स्य आदि पुराणों में इस दक्ष की उत्पत्ति दक्षिण अंगुष्ठ से कही गई है। उसके आगे ही हृदय से काम की उत्पत्ति बताई है। इससे प्रतीत होता है कि यहां इन शब्दों की व्युत्पत्तिमात्र दिखाई गई है। दक्ष का अर्थ चतुर है और दक्षिण अंगुष्ठ से बाण चलाने में चातुर्य दिखाना पड़ता है, अतः दक्ष की उत्पत्ति अंगूठे से कह दी है। यह वैसी ही व्युत्पत्ति है जैसी महाभारत शब्द की, अर्थात् समस्त शास्त्रों से भारी होने से महाभारत कहाता है।

दक्ष द्वितीय अथवा प्राचेतस दक्ष—एक दक्ष और था। वह प्रचेता का पुत्र था। महाभारत आदिपर्व में उसे प्राचेतस कहा है—तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिमाः प्रजाः ।७०।४॥ और देखो शान्तिपर्व २३।५१॥—दक्षः प्राचेतसो यथा—

---

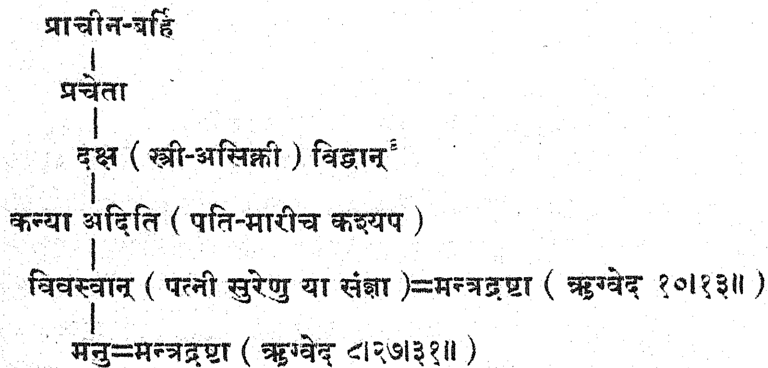
१. वायु ३०।७४–७६॥ ६७।४३॥ चरकसंहिता चिकित्सास्थान ३।१५–२५॥ में भी द्वितीय युग में दक्ष प्रजापति का यज्ञ लिखा है। अष्टाङ्गसंग्रह में अनेक पुरातन संहिताओं के आधार पर लिखा है कि कृतयुग के भ्रष्ट होने पर दक्ष के समय ज्वर आदि उत्पन्न हुए। निदान स्थान अध्याय १।६७।४३॥

२. भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमाङ्गिरसं तथा ॥६८॥
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम्। नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥६९॥ अध्याय ९।

३. ३।६—१२॥ ४. शतपथ ब्राह्मण में एक दक्ष प्रजापति उल्लिखित है—प्रजापतिर्ह वा ऽएतेनाग्रे यज्ञेनेजे।'''स वै दक्षो नाम। २।४।४।१।२॥ तुलना करो—दक्षो ह वै पार्वतिः। कौषीतकि ब्रा० ४।४॥

इस दक्ष की संतान-परम्परा में राजवंशों की उत्पत्ति कही जाती है। दक्ष का विवाह वीरिणी से हुआ। वह वीरण-प्रजापति की असिक्री नाम की दुहिता थी।[1] दक्ष और असिक्नी की कन्या अदिति थी।[2] दक्ष की दिति, दनु आदि और भी कन्याएं थीं। मारीच कश्यप से इन का विवाह हुआ।[3]

विवस्वान्—अदिति का पुत्र विवस्वान् अर्थात् सूर्य था।[4] इसे आदित्य भी कहा है।[5] वह बारह आदित्यों अथवा देवों में से एक था। ऋग्वेद १०।७२।८॥ में अदिति के आठ पुत्र कहे हैं—अष्टौ पुत्रासो अदितेः। अतः मन्त्रगत वर्णन का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है। विवस्वान् का एक पुत्र प्रसिद्ध वैवस्वत मनु था। दूसरे पुत्र का नाम था यम। विवस्वान् की स्त्री का नाम सुरेणु, संज्ञा वा त्वाष्ट्री था। दक्ष और उस के पूर्वजों का वंश-वृक्ष आगे दिया जाता है —



मारीच कश्यप का काल—पुराणों के अनुसार मारीच कश्यप वैवस्वत अन्तर के आद्य त्रेतायुगमुख में हुआ था।[7] इस लिए हमारा अनुमान कि पृथु वैन्य इस चतुर्युगी में था, सत्य है। इसी से यह परिणाम निकलता है कि दक्ष सतयुग के अन्त और त्रेता के आरम्भ में था।

पृथ्वीत्राता कूर्म—शतपथब्राह्मण ७।५।१।५॥ में इसी कश्यप प्रजापति को कूर्म भी कहा है। कूर्म ने ही पृथ्वी के एक अंश को जल से बाहर निकाला था। राजतरंगिणी और नीलमतपुराण के अनुसार काश्मीर की भूमि पहले जलनिमग्न थी। कश्यप ने उसे जल से बाहर किया।

---

१. वायु ६५।१२८,१२९॥ २. आदिपर्व ७०।५॥ ३. आदिपर्व ७०।८॥
४. आदिपर्व ९०।७॥—विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे । विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ॥ वायु ५३।१०४॥
५. अदितेरपत्यम् आदित्यः । महाभाष्य १।१।७२॥ देवा आदित्याः । विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । शतपथ ब्रा० ३।१।३।५॥ ६. वायुपुराण ६३।६५॥ ७. वायुपुराण ६७।४३॥

वैवस्वत मनु—इस का नाम शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।३॥ में स्मरण किया गया है।[1] वाल्मीकिमुनि रामायण में मनुको आदि राजा मानता है।[2] अर्थशास्त्रकार कौटल्य इसे मनुष्यों का प्रथम राजा स्वीकार करता है।[3] इस के आगे वह लिखता है कि प्रजा ने इसे कर देना आरम्भ किया। मनु दण्ड आदि की व्यवस्था का प्रथम चलाने वाला था।

सूर्यवंश—विवस्वान् का पुत्र मनु था। मनु का वंश भारत में बहुत व्यापक हुआ। भारतीय प्रजा मानवी अथवा आदित्य की प्रजा है। ताण्ड्य ब्राह्मण १८।८।१२॥ में इसी भाव से कहा है—आदित्या वा इमा प्रजाः।

नगर-निर्माता—यह राजा नगर-निर्माता भी था। अयोध्या नगरी इसी की बनाई हुई है।[4]

मन्त्रद्रष्टा—विवस्वान्, मनु और यम आर्य-इतिहास के सजीव व्यक्ति थे। भारतीय इतिहास में इन का उल्लेख न करना एक प्रकार से इतिहास की अवहेलना करना है। इन का नाम सुरक्षित रखने के लिए इतिहासकारों पर एक बड़ा उत्तरदायित्व था। ये लोग मन्त्रद्रष्टा थे। मन्त्र आर्य जाति का प्राण हैं। अपने मन्त्रद्रष्टाओं का कीर्तन आर्य ऐतिहासिकों के लिए आवश्यक था। विवस्वान् ऋग्वेद १०।१३॥ का द्रष्टा है। मनु का एक पुत्र नाभानेदिष्ठ था।[5] मनु ने अपने दो सूक्त उसे दिए। वे नाभानेदिष्ठ के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सूक्त हैं, ऋग्वेद १०।६१,६२।[5] मनु-भ्राता वैवस्वत यम का भी एक सूक्त ऋग्वेद में विद्यमान है। वह है दशम मण्डल का चौदहवां सूक्त।

ऋग्वेद के ये सूक्त भारत-युद्ध से सहस्रों वर्ष पहले विद्यमान थे। जो लोग वेद मंत्रों का काल ईसा से २४०० वर्ष पहले से अधिक पूर्व का नहीं मानते, उन्हें तनिक पक्षपातरहित होकर विचार करना चाहिए और कल्पित भाषा-विज्ञान को कल्पना के क्षेत्र से परे ले जाकर किसी सुदृढ आधार-शिला पर स्थापित करना चाहिए।

---

१. मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह। २. आदिराजो मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता। बालकाण्ड ६।४॥

३. मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। ४. वा० रामायण, बालकाण्ड ५।२॥

५—५. यह वार्ता तै०सं० ३।१।९॥ मै०सं० १।५।८॥ तथा ऐ० ब्रा० ५।१४॥ में मिलती है। इस की विवेचना के लिए देखो हमारा ग्रन्थ, ऋग्वेद पर व्याख्यान, पृ० ४१,४५ सन् १९२०।

छठा अध्याय

मनु की सन्तान और भारतीय राजवंशों का विस्तार

वैवस्वत मनु के नौ वंशकर पुत्र थे। इला नाम की उसकी एक कन्या भी वंशकरी थी। मनु के पुत्रों के राजवंश सूर्यवंश के नाम से पुकारे जाते हैं और इला का वंश ऐल वंश कहाता है। मनु-पुत्रों के नाम निम्नलिखित थे—

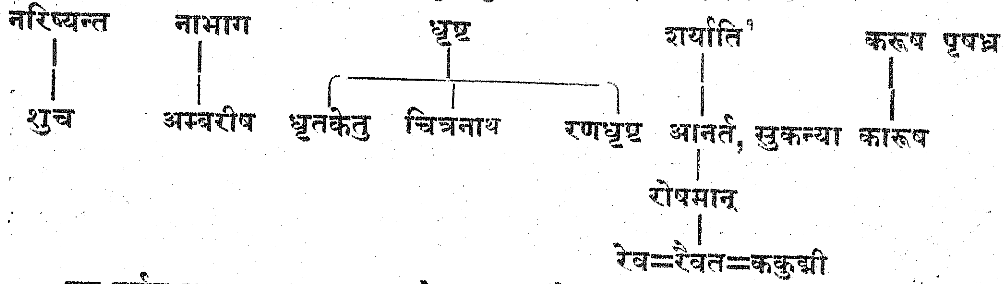
महाभारत[1]	ब्रह्माण्ड[2]	मत्स्य[3]	वायु[4]	विष्णु[5]	चरकसंहिता[6]
१. वेन	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	नरिष्यन्
२. धृष्णु	नृग	कुशनाभ	नभग	नृग	नाभाग
३. नरिष्यन्त	धृष्ट	अरिष्ट	धृष्ट	धृष्ट	इक्ष्वाकु
४. नाभाग	शर्याति	धृष्ट	शर्याति	शर्याति	नृग
५. इक्ष्वाकु	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	शर्याति
६. करूष	प्रांशु	करूष	प्रांशु	प्रांशु	आदि
७. शर्याति	नाभागोदिष्ट	शर्याति	नाभागोदिष्ट	नाभाग	
८. पृषध्र	करूष	पृषध्र	करूष	दिष्ट	
९. नाभागारिष्ट	पृषध्र	नाभाग	पृषध्र	करूष	
				पृषध्र	

विष्णुपुराणु में नाभाग और दिष्ट दो व्यक्ति माने हैं। यह बात अन्य सब मतों के विरुद्ध है। यहां नाभानेदिष्ट नाम को तोड़कर नाभाग और दिष्ट दो नाम किए गए हैं। विष्णुपुराण के पाठ वस्तुतः अधिक बिगड़े हैं। यह हम आगे भी दिखायेंगे। शतपथ ब्राह्मण में शर्याति को शर्यात और मनु-पुत्र लिखा है—शर्यातो ह वाऽइदं मानवः।४।१।५।२॥ इन नौ पुत्रों की कथा आगे कही जाती है।

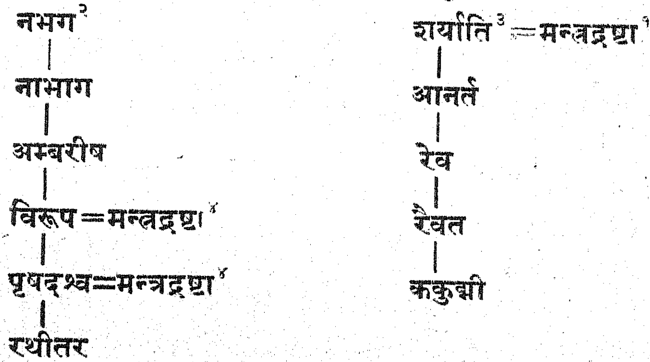
---

१. आदिपर्व ७०।१३, १४॥ २. ३।६०।२, ३॥ ३. ११।४१॥ ४. ८५।४॥
५. ४।१।७॥ विष्णु में अधिक हस्तक्षेप का यह एक दृष्टान्त है। यहां दश पुत्र कहे गए हैं।—
६. चिकित्सास्थान १९।४॥

मनु के छः पुत्र-कुलों का संक्षिप्त वर्णन

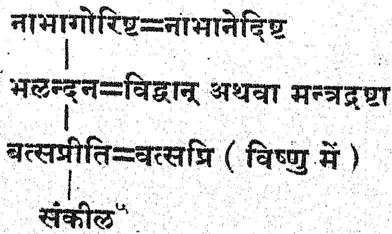


यह वर्णन मत्स्य १०।२०—२३॥ के अनुसार है। वायु में कुछ भेद है। उस के अनुसार नभग[2] और शर्याति[3] के वंश-क्रम निम्नलिखित प्रकार से हैं—



यह हुआ मनु के छः पुत्र-कुलों का वर्णन। शेष तीन कुलों का वर्णन आगे होगा। इन में से एक कुल है नाभानेदिष्ट का।

मनु के सातवें पुत्र-कुल का वर्णन



---

१. यह मन्त्रद्रष्टा था। ऋग्वेद १०।९२॥ इसी का सूक्त है। २. वायु ८८।५—७॥

३. वायु ८६।२२—२५॥ ऐ० ब्रा० ८।२१॥ के अनुसार वह देवताओं का गृहपति था।

४. वायु ५९।१००॥ पुराणों के अनुसार पृषदश्व और विरूप आङ्गिरस हैं। ऋ० ८।४४॥ विरूप आङ्गिरस का सूक्त है।

५. बौधायन श्रौत (कालेण्ड का संस्करण, पृ० ४६९) के अनुसार संकिल।

नाभानेदिष्ट का पुत्र भलन्दन था। वायुपुराण में इसे विद्वान् कहा है। पुराणों के ऐसे प्रकरणों में विद्वान् का अर्थ मन्त्रद्रष्टा ऋषि होता है। पुराणों में जहां मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का वर्णन किया है, वहां भलन्दन का नाम भी लिखा है।[१]

भलन्दन वैश्य था—पुराणों में लिखा है कि नाभानेदिष्ट वैश्य हो गया।[२] यह बात वैदिक ग्रन्थों के अनुकूल है। नाभानेदिष्ट को मनु राज्य नहीं दे सका। उसके भाग में किसी यज्ञ की भूरि दक्षिणा ही आई। उस धन से उसने वैश्य-वृत्ति धारण कर ली। अतः उसके पुत्र भलन्दन का वैश्य ऋषि होना युक्त था। ऐसा ही पुराणों में लिखा है। तीन वैश्य ऋषियों में भलन्दन भी एक था।[३]

वत्सप्रिः भालन्दन—कुछ पुराणों में भलन्दन का पुत्र वत्सप्रीति या वत्सप्री भी कहा गया है।[४] यह बात ठीक प्रतीत होती है। वैदिक ग्रन्थ इस विषय में प्रमाण हैं।[५] पुराणों के ऋषि-वर्णन प्रकरणों में भलन्दन के साथ वत्स भी एक वैश्य ऋषि कहा गया है। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद ९।६८॥ का ऋषि वत्सप्रि भालन्दन लिखा है। ऋग्वेद १०।४५,४६॥ भी वत्सप्रि के सूक्त हैं।

वायुपुराण ८६।४॥ में भलन्दन का पुत्र वत्सप्रीति और उसका पुत्र प्रांशु कहा गया है। पार्जिटर ने विष्णु आदि के अनुसार यही पाठ सत्य माना है।[६]

पार्जिटर की भूल—हमें यहां पुराणों का पाठ टूटा हुआ प्रतीत होता है। पार्जिटर ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। नाभानेदिष्ट के कुल का वर्णन पुराणों में टूट गया है। वायु में प्रांशु से पहले का पाठ टूटा है और विष्णु में वत्सप्र के पश्चात् का। इस कारण वायु और विष्णु में भेद उत्पन्न हुआ।

अगले वर्णन को नाभानेदिष्ट के कुल से पृथक् करके पढ़ना चाहिए।

मनु के आठवें पुत्र-कुल का वर्णन

मनु का आठवां पुत्र-कुल प्रांशु का है। पुराणों में इस का वर्णन कुछ विस्तार से किया गया है। यह कुल पीछे वैशाली-कुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रांशु के कुल में एक मरुत्त राजा हुआ। वह चक्रवर्ती और अत्यन्त प्रतापी था। उस का वर्णन यथास्थान होगा।

मनु का नवम पुत्र-कुल

यह पुत्र कुल बड़ा प्रसिद्ध है। यह इक्ष्वाकु का कुल था। हमारे इतिहास के अगले पृष्ठों में इक्ष्वाकु-कुल और ऐल वंश का ही अधिक विस्तृत वर्णन रहेगा। दूसरे कुलों के केवल चक्रवर्ती राजाओं का वर्णन कुछ विस्तार से होगा।

---

१. मत्स्य १४५।११३॥ २. विष्णु ४।१।११॥ ३. मत्स्य १४५।११६॥ ४. विष्णु ४।१।२०॥

५. मैत्रायणी संहिता ३।२।१ में वत्सप्रीः भालन्दन स्मरण किया गया है।

६. Ancient Indian Historical Tradition p. 145.

सातवां अध्याय

ऐल वंश का विस्तार

जिस समय दक्ष-दौहित्र विवस्वान् इस संसार में विचर रहा था उसी समय अत्रि नाम के ऋषि भी जीवित थे। अत्रि का वंश-क्रम अगले वृक्ष से स्पष्ट हो जायगा—

अत्रि
|
प्रजापति[1] चन्द्र=सोम
|
मन्त्रद्रष्टा=(ऋग्वेद १०।१०१॥) बुध=(भार्या, मनु-कन्या इला[2])
|
मन्त्रद्रष्टा=(ऋग्वेद १०।९५॥) पुरूरवा ऐल

१. सोम—यह स्वयं एक राजा था।[3] इसी का दूसरा नाम चन्द्र है। इस का राज्य या स्थान हिमालय के उत्तर पश्चिम में प्रतीत होता है।

तारकामय अर्थात् पांचवां देवासुर संग्राम[4]—आर्य-इतिहास में इस से पूर्व चार महान् देवासुर संग्राम हो चुके थे। यह पांचवां संग्राम बृहस्पति की स्त्री तारा के कारण हुआ था। इस लिए इस संग्राम का नाम तारकामय है। यह संग्राम सोम के काल में हुआ था।[5] सोम के साथ नभोमण्डल की कुछ नाक्षत्री घटनाएँ भी सम्मिलित हो गई हैं, अतः सोम के इतिहास का पूर्ण शुद्ध रूप हम अभी उपस्थित नहीं कर सकते।

इस संग्राम का काल—हरिवंश में यह संग्राम कृतयुग में कहा गया है।[6] दक्ष प्रजापति से त्रेता युग का आरम्भ हम पहले कह चुके हैं। अतः यह संग्राम त्रेता युग के आरम्भ अथवा सतयुग के अन्त में हुआ है।

---

१. सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः। उद्योगपर्व १४७।३॥ २. ऐडीश्च वा इमाः प्रजाः। मै० सं० १।५।१०॥

३. राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद्राजपुत्रो बुधः स्मृतः ॥३॥ मत्स्य अध्याय २४। वायु ६६।५३॥मै० सं० २।२।७॥

४. मत्स्यपुराण ४७।४३॥ ५. वायुपु० ९०।५–४५॥

६. वृत्ते वृत्रवधे तात वर्तमाने कृते युगे। आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥४२।१०॥

तारकामय संग्राम और विरोचन-वध—इस संग्राम में प्रह्लाद का पुत्र विरोचन मारा गया।[1] उस का वध इन्द्र ने किया। इस इन्द्र का वास्तविक नाम अभी संदिग्ध है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।९।१॥ में इस विरोचन का वर्णन है—

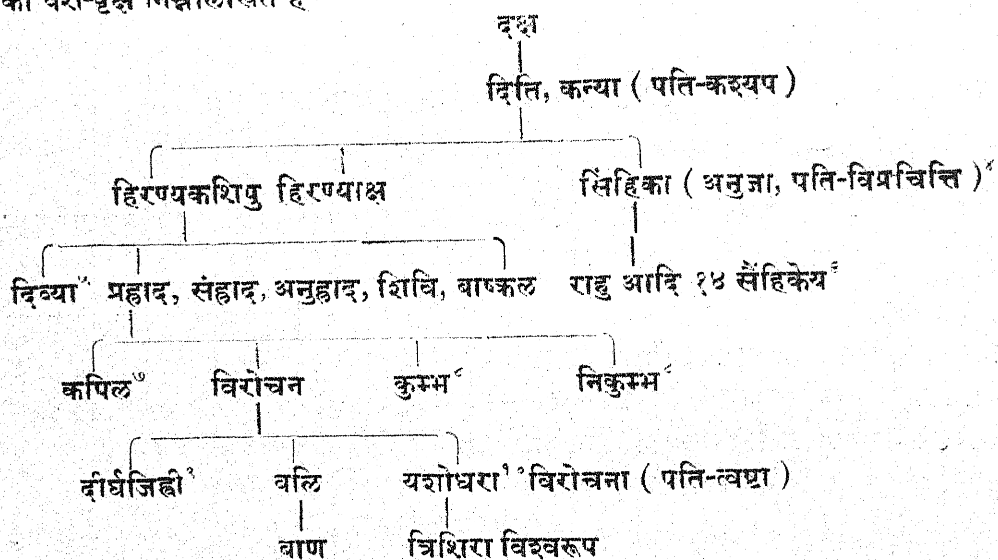
देवासुरास्संयत्ता आसन्।……प्रह्लादो ह वै कायाधवः। विरोचनं स्वं पुत्रमपन्यधत्त।

अर्थात् कयाधू का पुत्र प्रह्लाद था। कयाधू प्रह्लाद की माता थी, ऐसा भागवत पुराण में लिखा है।[2]

छान्दोग्य उपनिषद् ८।६॥ में भी विरोचन का उल्लेख है—विरोचनो ऽसुराणाम्।

जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—विरोचनस्य प्राह्लादिः। १।१२६॥

असुर-प्रजा—इस तारकामय देवासुर संग्राम का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए थोड़ा सा असुर-वृत्तान्त भी जानना चाहिए। दक्ष और उस की एक कन्या अदिति का वर्णन पहले हो चुका है। दक्ष की अनेक कन्याएं थीं। उन में से एक कन्या का नाम दिति था। दिति का वंश-वृक्ष निम्नलिखित है[3]—



१. विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः ॥४८॥
इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥४९॥ मत्स्य अध्याय ॥४७॥

२. हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधूर्नाम दानवी ॥६।१८।१२॥

३. आदिपर्व ५९।१७—२०॥ ४. ब्रह्माण्ड, उपो० पा० ३, १।७४॥ ५. वायु ६७।५९॥

६. वायु ६७।६०॥६८।१८—॥ ७. बौधायन धर्मसूत्र ११।३०॥

८. हरिवंश ३।३६।३५॥ में इन्हें जम्भ और सुजम्भ कहा है। जम्भो वै नामासुर आसीत्। काठक संहिता २६।१॥

९. वा० रामायण, बालकाण्ड २३।१८, १९॥ जै० ब्राह्मण १।१६१॥

१०. ब्रह्माण्ड, उपो० पा० ३, १।८६, ८७॥

पहली अनावृष्टि—इस इतिहास में कई अनावृष्टियों का उल्लेख किया जायगा। ये समय समय पर हुई थीं। पहली अनावृष्टि तारकामय संग्राम के समय हुई। उस का आलङ्कारिक वर्णन वायु ७०।८१॥ में किया गया है—

पुरा देवासुरे तस्मिन् संग्रामे तारकामये।
अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रेऽसुरैः सह ॥

असुरयाजक अत्रि—अत्रि नाम के कई ऋषि हुए हैं। एक अत्रि शुक्र=उशना के पुत्रों में से था।[1] यह उशना-पुत्र अत्रि असुर-याजक था। यदि यही अत्रि सोम का पिता था, तो तारकामय देवासुर संग्राम का कारण स्पष्ट हो जाता है। वह वस्तुतः देवों और असुरों के स्थायी वैमनस्य के कारण हुआ। सोम उस में निमित्तमात्र था।

देवासुर संग्राम दायनिमित्त थे—मत्स्य ४७।४१॥ में लिखा है कि ये संग्राम दायनिमित्त थे।[2] ब्रह्माण्ड ३।७२।७१॥ में दायनिमित्त के स्थान में द्वीपनिमित्त पाठ है। यही इन संग्रामों का राजनीतिक कारण था।

अत्रि आश्रम—यह आश्रम हिमालय के पश्चिम भाग में था।[3]

२. बुध—मत्स्यपुराण में इसे अर्थशास्त्र और हस्तिशास्त्र-प्रवर्तक कहा गया है।[4]

३. बुधपुत्र पुरूरवा—वैवस्वत-मनु की एक कन्या इला थी। उस का विवाह सोमपुत्र बुध के साथ हुआ। प्रसिद्ध सम्राट् पुरूरवा इन्हीं बुध और इला का पुत्र-रत्न था।

प्रदेश और राजधानी—पुरूरवा का मूल स्थान असुर-प्रदेश में था। परन्तु माता इला की कृपा से उसे प्रतिष्ठान का राज्य मिला।[5] प्रतिष्ठान प्रयाग का दूसरा नाम प्रतीत होता है। इसकी स्थिति उत्तर यमुना-तीर पर कही गई है। पुरूरवा को सप्तद्वीपपति भी कहा है।[6] मत्स्य में पुरूरवा को मद्रेश कहा है।[7] पुरूरवा समुद्र के अठारह द्वीपों का भोक्ता था।[8]

ब्रह्मवादी पुरूरवा—पुरूरवा राजर्षि था। वह मन्त्रद्रष्टा था। उसे ब्रह्मवादी, तेजस्वी, सत्यवाक्, अप्रतिमरूप और दानशील कहा गया है। पुरूरवा कई यज्ञाग्नियों का आविष्कर्ता था।

पुरूरवा और कालिदास—प्रसिद्ध कवि कालिदास ने पुरूरवा के विषय में अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में कुछ ज्ञातव्य बातें कही हैं। पुरूरवा के रथ का नाम सोमदत्त था। यह उसे अपने पितामह सोम से प्राप्त हुआ होगा। यह रथ हरिण-केतन था। पुरूरवा के प्रासाद का नाम

---

१. आदिपर्व ५९।३५, ३६॥ २. वायु ९७।७?॥ ३. मत्स्य ११८।६१—७६॥

४. सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ॥२४।२॥ ५. एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमाः। देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलङ्कृते ॥४९॥ राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः। उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥५०॥ वायु अध्याय ९१॥ब्रह्माण्ड ३।६६।२०,२१॥ ६. मत्स्य २४।११॥

७. ११५।९॥ ११८।६१॥ ८. अष्टादशसमुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः। वायु २।१५॥

मणिहर्म्य था। हम अभी नहीं कह सकते कि ये बातें कालिदास ने पुरातन ग्रन्थों से लीं या ये उसकी अपनी कल्पना हैं।

पुरूरवा और उर्वशी का सम्बन्ध—पुरूरवा के काल में हिरण्यपुर-वासी दानवेन्द्र केशी देवों पर अत्याचार करने लगा था। पुरूरवा ने केशी को पराजित किया। इस पर इन्द्र सम्राट् पुरूरवा का मित्र बन गया। उसने उर्वशी को पुरूरवा के लिये दे दिया।[1] कुछ काल पश्चात् पुरूरवा और उर्वशी में वैमनस्य हो गया।[2]

पुराणों में सहस्रवर्ष पद का अर्थ—पुराणों में किसी राजा का काल साठ सहस्र वर्ष और किसी का अस्सी सहस्र वर्ष कहा गया है। सहस्रों से न्यून में तो पुराणों की गिनती ही नहीं होती। उर्वशी और पुरूरवा का प्रसंग इस सहस्र शब्द का अर्थ समझने में बड़ा सहायक है। अतः तत्सम्बन्धी कुछ वचन नीचे लिखे जाते हैं—

तया सह······रममाणः षष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽनयत ॥४८॥ विष्णु ४।६॥
पञ्चपञ्चाशदब्दानि लता सूक्ष्मा भविष्यसि। मत्स्य २४।३१॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि चाष्ट च।
सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान्। वायु ९१।५॥
वर्षाण्यथ चतुःषष्टिः तद्भक्त्या शापमोहिता। वायु। ९१।१४॥
वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता। हरिवंश २६।१८॥

पूर्वोक्त वचन बता रहे हैं कि पुराण-पाठों में कितनी गड़बड़ हुई है। मत्स्य में ५५, वायु में ६४ और हरिवंश में उर्वशी पुरूरवा के सहवास का काल ५९ वर्ष है। परन्तु हम ने यहां केवल इतना बताना है कि विष्णु के साठ सहस्र का अर्थ केवल "लगभग साठ" वर्ष अर्थात् ५६—६४ वर्ष ही है। अतः प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन-काल की वर्ष-गणनाओं में जहां वर्ष संख्या के साथ सहस्र शब्द जोड़ा गया है, वहां इस का अर्थ "लगभग" है। यास्कीय निघण्टु में सहस्र और शत आदि शब्द बहु के पर्याय हैं।

महाभारत से इसी अर्थ की पुष्टि—महाभारत आदिपर्व में संवरण विषयक एक घटना सहस्रपरिवत्सर में हुई लिखी है।[3] आदिपर्व में एक दूसरे स्थान पर वही घटना १२ वर्ष में हुई लिखी है।[4] इससे ज्ञात होता है कि सहस्र पद यहां संख्या-विशेष का द्योतक नहीं है।

मृत्यु—पुरूरवा की मृत्यु के विषय में एक विचित्र बात कही जाती है। उसका उल्लेख हम पृ० २० पर कर चुके हैं। कहते हैं, नैमिष में ब्रह्मवादी ऋषि यज्ञ कर रहे थे। उनका यज्ञवाट भी हिरण्मय था। विक्रान्त सम्राट् पुरूरवा मृगया-वश वहां आ निकला। उस का

१. मत्स्य २४।२२—२५॥ २. प्रत्याख्याय हि मां भीरु परितापं गमिष्यसि। चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी॥ वा० रामायण। अरण्यकाण्ड, ४८।१८॥ ३. ९९।३६॥ ४. १६३।१४,१५॥

लोभ प्रदीप्त हुआ। उसने ऋषि-धन लेना चाहा। ऋषियों के कुशवज्रों से उस ने वहीं देह त्यागी।[1]

इस कथा के सत्य होने में सन्देह नहीं, कौटल्य इसे एक सत्य घटना मानता है।[2] भगवान् व्यास ने भी महाभारत में अत्यन्त संक्षेप से इस घटना का उल्लेख किया है।[3]

पुरूरवा की सन्तति—वायुपुराण ९०।४५॥ तथा ९१।५१॥ के अनुसार पुरूरवा के उर्वशी से छः तेजस्वी पुत्र थे। मत्स्यपुराण २४।३३॥ के अनुसार पुरूरवा और उर्वशी के आठ पुत्र थे। आयु उन सब में ज्येष्ठ था। उसके वंश का वर्णन आगे होगा।

काठकसंहिता ८।१०॥ में लिखा है—उर्वशी वै पुरूरवस्यासीत् सान्तर्वती देवान् पुनः परैत् यो ऽस्यो देवेष्वायुरजायत तामन्वागच्छत् तां पुनरयाचत तामस्मै न पुनरददुस्तस्मा आयुं प्रायच्छन्।

अर्थात्—उर्वशी पुरूरवा में आसक्त थी। वह गर्भवती पुनः देवों को प्राप्त हुई। देवों में वह आयु जन्मा। [पुरूरवा] उस उर्वशी के पीछे गया। उस उर्वशी को उसने देवों से मांगा। देवों ने उर्वशी न दी। उस पुरूरवा के लिए आयु को दे दिया।

वेदमन्त्रों में उर्वशी विद्युत् का नाम है। उसी पर उर्वशी और पुरूरवा के वैदिक अलंकार हैं। उर्वशी और पुरूरवा के पौराणिक इतिहास में ये अलंकार भी कहीं कहीं भासित होते हैं।[4] विद्वान् पाठकों को सावधान होकर दोनों स्थानों को देखना चाहिए।

यजुर्वेद में तीन मन्त्र हैं—उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवासि। ५।२॥ इन मन्त्रों पर शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—उर्वशी वा ऽअप्सराः पुरूरवाः पतिरथ यत्तस्मान्मिथुनादजायत तदायुः। ३।४।१।२२॥ शतपथ का लेख स्पष्ट ही अरणि-विद्या सम्बन्धी है। वहां से पुरूरवा नाम लेकर पुरूरवा ब्रह्मवादी हुआ और उसने मन्त्रों में आयु शब्द देख कर अपने पुत्र का नाम आयु रखा।

---

१. वायु २।१४—२३॥ २. अर्थशास्त्र १।६॥
३. आदिपर्व ७०।१८—२०॥ ४. वायु ९१।२४—२७॥

आठवां अध्याय

इक्ष्वाकु से ककुत्स्थ तक

२. इक्ष्वाकु—मनु-पुत्र इक्ष्वाकु था। यह कोसल देश का राजा हुआ। कोसल की राजधानी अयोध्या थी। पुराणों में लिखा है कि इक्ष्वाकु के शकुनि-प्रमुख पचास पुत्र उत्तरापथ के राजवंशों के चलाने वाले हुए।[1] इसी प्रकार विराट्-प्रमुख अड़तालीस दक्षिणापथ के शासक हुए।[2] इस बात में हमें कुछ सन्देह है। भारत युद्ध के काल में भारतवर्ष में चन्द्रवंश का प्राधान्य था। इस से सूर्यवंश का इतना विस्तार सम्भव प्रतीत नहीं होता। और यदि पुराणों की बात ठीक मानी जाए तो फिर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शनैः शनैः सूर्यवंश का विस्तार घटता गया और ऐलवंश का प्रभुत्व भारत में बढ़ता गया।

३. विकुक्षि—इक्ष्वाकु-तनय विकुक्षि अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसका नाम शशाद भी लिखा है। शशाद-पुत्र पुरञ्जय था।

४. पुरञ्जय=ककुत्स्थ—यह एक वीराग्रगण्य राजा हुआ। इसी के कारण इक्ष्वाकुकुल वाले काकुत्स्थ भी कहाते हैं। पुराणों में इसके ये दो नाम हैं। वाल्मीकीय रामायण में इसका एक नाम बाण भी लिखा है।[3] यही इसका वास्तविक नाम प्रतीत होता है।

छठा दैवासुर संग्राम—रामायण में बाण को महातेज लिखा है। यह इस के पौरुष का द्योतक है। इसी राजा के काल में यह दैवासुर-संग्राम हुआ। इस को पुराणों में आडीवक कहा है।[4] इस प्रकरण के वायुपुराण के एक पाठान्तर से प्रतीत होता है कि इस युद्ध में असुरों का सेनापति सुजंभ था।[5] वह विरोचन का सबसे कनिष्ठ भ्राता रहा होगा।

यह युद्ध त्रेतायुग में—हम पहले कह चुके हैं कि दक्ष-प्रजापति के काल से आद्य-त्रेता युगका आरंभ हुआ। दक्ष के काल से ककुत्स्थ का काल अनतिदूर का है। अतः ककुत्स्थ के काल का दैवासुर-संग्राम भी त्रेता में हुआ। ऐसा ही पुराण में लिखा है।[6]

पांचवें युद्ध के काल में विरोचन अति वृद्ध रहा होगा। उसके शीघ्र-पश्चात् यह छठा युद्ध हुआ होगा। संभवतः दूसरी ओर आयु और नहुष जीते होंगे।

---

१. विष्णु ४।२।१३॥ ब्रह्माण्ड ३।६।३।९-११॥ २. विष्णु ४।२।१४॥

३. वा० रामायण भगवद्दत्त-सम्पादित, बालकांड ६६।२०॥

४. ब्रह्मांड ३।६३।२६॥ षष्ठो ह्याडीवकस्तेषां। वायु ९७।७५॥

५. वायु ९७।८१॥ ब्रह्माण्ड ३।७२।८१॥ में उसे जंभ कहा है। विष्णु ४।६।१४॥ में जम्भ और कुम्भ लिखा है। ६. विष्णु ४।२।२२॥—पुरा हि त्रेतायां देवासुरयुद्धमतिभीषणमभवत्।

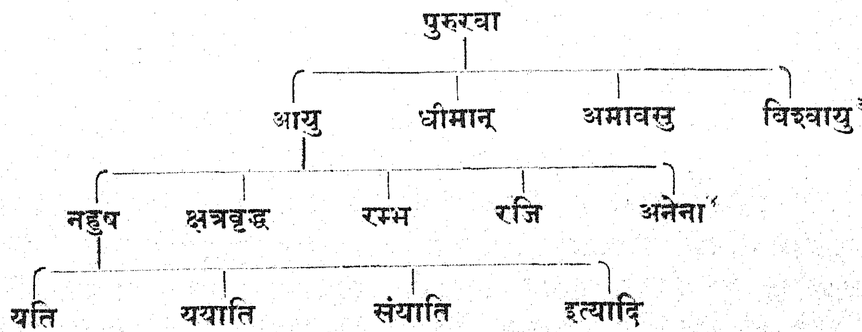
नवम अध्याय

ऐल पुरूरवा से पुरु तक

पुरूरवा इक्ष्वाकु का समकालीन था[1] पुरूरवा का पुत्र आयु था। आयु का पुत्र नहुष, नहुष का ययाति और ययाति के पुरु आदि पांच पुत्र थे। पुरूरवा का वर्णन पहले हो चुका। अब आयु का वर्णन किया जाता है।

४. आयु—पुरूरवा की मृत्यु पर ऋषियों ने उसके ज्येष्ठ पुत्र आयु को प्रतिष्ठान के राज्य पर अभिषिक्त किया।

आयु की स्त्री—स्वर्भानु की प्रभा नाम की एक कन्या थी। स्वर्भानु को ही राहु कहते हैं।[2] उस कन्या का विवाह आयु से हुआ।[2] आयु के नहुष आदि पांच पुत्र थे। निम्नलिखित वंशवृक्ष से पुरूरवा का कुल-क्रम स्पष्ट हो जायगा—



५. नहुष—यह अति प्रसिद्ध राजा था। इसका विवाह पितृ-कन्या विरजा से हुआ। यह राजा शूरवीर था।

मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद ९।१०१।७-९॥ का ऋषि नहुष मानव कहा गया है। उससे पहले ४-६ मन्त्रों का ऋषि ययाति नाहुष कहा गया है। ऐल या सोमवंश के लोग मानव नहीं कहे जाते। वाल्मीकीय रामायण ६६।२९,३०॥ में सूर्यवंश में एक नहुष और उसका पुत्र ययाति लिखे गये हैं। यह सूर्यवंश मानववंश कहाता है। यदि प्रस्तुत मन्त्रद्रष्टा ऋषि इस सूर्य-कुल का नहीं, तो अवश्य आयु-पुत्र नहुष है। यह भी संभव है कि आयव के स्थान में मानव पाठ भूल से हो गया हो।

नहुष-कन्या रुचि—नहुष की रुचि नाम्नी एक कन्या थी। वह च्यवन-सुकन्या के पुत्र आप्नवान् की धर्मपत्नी बनी।

---

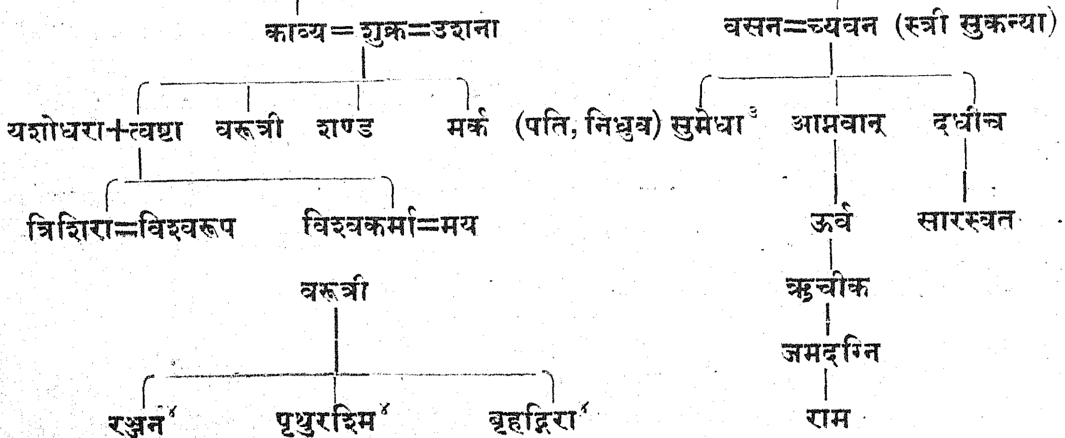
१. शान्तिपर्व १६४।७३, ७४॥

२. स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या। वायु ६८।२२॥ प्रभाया नहुषः पुत्रः। वायु ६८।२४॥ ब्रह्माण्ड ३।६।२३, २४॥ ...यस्त्वायुर्नामा स राहोर्दुहितरमुपयेमे॥ विष्णु ४।८।१॥ ३. वायु ९१।५१, ५२॥

४. आदिपर्व ७०।२३॥ विष्णु ४।८।३॥ वायु ९२।२॥ वायु के नाम कुछ भिन्न हैं।

इस सम्बन्ध को समझने के लिए भृगु-वंश का वृत्त जानना भी आवश्यक है। वह वंशवृक्ष-रूप में आगे दिया जाता है—

स्त्री—हिरण्यकशिपु-कन्या दिव्या + भृगु[२] +पुलोम-दुहिता पौलोमी



दशम देवासुर संग्राम—**दसवां देवासुर संग्राम वार्त्रघ्न था।[५] वृत्र शिल्पिप्रजापति[६] अथवा त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा विश्वरूप था।[७] काठक संहिता में उसे असुरों का स्वस्रीय लिखा है।[८] असुर बलि की भगिनी विरोचना उस की माता थी। जब देवराज इन्द्र वृत्र[९] को मार चुका, तो ब्रह्महत्या के भय के कारण वह कहीं लुप्त हो गया। उस समय महर्षियों और देवताओं ने नहुष को देव-भूमि का राजा अभिषिक्त करना चाहा।[१०] फलतः उन्होंने ऐसा ही किया।**

त्रिशिरा-त्वाष्ट्र मन्त्रद्रष्टा था—**हमने अभी लिखा है कि त्रिशिरा को मार कर इन्द्र अपने को ब्रह्महत्या का भागी मान कर लुप्त हो गया। यह बात बहुत सत्य है। त्रिशिरा अथवा वृत्र ब्रह्मवादी=मन्त्रद्रष्टा था। ऋग्वेद १०।८,९॥ इस के सूक्त हैं।**

असुर-स्वस्रीय त्रिशिरा—**त्रिशिरा अथवा विश्वरूप असुरों की भगिनी यशोधरा-विरोचना का पुत्र था। काठकसंहिता।१२।१०।२८॥ में स्पष्ट लिखा है—**

विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रो ऽसुराणां स्वस्रीयः।

---

१. वायु ६५।९०–९१ ॥ २. वायु ६५।७२–९४ ॥ ३. वायु ७०।२६॥

४. वायु ६५।७८॥ ये तीनों वैदिक वाङ्मय के यति हैं। यह पृथुरश्मि पृथुवैन्य से भिन्न है।

५. ब्रह्माण्ड ३।७२।७५॥ मत्स्य ४७।४४॥ में वृत्रघातक नवम संग्राम है।

६. वायु ८४।१६॥ ७. महाभारत उद्योगपर्व ९।३,४॥१०।१३॥ ८. १२।१०।२८॥

९. त्रिशिरा या वृत्र की माता विरोचन की भगिनी विरोचना थी। वायु ८४।१९॥ वायु ६५।८५॥ में त्रिशिरा की माता विरोचन-कन्या लिखी है। अन्तिम निर्णय पाठों के शुद्ध होने पर हो सकेगा। १०. उद्योगपर्व ११।१॥

त्रिशिरा के तीन चचा—त्रिशिरा के चचा अथवा त्वष्टा के तीन भ्राता वरूत्री, शण्ड और मर्क थे। वे असुरों के पुरोहित थे। मैत्रायणी संहिता ४।८।१ में लिखा है—

अथ वा एतौ तर्ह्यसुराणां ब्राह्मणा आस्तां त्वष्टावरूत्री। काठकसंहिता ३०।१ में इसी की प्रतिध्वनि है—अथ तर्हि त्वष्टावरूत्री आस्तामसुरब्रह्मौ। पुनः काठकसंहिता २७।२२ में लिखा है—बृहस्पतिर्देवानां शण्डामर्का असुराणां। स्मरण रहे कि मन्त्रगत त्वष्टा, वरूत्री (यजु १३।४४॥) आदि शब्द लेकर ऐतिहासिक पुरुषों के नाम रखे गए हैं।

ऋषि त्रिशिरा का दानव नाम—शतपथ ब्राह्मण १।६।२।९ में लिखा है कि वृत्र को अहि और दानव भी कहते थे। दनु और दनायू से पालित होने के कारण वह दानव था।

इस संग्राम का वर्णन करते हुए महाभारत और पुराणों में कई वैदिक अलंकारों का फिर समावेश हुआ है।

नहुष से युधिष्ठिर तक का काल—महाभारत उद्योगपर्व में लिखा है कि नहुष को त्रिविष्टप में रहते हुए एक शाप मिला। उसके अनुकूल नहुष को दस सहस्र वर्ष पर्यन्त सर्प के रूप में रहना था।[1] यहां सहस्र पद किसी नियत संख्या का द्योतक नहीं। ऐसा हम पहले कह चुके हैं। परन्तु जो ऐसा नहीं मानते, उन्हें विचारना चाहिए कि महाभारत की कथा के अनुसार युधिष्ठिर के द्वारा ही नहुष का शापमोचन हुआ। अतः नहुष और युधिष्ठिर का अन्तर दस सहस्र वर्ष से अधिक का तो कभी हो ही नहीं सकता। नहुष के सर्प-रूप धारण करने की कथा योगदर्शन के व्यासभाष्य २।१२ में भी है।

बारहवां देवासुर संग्राम—नहुष का एक छोटा भाई रजि था। यह रजि कोलाहल नामक बारहवें देवासुर संग्राम का विजेता था।[2]

असुर-प्रदेश—असुरों का देश इलावर्त का एक भाग था।[3] यह स्थान क्षीरसागर अथवा वर्तमान कैस्पियनसागर के पास था।

देवासुर संग्राम युग—भारतीय इतिहास का यह देवासुर-संग्राम युग यहां समाप्त होता है। तब अयोध्या में बाण=ककुत्स्थ=पुरञ्जय का राज्य समाप्त हुआ होगा। छठा देवासुर-संग्राम बाण के राज्यारंभ में हुआ प्रतीत होता है। उस के पश्चात् अगले छः संग्राम लगभग पचास वर्ष के अन्दर ही अन्दर हो गए होंगे। पुरञ्जय या ककुत्स्थ की कन्या का विवाह नहुष-पुत्र यति से हुआ था।[4] ककुत्स्थ-कन्या अपने पिता की सब से छोटी सन्तान होगी। यदि यह विवाह-सम्बन्ध सत्य है, तो ककुत्स्थ और नहुष समकालीन होंगे।

---

१. दश वर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्। विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥१७।१५॥

२. ब्रह्माण्ड ३।७२।८६॥ वायु ९७।८६॥ ३. इलावृतमिति ख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम्।
यत्र यज्ञो बलेर्वृत्तो बलिर्यत्र च संयतः॥
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता। मत्स्य १३५।२,३॥

४. वायु ९३।१४॥ पुराण-पाठ काकुत्स्थ है। हमें यह अशुद्ध प्रतीत होता है।

बारह देवासुर-संग्रामों का काल—मत्स्यपुराण के अनुसार ये संग्राम ३०० वर्ष तक रहे।[1] वायुपुराण के अनुसार दस युग तक रहे।[2] अन्त में नहुष-भ्राता रजि द्वारा इन की समाप्ति हुई। कश्यप और दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के काल से लेकर बाणासुर के काल तक ये जगद्विख्यात युद्ध हुए। कभी इन युद्धों की वास्तविकता अत्यन्त प्रसिद्ध थी। वाल्मीकि ने रामायण और कृष्ण द्वैपायन ने महाभारत में बहुधा इन के दृष्टान्त दिए हैं।[3] महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय १२६।४०–४४ में देवासुर युद्ध के व्यूढ होने पर परमेष्ठी प्रजापति के उपदेश का उल्लेख है।

नहुष-च्यवन संवाद—यह अत्यन्त सुन्दर संवाद अनुशासनपर्व अध्याय ८५; ८६ में मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि जब च्यवन लगभग ३० वर्ष का होगा, तब भी नहुष राज्य कर रहा था।

६. ययाति—ययाति सार्वभौम राजा था।[4] वह सोम से छठा था।[5] यह नहुष का पुत्र था। ययाति की दो स्त्रियां थीं। एक थी उशना काव्य की दुहिता देवयानी और दूसरी महाराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा।[6]

देवासुर संग्राम में सहायक—यद्यपि ययाति की एक स्त्री दानवी थी, फिर भी वह इस संग्राम में देवों का सहायक बना था।[7] यह घटना अन्तिम देवासुर संग्राम के समय की होगी। तब ययाति ने अभी यौवन में पदार्पण ही किया होगा।

भारतीय इतिहास में ययाति एक प्रसिद्ध राजा हुआ है। क्षत्रिय होते हुए भी इसने सम्पूर्ण वेद पढ़ा था।[8] इस के सम्बन्ध में कई कथाएं प्रसिद्ध हैं। इस का एक पुरातन आख्यान भी था। यह आख्यान इस समय महाभारत और मत्स्यपुराण में मिलता है।[9] मत्स्य में महाभारत के ययाति-चरित का प्रथमाध्याय नहीं है।

ययाति प्रजापति से दसवां—महाभारत में लिखा है कि ययाति प्रजापति से दसवां था।[10] यह संख्या तभी पूर्ण होती है, जब गणना प्रचेता से आरम्भ की जाए। प्रचेता, दक्ष, अदिति,

---

१. अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्। २४।३७॥ यह समस्त युद्धों का काल प्रतीत होता है, एक का ही नहीं। २. युगं वै दश।९७।७०॥ ३. दानवेष्विव वासवः। रा० युद्धकाण्ड। २५।२६॥ त्र्यम्बकेण यथान्धकः। युद्धकाण्ड ४३।६॥ इन्द्रवैरोचनावित्र। द्रोणपर्व २१।४॥ स्कन्देनेवासुरीं चमूम्। द्रोणपर्व ३६।४७॥ यथा वैरोचनिस्तथा। द्रोणपर्व ९४।७८॥ शक्रजम्भौ यथा पुरा। द्रोणपर्व ९६।२०॥ बलायेन्द्र इवाशनिम्। द्रोणपर्व १३४।८॥ महेश्वर इवान्धकम्। द्रोणपर्व १५७।८९॥ त्र्यम्बकेनान्धको यथा। कर्णपर्व ५६।११॥ ४. वनपर्व १२९।४॥ ५. उद्योगपर्व १४७।३॥ ६. महाभारत आदिपर्व ९०।८॥

७. व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम्। द्रोणपर्व ६३।७॥

८. ब्रह्मचर्येण कृत्स्नो मे वेदः श्रुतिपथं गतः। आदिपर्व ७६।१३॥

९. आदिपर्व अध्याय ७०—८८॥ मत्स्य अध्याय २५—४२॥

१०. ययातिः पूर्वकोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। आदिपर्व ७१।१॥

विवस्वान्, मनु, इला, पुरूरवा, आयु, नहुष, ययाति । इस से प्रतीत होता है कि महाभारत का युगारम्भ प्रचेता से होता है ।

ययाति के श्लोक—**ययाति के गाए श्लोक महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलते हैं।**[1] **इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि ययाति के काल में संस्कृत भाषा ऐसी थी जैसी व्यास के काल में या अश्वघोष और कालिदास के काल में ।**

ययाति का प्रसिद्ध रथ—**ययाति को रुद्र ने एक दिव्यगुणयुक्त रथ दिया। जनमेजय द्वितीय तक यही सब पौरवों का रथ था । तब यह बृहद्रथ द्वारा जरासन्ध को मिला । वहां से यह देवकी-पुत्र कृष्ण के पास आया । समय समय पर इस रथ का उद्धार होता रहा होगा ।**[2] **इस रथ के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि ययाति और भारत-युद्ध में कुछ सहस्र वर्ष का ही अन्तर होगा। इससे अधिक का नहीं ।**

ययाति का प्रदेश—**पुरूरवा के प्रकरण में कहा जा चुका है कि उसकी राजधानी प्रतिष्ठान अर्थात् प्रयाग थी । ययाति और उस के कुछ उत्तराधिकारियों का भी वही प्रदेश था। ययाति वत्स और काशी का ईश था।**[3] **ययाति ने पूरु को राज्य देते हुए कहा था कि गङ्गा और यमुना के मध्य का सम्पूर्ण देश तुम्हारा है ।**[4] **पूरु का शासन काशीराज्यान्तर्गत प्रतिष्ठान में था ।**[5]

एक नाहुष का सहस्र-वर्ष-सत्र—**ययाति आदि कई भाई थे । वे सब नाहुष थे । उन में से किसी एक के सहस्र वर्ष के सत्र का उल्लेख बृहद्देवता ६।२२ में है । वनपर्व १३१।३,४ में यमुना तट पर उस के किसी यज्ञ का उल्लेख है।**

ययाति का वंश—**ययाति के पांच पुत्र थे । काव्य-पुत्री देवयानी से यदु और तुर्वसु दो तथा दानव वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पूरु तीन । ये पांचों पुत्र वंशकर थे। ययाति ने अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ भाग पूरु को दिया । शेष चार उत्तर-पश्चिम और पूर्व में राज्य करने लगे ।**

जरा-प्रदान विद्या—**पूरु को राज्य के सर्वश्रेष्ठ भाग मिलने का एक कारण था । ययाति ने पूरु की अनुमति से अपनी जरा उसे संक्रामित की थी । यह बात उशना भार्गव के प्रसाद से हुई।**[6] **वह इस विद्या को जानता था । इस पितृभक्ति के बदले में पूरु को राज्य का सर्वश्रेष्ठ भाग मिला ।**

ययाति वानप्रस्थ—**अपने पुत्रों को राज्य देकर ययाति वानप्रस्थ हो गया ।**

७. पूरु—**महाभारत आदिपर्व की प्रथम वंशावली में पूरू-भार्या पौष्टी लिखी है ।**[7] **दूसरी वंशावली में पूरू-भार्या कौसल्या लिखी है । यदि ये वंशावलियां ठीक हैं, तो कोसल में कोई**

---

१. द्रोणपर्व ६३।११॥ शान्तिपर्व २६।१३–१६॥ वायुपुराण ९३।९४–१०१॥ २. वायु ९३।१८–२७॥ सभा० २२।१६–॥ ३. उद्योगपर्व ११३।२॥ ४. गंगायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव । मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्त्याधिपास्तव ॥ आदिपर्व ८२।५॥ ५. वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, ५९।१९॥ ६. वायुपुराण ९३।६२॥ ७. आदिपर्व ८९।५॥

पुष्ट नाम का राजा होना चाहिए। इक्ष्वाकु वंश में उस समय दो ऐसे राजा हो सकते हैं। पृथु या विष्वगश्व। पुष्ट इन दोनों में से किसी का या इन के भाइयों में से किसी का नाम होगा। पूरु के कारण उसका वंश पौरव वंश कहा जाता है।

पूरु का पुत्र जनमेजय प्रथम था।

जैन धर्म और चार्वाक मत का प्रारम्भ—पुरु से आगे का वृत्तान्त आरम्भ करने से पहले यह उचित प्रतीत होता है कि मत्स्यपुराण में वर्णित एक घटना का यहां उल्लेख किया जाए। वह घटना है जैन और चार्वाक मत के आरम्भ की।

कहते हैं बारहवां देवासुर-संग्राम समाप्त हो गया। रजि ने इन्द्र बनाए जाने की प्रतिज्ञा पर देवों की सहायता की थी। देव जीत गए। इन्द्र ने अनुनय विनय करके रजि को इन्द्र बनने से परे हटा दिया। रजि-पुत्रों को यह रुचिकर नहीं लगा। तब उन्होंने तप और शूरता के बल पर इन्द्र का ऐश्वर्य कम करना आरम्भ किया। इन्द्र ने बृहस्पति से सहायता मांगी बृहस्पति ने वेदवित् होते हुए भी वेदबाह्य मत चलाया। वह जिनधर्म में स्थिर हो गया और उस ने हेतुवाद या चार्वाक मत चलाया। रजि-पुत्र उस में रत हो गए और अपने तप-तेज को खो बैठे।[1]

आयुर्वेद की चरकसंहिता, चिकित्सा स्थान १९।६ में लिखा है—"आदि काल में यज्ञों में पशुहिंसा नहीं होती थी। मनु के पुत्र नरिष्यन्—नाभाग—इक्ष्वाकु आदि के काल से यज्ञ में पशु मारे जाने लगे, और अत्यधिक मारे जाने लगे। अतः मनु-पुत्र पृषध्र को यज्ञीय-पशु ढूंढने में बड़ा कष्ट हुआ।"

पृषध्र ने यज्ञार्थ गो-वध किया। ऋषियों ने उसे शाप दिया। उस शाप के अनुसार वह शूद्र हो गया। यही कारण है कि भारतीय राजकुलों में से पृषध्र का कुल आरम्भ में ही लुप्त हो गया।

इस से निश्चित होता है कि रजि-पुत्रों के काल में अथवा मनु के वंशज ककुत्स्थ आदि के काल में पशु-हिंसा के विरुद्ध भारत में एक भारी विप्लव उठा होगा। तभी से जैनधर्म का प्रादुर्भाव हुआ होगा। हिंसा वाले पुरातन ब्राह्मण-ग्रन्थों के विधि विधानों के कारण ही तब चार्वाक मत भी चला होगा।

रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों में हेतुवाद की बहुत निन्दा की गई है। आन्वीक्षिकी को भी भला बुरा कहा है। इस से प्रतीत होता है कि हेतुवाद चिर-काल से प्रचलित हो गया था। हमारा विचार है कि मूल सांख्य और योगातिरिक्त समस्त वैदिक दर्शन इस चार्वाक या हेतुवाद दर्शन के खण्डन में रचे गए हैं।

---

१. मत्स्य २४।३७—४८॥ वायु में इस कथा का संकेत मात्र है।९१।८७—९७॥

दसवां अध्याय

बृहस्पति और उशना-काव्य

अर्थशास्त्र के दो प्रधान आचार्य

भारतीय इतिहास के पहले युग का संक्षिप्त वर्णन पूर्व अध्याय तक हो चुका। इस युग के अधिकांश भाग को हमने देवासुर-संग्राम युग कहा है। देव-प्रदेश भारत के उत्तर-पूर्व में हिमालय में था। असुर-प्रदेश भारत के उत्तर-पश्चिम में था। इसे ही इलावर्त कहते थे। आधुनिक दृष्टि से गिलगित के समीप के देश, एशिया के रूस का दक्षिण-पश्चिम भाग और ईरान का पूर्व भाग इलावर्त के अंग कहे जा सकते हैं। इन्हीं देशों में दक्ष की दिति और दनु नामक कन्याओं की सन्तान ने अपने राज्य स्थापित किए। ये लोग दैत्य और दानव या असुर कहाते थे। ज़न्द-अवस्ता आदि ग्रन्थों के मानने वाले वर्तमान ईरानी-पारसी इन्हीं लोगों की सन्तान में से हैं। काव्य और त्रिशिरा आदि विद्वान् इन्हीं असुरों में रहते थे। वे मन्त्र-द्रष्टा थे। उन्हीं के कई मन्त्रों का विकृत रूप ज़न्द-अवस्ता में मिलता है। ज़न्द-अवस्ता के मन्त्रों का काल उतना नवीन नहीं, जितना कि पश्चिम के लेखक मानते हैं। जिस प्रकार पश्चिम के लेखकों ने वेद-मन्त्रों का काल बहुत निकट का मानने में भूल की है, इसी प्रकार ज़न्द के मन्त्रों के काल को निकट मानने में भी उनकी भूल हुई है।

अर्थशास्त्र बनने का कारण—**उस प्राचीनतम काल में जब देव और असुर निरन्तर संग्राम कर रहे थे, तब उन्हें राजनीति शास्त्र या अर्थशास्त्र की बड़ी आवश्यकता अनुभव हुई। इस शास्त्र के साथ उन्हें धनुर्वेद की भी आवश्यकता पड़ी। काव्य असुरों का महामन्त्री था और बृहस्पति देवों का। इन दोनों आचार्यों ने ये अपेक्षित शास्त्र अपने अपने पक्ष वालों के लिए रचे।**

जैमिनीय ब्राह्मण—जै० ब्रा० १।१२५ में लिखा है—

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद् उशना काव्योऽसुराणाम्।

इससे ज्ञात होता है कि उन दिनों पुरोहित ही मन्त्री होता था। जै० ब्रा० का यह प्रमाण पौराणिक इतिवृत्त का समर्थन करता है।

ताण्ड्य ब्रा० और बौधायन श्रौत—**ताण्ड्य ब्रा० ७।५।२० में उशना को असुरों का पुरोहित लिखा है। बौ० श्रौत सूत्र १८।४६ में कहा है कि इन्द्र अपनी कन्या जयन्ती देकर उशना को अपनी ओर करना चाहता था।**

बार्हस्पत्य और औशनस अर्थशास्त्र—**इन दोनों अर्थशास्त्रों के कुछ अंश अब भी प्राप्त हैं। भारत-युद्ध से सोलह सौ वर्ष पश्चात् होने वाले मौर्य महामन्त्री कौटल्य के पास ये अर्थ-**

शास्त्र विद्यमान थे। उस के पास ये मूल शास्त्र ही विद्यमान न थे, प्रत्युत द्रोण=भारद्वाज और भीष्म=कौणपदन्त आदि के अर्थशास्त्रों में यत्र तत्र उद्धृत रूप से भी उपलब्ध थे। कौटल्य ऐसा प्रौढ विद्वान् बिना सुदृढ़-प्रमाण इन्हें बृहस्पति और उशना का नहीं मान सकता था। कौटल्य अपने अर्थशास्त्र में बृहस्पति और उशना के प्रमाण बहुधा उद्धृत करता है।[१] व्यास ने महाभारत में कई स्थानों पर बृहस्पति और उशना के श्लोक उद्धृत किए हैं।[२] प्रकाण्ड बौद्ध विद्वान् अश्वघोष भृगु=उशना और अङ्गिरा=बृहस्पति के अर्थशास्त्रों से परिचित था।[३]

बृहस्पति का शास्त्र गद्य-पद्य-मय था। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र के अनेक गद्यात्मक वचन आचार्य विश्वरूप ने याज्ञवल्क्यस्मृति की अपनी बालक्रीडा टीका में उद्धृत किए हैं।[४] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र के श्लोक शान्तिपर्व ५९।३८ में पठित हैं।

उशना के धर्मशास्त्र और धनुर्वेद के लंबे लंबे वचन अब भी उद्धृत रूप में मिलते हैं। वायुपुराण ६२।८० उशना का श्लोक है।

इतने लेख से निश्चित होता है कि जो ऋषि एक ओर मन्त्रद्रष्टा थे, वे ही दूसरी ओर धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थ रचते थे। उन की भाषा संस्कृत थी, वैदिक नहीं। वैवस्वत मनु के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। अतः आधुनिक भाषा-विज्ञानियों की वैदिक-भाषा सम्बन्धी अनेक कल्पनाएं इतिहास की कसौटी पर प्रमाणित नहीं होतीं।

---

१. आदि से २८ अध्याय। आदि से ६३ अध्याय।

२. शान्तिपर्व २३।१४–१६॥५९।३८,३९॥५६।४०–४२॥११८।१७॥ हरिवंश २०।३७॥

३. बुद्धचरित १।४१॥

४. त्रिवन्द्रम संस्करण, व्यवहाराध्याय पृ० २१५, २१८, २२१, २५०, इत्यादि।

ग्यारहवां अध्याय

ककुत्स्थ-पुत्र अनेना से मांधाता से पूर्व तक

५. अनेना=अनरण्य—पुरञ्जय या बाण का पुत्र अनेना था। कभी इस की शूरता बहुत प्रसिद्ध होगी। महाभारत आदिपर्व के आरम्भ में अत्यन्त प्रसिद्ध पुरातन राजाओं की जो नामावली है, उस में इस का भी नाम मिलता है।[1] रामायण में इस का विशेषण महातेज है। मत्स्य में यह सुयोधन नाम से स्मरण किया गया है।

६. पृथु—अनेना-पुत्र पृथु का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

७. विष्वगश्व—यह पृथु का पुत्र था। रामायण में इस नाम के स्थान में त्रिशंकु नाम मिलता है। निश्चय ही यह भ्रष्ट-पाठ है। पार्जिटर की सूची में कई पुराण-पाठों के अनुसार इस का नाम विष्ट्राश्व पढ़ा है।[2] महाभारत वनपर्व अध्याय २०५ में प्रसंगवश इक्ष्वाकु के उत्तराधिकारी कुछ राजाओं का नामोल्लेख है। तदनुसार इस राजा का नाम विष्वगश्व था।[3] पुनः महाभारत आदिपर्व में परिगणित प्राचीन प्रसिद्ध राजाओं में विष्वगश्व नाम ही मिलता है।[4] अतः हम इस का विष्वगश्व नाम ही ठीक समझते हैं। विष्वगश्व पाठ मत्स्य-सम्मत भी है।[5]

रामायण की वंशावली में प्रथम पाठ-भ्रंश—विष्वगश्व से लेकर बृहदश्व तक का पाठ रामायण में टूट गया है। इस का कारण स्पष्ट है। अत्यन्त प्राचीन काल में किसी रामायण के प्रतिलिपि-कर्ता ने दृष्टि-दोष से विष्वगश्व के "श्व" से पाठ छोड़ा और आगे मूल प्रति में बृहदश्व के "श्व" से पाठ पढ़ कर लिखना आरम्भ कर दिया। ऐसी भूल ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने वाले प्रायः अब भी कर देते हैं। जिन्होंने हस्तलिखित ग्रन्थों से सम्पादन का कार्य किया है, वे इस दृष्टि-दोष को यथेष्ट समझ सकते हैं। रामायण की टूटी हुई वंशावली में त्रिशंकु नाम कल्पित करने का भी यही कारण है। विष्वगश्व तथा बृहदश्व नाम चार चार अक्षरों के हैं। उन से टूटे हुए पाठों में छन्दोभंग होता था। अतः छन्द की पूर्ति के लिए किसी शोधक ने विष्वगश्व के स्थान में त्रिशंकु नाम कल्पित कर दिया। उसे ध्यान ही नहीं आया कि विष्वगश्व से आगे भी पाठ टूटा हुआ है।

८. आर्द्र—विष्वगश्व का पुत्र आर्द्र था।

९. युवनाश्व प्रथम—इस का भी नाममात्र ज्ञात रह गया है।

---

१. आदिपर्व १।१७२॥

२. विष्णु में विष्ट्राश्व पाठ ही है। वायु ८८।२६॥ में वृषदश्व पाठ है।

३. विष्वगश्वः पृथोः पुत्रः।३॥

४. १।१७२॥ ५. १२।२९॥

१०. श्रावस्त—युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त था। इस ने प्रसिद्ध श्रावस्ती नगरी बसाई थी। बौद्धकाल में कोसल की राजधानी यही नगरी थी। मत्स्यपुराण के अनुसार यह नगरी गौड़ देश में थी।[1] वायुपुराण के अनुसार श्रावस्ती नगरी रामपुत्र लव के काल से उत्तर कोसल की राजधानी थी। श्रावस्त का उत्तराधिकारी बृहदश्व था।

११. बृहदश्व—चिर-काल राज्य करके यह राजा वानप्रस्थ होगया। पश्चिम अर्थात् सुराष्ट्र के किसी प्रदेश में रहने वाले उदङ्क=उत्तङ्क[2] ऋषि ने इसे राजर्षि-धर्म त्यागने से रोका, और धुन्धु नामक राक्षस के मारने के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने ऋषि को कहा कि वह न्यस्त-शस्त्र हो चुका है, अतः उसका पुत्र कुवलाश्व ऋषि-आज्ञा का पालन करेगा। यह कह कर राजा वन को चला गया।[3]

१२. कुवलाश्व[4]=धुन्धुमार—यह बड़ा प्रतापी राजा था। सिन्धुमरु के नीचे और सुराष्ट्र से ऊपर के स्थान में धुन्धु नामक एक महाराक्षस का वध करने के कारण इस राजा का नाम धुन्धुमार प्रसिद्ध होगया था। महासुर धुन्धु माता दनायु का पौत्र और अरुरु का पुत्र था।[5] अररु असुर काठकसंहिता ३१।८ में स्मरण किया गया है।

भट्ट बाण लिखता है कि कुवलयाश्व ने अश्वतर कन्या को ब्याहा।[6] बाण ने यह घटना सुबन्धुकृत वासवदत्ता के आधार पर लिखी है।[7] मायामदालस नाम का पांच अंकों वाला एक पुरातन नाटक था।[8] उस में मेनका-सुता मदालसा का कथानक है। तालकेतु उस कन्या को मायायोग से चुरा ले गया था। गालव मुनि कुवलयाश्व से प्रार्थना करता है कि उसे तालकेतु से छुड़ाए।

मैत्रायणी उपनिषद् में कुवलयाश्व को एक चक्रवर्ती राजा कहा गया है।[9] महाराज दशरथ के शब्दवेधी बाण से अपने पुत्र श्रवणकुमार के मारे जाने पर उस का विह्वल नेत्र-हीन पिता प्रार्थना करता है कि जिस गति को सगर, शैब्य और धुन्धुमार आदि प्राप्त हुए, उस गति को उन का पुत्र भी प्राप्त हो।[10]

---

१. १२।३०॥ २. वायु ८८।३३॥

३. महाभारत वनपर्व अध्याय २०५–२०७॥ ब्रह्माण्ड ३।६३।३२–६०॥

४. विष्णुपुराण और मैत्रायणी उपनिषद् में कुवलयाश्व पाठ है। सम्भवतः इस नाम के दोनों रूप चिर-काल से प्रसिद्ध हैं।

५. वायु ६८।३०,३१॥

६. हर्षचरित, कलकत्ता संस्करण, पृ० २४४॥

७. कृष्णमाचार्य का संस्करण पृ० ३०५, ३३९॥

८. सागरनन्दीकृत नाटकलक्षण कोष में प्रायः उद्धृत।

९. महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्न-इन्द्रद्युम्न-कुवलयाश्व-यौवनाश्व १।५॥

१०. वा० रा० अयोध्याकाण्ड ६४।४२॥

१३. दृढाश्व—कुवलाश्व के तीन पुत्रों में से यह ज्येष्ठ था। मत्स्य में तीसरा पुत्र कपिलाश्व भी विख्यात और प्रतापवान् कहा गया है।[1]

वाल्मीकीय-रामायण की वंशावली का दूसरा पाठ-भ्रंश—रामायण की वंशावली में धुन्धुमार के पश्चात् फिर एक पाठ-भ्रंश हुआ है। कारण इसका भी पूर्व-पाठ-भ्रंश के कारण के समान है।

१४. प्रमोद—यह दृढाश्व-तनय था। ब्रह्माण्ड और विष्णु में यह नाम छूट गया है, पर मत्स्य में विद्यमान है।

१५. हर्यश्व प्रथम—यह प्रमोदात्मज था। इक्ष्वाकु हर्यश्व के पास गालव ऋषि गया था।[2]

१६. निकुम्भ—यह क्षात्रधर्म रत राजा हर्यश्व प्रथम के पश्चात् हुआ।

१७. संहताश्व—निकुम्भ का रण-विशारद-सुत था।

१८. कृशाश्व—संहताश्व का पुत्र कृशाश्व था। इसकी पत्नी हैमवती दृषद्वती थी।[3]

१९. प्रसेनजित्—कृशाश्व का सुत प्रसेनजित् था।

पौरव-कुल का वर्णन करते हुए हम आगे बताएँगे कि प्रारम्भ के पौरव राजाओं के नामों में आदिपर्व की दूसरी वंशावली में महाराज अहंपाति के पश्चात् और ऋच=रौद्राश्व से पहले सात नाम मिलते हैं। पुराणों में ये नाम महाराज कुरु के भी पश्चात् लिखे मिलते हैं। पार्जिटर ने पुराण-पाठ ही ठीक माने हैं।[4] हमारा ऐसा विश्वास नहीं। कुरु के पश्चात् तो ये नाम हो ही नहीं सकते। जिस स्थान पर ये नाम महाभारत में अब मिलते हैं, उस से कुछ ही नीचे इनका स्थान हो सकता है। इस का कारण पौरव कुल के उल्लेख समय स्पष्ट किया जायगा।

अस्तु, महाभारत की दूसरी वंशावली के अनुसार किसी प्रसेनजित् की सुयज्ञा नाम की एक कन्या थी। वह पौरव महाभौम की पत्नी बनी।

२०. युवनाश्व द्वितीय—इस युवनाश्व ने पौरव मतिनार की कन्या गौरी से विवाह किया। इन दोनों का पुत्र प्रसिद्ध चक्रवर्ती मांधाता हुआ। मांधाता की माता होने से यह देवी इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हो गई है। पुराणों में मांधाता शब्द की निरुक्ति दिखाने के लिए एक लम्बी कथा घड़ी गई है। अश्वघोष उस कथा से परिचित था।[5] यह कथा सर्वथा काल्पनिक है। वायुपुराण में गौरी को मांधाता की जननी लिखा है।[6] यह निरुक्ति वैसी है, जैसी दक्ष और महाभारत आदि शब्दों की।

---

१. कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारी प्रतापवान् ।१२।३२॥ २. उद्योगपर्व ११३।१८॥

३. ब्रह्माण्ड ३।६३।६५, ६६॥ शिबि औशीनर की माता का नाम भी दृषद्वती था। वायु ९९।२१॥

४. पार्जिटरकृत प्राचीन भारतीय-ऐतिह्य, पृ० ११०।

५. बुद्धचरित १।१०॥

६. गौरी कन्या च विख्याता मांधातुर्जननी शुभा। वायु ९९।१३०॥
युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः।
अन्तिनारात्मजा गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता॥ वायु ८८।६५॥

यह युवनाश्व तीनों लोकों में अति द्युतिमान था। इस ने अपनी पत्नी का दूसरा नाम बाहुदा रख दिया।[1] गौरी-पुत्र होने से मांधाता गौरिक भी कहा जाता है।[2]

मन्त्रद्रष्टा युवनाश्व—पुराणों की ऋषि-वंशावलियों में एक युवनाश्व आङ्गिरस ऋषियों में [illegible] किया गया है।[3] युवनाश्व द्वितीय ही मन्त्रद्रष्टा प्रतीत होता है। युवनाश्व, मांधाता, [illegible] और त्रसदस्यु अर्थात् पिता, पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सब राजर्षि थे।

१. अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता। वायु ८८।६६॥ २. वायु ८८।६६॥

३. वायु ५९।९९॥ मत्स्य १४५।१०२॥

बारहवां अध्याय

पुरु-पुत्र जनमेजय से मतिनार पर्यन्त

८. जनमेजय प्रथम—पुरु या पूरु का पुत्र जनमेजय था। उसकी भार्या अवन्ता माधवी थी। इस राजा ने तीन अश्वमेध किए। अन्त में यह वानप्रस्थ हुआ।[1]

९. प्राचिन्वान्=अविद्ध—जनमेजय प्रथम के पुत्र का नाम अविद्ध प्रतीत होता है। वायुपुराण में अविद्ध नाम है।[2] इसका दूसरा नाम प्राचिन्वान् है। यह समुद्रपर्यन्त प्राची दिशा में गया।[3]

आदिपर्व की वंशावली में पाठ-भ्रंश—महाभारत आदिपर्व की दूसरी वंशावली में प्राचिन्वान् से आगे यवीयान् के अन्त तक के पांच राजाओं का उल्लेख करने वाला पाठ टूट गया है। इसका कारण अत्यन्त स्पष्ट है। प्राचिन्वान् के अन्त में "आन्" है और यवीयान् के अन्त में भी "आन्" है। अतः इनके मध्य के पाठ का टूटना लेखक का दृष्टि-दोष है। संभव है आदिपर्व के किसी हस्तलिखित ग्रन्थ में कभी सारा पाठ याथातथ्य से मिल जाए।

१०. प्रवीर—प्राचिन्वान् या अविद्ध का पुत्र प्रवीर था। इसकी भार्या का नाम श्येनी अथवा शैव्या था।[4]

११. मनस्यु—यह प्रवीर का पुत्र था। इसे चतुरन्त पृथिवी का गोप्ता कहा गया है।[5] यहां पर महाभारत के पूना संस्करण का पाठ भी सन्तोषदायक नहीं। उसके मूल पाठ के अनुसार मनस्यु की स्त्री कोई सौवीरी थी। इस शब्द के पाठान्तरों से प्रतीत होता है कि मनस्यु का एक नाम सौवीर था। संभव है प्रवीर को सुवीर भी कहते हों और इसीलिए मनस्यु सौवीर हो।

१२. अभयद=सुभ्रू—यह मनस्यु के तीन पुत्रों में से एक था। व्यास इसे शूर और महारथ लिखता है।[6]

१३. सुन्वन्त=धुन्धु—यह अभयद का पुत्र था।

१४. यवीयान्=बहुगवी—पुराणों में यह नाम बहुगत या बहुगवी पढ़ा गया है। इसा [illegible] अश्मकी होगी।[7]

१५. संयाति—आदिपर्व की दूसरी वंशावली के अनुसार इसने दृषद्वान् की कन्या [illegible] से विवाह किया।

१६. अहंयाति—यह संयाति का पुत्र था।

---

१. आदिपर्व ९०।११॥ २. ९९।१२०॥ ३. आदिपर्व ९०।१२॥
४. आदिपर्व ८९।६॥ ५. आदिपर्व ८९।६॥
६. आदिपर्व ८९।७॥ ७. आदिपर्व ९०।१३॥

वंशावली की गड़बड़—यहां से आदिपर्व की दूसरी वंशावली में फिर गड़बड़ आरम्भ होती है। इस वंशावली में इस से आगे सात नाम ऐसे हैं, जो तंसु और दुष्यन्त के समीप और ऋक्ष प्रथम से कहीं पहले होने चाहिएं। इस का कारण स्पष्ट है। इन में से एक का विवाह कृतवीर्य की कन्या से हुआ। एक का विदर्भ की कन्या से हुआ। एक का प्रसेनजित् की कन्या से हुआ। कृतवीर्य हैहय वंश में मांधाता और मतिनार के पश्चात् हुआ। प्रसेनजित् द्वितीय वाल्मीकीय रामायण के अनुसार मांधाता के पश्चात् उसी वंश में हुआ। विदर्भ यादववंश का था। वह भी दुःष्यन्त आदि के पश्चात् ही है। इसलिए ये नाम दुःष्यन्त के पश्चात् होने चाहिएं।

पार्जिटर की भूल—पुराणों में ये नाम ऋक्ष द्वितीय से पहले हैं। पार्जिटर ने इसे ही ठीक माना है। वहां ये नाम हो ही नहीं सकते। महाभारत की दूसरी वंशावली में इन नामों के अन्त में ऋक्ष नाम है। इसी का दूसरा नाम ऋचेयु था। इस ऋक्ष को देख कर इस का दूसरे ऋक्ष से पुराणों में मेल किया गया है। विद्वान् लोग इस बात को विचार सकते हैं।

इस विषय में वैदिक ग्रन्थों का साक्ष्य—जैमिनीय ब्राह्मण २।२७९ और उस के आरण्यक ३।२९।१ में एक कौरव्य-राज उच्चैःश्रवा का उल्लेख है। यह राजा भारत-युद्ध-काल से कुछ ही पहले होना चाहिए, कारण कि वह दर्भ शातानीक का समकालीन था। पुराणों की वंशावली में उच्चैःश्रवा या उस के किसी भाई आदि का नाम शन्तनु और प्रतीप से पहले नहीं है। वहां तो इन आठ राजाओं के नाम ही हैं। सौभाग्य से आदिपर्व की पहली वंशावली में उच्चैःश्रवा और उस के कई भाइयों के नाम मिलते हैं। इन की स्थिति प्रतीप से पहले है। इस से ज्ञात होता है कि प्रतीप से पूर्व के राजाओं के ज्ञान के लिए आदिपर्व की पहली वंशावली ही प्रामाणिक है। पुराणों में इस स्थान पर जो आठ राजा लिखे गए हैं, वे लेखक-प्रमाद से जोड़े गए हैं। उन का स्थान अन्यत्र है।[1]

१७. रौद्राश्व—मत्स्य में इसका नाम भद्राश्व है। पुराणों के अनुसार इसकी भार्या घृताची नाम की अप्सरा थी।[2] महाभारत आदिपर्व की पहली वंशावली में घृताची नाम नहीं है, केवल अप्सरा ही लिखा है। रौद्राश्व और घृताची के ऋचेयु आदि दश पुत्र थे।

आदिपर्व की प्रथम वंशावली और वायुपुराण के अनुसार रौद्राश्व का दूसरा नाम अनाधृष्टि था। वायु के अनुसार अनाधृष्टि राजर्षि था।

१८. ऋचेयु—यह रौद्राश्व का प्रधान-पुत्र था। इसकी भार्या तक्षक-कन्या ज्वलना थी। आदिपर्व की दूसरी वंशावली में इस का नाम ज्वाला भी है। इस तक्षक का कुल अभी ज्ञात नहीं हो सका। वायु में इसे भी राजर्षि लिखा है। ऋचेयु और उस के शेष नौ भ्राता राजसूय और अश्वमेध-याजी थे।

---

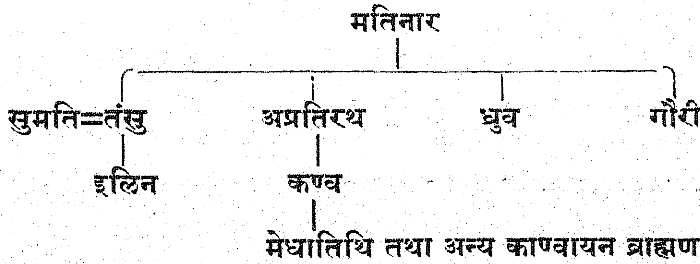
१. तुलना करो पूर्व पृष्ठ ३८। २. वायु ९९।१२३॥ मत्स्य ४९।४॥

वायु के अनुसार ऋचेयु की रुद्रा आदि दस भगिनियां थीं।[1] उन का भर्ता आत्रेय-वंशज प्रभाकर था। इस से स्वस्ती आत्रेय पुत्र हुए।[2] प्रभाकर का पुत्र सोम और सोम के ब्रह्मिष्ठ पुत्र दत्त आत्रेय और दुर्वासा थे। इन दोनों की कनिष्ठा भगिनी ब्रह्मवादिनी अपाला थी।[3]

१९. मतिनार=अन्तिनार—यह ऋचेयु का पुत्र था। आदिपर्व की पहली वंशावली में इसे विद्वान् लिखा है।

द्वादशवार्षिक-सत्र—इस राजा ने सरस्वती के तट पर एक बारह वर्ष का यज्ञ किया था। मत्स्य के अनुसार इस की स्त्री का नाम मनस्विनी था। आदिपर्व की दूसरी वंशावली और वायु में मतिनार-भार्या का नाम सरस्वती लिखा है। प्रतीत होता है कि इस दीर्घ-सत्र के अवभृथ के पीछे मनस्विनी[4] का नाम सरस्वती हो गया।

मतिनार का वंश भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ है। इसी के वंश में जहां एक ओर भरत ऐसा प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ, वहां दूसरी ओर कण्व और मेधातिथि ऐसे ऋषि हुए। इस का थोड़ा सा वंश-वृक्ष नीचे लिखा जाता है—



महाभारत और पुराणों में यहां स्वल्प भेद है, परन्तु हमारे मत में पूर्वलिखित वंश-वृक्ष ही ठीक है। मतिनार-कन्या गौरी चक्रवर्ती मांधाता की जननी और युवनाश्व की भार्या थी। अप्रतिरथ का वंश बहुत ही भाग्यवान् वंश था। पहला प्रसिद्ध कण्व इसी का पुत्र था। इस कण्व का पुत्र ब्रह्मवादी मेधातिथि था। मेधातिथि काण्व के सूक्त ऋग्वेद में सुविख्यात हैं।

इनमें से तंसु वंश-प्रवर्तक था। उस के कुल में दुःष्यन्त और भरत हुए।

यह अध्याय यहां समाप्त किया जाता है। अगला अध्याय चक्रवर्ती राजाओं का है। उस एक ही काल में चैत्ररथ शशबिन्दु, मांधाता यौवनाश्व, और आविक्षित् मरुत्त हुए थे। उन का दिव्य वर्णन आगे है।

---

१. वायुपुराण ७०।६७-७७॥ ९९।१२५-१२७॥ २. हरिवंश १।३१।१७॥

३. तुलना करो—अपालात्रिसुता त्वासीत्। बृहद्देवता ६।९९॥ ऋग्वेदभाष्य ८।९१।१ से आगे २ अपाला के आख्यान के लिए सायण शाट्यायनब्राह्मण के वचन उद्धृत करता है।

४. आदिपर्व (पूना संस्करण की) प्रथम वंशावली ८९।११ का एक अधिक पाठ यशस्विनी नाम रखता है। यह मनस्विनी नाम का ही पाठान्तर है।

तेरहवां अध्याय

चक्रवर्ती काल

अब हम भारतीय इतिहास के उस युग में प्रवेश करते हैं, जिस का हमें पर्याप्तवृत्त ज्ञात है। उस काल में यद्यपि कई छोटे छोटे साधारण साम्राज्य भी थे, तथापि कई साम्राज्य बड़े विशाल और महान् बन चुके थे। ऐसा पहला साम्राज्य यादव-कुल के शशबिन्दु चक्रवर्ती का था।

१.—शशबिन्दु चक्रवर्ती[1]

पूर्व-ऐतिह्य[2]—ययाति पुत्र यदु था। उस का एक पुत्र क्रोष्टु था। क्रोष्टु-पुत्र वृजिनीवान् था। उस का पुत्र स्वाही था। स्वाही-पुत्र रुशद्गु था। उस का पुत्र चित्ररथ था। इस चित्ररथ का पुत्र चक्रवर्ती शशबिन्दु था।

ये प्रधान राजा ही हैं—यादव वंशावली के ये राजा प्रधान राजा ही हैं। बहुत संभव ही नहीं अपितु निश्चित है कि इस वंशावली में कई साधारण राजाओं के नाम छोड़ दिये गए हैं।

देश—यदु-पुत्र क्रोष्टु का देश वर्तमान विदर्भ देश था। यही देश शशबिन्दु का था। संभव है शशबिन्दु और उस के पूर्वजों के पास विदर्भ से भी बहुत अधिक प्रदेश हो। शशबिन्दु के कुल में उस से बारह पीढ़ी पश्चात् विदर्भ नाम का एक राजा हुआ। उसी के कारण इस देश का नाम विदर्भ हुआ। विदर्भ से पहले इस देश का क्या नाम था, यह अभी ज्ञात नहीं।

अश्वमेधयाजी—शशबिन्दु ने कई अश्वमेध यज्ञ किए। इस के पास हिरण्य का भारी कोश था। इस ने बहुत सोना बांटा।

विस्तृत परिवार—शशबिन्दु का परिवार अत्यन्त विस्तृत था। इस के अनेक पुत्र और कन्याएं थीं। सब से बड़ी कन्या का नाम बिन्दुमती था। शशबिन्दु के पुत्रों की अधिकता के सम्बन्ध में एक अनुवंश श्लोक पुरातन पुराण से लेकर मत्स्य[3] और वायु[4] ने सुरक्षित रखा है।

शशबिन्दु और मान्धाता—शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती मांधाता की पत्नी थी। मांधाता की विजयों में शशबिन्दु और उसके परिवार ने बड़ी सहायता की होगी।

---

१. शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह। मत्स्य ४४।१८॥ चक्रवर्ती महासत्त्वः। वायु ९५।१९॥ ब्रह्माण्ड ३।७०।१९॥ मैत्रायणी उपनिषद् १।४॥ २. वायु ९५।१४-२०॥ मत्स्य १४-२१॥

३. मत्स्य ४४।१८,२०॥ ४. वायु ९५।२०॥

लम्बा राज्य—शशबिन्दु का राज्य चिरकाल तक रहा।[1]

शशबिन्दु के कुल में दायभाग—ताण्ड्य ब्राह्मण २०।१२।५ में लिखा है—चित्ररथ का कापेयों ने यज्ञ कराया। उस अकेले को अन्नाद्य का अध्यक्ष बनाया। इसलिए चित्ररथ की संतान अर्थात् शशबिन्दु और उस के वंश में एक ही क्षत्रपति होता है। शेष उस के अनुजीवी होते हैं। इस का अभिप्राय यह है कि जैसे मनु के कई पुत्रों में राज्य बांटा गया, यदु के पुत्रों में राज्य बांटा गया, उस प्रकार चित्ररथ की भावी सन्तान में राज्य का विभाग नहीं हुआ, प्रत्युत राज्य एक का ही रहेगा, शेष भाई उस एक के अनुलम्बी हुए। यही प्रकार वर्तमान इङ्गलैण्ड में है।

२—चक्रवर्ती मान्धाता[2]

२१. मांधाता—युवनाश्व द्वितीय का पुत्र सुप्रसिद्ध चक्रवर्ती मान्धाता था।

सार्वभौम—मांधाता चक्रवर्ती ही नहीं प्रत्युत सार्वभौम सम्राट् था। चक्रवर्ती राजा की विजय भारत सीमा में ही होती है। मान्धाता सप्तद्वीप पृथिवी का विजेता था।[3] अतः वह सार्वभौम कहाता है।

काल—मत्स्यपुराण के अनुसार यह पन्द्रहवें त्रेतायुग में था।[4] पुराणों का युग-परिमाण अभी हमें अज्ञात है। सब पुराणों में यह युग-परिमाण एक समान है भी नहीं। महाभारत का युग-परिमाण और ढङ्ग का है। एक युग पांच वर्ष का होता है, दूसरा ६० का, तीसरा ७२० वर्ष का। एक ज्यौतिष-युग है।[5] जब तक यह युग-समस्या पूरी स्पष्ट न हो जाए, तब तक पुरानी युग-गणना का याथातथ्य से देना ही हमारा काम है।

अनावृष्टि—इस बात में महाभारत प्रमाण है कि मान्धाता के समय १२ वर्ष की अनावृष्टि हुई।[6]

दिग्विजय[7] और समकालीन-भूप[8]—महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २९ में लिखा है—

यश्चाङ्गारं तु नृपतिं मरुत्तमसितं गयम्।

---

१. शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः॥ द्रोणपर्व ६५।११॥

२. त्रैलोक्यविजयी नृपः। वायु ८८।६७॥ ३. विचारी ह वै काबन्धिः।......स मान्धातुर्यौवनाश्वस्य सार्वभौमस्य राज्ञः सोमं प्रसूतमाजगाम्। गो० ब्रा० १।२।१०॥

४. पञ्चमः पञ्चदश्यां तु त्रेतायां संबभूव ह।
मान्धाता चक्रवर्ती तु तदोत्तङ्कपुरःसरः॥४७।२४३॥ तथा वायु ९८।९०॥

५. देखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, सन् १९३५, पृ० ११।

६. वनपर्व १२७।४२॥ ७. मान्धात्रा प्रवर्तिताः पन्थानो दिग्विजयाय। हर्षचरित सप्तम उच्छ्वास, पृ० ७५७–७५८। ८. पार्जिटर इस समकालीनता को ठीक नहीं समझता। ए. इ. हि. ट्रै० पृ० १४१, १४२। हम पार्जिटर का मत ठीक नहीं समझते।

मान्धातृवज्जेतुमिमौ हि योग्यौ लोकानपि त्रीनिह किं पुनर्गाम्। अश्वघोष-कृत बुद्धचरित १०।३१॥

अङ्गं बृहद्रथं चैव मांधाता समरेऽजयत् ॥८८॥
यौवानाश्वो यदाङ्गारं समरे प्रत्ययुध्यत ।
विस्फारैर्धनुषो देवा द्यौरभेदीति मेनिरे ॥८९॥

पुनः महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ६२ में लिखा है—

जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ।
असितं च नृगं चैव मांधाता मानवोऽजयत् ॥१०॥

इन श्लोकों में मांधाता से विजित कुछ या सब राजाओं के नाम हैं। वे स्पष्टीकरणार्थ नीचे लिखे जाते हैं—

१. अङ्गार	५. अङ्ग बृहद्रथ=पूरु बृहद्रथ
२. मरुत्त	६. जनमेजय
३. असित	७. सुधन्वा
४. गय	८. नृग

१. पूर्वोक्त सूची का अङ्गार द्रुह्यु की सन्तान में था। वायु और हरि-वंश आदि पुराणों में द्रुह्यु की वंशावली का उल्लेख करते हुए कहा है—

यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ।
युद्धं सुमहदासीत् मासान् परिचतुर्दश ॥[1]

इस अङ्गार का राज्य पीछे गान्धार नाम से प्रख्यात हुआ। इसलिए महाभारत वनपर्व अध्याय १२७ में इस को गान्धाराधिपति कहा गया है—

तेन सोमकुलोत्पन्नो गांधाराधिपतिर्महान् ।
गर्जन्निव महामेघः प्रमथ्य निहतः शरैः ॥४३॥

यह युद्ध चौदह मास तक होता रहा। मांधाता ने इसे कष्टों से जीता होगा। कृच्छ्र शब्द से यही प्रतीत होता है। बहुत सम्भव है कि मांधाता ने अपने दोनों सम्बन्धियों मतिनार और शशबिन्दु से इस युद्ध में सहायता ली हो।

२. मरुत्त—मांधाता के समकालीन दो मरुत्त हो सकते हैं। एक तो तुर्वसु-कुल का अन्तिम राजा मरुत्त और दूसरा मनुपुत्र प्रांशु के कुल का मरुत्त। इन दोनों मरुत्त नामक राजाओं को पार्जिटर ने मांधाता के बहुत पीछे रखा है। हमारा मत है कि मांधाता का समकालीन मरुत्त प्रांशु-कुल का राजा था। दूसरे मरुत्त के मांधाता के समकालीन मानने में कुछ अड़चनें हैं।

मानव मरुत्त—यह मरुत्त वैदिक और पौराणिक साहित्य में आविक्षित्- मरुत्त के नाम से प्रसिद्ध है।[2] पुराणों में इसके पिता का नाम अविक्षित् लिखा है।

---

१. वायु ९९।८॥ हरिवंश ३३।२५॥ २. तेन ह मरुत्त आविक्षित ईजेऽआयोगवो राजा। शत० ब्रा० १३।५।४।६॥ ऐतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तम् आविक्षितमभिषिषेच। ऐ० ब्रा० ८।२१॥ तथा देखो शां० श्रौ० १६।९।१४॥

३. असित—मांधाता का समकालीन यह कौन राजा था, इसका हम निश्चय नहीं कर सके।

४. गय—इसका स्पष्टीकरण अभी अपेक्षित है। यह संभवतः आमूर्तरयस् गय होगा।

५. अङ्ग बृहद्रथ—इसे पौरव बृहद्रथ भी कहा है। यह पौरव-कुल का राजा था। इसी ने अङ्ग देश बसाया था।

अङ्ग अत्यन्त प्रतापी राजा था। द्रोणपर्व के इसी षोडशराजोपाख्यान में अङ्ग पौरव का भी आख्यान मिलता है। इसका अश्वमेध यज्ञ अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुका था। इसके पास धन की विपुल राशि थी।

अङ्ग और ऐतरेय ब्राह्मण—अङ्ग बृहद्रथ के असाधारण अश्वमेध का ज्वलन्त वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१ में भी मिलता है। महाभारत और ऐतरेय ब्राह्मण के तत्सम्बन्धी प्रकरण के पढ़ने से निश्चय होता है कि ऐतरेय का अङ्ग ही महाभारत का बृहद्रथ अङ्ग था। ऐतरेय ब्राह्मण में बृहद्रथ या अङ्ग को वैरोचन अर्थात् विरोचन का पुत्र कहा गया है। इस इतिहास के पृष्ठ ५० पर हम लिख चुके हैं कि बलि असुर प्राह्राद्-विरोचन का पुत्र था। इसी प्रकार इस पौरव अर्थात् आनव बलि के पिता का नाम भी विरोचन होगा। पुराणों में यह नाम नष्ट होगया है। केवल बलि और अङ्ग दो नाम रह गये हैं। संभव है कि बलि से पहला नाम विरोचन हो और सुतपा उसका विशेषण हो।

मत्स्यपुराण और वैरोचन-बलि—मत्स्यपुराण की आनव वंशावली में यद्यपि विरोचन का नाम नहीं मिलता, तथापि इसी बलि और दीर्घतमा[2] की कथा में—बलिर्वैरोचनिः[3], बलेर्वैरोचनस्य[4] आदि प्रयोग मिलते हैं। मत्स्य में कहीं कहीं भूल से इस बलि को दानव[5] भी कहा है।

पार्जिटर का भ्रान्त मत—हमारा विचार है कि यही अङ्ग मांधाता का समकालीन था। पार्जिटर ने वंशावलियों की तुलना में इसका वास्तविक स्थान हिला दिया है। पार्जिटर के अनुसार यह अङ्ग मांधाता के बहुत बहुत पश्चात् हुआ। हमें पार्जिटर की बात सर्वथा असंगत प्रतीत होती है। महाभारत और ऐतरेय का संगत अध्ययन हमारे पक्ष में है।

---

१. शान्तिपर्व २८।१११॥ वनपर्व ९३।१०—॥

२. पार्जिटर ने चक्रवर्ती भरत को मांधाता से २३ पीढ़ी पश्चात् रखा है और अङ्ग को भरत का समकालीन बनाया है। यह ठीक प्रतीत नहीं होता। अङ्ग मांधाता का समकालीन था। भरत उन से २३ पीढ़ी नहीं, प्रत्युत पांच छः पीढ़ी पश्चात् हुआ है। इस कारण बलि का समकालीन दीर्घतमा भरत का यज्ञ कराता था। ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१॥ में दीर्घतमा और चक्रवर्ती भरत की समकालिकता कही है। दीर्घतमा एक सहस्र वर्ष जीता रहा। यह शांखायन आरण्यक में लिखा है—तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव।२।१७॥ अश्वघोष को यह बात ज्ञात थी—गौतमं दीर्घतपसं महर्षिं दीर्घजीविनम्। बुद्धचरित ४।१८॥

३. मत्स्य ४८।५८॥ ४. मत्स्य ४८।८९॥ ५. मत्स्य ४८।६७॥

अङ्ग वसुहोम—महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १२२ में अङ्गों के राजा वसुहोम का वर्णन है। सम्राट् मांधाता ने उस से राज-शास्त्र का उपदेश लिया था। यह वसुहोम बृहद्रथ के सम्बन्धियों में से कोई होगा।

६–८. जनमेजय, सुधन्वा और नृग—इन तीनों राजाओं का पता हम नहीं लगा सके।

इन राजाओं की समकालिकता—ये आठ राजा मांधाता के समकालीन थे, इस विषय में महाभारत के पूर्व दो स्थलों का प्रमाण है। प्रतीत होता है कि मांधाता सम्बन्धी कभी एक बृहदितिहास विद्यमान होगा। उस में मांधाता के दिग्विजय का विस्तृत वृत्तान्त देख कर महाभारतान्तर्गत षोडशराजोपाख्यानस्थ मान्धाता का वृत्तान्त रचा गया होगा।

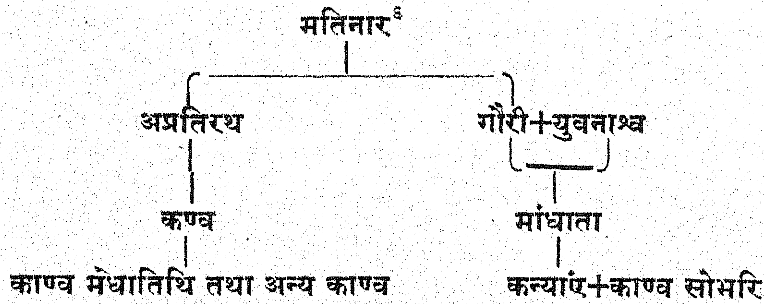
मांधाता का पाताल विजय—हर्षचरित में संकेत किया गया है कि मांधाता विजय करता हुआ पाताल तक गया।[1]

मन्त्रद्रष्टा—मांधाता राजर्षि था। पुराणों में यह आङ्गिरस ऋषि माना गया है।[2] ऋग्वेद १०।१३४ इस का दृष्ट सूक्त है।

गुरु—मांधाता का गुरु उत्तङ्क था।[3] कहीं कहीं इसे उदङ्क भी लिखा है।

बहवृच सौभरि और मांधाता—विष्णुपुराण में एक सौभरि-चरित मिलता है।[4] उसके अनुसार बहवृच सौभरि के साथ मांधाता की ५० कन्याओं का विवाह हुआ था। ऋग्वेद मण्डल आठ के सूक्त १९–२२ और सूक्त १०३ एक सोभरि काण्व के हैं।

कण्व एक क्षात्रोपेत ब्राह्मण था। पार्जिटर के अनुसार कण्व का जन्म अजमीढ के पश्चात् हुआ और अप्रतिरथ से कण्व की उत्पत्ति लेखक-प्रमाद का फल है।[5] कण्व कई हुए हैं। एक कण्व ने भरत का एक यज्ञ कराया था। वह अप्रतिरथ का पुत्र होगा। कण्व और सोभरि-संबंध निम्नलिखित है—



१. मान्धाता मार्गणव्यसनेन सपुत्रपौत्रो रसातलमगात्। हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास, पृ० २४४।
२. मत्स्य १४५।१०२॥ ३. मत्स्य ४७।२४३॥ ४. ४।२॥
५. ए. इ. हि. ट्रै. पृ० २२७। ६. वायु ९९।१२९–१३१॥ विष्णु ४।१९।३–७॥

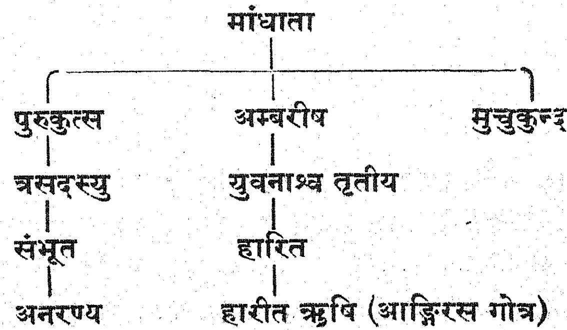
यदि सोभरि काण्व मेधातिथि के भाइयों में से कोई हो, तो वह मांधाता की कन्याओं से विवाह कर सकता है।

मांधाता के राज्य का विस्तार—**महाभारत और पुराणों में मांधाता के राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में एक श्लोक मिलता है। उस के अनुसार सूर्योदय के प्रदेश से लेकर सूर्यास्त तक का सारा प्रदेश मांधाता के राज्य में था।**[1]

दाशरथि राम अपने पूर्वज मान्धाता की एक कथा वानर बालि को सुनाता है।[2]

विवाह—**यादव कुल में चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु मांधाता के काल में राज्य करता था। उस की कन्या बिन्दुमती संसार में अप्रतिमरूपा थी।**[3] **वह अपने सब भाइयों में ज्येष्ठा थी। उस से मांधाता ने विवाह किया।**[4]

सन्तति—**मांधाता की सन्तान दो भागों में विभक्त हुई। एक भाग क्षत्रियों का था और दूसरा था ब्राह्मणों का। उन का वंश-वृक्ष निम्नलिखित है—**



मृत्यु—**मान्धाता लवण से मारा गया।**[5]

३—मरुत्त चक्रवर्ती[6]

कुल—**यह सुप्रसिद्ध मरुत्त मनु-पुत्र प्रांशु के कुल में था। हम पहले पृष्ठ ४८ पर कह चुके हैं कि पार्जिटर ने नाभानेदिष्ट और प्रांशु के कुल को मिला दिया है। नाभानेदिष्ट और भलन्दन तथा वत्सप्रि वैश्य हो गए थे। वे किसी राज्य के स्वामी नहीं बने। उनके कुल में प्रांशु क्षत्रिय का होना संदिग्ध सा है। मनु-पुत्र प्रांशु एक क्षत्रिय राजा था। उसका वर्णन पुराणों में अवश्य मिलना चाहिए। वर्तमान पुराणपाठों में भलन्दन, वत्सप्रि और प्रांशु को**

---

१. यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति। सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते॥
वायु ८८।६८॥ विष्णु ४।२।६५॥ द्रोणपर्व ६२।११॥ २. रामायण, किष्किन्धा काण्ड १८।३४॥

३. वायु ८८।७०॥ ४. मांधाता शक्र का अर्ध-राज्य प्राप्त करके भी विषयों में अतृप्त रहा। यह अश्वघोष लिखता है। बुद्धचरित ११।१३॥ सौन्दरनन्द ११।४३॥ सौन्दरनन्द के श्लोक का पूर्वार्ध महाभारत, वनपर्व १२७।३५॥ से बहुत समता रखता है। तुलना करो रामायण, उत्तरकाण्ड ६७।८॥

५. रामायण, उत्तरकाण्ड ६७।२१॥ ६. चक्रवर्तिसमो नृपः। वायु ८६।९॥

एक कर दिया गया है। यह निश्चय ही पाठ-भ्रंश के कारण हुआ है। वस्तुतः वत्सप्रि या उसके पुत्र के पश्चात् नाभानेदिष्टकुल बहुत साधारण गति को प्राप्त हो गया होगा।

प्रांशु-वंश—प्रांशु-पुत्र प्रजानि था। प्रजानि का पुत्र खनिनेत्र, उसका पुत्र क्षुप और क्षुप-पुत्र विंश था। विंश का पुत्र विविंश, विविंश का खनिनेत्र दूसरा और उसका पुत्र करंधम था। करन्धम का पुत्र अविक्षित् और उसका पुत्र मरुत्त था। महाभारत में मरुत्त को करन्धम-पुत्र ही कहा है।[1] परन्तु यह पुरातन ग्रंथों की परिपाटी है। पुत्र का अर्थ पौत्र भी होता है। इस सूची के अनुसार मरुत्त प्रांशु से दशम और मनु से ग्यारहवां है। इस सूची में भी कई साधारण नाम छोड़ दिए गए हैं।

अश्वमेध और दिग्विजय—मरुत्त ने एक महान् अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ का उल्लेख शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है।[2] महाभारत के आश्वमेधिकपर्व के अध्याय ४-११ में भी इस मरुत्त के असाधारण यज्ञ का वर्णन है। ब्राह्मणों में उद्धृत एक पुरातन गाथा का अभिप्राय महाभारत के मरुत्त-यज्ञ-सम्बन्धी लेख से सर्वथा मिलता है। उस गाथा या श्लोक के अनुसार—मरुत्त के यज्ञ में मरुत, अग्नि और इन्द्र आदि दूसरे देव उपस्थित थे। यह बात महाभारत में भी लिखी है। इस राजा के यज्ञ में अनेक पृथिवीपाल विराजमान थे।

कन्या-दान—मरुत्त का याज्ञिक अङ्गिरा-पुत्र संवर्त था। मरुत्त ने अपनी कन्या उसे दी।[3]

काल—आश्वमेधिकपर्व में मरुत्त का काल त्रेतायुग-मुख लिखा है।[4] परन्तु महाभारत की काल-गणना पुराणों की काल-गणना से भिन्न है। पुराणों के अनुसार दक्ष, मनु आदि आद्य त्रेतायुग में थे। आश्वमेधिकपर्व के इस प्रकरण में मनु को कृतयुग में लिखा है।[5] वायुपुराण ८६।७ में मरुत्त के पितामह करन्धम का त्रेता-युगमुख में होना लिखा है। हम पहले पृ० ७१ पर लिख चुके हैं कि मत्स्य के अनुसार मांधाता पन्द्रहवें त्रेतायुग में था। अतः यदि यह मरुत्त मांधाता का समकालीन माना जाए, तो उसका भी वही काल होगा। ब्रह्माण्ड ३।८।३४—३६ का यह प्रकरण टूट चुका है। उसे देखकर विद्वान् जनों को धोखा नहीं होना चाहिए कि मरुत्त द्वापर में था।

यज्ञदेश—आश्वमेधिकपर्व के अनुसार मरुत्त का यज्ञ कहीं हिमालय के पूर्व में हुआ था। वनपर्व १२९।१६ के अनुसार संवर्त वाले इस मरुत्त का यज्ञ कुरुक्षेत्र में हुआ था। संभवतः इसने कई अश्वमेध यज्ञ किए होंगे।

आयोगव मरुत्त—शतपथ ब्राह्मण में मरुत्त को आयोगव राजा कहा गया है। इस आयोगव शब्द का एक तो सीधा अर्थ है, शूद्र से वैश्या में उत्पन्न व्यक्ति।[6] परन्तु मरुत्त के संबंध में

---

१. शान्तिपर्व २४०।२८॥
२. शतपथ १३।५।४।६॥ ऐतरेय ८।२१॥
३. शान्तिपर्व २४०।२८॥
४. आश्वमेधिक पर्व ४।१७॥
५. आश्वमेधिक पर्व ४।२॥
६. महाभारत, अनुशासनपर्व ८३।१३॥

ऐसी कोई वार्ता हमें ज्ञात नहीं। दूसरे अर्थ का अनुमान किया जा सकता है अर्थात् मरुत्त की राजधानी अयोगु हो, और इस कारण उसे आयोगव कहा गया हो। अथवा मरुत्त के पिता का नाम अयोगु हो।

दीर्घजीवी मरुत्त—मांधाता के साथ युद्ध के समय यह राजा वृद्ध होगा। मांधाता ने युद्ध में उसे मारा नहीं होगा, पराजितमात्र किया होगा। उसकी लंबी आयु का उल्लेख द्रोणपर्व में मिलता है।[1]

नीचे उन राजकुलों की नामावलियां हैं जिन में मांधाता के समकालीन राजा थे।

मनु	मनु	मनु	मनु	मनु	मनु
इला	इला	इला	इक्ष्वाकु	प्रांशु	नरिष्यन्त
पुरूरवा	पुरूरवा	पुरूरवा	विकुक्षि	...	दम
आयु	आयु	आयु	ककुत्स्थ	प्रजानि	राष्ट्रवर्धन
नहुष	नहुष	नहुष	अनेना	...	सुधृति
ययाति	ययाति	ययाति	पृथु	खनित्र	नर
यदु	अनु	पूरु	विष्वगश्व	...	केवल
क्रोष्टु	सभानर	जनमेजय I	आर्द्र	क्षुप	बन्धुमान्
...	कालानल	प्राचिन्वान्	युवनाश्व I	इक्ष्वाकु	वेगवान्
वृजिनीवान्	सृञ्जय	प्रवीर	श्रावस्त	विंश	बुध
...	पुरञ्जय	मनस्यु	बृहदश्व	...	तृणबिन्दु[2]
...	जनमेजय	अभयद	कुवलाश्व	...	
स्वाही	महाशाल	सुधन्वा	दृढाश्व	विविंश	
...	महामना चक्रवर्ती	धुन्धु	प्रमोद	...	
... उशीनर	तितिक्षु	बहुगव	हर्यश्व I	खनिनेत्र	
... शिबि	रुशद्रथ=बृहद्रथ	संयाति	निकुम्भ	सुवर्चा	
रुशद्गु मद्रक आदि	हेम=सेन	अहंयाति	संहताश्व	करंधम	
...	सुतपा	रौद्राश्व	कृशाश्व	...	
...	विरोचन	ऋचेयु[3]	प्रसेनजित्	...	
चित्ररथ	बलि	मतिनार	युवनाश्व II	अविक्षित्	
शशबिन्दु	अङ्ग बृहद्रथ	...	मांधाता[4]	मरुत्त	

---

१. यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ॥५५।५६॥

२. तृतीय त्रेतायुगमुख वायु ७०।३०,३१॥ ८६।१५॥

३. इस से कुछ पश्चात् दत्त आत्रेय था। वह दशम त्रेता युग में था।

४. पन्द्रहवें त्रेता युग में।

चौदहवां अध्याय

आनव-कुल और पुरातन पंजाब

आरम्भ—सार्वभौम ययाति का एक पुत्र अनु था। इस अनु से आनव-वंश का प्रादुर्भाव हुआ। इस कुल के राजाओं का संक्षिप्त वर्णन गत पृष्ठ की वंशावली के अनुसार किया जाता है।

कालानल—अनु का एक पुत्र सभानर और उसका पुत्र कालानल था। मत्स्य और वायु दोनों ही कालानल को विद्वान् कहते हैं।[1] अतः यह मन्त्रद्रष्टा होना चाहिए।

सृञ्जय, पुरञ्जय—कालानल का पुत्र सृञ्जय और उसका पुत्र पुरञ्जय था।

जनमेजय—पुरञ्जय का पुत्र जनमेजय था। इसे मत्स्य और वायु में राजर्षि लिखा है। इसके भी मन्त्र होंगे।

महाशाल—जनमेजय-पुत्र महाशाल इन्द्र सदृश प्रतिष्ठितयशा था। वह वेदों में परिज्ञात अर्थात् प्रवीण था।[2]

महामना चक्रवर्ती[3]—महाशाल का पुत्र महामना था। इतने प्रतापी राजा का अब नाम ही शेष है। वह सुरगणों से पूजित था।

उशीनर और तितिक्षु—महामना के दो पुत्र थे। ये दोनों वंशकर थे। इन में से तितिक्षु-वंश का संक्षिप्त वर्णन गत अध्याय में अङ्ग बृहद्रथ के वर्णन में हो चुका। यहां उशीनर के कुल का वृत्तान्त कहा जाता है।

उशीनर को धर्मज्ञ कहा गया है। उशीनर पञ्जाब की अधिकांश भूमि का राजा होगा।

पांच पत्नियां—उशीनर की पांच पत्नियां थीं। वे पांचों राजर्षि-वंशों की थीं। उनके नाम थे—नृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती।[4] इन पत्नियों द्वारा उशीनर के वृद्धावस्था में तप के पश्चात् क्रमशः पांच पुत्र थे। वे पञ्जाब के कई भागों के राजा बने। उनका वंश-वृक्ष निम्नलिखित है—

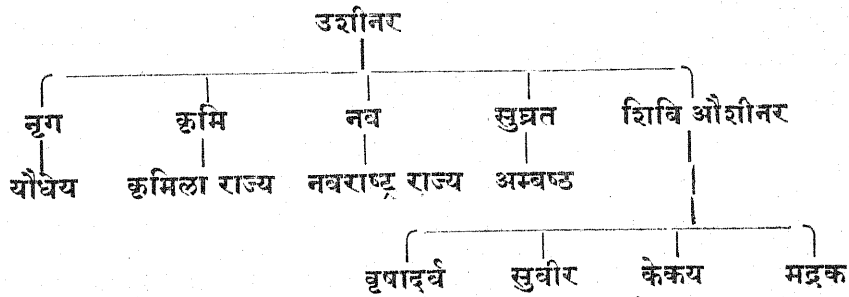
---

१. मत्स्य ४८।११॥ वायु ९९।१३॥ २. वेदेषु स परिज्ञातः। हरिवंश १।३१।२१॥

३. सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः। मत्स्य ४८।१४॥

सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः। वायु ९९।१७॥

४. वायु ९९।१९॥ ब्रह्माण्ड ३।७४।१८॥



यौधेय—इन में से नृग के पुत्र यौधेय क्षत्रिय थे। वे शतद्रु-तट पर वर्तमान बहावलपुर की सीमा के साथ साथ बसे थे।[1] इस प्रदेश को अब जोहियबार कहते हैं।

कृमिलापुरी—इसका बसाने वाला कृमि था। इस नगर की स्थिति का अभी तक निश्चय नहीं हो सका। वैजयन्ती कोश में यादवप्रकाश लिखता है—कुमालकास्तु सौवीराः। यहां कुमालिक पाठ शुद्ध प्रतीत होता है।

नवराष्ट्र—इस की स्थिति भी अनिश्चित है।

अम्बष्ठ—इस राज्य का बसाने वाला उशीनर-पुत्र सुव्रत था। किसी विजयी अम्बष्ठ राजा का उल्लेख ऐतरेय ब्रा० ८।२१ में किया गया है। पञ्जाबान्तर्गत होशियारपुर ज़िले का अम्बोटा पुराने अम्बष्ठों का अवशेष है।

शिबि औशीनर—यह बहुत धार्मिक राजा था। इस ने शिबिपुर नामक नगर बसाया। यह नगर वर्तमान शोरकोट है। जो झंग नगर के समीप है। इस ने दश अश्वमेध किए थे।[2]

शिबि-पुत्र—शिबि के चार पुत्र थे। उन में से मद्रक, केकय और सौवीर ने अपने अपने जनपद बसाए। यही जनपद मद्र, केकय और सौवीर नाम से प्रसिद्ध हुए। इन का अधिक वर्णन भारत-युद्ध-काल के अध्याय में होगा। चौथा पुत्र या कदाचित् ज्येष्ठ पुत्र वृषादर्व था। उस का राज्य शिबिपुर में ही रहा।[3]

सम्राट् मांधाता तक इतिहास का प्रसंग मिलाने के लिए यह संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

---

१. कनिंघम, पुरातत्त्वविभाग रिपोर्ट, भाग १४। २. द्रोणपर्व १०।६५॥

३. वृषादर्विकुलं ह वै शिबिकुलं बभूव। श्राद्धेतिहासोपनिषत्, मैसूरु प्राच्यकोशागारस्थ लिखितग्रन्थसूची, प्रथम सम्पुटम्, पृ० ७५६।

पन्द्रहवां अध्याय

ऋग्वेद का काल

अब भारतीय इतिहास का वह युग आ गया कि जिस में वेद-काल पर विचार करना अनुपयुक्त नहीं होगा। अतः इस अध्याय में वेद-काल सम्बन्धी अनेक मतों की परीक्षा की जाती है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वेद-काल के साथ आर्य अथवा भारतीय इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आधुनिक पाश्चात्य विचार—गत सौ वर्ष में पाश्चात्य लेखकों ने ऋग्वेदादि के काल के सम्बन्ध में अनेक विचार प्रकट किए हैं। उन के अनुसार ऋग्वेद का काल ईसा-पूर्व १२००—२४०० तक का है। कई लेखक ईसा-पूर्व १२०० वर्ष ऋग्वेद का काल मानते हैं, दूसरे १५०० ईसा-पूर्व, तीसरे २००० ईसा-पूर्व, इत्यादि। इन विचारों का आधार पाश्चात्य-भाषा-विज्ञान कहा जाता है। यह भाषा-विज्ञान उपादेय होते हुए भी बहुधा निराधार कल्पनाओं पर स्थिर है। इस लिए इस के परिणाम ऐतिहासिक परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते।

पण्डित तिलक का मत—भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त वेद-काल-निर्णायक एक और विज्ञान भी कहा जाता है। वह है ज्योतिष-विज्ञान। मन्त्रों में और ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ ऐसे वचन मिलते हैं, जो ज्यौतिष-गणनाओं के क्षेत्र में आते हैं। उन गणनाओं का निरीक्षण करके परलोकगत महाराष्ट्र-विद्वान् बालगङ्गाधर तिलक ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "ओरायन" मृगाशीर्ष लिखा था। उन के अनुसार आर्यसभ्यता का पहला युग पूर्व-मृगाशीर्ष युग या अदिति-युग है। इस का काल ६०००—४००० ईसा-पूर्व था। उस काल में परिष्कृत वैदिक सूक्त नहीं थे। दूसरा युग मृगाशीर्ष-युग है। यह लगभग ४०००—२५०० ईसा-पूर्व तक था। वेद के अनेक सूक्त इस युग में गाए गए। तीसरा युग कृत्तिका-युग है। इस का आरम्भ २५०० ईसा पूर्व से हुआ और १४०० ईसा पूर्व तक रहा।[1]

मण्डल-रचना पर पाश्चात्य-मत—पाश्चात्य लेखकों का एक और भी मत है। वे कहते हैं कि ऋग्वेद के प्रथम और दशम मण्डल बहुत नए हैं। सम्भवतः ईसा से १५०० वर्ष पहले बने थे।

अब ऐतिहासिक दृष्टि से इन मतों की परीक्षा की जाती है। भारत-युद्ध ईसा से कोई ३१३८ वर्ष पहले हुआ। उस भारत-युद्ध में अनेक क्षत्रिय-कुल लड़े। उन क्षत्रिय कुलों का आरम्भ दक्ष प्रजापति, कश्यप और अत्रि आदि ऋषियों से हुआ। ये ऋषि एक भारी जलप्लावन या प्रलय के पश्चात् हुए थे। उन ऋषियों या प्रजापतियों के पास भगवान् ब्रह्मा की कृपा से वेद विद्यमान था। वेद को प्राजापत्य श्रुति भी कहते हैं।[2] ब्राह्मणग्रन्थों में भी वेद-श्रुति का आरम्भ प्रजापति से माना गया है।[3]

---

१. पृ० २०६, २०७। २. प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या। वायुपुराण ६१।७५॥ ३. शतपथ ११।५।८॥

मन्त्रद्रष्टा ऋषि—उस मूल श्रुति का समय समय पर विभिन्न ऋषियों ने विभिन्न प्रकार से विनियोग आदि किया। इस कारण इन ऋषियों का नाम वेद-सूक्तों के साथ सुरक्षित रखा गया। पुराणान्तर्गत वंशावलियां पृथु वैन्य और मनु आदि के कालसे बनने लगीं। उन वंशावलियों में मन्त्रद्रष्टाओं को विद्वान् आदि कहा गया है। आधुनिक पुराण-वंशावलियां भी उन्हीं पुरानी वंशावलियों की प्रतिलिपि-मात्र हैं। इस लिए इन से मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है।

वैदिक-ऋषियों के नाम सन्देह से परे हैं—वेद के ऋषियों के नाम पुराणवंशों में ही नहीं थे। उन के नाम ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी थे। ये ब्राह्मण-ग्रन्थ समय समय पर बनते रहे। इन का अन्तिम प्रवचन भारत-युद्ध से कोई सौ वर्ष पहले हुआ। इन दोनों स्रोतों का संवाद बताता है कि ऋषि-नामों में कोई भूल नहीं हुई। इस का एक और भी कारण है। वेद अथवा वैदिक सूक्त आरम्भ से कण्ठस्थ होते आ रहे थे। ययाति ऐसा राजा कहता है कि सम्पूर्ण-वेद मेरे श्रुति-पथ को प्राप्त हुआ है।[1] इस लिए सूक्तों के साथ ही साथ ऋषियों का स्मरण भी अटूट चला आया। इस विषय में आर्य-परम्परा बहुत सुरक्षित रही।

वेद-काल का निर्णय—जो साधारण लोग ऋषियों को मन्त्रद्रष्टा नहीं मानते, और भूल से उन्हें मन्त्रकर्ता मानते हैं, उन के लिए भी ऋषियों के इतिहास से विभिन्न वेद-काल-निर्णय का कोई दूसरा निश्चित मार्ग नहीं हो सकता। इस लिए इस इतिहास के गत अध्यायों के आधार पर हम मांधाता के काल की ऋग्वेद की स्थिति का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। आगे इस का वर्णन किया जाता है—

ऋषि	सूक्त
१. वैन्य पृथु	१०।१४८॥
२. अदिति दाक्षायणी	१०।७२॥
३. प्रजापति परमेष्ठी	१०।१२९॥
४. विवस्वान्	१०।१३॥
वैवस्वत मनु	८।२७–३१॥
५. यम वैवस्वत	१०।१४॥
६. यमी वैवस्वती	१०।१५४॥
७. यम+यमी	१०।१०॥
८, ९. नाभानेदिष्ट	१०।६१,६२॥
१०. शर्यात या शार्यात	१०।९२॥
विरूप	८।४३,४४॥
११,१२. वत्सप्रिभालन्दन	९।६८॥१०।४५,४६॥
१३. बुध	१०।१०१॥
१४. पुरूरवा	१०।९५॥

1. पृ० ५८।

ऋषि	सूक्त
मारीच कश्यप	१।९९॥९।६४,९१,९२,११३,११४॥
कवि या काव्य उशना	८।८४॥९।४७–४९,७५–७९,८७–८९॥
१५. शची पौलोमी	१०।१५९॥
१६,१७. त्रिशिरा	१०।८,९॥
१८. बृहस्पति आङ्गिरस	१०।७१॥
१९. च्यवन	१०।१९॥
२०. मांधाता यौवनाश्व	१०।१३४॥
२१. संवर्त आङ्गिरस	१०।१७२॥
२२. जमदग्नि	१०।११०॥

इस सूची के बनाने में हमने दशम मण्डल के सूक्तों का अधिक ध्यान रखा है। इस सूची के अनुसार महाराजा मांधाता के काल तक ऋग्वेद के दशम मण्डल के २२ सूक्त अवश्य विद्यमान थे। ऋग्वेद के दशम मण्डल में कुल १९१ सूक्त हैं। उन में से २२ का काल हम ने निर्धारित कर दिया। शेष रहे १६९ सूक्त। इन में से भी अनेक ऐसे सूक्त हैं, जो मांधाता के काल में समुपलब्ध थे। परन्तु उन के ऋषियों का ऐतिहासिक सम्बन्ध बताने के लिए हमारे पास यहां स्थान नहीं है।

अब सोचने का स्थान है कि पाश्चात्यों का भाषा-विज्ञान कितना सत्य है? उन के अनुसार दशम मण्डलस्थ मन्त्रों की भाषा और उन में प्रकट किए गए विचार बहुत नवीन समय के हैं। कदाचित् ईसा से १४०० या १५०० वर्ष पहले के हैं। इस के विपरीत हम ने दिखा दिया है कि सम्राट् मांधाता के काल में दशम मण्डल के कम से कम २२ सूक्त उपलब्ध थे। दशम मण्डल का नासदीय १०।१२९ सूक्त तो आद्य त्रेतायुग में दक्ष आदि के समय उपस्थित था। उस का ऋषि प्रजापति परमेष्ठी है। पाश्चात्य लेखक इसे बहुत ही नया सूक्त कहते हैं।

यह है आधुनिक भाषा-विज्ञान का फल, जिस पर पाश्चात्यों का इतना बल है। विचारवान् महाशय देख सकते हैं कि पाश्चात्य-विचार ने वेद के सम्बन्ध में कितने भ्रान्तवाद फैला दिए हैं। आर्य-मात्र का यह प्रथम कर्तव्य है कि इस प्रकार के भ्रान्त और परम हानिकारक मतों का तीव्र-विध्वंस करें। आर्य इतिहास अब भी सुरक्षित है। उसके यथार्थ अध्ययन की कमी है।

यदि त्रेतायुग कम से कम ३००० वर्ष का और द्वापर कम से कम २००० वर्ष का माना जाए, तथा त्रेता की सन्धि ३०० वर्ष की मानी जाए, और भारत-युद्ध ईसा से ३१३८ वर्ष पहले माना जाए, तो आद्य त्रेतायुग ईसा से लगभग ८४०० वर्ष पहले होगा। तब प्रजापतियों के पास सारा वेद था। मांधाता और दक्षप्रजापति के काल में लगभग १५०० वर्ष का अन्तर हो सकता है। इसलिए ईसा से लगभग ७००० वर्ष पहले ऋग्वेद के पूर्वोक्त सूक्त अवश्य विद्यमान थे। इससे न्यून समय हो ही नहीं सकता। वस्तुतः वेद ब्रह्मा जी के काल से आ रहा है।

सोलहवां अध्याय

मतिनार-पुत्र तंसु से अजमीढ पर्यन्त

२०. तंसु—मतिनार के अनेक पुत्र थे। महाभारत की प्रथम वंशावली में उसके चार पुत्रों के नाम हैं। वायु और मत्स्य में तीन पुत्र वर्णित हैं। मत्स्य का पाठ अधिक विकृत प्रतीत होता है। आदिपर्व की प्रथम वंशावली में तंसु को महावीर्य लिखा है। आदिपर्व की दूसरी वंशावली में तंसु की स्त्री का नाम कालिन्दी लिखा है। यह बात व्यास ने अपनी ओर से नहीं लिखी, किन्तु किसी पुरातन अनुवंश श्लोक के रूप में उद्धृत की है।

२१. इलिन—इलिन पर पौराणिक वंशावलियों में बड़ी गड़बड़ हुई है। पुराणों के अनुसार इलिन एक कन्या थी। महाभारत में इलिन एक राजपुत्र है। वर्तमान परिस्थिति में पुराणों का पाठ शुद्ध नहीं हो सकता। इलिन इस सारी भूमि का विजेता था।[1] वह विजयी राजाओं में श्रेष्ठ था।[1] उसकी स्त्री रथंतरी थी।[2] वायु के अनुसार इलिन ब्रह्मवादी था।[3] परन्तु पुराणों की ऋषि-वंशावलियों में यह नाम नहीं है। महाभारत में इसे इलिल कहा है।[4]

२२. दुःषन्त=दुष्यन्त—संस्कृत वाङ्मय में यह राजा सुविख्यात हो चुका है। कालिदास की अमर कृति ने यह नाम संसार भर में प्रसिद्ध कर दिया है।

पत्नियां—वैसे तो महाराज दुष्यन्त की कई पत्नियां होंगी, पर पूना-संस्करण के आदिपर्व की वंशावलियों के कई पाठान्तरों से प्रतीत होता है कि दुःषन्त की दो पत्नियां बहुत प्रसिद्ध थीं। एक शकुन्तला दूसरी लक्ष्मणा। लक्ष्मणा को एक पाठान्तर में भागीरथी कहा है। यह केवल पाठ टूटने के कारण हुआ है।

महाभारत में शकुन्तला को वेदिमध्यमा कहा है।[5] स्मरण रहे द्रौपदी भी वेदि-मध्यमा थी।

कण्व—आदिपर्व में एक शाकुन्तलोपाख्यान है। इसका आरंभ ६२ अध्याय से होता है उसमें लिखा है कि मालिनी नदी के समीप चैत्ररथ वन में कण्व का आश्रम था।[6] यह कण्व काश्यप था। पुराणों की ऋषि-वंशावलियों में एक आङ्गिरस कण्व का नाम है। काश्यपों में कोई कण्व ऋषि नहीं लिखा। यही काश्यप कण्व है जो चक्रवर्ती भरत का प्रधान याज्ञिक था।[7] कदाचित् यही कण्व अप्रतिरथ का पुत्र हो। परन्तु यह कण्व शकुन्तला-विवाह तक गृहस्थ नहीं था।

---

१. आदिपर्व ८९।१३॥ २. आदिपर्व ८९।१४॥९०।२९॥ ३. वायु ९९।१३२॥

४. राजा ताताजगामह दुःषन्त-इलिलात्मजः। पूना संस्करण के आदिपर्व में ४५वां प्रक्षेप, पंक्ति ११।

५. पूना संस्करण के आदिपर्व का ४५वां प्रक्षेप, पंक्ति १३। ६. आदिपर्व ६४।१८—२५॥

७. आदिपर्व ६९।४८॥

विशाल राज्य—महाराज दुःषन्त चतुरन्त पृथिवी का गोप्ता था।[1] म्लेच्छ-राज्य पर्यन्त सब सीमा उसने जीत ली थी।[1]

२३. चक्रवर्ती भरत

दुःषन्त का पुत्र भरत था। यह राजा भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ है।

पूर्व लक्षण—शाकुन्तल भरत बाल्यकाल से ही चक्राङ्कितकर था।[2] वह छः वर्ष की अवस्था में ही अति बलवान् था। इस लिए वह सर्वदमन कहाता था।

भरत-जन्म संबंधी कुछ श्लोकों की प्राचीनता—शकुन्तला भरत सहित महाराज दुःषन्त की राज-सभा में पहुँची। जब दुःषन्त शकुन्तला के स्वीकार करने में आनाकानी कर रहा था, तब अशरीरिणी वाक् बोली—

भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः—इत्यादि। यह श्लोकार्ध आदिपर्व ६९।२९ वायु ९९।१३५ मत्स्य ४९।१२ आदि में है। इस के साथ भरत संबंधी कुछ और श्लोक भी वहीं हैं। ये सब श्लोक महाभारत के काल से बहुत पूर्व के प्रतीत होते हैं। कौटल्य ने पुत्रविभाग-प्रकरण में किन्हीं पुरातन आचार्यों का एक मत उपस्थित किया है—

माता भस्त्रा यस्य रेतस्तस्यापत्यम् इत्यपरे[3]—यह मत कौटल्य से पूर्व के अर्थशास्त्रकारों में से किन्हीं का होगा। संभव है यह मत द्रोण, भीष्म या उद्धव का हो। इस मत में महाभारत आदि के पूर्वोक्त श्लोक की पूरी छाया है। अतः स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये श्लोक अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध चले आ रहे होंगे।

दिग्विजय—भरत चक्रवर्ती ही नहीं प्रत्युत एक सार्वभौम सम्राट् भी था।[4] उस ने यमुना सरस्वती और गङ्गा के तीरों पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए।[5] महाभारत के अनुसार उस ने ३५ अश्वमेध किए।[6] उस की विजय-यात्राएं अनेक हुई होंगी। हमें उन में से किसी एक का भी ज्ञान नहीं है। भरत समितिंजय भी था।[7]

अश्वमेध-यज्ञ—भरत ने शुद्ध जाम्बूनद-सुवर्ण के बने सहस्र कमल कण्व को दिए।[8] भरत के किसी अश्वमेध का कराने वाला दीर्घतमा मामतेय था।[9] यह यज्ञ मष्णार देश में हुआ था।[10] भरत का एक और यज्ञ साचीगुण देश में हुआ।[10] भरत ऐसा कर्म पञ्चमानवों अर्थात् द्रुह्यु आदि पांच भाइयों के कुलों में किसी ने भी नहीं किया।[10] दीर्घतमा मामतेय बड़ा दीर्घ-

---

१. आदिपर्व ६२।३—५॥ २. आदिपर्व ६८।४—७॥ तथा देखो द्रोणपर्व ६८।१—७॥

३. आदि से ६४वां अध्याय।

४. सार्वभौमः प्रतापवान्। आदिपर्व ६९।४७॥ ५. मत्स्य ४९।११॥ ६. आरण्यकपर्व ८८।७॥

७. द्रोणपर्व ६८।८॥ ८. द्रोणपर्व ६८।११॥

९. दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच। ऐ० ब्रा० ८।२३॥

१०. ऐ० ब्रा० ८।२३॥

जीवी था, अतः वह भरत के यज्ञ में उपस्थित हो सकता है। अश्वघोष दीर्घतमा को दीर्घजीवी समझता था।[1] मष्णार और साचीगुण कुरुक्षेत्र के कुछ देशों के पुरातन नाम होंगे।

सौद्युम्न भरत—ऐतरेय ब्राह्मण के महाभिषेक प्रकरण में कुछ पुरातन श्लोक उद्धृत हैं। शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण में भी कुछ गाथाएं उद्धृत हैं। इन गाथाओं में से तीन गाथाएं दोनों ब्राह्मणों में प्रायः समान ही हैं। इन गाथाओं में से एक में ऐतरेयानुसार भरत को दौष्यन्ति कहा है। शतपथ में इसी स्थान पर दौष्यन्ति का पाठान्तर सौद्युम्नि है।[2]

क्या इलिन सुद्युम्न था—शतपथ का लेख अत्यन्त प्रामाणिक है। उस से प्रतीत होता है कि या तो तंसु का नाम सुद्युम्न होगा या इलिन का। संभव है पुराण-पाठों में भासने वाली इलिना इसी इलिन की भगिनी हो। अस्तु, हर अवस्था में विद्वान् अन्वेषकों को भरत के सौद्युम्न नाम का कारण खोजना चाहिए। इसके साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मनु-पुत्री इला का दूसरा नाम सुद्युम्न था। उसी प्रकार यहां भी इलिन सुद्युम्न हो सकता है।

भरत-पत्नियां—भरत की तीन मुख्य पत्नियां प्रसिद्ध हैं। आदिपर्व की दूसरी वंशावली के अनुसार काशीराज सर्वसेन की कन्या सुनन्दा भी भरत की एक पत्नी थी।

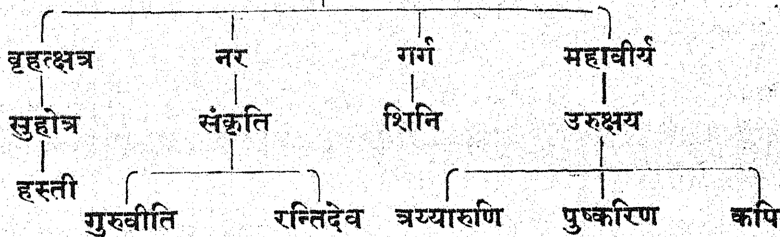
भरद्वाज=वितथ—भरद्वाज के सम्बन्ध में पुराणों में एक विचित्र कथा लिखी है। हमें यह कथा भी व्युत्पत्तिमात्र दर्शाने वाली प्रतीत होती है। महाभारत की प्रथम वंशावली में भरद्वाज का वर्णन है अवश्य, परन्तु उससे यही ज्ञात होता है कि भरत का पुत्र भुमन्यु भरद्वाज से नियोग द्वारा उत्पन्न हुआ था। तथा वितथ भुमन्यु का पुत्र था।

दीर्घजीवी—भरद्वाज दीर्घायु था।[3] वह रसायनसेवी था।[4]

दो और नाम—वायु ९९।१५७ में भरद्वाज को द्विमुख्यायन (द्व्यामुष्यायण-मत्स्य) और द्विपितर भी कहा है। संभव है ये भुमन्यु के विशेषण हों। पुराण-पाठ यहां अत्यन्त भ्रष्ट हो चुके हैं, अतः उनसे तथ्य का जानना कठिन हो गया है।

आदिपर्व की दूसरी वंशावली में भुमन्यु को सुनन्दा और भरत का पुत्र कहा है।

२४. भुमन्यु=भुवमन्यु—यह भरत या भरद्वाज का पुत्र था। पौरवों का यह अत्यन्त प्रसिद्ध राजा था। इसका वंश-वृक्ष नीचे दिया जाता है—



१. गौतमं दीर्घतमसं महर्षि दीर्घजीविनम्। बुद्धचरित ४।१८॥ २. शतपथ १३।५।४।१२॥
३. चरकसंहिता, सूत्रस्थान १।२६॥ ४. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १।४॥

भुमन्यु के कुल में नर और गर्ग द्विजाति हो गए। इन्हें क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहते हैं। पुराणों के अनुसार तीसरा कुल महावीर्य या वीर्यवान् का कहा जाता है। इस शब्द के अनेक पाठान्तर हैं। ऋग्वेद १०।११८ का ऋषि उरुक्षय आमहीयव है। बहुत संभव है महावीर्य या वीर्यवान् के स्थान में मूलपाठ अमहीयव हो। तब मत्स्य ४९।३६ और वायु ९९।१५९ का शुद्ध पाठ निम्नलिखित होगा—

बृहत्क्षत्रोऽमहीयव्रो नरो गर्गश्च वीर्यवान्—अमहीयव का कुल ब्राह्मण हो गया। इस पाठ के विषय में पार्जिटर की भी यही सम्मति है।[1]

आङ्गिरस-सांकृत्य, गार्ग्य, काप्य—नर का वंश संकृति के कारण सांकृत्य हो गया। गर्ग से गार्ग्य ब्राह्मण हुए और कपि के कारण अमहीयव के कुल का एक भाग काप्यों का हुआ। ये तीनों वंश आङ्गिरस पक्ष के हुए।[2]

पाणिनि का सूत्र—महामुनि पाणिनि भारत के इतिहास का अपार पण्डित था। वह गत एक सहस्र वर्ष के पण्डितों के समान इतिहास के नाम से भयभीत नहीं होता था। पाणिनि ने अपने अपरिमित इतिहास-ज्ञान की छटा अपने तद्धित प्रकरण में दिखाई है। उसने एक सूत्र रचा—कपिबोधादाङ्गिरसे ४।१।१०७॥ इस सूत्र के अनुसार आङ्गिरस कपि के वंशज काप्य कहाते हैं। वे दूसरे कापेय थे जिन्होंने इस कपि से कई सौ वर्ष पहले शशबिन्दु चक्रवर्ती के पिता चित्ररथ का एक यज्ञ कराया था।[3]

नर भारद्वाज, गर्ग भारद्वाज, सुहोत्र भारद्वाज—भुमन्यु के दोनों पुत्र नर और गर्ग ऋषि हुए। नर भारद्वाज ऋग्वेद ६।३५,३६ का ऋषि है। गर्ग भारद्वाज ऋग्वेद ६।४७ का ऋषि है। गर्ग और नर का भाई बृहत्क्षत्र था। उसका पुत्र सुहोत्र भारद्वाज ऋग्वेद ६।३१,३२ का ऋषि था। इस प्रकार प्रतीत होता है कि वैदिक नर भारद्वाज का सम्बन्ध बताने के लिए ही पुराणों में भुमन्यु से पहले भारद्वाज का प्रकरण जोड़ा गया है। वस्तुतः वह भरत के क्षेत्र में नियोग करने वाला था।

सांकृत्य रन्तिदेव—इस रन्तिदेव ने अपने शुभ गुणों के कारण संस्कृत-वाङ्मय में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इसकी प्रसिद्धि का प्रमाण यह है कि द्रोणपर्व के षोडशराजोपाख्यान में भी इसका उपाख्यान है।

राजधानी—इसका राज्य चर्मण्वती नदी अथवा राजस्थान में वर्तमान चंबल नदी के समीप होगा।[4] उसकी राजधानी दशपुर थी।[5] आजकल का दसोर या प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान मन्दसोर ही पुरातन दशपुर है।

---

१. ए०इ०हि०ट्रै०पृ०२५०। तथा इस इतिहास का पृ० ७१। २. मत्स्य ४९।४१॥ वायु ९९।१६४॥ ३. ताण्ड्य ब्रा०२०।१२।५॥ ४. द्रोणपर्व ६७।५॥ ५. मेघदूत १।४६—४८॥

इतिहास में इसके दान बहुत प्रसिद्ध हैं। अश्वघोष बुद्धचरित में लिखता है कि सांकृति रन्तिदेव ब्रह्मर्षि हो गया था, पर मुनि वसिष्ठ के कहने से पुनः राज्यश्री को धारण करने लगा।[1] रन्तिदेव और वसिष्ठ का उल्लेख महाभारत में है।[2]

२५. बृहत्क्षत्र—पुराणों के अनुसार भुमन्यु का वंश-कर पुत्र बृहत्क्षत्र था। आदिपर्व की दोनों वंशावलियों में यह नाम टूट गया है। इसका कारण स्पष्ट है। बृहत्क्षत्र के अन्त में त्र है और सुहोत्र के अन्त में भी त्र है, अतः लिपिकर्ता के दृष्टि-दोष से बृहत्क्षत्र का पाठ टूटा है।

२६. चक्रवर्ती सुहोत्र

आदिपर्व की प्रथम वंशावली में सुहोत्र को सकल पृथिवीपति कहा है।[3]

सुहोत्र म्लेच्छाटवी तक सारे प्रदेशों का सम्राट् हुआ।[4] उसका राज्य धन-धान्य से पूर्ण था। सुवर्ण की कोई कमी न थी।[5] कुरुजाङ्गल में यज्ञ करके उसने ब्राह्मणों को बहुत धन बांटा।

२६. वैतिथि या द्वैतिथि सुहोत्र—शान्तिपर्व के षोडशराजोपाख्यान में सुहोत्र को वैतिथि[6] और द्वैतिथि[7] कहा है। इससे प्रतीत होता है कि भरद्वाज या वितथ की कथा में कोई सत्य अवश्य है और उसका सुहोत्र से कोई संबन्ध था।

मन्त्रद्रष्टा—द्रोणपर्व में सुहोत्र का विशेषण राजर्षि है।[8] सुहोत्र भारद्वाज ऋग्वेद ६।३१, ३२ का द्रष्टा है। इससे ज्ञात होता है कि यह सुहोत्र मन्त्रद्रष्टा था।

शिबि औशीनर और सुहोत्र—शिबि पुत्र वृषादर्वि की सन्तान में सब राजा शिबि औशीनर कहाते थे।[9] ऐसे एक शिबि औशीनर से इस सुहोत्र के समागम की कथा वनपर्व में है।[10]

२७. हस्ती—सुहोत्र का पुत्र हस्ती था। इस ने प्रसिद्ध नगर हस्तिनापुर बसाया। इस नगर के अनति पुरातन भग्नावशेष मेरठ के समीप इसी नाम के ग्राम के समीप अब भी दिखाई देते हैं।

२८. अजमीढ—महाराज हस्ती के तीन पुत्र थे। उनके नाम थे अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ। इनमें से अजमीढ हस्तिनापुर के सिंहासन पर स्थिर रहा। द्विजमीढ का कुल कुरु और पाञ्चाल के समीप कहीं राज्य करता होगा। उसके राज्य का पता नहीं दिया गया। पुरुमीढ का कुल कहीं वर्णित नहीं है। प्रतीत होता है पुरुमीढ का कुल ब्राह्मण हो गया था।

मन्त्रद्रष्टा—पुरुमीढ और अजमीढ ऋग्वेद ४।४३,४४ के द्रष्टा कहे गए हैं। इनमें से

---

१. ९।७०॥ २. शान्तिपर्व २४०।२७॥ ३. सुहोत्रः पृथिवीं सर्वां बुभुजे सागराम्बराम्। ८९।२३॥ ४. द्रोणपर्व ५६।५॥ ५. द्रोणपर्व ५६।७॥ ६. २८।२८॥ ७. २८।२५॥ ८. ५६।१॥ ९. द्रौपदी के स्वयंवर में भी एक शिबि औशीनर उपस्थित था। आदिपर्व १७७।१५॥ १०. अध्याय १९७।

अजमीढ राजर्षि रहा होगा और पुरुमीढ ब्राह्मण हो गया होगा। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में लिखा है—पुरुमीढाजमीढौ सौहोत्रौ। वायुपुराण के अनुसार अजमीढ तप से ऋषि हुआ।[1]

सन्तति—अजमीढ ने भारी तप किया। उसकी तीन पत्नियां थीं, नीलिनी, धूमिनी और केशिनी। तप के अन्त में राजा वृद्ध था। तब भरद्वाज के प्रसाद से उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए।[2] यह भरद्वाज कौन था? क्या वही जिसने भरत चक्रवर्ती का यज्ञ कराया था, अथवा कोई अन्य। अजमीढ की संतति के विषय में महाभारत और पुराणों में बड़ा भेद पाया जाता है। आदिपर्व की दोनों वंशावलियों में भी भेद है। जब तक अधिक हस्तलिखित सामग्री न मिल जाए, तब तक पुराणों और महाभारत के पाठों के क्रम आदि का निश्चय करना बड़ा कठिन है। हमारा विचार है पृ० ६८ पर इस वंश के जिन सात राजाओं के सम्बन्ध में हमने संकेत किया है, उनका स्थान अजमीढ के पश्चात् होना चाहिए।

कण्व और अजमीढ—पुराणों की वंशावली में अजमीढ और उसकी स्त्री केशिनी का पुत्र कण्व लिखा है। कण्व-पुत्र प्रसिद्ध मेधातिथि था। हम पहले पृ० ६९ और ७४ पर लिख चुके हैं कि मतिनार-पुत्र अप्रतिरथ का पुत्र कण्व था। पार्जिटर का मत है कि मतिनार के साथ कण्व आदि का पाठ लेखक-प्रमाद का फल है।[3] अजमीढ से मेधातिथि वाले कण्व कुल की उत्पत्ति पार्जिटर को अभिमत है। हम इस विषय में अभी तक कुछ नहीं कह सकते। भावी विद्वानों को महाभारत और पुराणों के अधिक पुरातन कोष एकत्र करने चाहिएं। तभी यह ग्रन्थि खुलेगी।

---

१. ९९।११५–११८ ॥ २. वायु ९९।१७८,१७९ ॥ मत्स्य ४९।४५,४६॥

३. ए. इ. हि. ट्रै. पृ० २२७।

सतारहवां अध्याय

मांधाता-पुत्र पुरुकुत्स से हरिश्चन्द्र पर्यन्त

२२. पुरुकुत्स—मान्धाता और बिन्दुमती का एक पुत्र पुरुकुत्स था। मांधाता के पश्चात् यह अयोध्या के राजसिंहासन का अधिकारी बना। पुरुकुत्स मन्त्रद्रष्टा था। पुरुकुत्स और उसका पुत्र त्रसदस्यु अङ्गिरा गोत्र में सम्मिलित हुए।[1] इस ऐक्ष्वाक राजा ने एक अश्वमेध यज्ञ किया था।[2] पुरुकुत्स-भार्या नर्मदा थी। यह नर्मदा नाम पीछे से बदला हुआ प्रतीत होता है। इस स्त्री का पहला नाम कुछ और होगा।

भट्टबाण लिखता है—पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यकायामकरोत्।[3]

पुरुकुत्स संबंधी पार्जिटर-मत—पार्जिटर का मत है कि इक्ष्वाकु-वंश के पुरुकुत्स और त्रसदस्यु वैदिक ऋषि नहीं थे।[4] पार्जिटर के मत का आधार दौर्गह पद और कण्व-समस्या है। ऋग्वेद ४।४२।८ में सायण दौर्गह का अर्थ दुर्गह का पुत्र करता है। ऋग्वेद के इस शब्द का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। इसी लिए शतपथ में व्याकरण-दृष्टि से दौर्गह का प्रयोग अन्य प्रकार से हुआ है। कण्व समस्या भी अभी समस्या ही है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स ही वैदिक ऋषि है। कोसल-राज पुरुकुत्स और त्रसदस्यु से वैदिक पुरुकुत्स और त्रसदस्यु को विभिन्न मानना निरर्थक है।

२३. त्रसदस्यु—पुरुकुत्स और नर्मदा का पुत्र त्रसदस्यु था। त्रसदस्यु मन्त्रद्रष्टा था। ऋग्वेद ४।४२ और ९।११० इसी के सूक्त हैं। काठकसंहिता २२।३ तथा ताण्ड्य ब्रा० २५।१६।३ के अनुसार इस त्रसदस्यु के एक सहस्र पुत्र थे।

ऋग्वेद ५।२७ में त्रैवृष्ण, त्र्यरुण, त्रसदस्यु और अश्वमेध पद पढ़े गए हैं। इस सूक्त का पुरातन ऋषि अत्रिभौम था। वह त्रसदस्यु आदि राजाओं से पहले हो चुका था। उसके पश्चात् त्रसदस्यु आदि भी उस सूक्त के ऋषि हुए। उन्हों ने मन्त्रों से स्वनाम रखे।

ऋग्वेद ८।१९ सोभरि काण्व का सूक्त है। उस के ३६वें मन्त्र में—

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्—पाठ है। इस दानस्तुति में पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः शाखागत पाठान्तर भी हो सकता है। यही बात ऋग्वेद १०।३ के कुरुश्रवणं त्रासदस्यवम् पाठ के सम्बन्ध में कही जा सकती है। यह भी दानस्तुति है। उपलब्ध ग्रन्थों में त्रसदस्यु का पुत्र कुरुश्रवण नामक राजा दिखाई भी नहीं देता। विष्णुपुराण में सोभरि को कन्या देने वाले राजा का नाम मान्धाता लिखा है। वस्तुतः वेद के मूल मन्त्रों में इतिहासगत कथाएं नहीं हैं।

---

१. अङ्गिराः त्रसदस्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च। मत्स्य १९६।३७॥

२. शतपथ ब्राह्मण १४।५।४।५॥ ३. हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास। ४. ए. इ. हि. ट्रे. पृ० १३३।

२४. सम्भूत—राजर्षि त्रसदस्यु का पुत्र सम्भूत था।

२५. अनरण्य द्वितीय—इस के संबन्ध में हम कुछ विशेष नहीं जानते। विष्णुपुराण में लिखा है कि दिग्विजय के समय एक रावण ने इसे मारा।[1] यह कथा रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग २१ में मिलती है। वायुपुराण ८८।७५ के अनुसार इस ने रावण को मारा।

२६. त्रसदश्व—यह अनरण्य-पुत्र था।

२७. हर्यश्व द्वितीय—हर्यश्व त्रसदश्वात्मज लिखा गया है। वायु में इस की स्त्री का नाम दृषद्वती है। महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ११४ में गालव और हर्यश्व की कथा वर्णित है।

२८. वसुमान्=वसुमनाः—इस का नाममात्र ज्ञात है। शान्तिपर्व ९२। ३ में वामदेव और वसुमना का तथा ६७।२-में बृहस्पति और वसुमना का संवाद लिखा है।

२९. त्रिधन्वा—वायु में इस का विशेषण धार्मिक है। त्रिधन्वा और त्र्य्यारुण जैमिनीय ब्राह्मण में उल्लिखित हैं।[2]

३०. त्र्य्यारुण—यह राजा विद्वान् अर्थात् मन्त्रद्रष्टा था। ऋग्वेद ५।२७ और ९।११० इस के सूक्त हैं। कात्यायन की ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी और शौनकीय बृहद्देवता में इसे त्रिवृष्ण का पुत्र कहा गया है। इस से प्रतीत होता है कि त्रिधन्वा अथवा त्रिवृष्ण नाम में पाठान्तर हुआ है। बृहद्देवता में इसे ऐक्ष्वाकु राजा लिखा है।[3] बृहद्देवता में जन-पुत्र वृष को त्र्य्यारुण का पुरोहित लिखा है। यह वृष आथर्वण अभिचारों में बड़ा निपुण था।

वायुपुराण के १०३ अध्याय में और ब्रह्माण्डपुराण के अन्त में पुराणप्रवचन की एक परम्परा का उल्लेख है। उस का विवरण निम्नलिखित-क्रम से है—

१. ब्रह्मा	६. मृत्यु=यम	११. शरद्वान्
२. मातरिश्वा=वायु	७. इन्द्र	१२. त्रिविष्ट
३. उशना काव्य	८. वसिष्ठ	१३. अन्तरिक्ष
४. बृहस्पति	९. सारस्वत	१४. वर्षिन्
५. सविता=विवस्वान्	१०. त्रिधामा	१५. त्र्य्यारुण

सम्भव है यह त्र्य्यारुण ऐक्ष्वाकु राजा हो। महाराज त्र्य्यारुण अपने अन्तिम जीवन में वानप्रस्थ हो गया था।[4]

३१. सत्यव्रत=त्रिशंकु—त्र्य्यारुण का पुत्र महाबल सत्यव्रत था। इस ने अनेक देवताओं को मार कर विदर्भ की भार्या हर ली। यह विदर्भ शशबिन्दु के कुल का राजा प्रतीत होता है। पार्जिटर की सम्मति में यादव-विदर्भ इस राजा के बहुत पश्चात् हुआ। परन्तु हम सत्यव्रत और विदर्भ की समकालिकता के मानने में कोई आपत्ति नहीं देखते।

---

१. ४।३।१७॥ २. कालेण्ड का संक्षेप १८०।

३. ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थितः। बृहद्देवता ५।१४॥

४. पिता चास्य वनं ययौ। अर्थात् सत्यव्रत का पिता वन को गया। वायु ८८।८४

त्रय्यारुण का न्याय—अपने पुत्र का यह अधर्माचरण देखकर राजर्षि पिता ने उसे चाण्डाल-वास दिया।[1] अन्त में पिता के वानप्रस्थ होने पर सत्यव्रत पुनः राजा बना।

विश्वरथ विश्वामित्र की समकालिकता—गाधि-पुत्र महामुनि विश्वामित्र इसी सत्यव्रत का समकालीन था। इसी के राज्य में अपनी स्त्रियों को छोड़कर विश्वामित्र ने महान् तप किया था। विश्वामित्र का तप-स्थान सागरानूप था।[2]

द्वादश वार्षिकी अनावृष्टि—इस राजा के राज्य के प्रारम्भिक दिनों में बारह वर्ष की एक घोर अनावृष्टि रही।[3] इस अनावृष्टि के अन्त में विश्वामित्र ने सत्यव्रत का यज्ञ कराया। देवता और वसिष्ठ इस यज्ञ के विरोधी थे।

भार्या—केकय वंश की सत्यरता नाम की राजकुमारी सत्यव्रत की स्त्री थी। इन दोनों का पुत्ररत्न हरिश्चन्द्र था।

त्रिशंकु का वेदानुवचन—तैत्तिरीयारण्यक ५।१०।१८ में इस का उल्लेख है।

३२. सम्राट् हरिश्चन्द्र चक्रवर्ती[4]

त्रिशंकु-पुत्र हरिश्चन्द्र भारतीय इतिहास का एक अति प्रसिद्ध राजा है। ऐतरेय ब्राह्मण ७।१३ और शांखायन श्रौतसूत्र १५।१७ में ऐक्ष्वाकु हरिश्चन्द्र को वैधस लिखा है। सायण के अनुसार वैधस का अर्थ वेधस-पुत्र है। इस से भिन्न अर्थ श्रौतसूत्र भाष्यकार आनर्तीय ने किया है। उसके अनुसार वेधा प्रजापति को कहते हैं। प्रजापति का होने से हरिश्चन्द्र वैधस था। ऐतरेय ब्राह्मण और शांखायन श्रौत के अनुसार हरिश्चन्द्र की सौ पत्नियां थीं।[5] त्रय्यारुण और त्रिशंकु दोनों विद्वान् थे। अतः उनका पुत्र वैधस था।

पर्वत-नारद—ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पर्वत-नारद उपस्थित थे। ऐतरेय ब्रा० ८।२१ के अनुसार पर्वत-नारद ने किसी आम्बाष्ठ्य का अश्वमेध यज्ञ कराया था। इस ब्राह्मण के अनुसार पर्वत-नारद ने उग्रसेन के पुत्र युधांश्रौष्ठि का भी यज्ञ कराया था। यदि ये पर्वत-नारद एक ही हैं तो हरिश्चन्द्र, आम्बाष्ठ्य और युधांश्रौष्ठि लगभग एक काल के राजा होंगे।

राजसूय यज्ञ और हरिश्चन्द्र के काल में क्षत्रिय-नाश—हरिश्चन्द्र का राजसूय यज्ञ सुप्रसिद्ध है। इस यज्ञ के कारण हरिश्चद्र सम्राट् कहाया। हरिवंश में इस यज्ञ के विषय में एक कथा लिखी है। उसमें कौरव तृतीय जनमेजय व्यास से कहता है कि राजसूय यज्ञों के पश्चात् सदा क्षत्रिय-नाश होता है। हरिश्चन्द्र के यज्ञ के पश्चात् भी आडीवक युद्ध हुआ था। उसमें क्षत्रिय-नाश हुआ।[6] आडीवक युद्ध पहले हो चुका था अतः यहां आडीवक पद किसी दूसरे

---

१. वायु ८८।८२–८४॥ २. वायु ८८।८६॥ ३. वायु ८८।८५॥
४. मै० उप० १।४॥ ५. तस्य ह शतं जाया बभूवुः। ऐ० ब्रा० ७।१३॥
६. हरिवंश तीसरा, भविष्य पर्व २।१८॥

शब्द का भ्रष्ट-पाठ है। यदि शुद्ध पाठ मिल जाए, तो एक महती ऐतिहासिक घटना स्पष्ट हो जायगी।

सप्तद्वीपेश्वर—हरिश्चन्द्र के सप्तद्वीप विजय का उल्लेख महाभारत में मिलता है।[1] उस से विजित सब राजा उसके राजसूय यज्ञ में उपस्थित थे।

पत्नि—राजर्षि उशीनर की कन्या सत्यवती ने हरिश्चन्द्र को स्वयंवर में वरा था।[2] उशीनर राज्य शिबिपुर में था।[3] अतः सत्यवती शैब्या भी कहाती थी।

१. सभापर्व १२।१५॥ २. वनपर्व ७७।२८,२९॥ ३. देखो पृ० ७४।

अठारहवां अध्याय

यादव-वंशज सम्राट् चक्रवर्ती हैहय कार्तवीय अर्जुन

जिस समय अयोध्या में सम्राट् हरिश्चन्द्र राज्य कर रहा था, उससे कुछ काल पीछे नर्मदा नदी के प्रदेश में एक महान् विजेता राज्य करता था। उसका यथार्थ काल अभी निश्चित नहीं किया जा सका, परन्तु था वह सम्राट् हरिश्चन्द्र के पश्चात् ही। गत अध्याय में हम लिख चुके हैं कि हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ के पश्चात् एक क्षत्रिय-नाश हुआ। बहुत संभव है उस नाश का सम्बन्ध कार्तवीर्य अर्जुन और जामदग्न्य राम से हो।

कार्तवीर्य का कुल—यदु-पुत्र क्रोष्टु के कुल का वर्णन शशविन्दु चक्रवर्ती के वर्णन समय पृ० ७० पर हो चुका है। यदु का दूसरा पुत्र सहस्रजित् था। सहस्रजित् का पुत्र शतजित् था। उसके पश्चात् हैहय राजा हुआ। इस हैहय के कारण उस के वंश का नाम हैहय हुआ। हैहय-पुत्र धर्मनेत्र था। उसका पुत्र कुन्ति और कुन्ति-पुत्र साहञ्जय था।

साहञ्जनी पुरी—हरिवंश १।३३।४ के अनुसार महाराज साहञ्जय ने साहञ्जनी पुरी बसाई थी। वायु, विष्णु और मत्स्य में इस पुरी का वर्णन नहीं है।

महिष्मान्—साहञ्जय का दायाद प्रसिद्ध माहिष्मान् था। इस राजा ने माहिष्मती पुरी बसाई थी। भारतीय इतिहास में इस नगरी की बड़ी ख्याति रही है। पार्जिटर के अनुसार यह नगरी नर्मदा के तट पर मान्धाता के नाम से अब भी प्रसिद्ध है।

भद्रश्रेण्य—महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य था। यह राजा अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। इसने काशी को विजय कर लिया था। भद्रश्रेण्य का राज्य निष्कण्टक रहा। परन्तु उसकी सन्तति इतनी शक्तिशालिनी नहीं थी।

काशी-राज्य—नहुष के पुत्रों में एक क्षत्रवृद्ध था। उस की सन्तान में धन्वन्तरि प्रसिद्ध वैद्य-राज था। धन्वन्तरि के कुछ काल पश्चात् दिवोदास प्रथम हुआ। पुराणों का दिवोदास सम्बन्धी इतिहास कुछ अस्तव्यस्त हो गया है। पार्जिटर के मतानुसार दिवोदास दो थे।[1] हमें यह मत ठीक प्रतीत होता है। इस दिवोदास प्रथम के पीछे भद्रश्रेण्य के पुत्र काशी से निकाले गए थे। काशी पर तब दिवोदास के कुल का राज्य होगया था।

दुर्दम—भद्रश्रेण्य के कुल में फिर दुर्दम नामक राजा हुआ। दुर्दम के पश्चात् कनक और उसके पश्चात् कृतवीर्य राजा हुआ। कृतवीर्य का राज्य ७७ सहस्रवर्ष रहा।[2] कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन था।

---

१. ए० इ० हि० ट्र० पृ० १५३—१५५। २. मत्स्य ६८।७,८॥

कार्तवीर्य अर्जुन—यह अर्जुन सहस्रबाहु कहाता था। मत्स्य में लिखा है कि उसके ये बाहु इच्छा से उत्पन्न होते थे।[१] हरिवंश के अनुसार अर्जुन के सहस्रबाहु युद्ध के समय योगमाया से प्रादुर्भूत होते थे।[२] इस का एक नाम बाहुद था। इस की अवतारिता नदी बाहुदा या आर्जुनी थी।[३]

राज्यकाल—इसका राज्यकाल ८५ सहस्र वर्ष अर्थात् लगभग ८५ वर्ष था।[४] इतने काल में इसने सारी पृथिवी जीती। सैकड़ों यज्ञ किये। इसके यज्ञों के सम्बन्ध में गन्धर्व और नारद की गाथाएँ पुराणों में अति प्रसिद्ध हैं। हरिवंश में इस नारद को वरीदासात्मज और विद्वान् लिखा है।[५] अर्जुन का गुरु आत्रेय वंशज दत्त ऋषि था। इस दत्तात्रेय की कृपा से अर्जुन को सहस्रबाहु प्रकट करने की योगमाया मिली थी।[६]

भार्गवों से विरोध—इस राजा का भार्गवों से बहुत विरोध हो गया था। आपव वासिष्ठ नाम के एक मुनिप्रवर ने इसे शाप दिया। अर्जुन ने न्यस्तशस्त्र जमदग्नि को मारा।[७] अर्जुन और ब्राह्मण-विद्वेष का उल्लेख हर्षचरित में मिलता है—कार्तवीर्यो गोब्राह्मणातिपीडनेन निधनमयासीत्।[८] सुबन्धुकृत वासवदत्ता में भी यह संकेत है—कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पञ्चत्वमयासीत्।[९]

भारत में नाग-वंश का प्रवेश—यही वीर राजा था, जो नागों को अपनी माहिष्मती पुरी में बसने के लिए लाया।[१०]

रावण बद्ध—अर्जुन दल बल सहित लङ्का में गया और रावण को बांध कर माहिष्मती पुरी में ले आया। यह रावण राम के समकालिक रावण से बहुत पहला होगा।[११]

भूतावमानी—कौटल्यार्थशास्त्र अध्याय छः में इस राजा को भूतावमानी लिखा है।

अर्जुन का काल—सहस्रबाहु अर्जुन की मृत्यु जामदग्न्य राम के हाथों हुई। पुराणों के अनुसार जामदग्न्य राम १९वें त्रेतायुग में हुआ।[१२] महाभारत के अनुसार यह राम त्रेता-द्वापर

---

१. जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः। ४३।१९॥

२. तस्य बाहुसहस्रं तु युद्ध्यतः किल भारत।
योगाद्योगेश्वरस्यैव प्रादुर्भवति मायया ॥१।३३।१४॥ तुलना करो वायु ९४।१५॥

३. हैम अभिधान चिन्तामणि की टीका ४।१५२॥

४. हरिवंश १।३३।२३॥ विष्णु ४।११।१८॥ वायु ९४।२३॥ ५. १।३३।१९॥ ६. दत्तात्रेयप्रसादेन राजा बाहुसहस्रवान्। शान्तिपर्व ४८।३६॥ ७. पश्चिमोत्तरशाखीय वाल्मीकीय रामायण भगवद्दत्त संपादित बालकाण्ड ७१।२६॥ ८. उच्छ्वास ३। ९. पृ० ३४०।

१०. स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटकसुताञ्जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् ॥ हरिवंश १।३३।२६॥

११. वायु० ९४।३५॥

१२. एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद्विभुः।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥ मत्स्य ४७।२४४॥

की सन्धि में हुआ।[1] इन दो कथनों से प्रतीत होता है कि पुराणों में एक ही त्रेता के अनेक अवान्तर विभाग किए गए हैं। महाभारत ने यह क्रम नहीं बर्ता। बहुत संभव है त्रेता तीन सहस्र वर्ष का हो और पुराणों ने उस का १२५ वर्ष का एक एक अवान्तर त्रेता माना हो, अस्तु। पुराणों के ऐतिहासिक प्रकरणों में त्रेता और द्वापर का सन्धि काल कहीं उल्लिखित नहीं।

परशु राम का उदय—जैमिनीय ब्राह्मण १।१५१ के अनुसार जमदग्नि माहेयों का पुरोहित था। अर्जुन ने जमदग्नि को मार दिया। जमदग्नि का पुत्र परशु राम जानता था कि आततायी शस्त्रबल के बिना सीधा नहीं होता। अतः राम ने शस्त्र उठाया।

मृत्यु—ऐसा महाबली सप्तद्वीपेश्वर राजा जामदग्न्य राम के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इस घटना को अश्वघोष बड़े मनोरञ्जक शब्दों में लिखता है।[2] कार्तवीर्य अर्जुन को मार कर राम ने क्षत्रीय-संहार किया। यह समय सम्राट् हरिश्चन्द्र के आसपास का ही था।

वंश-विस्तार—अर्जुन के वंश में ही हैहयों के पांच गण प्रसिद्ध हुए। उनके नाम थे वीतिहोत्र, भोज, आवन्त, कुण्डिकेर या तुण्डिकेर और तालजंघ।

---

१. त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥ आदिपर्व २।३॥

२. क्व कार्तवीर्यस्य बलाभिमानिनः सहस्रबाहोर्बलमर्जुनस्य तत्।
चकर्त बाहून्युधि यस्य भार्गवो महान्ति शृङ्गाण्यशनिर्गिरेरिव॥ सौन्दरनन्द ९।१७॥

उन्नीसवां अध्याय

सम्राट् हरिश्चन्द्र-पुत्र रोहित से राम पर्यन्त

रोहित या रोहिताश्व—रोहित ने रोहितपुर नाम का नगर बसाया। वर्तमानकाल में बंगाल प्रान्त के शाहाबाद जिले का रोहतास स्थान वही पुर कहा जाता है। यह नगर अपने दुर्ग के लिए बहुत प्रसिद्ध है। रोहित ने यह नगर ब्राह्मणों को दे दिया और कुछ काल राज्य करके स्वयं वानप्रस्थ हुआ।

हरित—रोहिताश्व का पुत्र महाराजा हरित था।

चञ्चु—हरित-पुत्र चञ्चु था। इसे हारीत भी कहते थे।

विजय—चञ्चु के दो पुत्र थे, विजय और सुदेव। इनमें विजय राज्याधिकारी था। वह सर्वक्षत्र का विजेता था।

रुरुक—विजय-पुत्र रुरुक था।

वृक—रुरुक का पुत्र वृक था।

बाहु=असित[1]—वायु में इसे व्यसनी लिखा है।[2]

अयोध्या के राजवंश का हैहयों से वैर—कार्त्तवीर्य अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र, पौत्र और बन्धु लोग परशुराम के भय से हिमाद्रि के वनगह्वर में चले गए थे। जब जामदग्न्य राम २१ बार पृथिवी पर क्षत्रहत्या कर चुका, तो उसने एक हयमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ के अन्त में वह तपस्या के लिए हिमालय के एक प्रदेश में चला गया। उस समय हैहय-कुल के तालजंघ और वीतिहोत्र आदि राजा अपनी माहिष्मतीपुरी में गए। वहां से आकर उन्होंने अयोध्या पर भारी आक्रमण किया।[3]

इस आक्रमण में हैहय और तालजंघों का साथ पांच क्षत्रिय-गणों ने दिया। वे थे—शक, यवन, पारद, काम्बोज और पल्हव।

उत्तर शाखीय वाल्मीकि रामायण के भ कोश के पाठों में भी इस वैर का वर्णन मिलता है। देखो, हमारा संस्करण, बालकाण्ड ६६।२४ का बृहत् टिप्पण।

बाहु का पराजय—उस समय बाहु वृद्ध हो चुका था। फिर भी वह कुछ काल तक

---

१. वाल्मीकीय रामायण उत्तरशाखीय पाठ बालकाण्ड ६६।२४॥ अयोध्याकाण्ड १२३।१५॥

२. वायु ८८।१२२, १२७॥

३. सपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।७४॥
रुरोधाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः ॥७५॥ ब्रह्माण्ड ३।४७॥

तालजंघों से लड़ा। अन्त में शत्रु-विजय हुई और बाहु अपनी अन्तर्वत्नी यादवी पत्नी के साथ उस नगर और राज्य को छोड़कर वन की ओर भागा।[1]

और्व आश्रम—बाहु और्व आश्रम के समीप रहने लगा। वहीं दुःख और शोक में उसकी मृत्यु हुई। बाहु की पत्नी अपने पति के साथ अग्नि-प्रवेश करने लगी। यह जानकर और्व स्वयं उस देवी के पास पहुँचा और उसे अग्नि में प्रविष्ट न होने दिया। और्व के आश्रम में बाहु की पत्नी ने सगर को जन्म दिया। रामायण के कुछ पाठों के अनुसार इस ऋषि का नाम च्यवन था। यह एक भूल है। संभव है मूल पाठ च्यावन हो।

४०. चक्रवर्ती सगर

प्रारम्भिक जीवन—सगर के जातकर्मादि संस्कार मुनि और्व ने स्वयं किए।[2] उसी मुनि-आश्रम में सगर ने शिक्षा ग्रहण की। वायुपुराण में लिखा है कि सगर ने भार्गव=जामदग्न्य राम से आग्नेयास्त्र लिया।[3] ब्रह्माण्ड में लिखा है कि सगर भार्गव के महारौद्रास्त्र को काम में लाता था।[4] इन कथनों से ज्ञात होता है कि या तो और्व ने स्वयं ये अस्त्र सगर को दिए, अथवा सगर ने राम के समीप भी अस्त्रविद्या का पाठ किया होगा। जामदग्न्य राम और्व का ही वंशज था।[5] ऋषियों की आयु दीर्घ होती थी, यह निर्विवाद है।

ब्रह्माण्डपुराण का सगर-विजय वृत्तान्त—ब्रह्माण्डपुराण ३।४८ में किसी पुरातन पुराण या सगर-विजय से लिया एक प्रकरण है। उसमें सगर-विजय का दिग्दर्शन कराया गया है। इस प्रकरण में अनेक ऐतिहासिक घटनाएं वर्णित हैं। उनका उल्लेख आगे किया जाता है।

सगर ने बाल्यावस्था में अयोध्या का राज्य हस्तगत कर लिया। अयोध्या में उसने रिपु-नाश का संकल्प किया। ब्रह्माण्ड में उसकी सेना के ऐश्वर्य का अत्यन्त सुन्दर शब्दों में वर्णन मिलता है। पहले सगर ने मध्य-देश का विजय किया। तब वह दक्षिणाभिमुख हुआ।

हैहय-विजय—हैहयों का वैर स्मरण करके वह उनकी ओर पहुँचा। हैहय वीरों के साथ उसका रोम-हर्षण संग्राम हुआ। उस महायुद्ध में सगर ने अनेक राजाओं का नाश किया। उसने माहिष्मती पुरी को निःशेष कर दिया, जला दिया। उस महाबली ने भागते राजाओं का आग्नेयादि अस्त्रों से संहार किया।

काम्बोज और उत्तरापथ का विजय—हैहयों का नाश करके सगर उत्तरापथ की ओर बढ़ा। उसने शक, यवन, काम्बोज, किरात, पह्लव और पारदों का क्रम से नाश किया। बाहु को पराजित करने में इन सब जातियों ने तालजंघों और हैहयों की सहायता की थी। सगर ने उन सब से बदला लिया।

सन्धि—भयभीत कांबोजादि लोग वसिष्ठ की शरण में पहुंचे। वसिष्ठ ने सगर से

---

१. ब्रह्माण्ड ३।४७।७८॥ २. ब्रह्माण्ड ३।४७।८७॥ तुलना करो—मुनिरूर्ध्वं कुमारस्य सगरस्येव भार्गवः॥ सौन्दरनन्द १।२५॥ ३. वायुपुराण ८८।१२४॥ ४. ब्रह्माण्ड ३।४८।२०॥ ५ देखो पृ० ५६॥

उनकी सन्धि करा दी।[1] दण्ड में इन जातियों को कुछ काल तक संस्कार-हीन होना पड़ा। ये लोग व्रात्य बन गए।

विदर्भ-विजय—उत्तर से निपट कर सगर विदर्भ की ओर बढ़ा। विदर्भ के राजा का नाम पुराण में नहीं लिखा। पार्जिटर ने यादव-विदर्भ को सगर का सम-कालीन माना है। यह समकालिकता ठीक नहीं है। सगर का समकालीन विदर्भ उसी यादव विदर्भ का कोई वंशज था। विदर्भराज ने अपनी केशिनी नाम की अनुपमा सुन्दरी कन्या का उस से विवाह कर दिया।

शूरसेनों की मथुरा—विदर्भ से राजा सगर पारिवहों से होता हुआ शूरसेनों की मथुरा में आया। ये यादव उस के मामा थे।[2] उन से वह बहुत सत्कृत हुआ।

इस प्रकार सगर ने सब राजाओं को अपना करदाता बनाया। तब वह अपनी नगरी को लौटा। अयोध्यावासियों ने अत्यन्त उत्साह से उस का स्वागत किया। बड़े महोत्सव हुए। सारा नगर अलंकृत किया गया। सगर की माता अभी जीवित थी। राजप्रासाद में पहुंच कर सगर ने मातृचरण-वंदना की। तत्पश्चात् मातृ-आज्ञा से वह पृथिवी का पालन करता रहा।

आपव वसिष्ठ—इसी अन्तर में आपव वसिष्ठ स्वयं राजा से मिलने आया।

पत्नियां—सगर की दो प्रसिद्ध पत्नियां थीं। विदर्भराजतनया केशिनी का नाम पहले लिखा जा चुका है। दूसरी पत्नी सुमति थी। सुमति के पिता का नाम अरिष्टनेमि[3] और भाई का नाम सुपर्ण था।[4] अरिष्टनेमि काश्यप था।[5] केशिनी का पुत्र असमञ्जा या महाबल बर्हिकेतु[6] था।

सगर का अश्वमेध—सगर ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उस के हयमेध का घोड़ा पूर्व-दक्षिण समुद्र की वेला के समीप लुप्त हो गया। इस से आगे कपिल और राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों की कथा प्राचीनतम काल से प्रसिद्ध चली आती है। सम्भव है यहां साठ सहस्र का अर्थ साठ हो। इन सब पुत्रों में से केवल चार पुत्र कपिल के तेजो अग्नि से बचे। वे थे असमञ्जा या बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और शूर पञ्चवन। ये ही सगर के वंशकर पुत्र थे।[7]

सागर वेला—सगर ने समुद्र पर वेला बांधी।[8] इसका अभिप्राय विचारणीय है।

सगर का राज्यकाल—वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सगर का राज्यकाल तीस सहस्रवर्ष

---

१. ब्रह्माण्ड ३।४८।४१॥ २. ब्रह्माण्ड ३।४९।६॥
३. वायुपुराण ८८।१५६॥ वा० रा० बालकाण्ड ३५।४॥
४. वायुपुराण ८८।१५९॥ वा० रा० बालकाण्ड ३५।१४॥ ५. विष्णु ४।४।१॥ ६. वायुपुराण ८८।१६५॥
७. वायुपुराण ८८।१४९॥ ८. वेलां समुद्रे सगरश्च दध्रे नेक्ष्वाको यां प्रथमं बबन्धुः ॥ बुद्धचरित १।४४॥

था।[1] रामायण में लिखा है कि सगर ने पुत्र प्राप्ति के लिए पूर्ण सौ वर्ष तक तपस्या की।[2] वा० रा० के लाहौर संस्करण के दो कोशों में इस सौ वर्ष के स्थान में सहस्रवर्ष पाठ है। अतः रामायण में यहां शत या सहस्र पद का क्या अर्थ है, यह अभी हम नहीं कह सकते।

क्षत्रिय यवन—सगर के काल तक यवन लोग पूर्ण आर्य और क्षत्रिय थे। वे भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेशों में रहते थे। उनकी भाषा संस्कृत थी। सगर के बहुत काल पश्चात् ये यवन योरुप में गए। तब इन की भाषा बहुत परिवर्तित हो चुकी थी। योरुप में इन्होंने जिस देश पर अपना आधिपत्य जमाया वह यवन देश हुआ। उस देश के अनेक नगरों, ग्रामों, पर्वतों और नद नदियों के नाम इन्होंने अपने पुराने स्थानों के नामों पर और भारत के दूसरे पवित्र स्थानों के नामों पर रखे।[3] आज भी ग्रीक या यवन भाषा उसी पुराने सम्बन्ध का पता दे रही है।

आधुनिक पाश्चात्य लेखकों ने इस सत्य को भूल कर यवनों के विषय में नए नए काल्पनिक विचार घड़ लिए हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में यवन शब्द देख कर वे सहसा कह उठते हैं कि यह ग्रन्थ सिकन्दर के पञ्जाब-आक्रमण के पश्चात् का है। यह भ्रान्ति इस लिए उत्पन्न हुई है कि ये लेखक पुरातन भारतीय इतिहास को नहीं जानते। उन्हें एक ही भूल मार रही है कि आर्य लोग ईसा से लगभग २४०० वर्ष पहले उत्तर-पश्चिम के मार्ग से भारत में आए। तभी वे योरुप की उन जातियों से पृथक् हुए जो संस्कृत से सादृश्य रखने वाली भाषाएं बोलती हैं। अस्तु, भारतीय विभिन्न पुरातन ग्रन्थकारों का यह निश्चित मत है कि यवन आदि जातियां कभी शुद्ध आर्य जातियां थीं। सगर के दण्ड के कारण इन का स्वाध्यायादि नष्ट हुआ।

४१. असमञ्जा = बर्हिकेतु—असमञ्जा आर्य शिष्टाचार-विहीन था। अपनी छोटी अवस्था में ही वह प्रजा को तंग करने लगा। जब उसका सुधार कठिन हो गया तो पिता ने उसे निर्वासित कर दिया। असमञ्जा के विप्रवास की कथा महाभारत में भी है।[4]

४२. अंशुमान्—पुराण-वंशावलियों के अनुसार अंशुमान् असमञ्जा का पुत्र था।[5] मत्स्यपुराण के पन्द्रहवें अध्याय में पितृ-कन्याओं का वर्णन है। उस के अनुसार यशोदा नाम की पितृकन्या अंशुमान् की पत्नी और पञ्चजन की स्नुषा थी। वही यशोदा दिलीप की जननी और भगीरथ की पितामही थी।[6] हम पहले पृष्ठ ९८ पर वायुपुराण के प्रमाण से लिख चुके हैं कि कपिल के क्रोध से सगर के चार पुत्र बचे थे। उन में से एक पञ्चवन भी था। संभवतः पञ्चवन और पञ्चजन एक नाम है। इस प्रकार यह दूसरा मत होगा कि अंशुमान् असमञ्जा का नहीं, किन्तु उस के भाई पञ्चजन का पुत्र है। हरिवंश में भी अंशुमान् को पञ्चजन का पुत्र लिखा है।[7]

---

१. बालकाण्ड ३८।२७॥ २. बालकाण्ड ३५।६॥

३. देखो पोकोक महाशय का India in Greece. ४. आरण्यकपर्व १०६।१०—१५॥

५. मत्स्य १२।४३॥ वायु ८८।१६६॥ वा० रा० बालकाण्ड ३५।२१ में भी यही कहा है।

६. मत्स्य १५।१८, १९॥ ७. १। १५।१३॥

इस विषय में एक और भी कल्पना हो सकती है। असमञ्जा पिशाच या चाण्डाल समझा जाता था। उसे ही पञ्चजन कह सकते हैं। परन्तु इन सब बातों के निर्णय के लिए पुराण आदि के बहुत अधिक हस्तलिखित कोषों की आवश्यकता है।

सगर के यज्ञीय घोड़े की रक्षा का काम वीर अंशुमान् के आश्रय पर था।[१] अंशुमान् अपने अन्तिम दिनों में वानप्रस्थ हो गया।[२] वह हिमवच्छिखर पर बत्तीस सहस्र वर्ष तप करता रहा। परन्तु वह गङ्गा को नीचे लाने में समर्थ नहीं हो सका।[३]

४३. दिलीप प्रथम—इसका अधिक वृत्त ज्ञात नहीं। रामायण के अनुसार दिलीप ने तीस सहस्र वर्ष तक पृथिवी का पालन किया।[४] दिलीप की मृत्यु व्याधिवश हुई।[५] ब्रह्माण्ड में दिलीप का वनस्थ होना लिखा है।[६] महाभारत में इस बात का समर्थन है।[७]

४४. भगीरथ—यह नाम भारतीय इतिहास में पराकाष्ठा की ख्याति प्राप्त कर चुका है। महाराज भगीरथ के सतत परिश्रम से पुण्य-सलिला गङ्गा भारत में बहने लगी। इस कारण गङ्गा का नाम भागीरथी भी हुआ। इस विषय का एक पुराना श्लोक वायुपुराण में उद्धृत है।[८] विष्णु में भगीरथ का पुत्र सुहोत्र लिखा है। अन्य पुराणों में यह नाम नहीं है।

भगीरथ का तप—गङ्गा को भूमि पर लाने के लिए भगीरथ ने बिन्दुसर पर तप तपा था।[९]

भगेरथ ऐक्ष्वाक—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में लिखा है—भगेरथो हैक्ष्वाको राजा।[१०] भगीरथ और भगेरथ का ऐक्य विचारणीय है।

जह्नु की समकालिकता—ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में भगीरथ के साथ जह्नु की समकालिकता लिखी है। यह समस्या विचारणीय है।[११] पार्जिटर इस समकालिकता को नहीं मानता।[१२]

४५. श्रुत—भगीरथ का पुत्र श्रुत था। मत्स्य में यह नाम नहीं है।

४६. नाभाग—नित्य धर्मपरायण नाभाग श्रुत का दायाद था।[१३]

४७. अम्बरीष—नाभाग का पुत्र अम्बरीष था। वायुपुराण में वंशपुराणज्ञों की अम्बरीष-विषयक एक गाथा लिखी है। उस में लिखा है कि अम्बरीष के काल में भूमि ताप-त्रय-विवर्जिता थी।[१४]

---

१. वा० रा० बालकाण्ड ३६।६॥ २. ब्रह्माण्ड ३।५६।३०॥ वा० रा० बालकाण्ड ३९।३॥
३. वा० रा० बालकाण्ड ३९।४,५॥ ४. वा० रा० बालकाण्ड ३९।९॥ ५. बालकाण्ड ३९।१०॥
६. ब्रह्माण्ड ३।५६।३३॥ ७. आरण्यकपर्व १०६।४०॥ ८. वायु ८८।१६९॥
९. वायु ४७।२४॥ तथा भीष्मपर्व ७।४१॥ १०. जै० उ० ब्रा० ४।६।१,२॥
११. गङ्गाप्रवाहमिव जह्नुम्। कादम्बरी, कथामुख।
१२. ए. इ. हि. ट्रे. पृ० ९९—१०१॥ १३. वायु ८८।१६०॥
भूपाश्च नाभागभगीरथादयो महीमिमां सागरान्तां विजित्य। वनपर्व २५।१२॥
१४. वायु ८८।१७२॥

दो नाभाग अम्बरीष—हम पृ० ४७ पर लिख चुके हैं कि मनु का एक पुत्र नभग या नाभाग था। और नाभाग का पुत्र अम्बरीष था। अम्बरीष के कुल में विरूप आदि ऋषि हुए। वे पहले थे और ये उन के अनन्तर हैं।

षोडशराजोपाख्यान में अम्बरीष—शान्तिपर्व २८।१००—१०४ तथा द्रोणपर्व अध्याय ६४ में नाभाग अम्बरीष का वर्णन है। उन दोनों स्थानो में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वहां किस नाभाग अम्बरीष का वर्णन है। हमारा अनुमान है कि यह वर्णन ऐक्ष्वाकु अम्बरीष का है। यह अम्बरीष अनेक क्षत्रिय राजाओं से लड़ा। इसने उन्हें युद्ध में परास्त किया। इसकी दक्षिणा अपरिमित थी।

कौटल्य और अम्बरीष—आचार्य विष्णुगुप्त अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि अम्बरीष नाभाग ने शत्रु-षड्वर्ग का उत्सर्जन करके चिरकाल तक राज्य किया।[1] कौटल्य का अभिप्राय षोडशराजोपाख्यान वाले अम्बरीष से है। उसी ने अनेक राजाओं को परास्त किया था।

अश्वघोष अपने बुद्धचरित में लिखता है कि अम्बरीष तपोवन में वास करने लगा, पर प्रजाओं से वरा हुआ फिर पुर को चला गया।[2] क्या यह इसी अम्बरीष का वर्णन है?

४८. सिन्धुद्वीप—इसके सम्बन्ध में हम इतना जानते हैं कि वह ऋषि था। ऋग्वेद १०।९ इसी का सूक्त है। अनुक्रमणी में स्पष्ट लिखा है—सिन्धुद्वीप आम्बरीषः।

४९. अयुतायु—वायु, मत्स्य और विष्णु में इसका नाममात्र है।

५०. ऋतुपर्ण—अयुतायु के पश्चात् ऋतुपर्ण राजा हुआ। यह राजा दिव्याक्षहृदयज्ञ था। वायुपुराण के अनुसार यह ऋतुपर्ण वीरसेनात्मज नल का सखा था।[3] महाभारत वनपर्वान्तर्गत नलोपाख्यान में ऋतुपर्ण को अयोध्या में राज करने वाला लिखा है।[4] उसे कोसलराज भी कहा है।[5] महाभारत में ऋतुपर्ण का एक विशेषण भागस्वरि या भाङ्गस्वरि है।[6]

अध्यापक सीतानाथ प्रधान का मत—प्रधान महोदय का कथन है कि बौधायन श्रौत १८।१३ में ऋतुपर्ण का विशेषण भाङ्गाश्विन है। आपस्तम्ब श्रौत २१।१०।३ में ऋतुपर्ण को भाङ्गयश्विन लिखा है। महाभारत में ऋतुपर्ण भागस्वरि या भाङ्गस्वरि है। ये सब विशेषण एक ही मूल बताते हैं। फिर बौधायन के अनुसार यह ऋतुपर्ण शफालों का राजा था।[7] अतः ऋतुपर्ण दक्षिण-कोसल का राजा होगा, पुराण वंशावलियों के अनुसार उत्तर-कोसल का नहीं।[8]

हम ऊपर लिख चुके हैं कि महाभारत में ऋतुपर्ण को अयोध्या में राज करने वाला लिखा है।[9] अतः प्रधान की कल्पना से हम सहमत नहीं हो सकते। बहुत सम्भव है कि अयुतायु का

१. आदि से अध्याय ६। २. बुद्धचरित ९।६९॥ ३. वायुपुराण ८८।१७४, १७५॥

४. वनपर्व ६८।२, ३॥ ५. वनपर्व ७२।८॥ ६. वनपर्व ६८।२॥७५।१९॥ सभापर्व ८।१५ का पाठ भाङ्गास्वरि है। ७. तुलना करो—शैफालिकम्, महाभाष्य ५।३।५५॥

८. क्रोनालोजि आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, सन् १९२७, पृ० १४४—१४७॥

९. अयोध्यां नगरीं गत्वा भागस्वरिरुपस्थितः। वनपर्व ६८।२॥

दूसरा नाम भङ्गाश्विन हो। प्रधान महाशय पाञ्चाल दिवोदास को दशरथ का समकालीन बनाना चाहते हैं। इसमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि पुराणों की वंशावलियों में अनेक साधारण राजाओं के नाम छोड़ दिए गए हैं। अतः उनका ध्यान न करना ठीक नहीं।

ऋतुपर्ण के समकालीन—महाभारतान्तर्गत नलोपाख्यान के पाठ से तथा वनपर्व और आदिपर्व के दो स्थलों के पाठ से पता लगता है कि निम्नलिखित राजा ऋतुपर्ण के समकालीन थे—

दशार्ण	चेदी	विदर्भ	निषध	कोसल	उत्तर पाञ्चाल
सुदामा	...	...	...	......	....
दो कन्याएँ[1]	वीरबाहु[1]	भीम	वीरसेन	अयुतायु	तृक्ष
	सुबाहु[2]	दमयन्ती, दम	नल	ऋतुपर्ण	भृम्यश्व
			इन्द्रसेन[3] तथा इन्द्रसेना		मुद्गल

विन्ध्यपृष्ठ के दशार्णाधिपति सुदामा की दो कन्याएँ थीं। एक का विवाह वीरबाहु से हुआ और दूसरी का भीम से। वीरबाहु का पुत्र सुबाहु और कन्या सुनन्दा थी। भीम की कन्या दमयन्ती और पुत्र दम आदि थे। नल और दमयन्ती का पुत्र इन्द्रसेन और कन्या इन्द्रसेना थी। यह नल चारों वेदों का पण्डित था।[4] कौटल्य अर्थशास्त्र में इस नल का सुयात्र नाम से स्मरण है।[5] नालायनी अर्थात् नल कन्या इन्द्रसेना भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल से ब्याही गई।[6] यह मुद्गल उत्तर-पाञ्चाल का राजा था। ऋग्वेद १०।१०२ इस भार्म्यश्व मुद्गल का सूक्त है।

शतपथ ब्राह्मण २।३।२।१,२ में एक नड नैषिध उल्लिखित है। कई लेखक वीरसेनात्मज नल को शतपथ ब्राह्मण वाला नल समझते हैं। हमें यह ऐक्ष्वाक नल प्रतीत होता है।

पार्जिटर की तुलनात्मक वंशावलियों में मुद्गल का स्थान बहुत नीचे है। वह ठीक नहीं। प्रधान का मत यहां सर्वथा ठीक है।

५१. सर्वकाम—इस के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

५२. सुदास—वायु में इसे हंसमुख लिखा है। मत्स्य में सर्वकाम और सुदास दोनों नाम छूट गए हैं। हरिवंश के अनुसार एक सुदास राजा इन्द्रसखा था।[7]

---

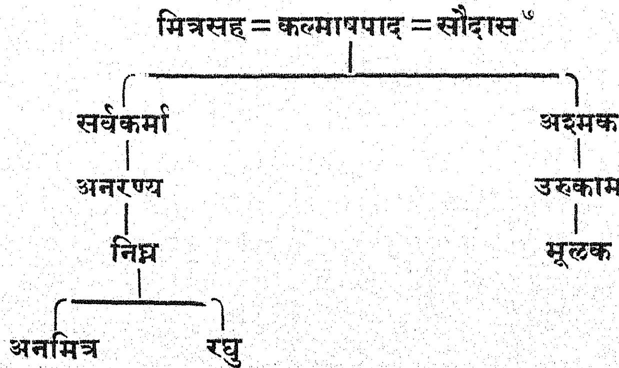
१. वनपर्व ६६।१३–१५॥ २. वनपर्व ६२।४५॥ ३. वनपर्व ५४।४९॥ ४. वनपर्व ५५।९॥

५. आदि से १२८ अध्याय। ६. नालायनी चेन्द्रसेना बभूव वश्या नित्यं मुद्गलस्याजमीढ। वनपर्व ११४।२४॥
नालायनीं सुकेशान्तां मुद्गलश्चारुहासिनीम्। आदिपर्व, पृ० ९४८, पूना संस्करण।
दमयन्त्याश्च मातुः सा विशेषमधिकं ययौ। आदिपर्व, पृ० ९४९, पूना संस्करण। नाडायनी चेन्द्रसेना। विराटपर्व २०।८॥ ७. १।१५।२०॥

५३. कल्माषपाद = मित्रसह—सौदास कल्माषपाद बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। वसिष्ठ-पुत्र शक्ति ऋषि ने कल्माषपाद को कोई शाप दिया था।[1] कहीं कहीं लिखा है कि राजा कल्माषपाद को वसिष्ठ ने शाप दिया। पार्जिटर ने दोनों पक्ष एकत्र करके अच्छी विवेचना की है।[2] महाभारत आदिपर्व १६८।५ पूना संस्करण के कुछ अच्छे हस्तलेखों में वासिष्ठ का ही शाप लिखा है। कदाचित् इसी शाप के कारण वह बारह वर्ष तक जंगलों में फिरता रहा।[3] आदिपर्व में यह कथा वर्णित है।[4] पूना संस्करण के पांचवें श्लोक में वसिष्ठस्य के स्थान में वासिष्ठस्य पाठ अधिक युक्त है। यह पाठ कुछ कोशों में मिलता भी है। इस राजा की स्त्री का नाम मदयन्ती था। वसिष्ठ ने राजा की प्रार्थना पर उस से एक नियोगज पुत्र उत्पन्न किया।[5] रामायण में इसे प्रवृद्ध लिखा है।[6] कौषीतकि ब्राह्मण में लिखा है—वसिष्ठोऽकामयत हतपुत्रः प्रजायेय प्रजया पशुभिरभि सौदासान् भवेयमिति। ४।८॥ इस वचन से वसिष्ठ और कल्माषपाद आदि सौदासों का कलह स्पष्ट है। सौदासकथा रामायण उत्तरकाण्ड के ६५वें सर्ग में भी है।

पौराणिक वंशावलियों का मतभेद—कल्माषपाद या सौदास के पश्चात् पौराणिक वंशावलियों में पर्याप्त भेद है। वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु एक वंशावली लिखते हैं, तथा हरिवंश, मत्स्य और महाभारत में एक और वंशावली है। रामायण का इन दोनों से भेद है। अध्यापक सीतानाथ प्रधान ने पुराणों का भेद भले प्रकार ठीक किया है। हम समझते हैं रामायण की वंशावली भी ठीक हो सकती है। अभी हम प्रधान महोदय के अनुसार थोड़ा सा वंश-वृक्ष देकर उस का विवरण लिखेंगे—

मित्रसह = कल्माषपाद = सौदास[7]



१. कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना। वायुपुराण २।११॥ २. ए. इ. हि. ट्रै. पृ० २०५–२०७।

३. सौदासेन न रक्षिता पर्याकुलीकृता क्षितिः। हर्षचरित, तृतीय ऊच्छ्वास।

४. पूना संस्करण अध्याय १६८। ५. आदिपर्व, पूना संस्करण १६८।२१–२५॥

राजा मित्रसहश्चापि वसिष्ठाय महात्मने।

मदयन्तीं प्रियां दत्वा तया सह दिवं गतः॥ शान्तिपर्व २४०।३०॥

६. बालकाण्ड ६६।२७॥ ७. क्रोनालोजि आफ एन्शिएण्ट इण्डिया अध्याय १२।

अश्मक और उसका कुल—प्रतीत होता है अश्मक ने एक नया राज्य बसाया। दक्षिण का अश्मक राज्य वही होगा। महाभारत में लिखा है कि अश्मक ने पोतन नगर बसाया।[1] पोतन नगर चिरकाल तक अश्मकों की राजधानी रहा है। अश्मक के पौत्र मूलक ने मूलक राज्य बसाया। मूलक भी देर तक अश्मकों की राजधानी रहा है। मूलक के विषय में वायुपुराण में एक पुरातन गाथा उद्धृत है।[2] उस में लिखा है कि मूलक राजा (जामदग्न्य) राम के भय से सदा स्त्रियों से घिरा रहता था। मानों उसने नारी-कवच धारण कर रखा था।

५४. सर्वकर्मा और उसका कुल—सर्वकर्मा अयोध्या में राज करता होगा। यही सौदास-दायाद था।[3] अश्मक से यह बहुत छोटा होगा। अनुमान होता है कि अश्मक शीघ्र मारा गया। उसका पुत्र या पौत्र मूलक जामदग्न्य राम के भय से छिप रहा था। सर्वकर्मा भी किसी पराशर के आश्रम में पल रहा था। उसके लिए भी राम का भय था। उस समय के कई समकालीन राजकुमारों का उल्लेख महाभारत[4] में मिलता है—

हैहय	पौरव	अयोध्या	शिबि	काशी	अङ्ग
					दिविरथ
	विडूरथ	सौदास	शिबि	प्रतर्दन	दधिवाहन
हैहय-कुमार	ऋक्ष	सर्वकर्मा	गोपति	वत्स	अङ्ग

इन समकालिक राजाओं का नाम लेकर आगे पृथिवी कहती है—

एतेषां पितरश्चैव तथैव च पितामहाः ।९१।
मदर्थं निहता युद्धे रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।९२।
ततः पृथिव्या निर्दिष्टांस्तान्समानीय कश्यपः ।
अभ्यषिञ्चन् महीपालान् क्षत्रियान् वीर्यसंमतान् ॥९४॥

इससे ज्ञात होता है कि पौरव ऋक्ष, ऐक्ष्वाक सर्वकर्मा, शैब्य गोपति, काश्य वत्स और अङ्गराज अङ्ग सब लगभग समकालीन थे। इनके साथ महाभारत में किसी बृहद्रथ का और मरुत्त-कुल के कुमारों का वर्णन है। बृहद्रथ किस देश का राजा था, यह नहीं कहा जा सकता। मरुत्त-कुमारों का नाम वहां नहीं लिखा।

पार्जिटर से मतभेद—पार्जिटर की वंशावलियों में काश्य प्रातर्दन-वत्स सगर-पुत्र असमञ्जस का समकालीन है। महाभारत के अनुसार यह वत्स सगर के कुछ काल पश्चात् सौदास-पुत्र सर्वकर्मा का समकालीन है। इसी प्रकार पौरव विडूरथ का पुत्र ऋक्ष सर्वकर्मा का समकालीन है। हम पृ० ६८ पर लिख चुके हैं कि पुराणों और महाभारत की पौरव वंशावलियों में सात नामों के स्थान-निर्देश के विषय में भूल हुई है। महाभारत के पूर्वोक्त प्रकरण

१. आदिपर्व १६८।२५॥
२. वायु ८८।१७९॥
३. शान्तिपर्व ४८।८३—८४॥
४. शान्तिपर्व ४८।८२—८७॥

से भी पता चलता है कि विदूरथ का पुत्र ऋक्ष होना चाहिए। परन्तु वर्तमान पाठों में ऐसा है कहीं नहीं। अतः पौरव वंशावली के ठीक करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारा विचार है यह काम हस्तलिखित ग्रंथों की सहायता से होना चाहिए।

५५-५६. सर्वकर्मा के पश्चात्—मत्स्य के अनुसार सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य था। अनरण्य-पुत्र निघ्न था। निघ्न के दो पुत्र थे, अनमित्र और रघु। अनमित्र वन को चला गया। तब रघु राजा बना।

जामदग्न्य राम की समस्या—पार्जिटर के अनुसार कार्तवीर्य अर्जुन मनु से ३१वीं पीढ़ी में है। वह जामदग्न्य राम से मारा गया। मूलक ५६वीं पीढ़ी में है। वह राम के भय से नारी-कवच बन रहा था। दाशरथि-राम को भी जामदग्न्य राम मिला था। पार्जिटर के अनुसार दाशरथि राम ६५वीं पीढ़ी में है। जामदग्न्य राम का भीष्म से भी युद्ध हुआ था। क्या यह एक ही राम था? कई आधुनिक लोग इसमें सन्देह करते हैं। परन्तु एक बात निर्विवाद है। वह निम्नलिखित युग-गणना से स्पष्ट होगी—

	दक्ष प्रजापति	आद्य त्रेतायुग[1]
	तृणबिन्दु	तृतीय त्रेतायुग[2]
रौद्राश्व पौरव के कन्या-वंश में	दत्तात्रेय	दशम त्रेतायुग[3]
	मांधाता	पन्द्रहवां त्रेतायुग[3]
	जामदग्न्य राम	उन्नीसवां त्रेतायुग[3]
	दाशरथि राम	चौबीसवां त्रेतायुग[3]

दक्ष प्रजापति का काल हम जानते हैं। तृणबिन्दु मनु-पुत्र नरिष्यन्त की संतान में था। उसके पश्चात् रौद्राश्व पौरव बहुत प्रसिद्ध है। दत्तात्रेय बहुत दीर्घजीवी था। जामदग्न्य राम मांधाता और दाशरथि राम के लगभग मध्य में होना चाहिए। अतः कार्तवीर्य अर्जुन का काल भी हरिश्चन्द्र के कुछ पीछे होना चाहिए। प्रतीत होता है कि अयोध्या की वंशावली में कई नाम शाखा-वंशों के सम्मिलित हो गए हैं। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि रौद्राश्व और मतिनार के मध्य में अनेक साधारण राजा और होंगे। पूर्वोक्त तालिका से ज्ञात हो जायगा कि इतिहास का जो क्रम हमने गत पृष्ठों में बांधा है, वह लगभग ठीक है। स्मरण रखना चाहिए वायु-निर्दिष्ट ये त्रेता-विभाग एक ही त्रेता के अवान्तर विभाग हैं। दाशरथि राम त्रेता और द्वापर की सन्धि में हुआ—

सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः॥ शान्तिपर्व ३४८।१६॥

---

१. वायु ३०।७४—७६॥६७।४३॥ २. वायु ७०।३१॥८६।१५॥
३. वायु ७०।४७,४८॥९८।८९.—९२॥

५७. रघु प्रथम—रघु नाम के दो राजा इस ऐक्ष्वाक-वंश में प्रतीत होते हैं। अध्यापक प्रधान का यही मत है। हमारे बालकाण्ड के संस्करण में 'भ' कोश का एक पाठान्तर है—रघु पुनः।[1] इस पाठ से प्रतीत होता है कि रघु दो थे।

५८. रघु के पश्चात् अनमित्र का पुत्र विद्वान् दुलिदुह था।[2] दुलिदुह महाभारत आदिपर्व में वर्णित प्रसिद्ध राजाओं में से एक है।[3] वायु में अनमित्र की परम्परा न देकर मूलक की परम्परा दी गई है। मूलक का पुत्र शतरथ, शतरथ का पुत्र ऐडिविड[4], ऐडिविड का कृतशर्मा, कृतशर्मा का पुत्र विश्वसह और विश्वसह का पुत्र दिलीप था।

५९. खट्वाङ्ग दिलीप—दुलिदुह का पुत्र खट्वाङ्ग दिलीप था। हरिवंश के अनुसार वह राम का प्रप्रपितामह था। इस का उल्लेख षोडशराजोपाख्यान में है।[5] इस उपाख्यान में लिखा है कि दिलीप के यज्ञ में देव, गन्धर्व और अप्सराएं उपस्थित थीं। संभवतः नृपर्षि दिलीप के इस यज्ञ का उल्लेख अश्वघोष ने भी किया है।[6] हम पहले पृ० ९९ पर मत्स्य के प्रमाण से लिख चुके हैं कि एक पितृ-कन्या यशोदा दिलीप प्रथम की माता थी। मत्स्य के विपरीत वायुपुराण में वही प्रकरण इस खट्वाङ्ग दिलीप के साथ जोड़ा गया है।[7] ब्रह्माण्ड में विवादास्पद श्लोक नष्ट हैं।[8]

पत्नी—रघुवंश में इस दिलीप की पत्नी मगधवंशजा सुदक्षिणा लिखी है।[9] कालिदास दिलीप को मागधीपति भी लिखता है।[10]

६०. रघु—पार्जिटर और प्रधान वायु आदि के अनुसार दिलीप के पश्चात् दीर्घबाहु एक राजा मानते हैं।[11] हरिवंश आदि में दीर्घबाहु रघु का विशेषण है।[12] कालिदास भी रघु को दिलीप-पुत्र कहता है। और दीर्घबाहु को उसका विशेषण समझता है। कालिदास दीर्घबाहु के स्थान में युगव्यायतबाहु[13] समास का प्रयोग करता है।[14] भारतीय इतिहास का पण्डित कवि बाण रघु को ही दिलीप का पुत्र मानता है।[15]

विजयी रघु—रघु के विक्रम की वार्ता व्यास के काल में सुप्रसिद्ध थी।[16] कालिदास ने अपने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु की विजय का एक सजीव वर्णन किया है। रघु-विजय चारों दिशाओं में हुई। रघु ने यवनों को भी परास्त किया।[17] हरिवंश में रघु को महाबल और अयोध्या का महाराज लिखा है।[18]

---

१. बालकाण्ड ६६।२६॥ २. हरिवंश १।१५।२४॥ ३. १।१७३॥ ४. सौन्दरनन्द ११।४५॥
५. द्रोणपर्व अध्याय ६१। शान्तिपर्व २८।७१–८०॥ ६. सौन्दरनन्द ७।३२॥
७. वायुपुराण ७३।४०–४३॥ ८. ३।१०।९०॥
९. १।३१॥ सुदक्षिणान्वितः रक्षितगुश्च। सुबन्धुकृत वासवदत्ता, पृ० ४२। १०. ३।१९॥
११. ए० इ० हि० ट्रै० पृ० ९२,९४। १२. दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाऽभवत्सुतः। हरिवंश १।१५।२५॥
१३. तुलना करो—युगदीर्घबाहु। सौन्दरनन्द ७।३॥ १४. रघुवंश ३।३०॥
१५. अलतादिष्टाष्टादशद्वीपे दिलीपे (मृते किं कृतं) वा रघुणा। हर्षचरित षष्ठ उच्छ्वास।
१६. विक्रमी रघुः। आदिपर्व १।१७२॥ १७. रघुवंश ४।६०,६१॥ १८. १।१५।२५॥

विश्वजित् प्रयोक्ता—कालिदास के अनुसार रघु विश्वजित् महाक्रतु का प्रयोक्ता था।[1]

६१. अज—रघु-पुत्र अज था। पुराणों का यही मत है। कालिदास को भी यही मत अभीष्ट था। वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यान इसी अज से आरम्भ होता है।[2]

समकालीन—रघु के काल में विदर्भ और क्रथकैशिकों के भोजकुलोत्पन्न राजा ने अपनी भगिनी इन्दुमती का स्वयंवर रचा।[3] कालिदास ने रघुवंश के छठे सर्ग में उस स्वयंवर का सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन काल्पनिक नहीं है। कालिदास किसी पुराने इतिहास से सहायता लेता प्रतीत होता है। हो सकता है कहीं कहीं कालिदास ने अपनी कल्पना भी की हो। शैव आचार्य अभिनवगुप्त इस वर्णन को काल्पनिक समझता है—रघुवंशेऽजादीन राज्ञां विवाहादिवर्णनं नेतिहासेषु निरूपितम्।[4] उस के वर्णन के अनुसार उस स्वयंवर में निम्न-लिखित राजगण अवश्य उपस्थित थे।

१. पुष्पपुर वासी मगध-राज परंतप।
२. कोई अङ्ग-राज।
३. कोई अवन्ति-नाथ।
४. रेवा नदी से घिरी माहिष्मती पुरी का राजा प्रतीप। यह कार्तवीर्य अर्जुन के कुल में था।
५. नीप-कुल का शूरसेन वा माथुर-राज सुषेण।
६. कलिङ्गराज हेमाङ्गद।
७. कोई पाण्ड्य-राज।

इन के अतिरिक्त इन्दुमती का भाई विदर्भ-राज था। कालिदास ने उस का नाम नहीं लिखा। यह बात कुछ खटकती है। रघुवंश ५।३९ में विदर्भराज को भोज कहा है, तथा ६।५९ में इन्दुमती को भोज्या कहा है। इन्दुमती विदर्भराज की कनिष्ठा भगिनी थी। अतः विदर्भराज भोजकुल का ज्ञात होता है। आगे ७।२० में विदर्भराज को भोजपति भी कहा है।

उत्तर कोसल—रघुवंश के अनुसार अज के काल में कोसल-राज्य, उत्तर और दक्षिण दो भागों में विभक्त था। नहीं कहा जा सकता कि यह विभाग अज से कितनी पीढ़ी पूर्व हुआ। काकुत्स्थ पद को उत्तर-कोसलेन्द्र ही धारण करते थे।[5] यदि कालिदास का यह संकेत सत्य है तो निश्चय ही अयोध्या की वंशावलियों में कई नाम दक्षिण कोसल के राजाओं के सम्मिलित हो गए हैं। कल्पद्रु कोश के अनुसार साकेत, अयोध्या और उत्तर कोसला पर्याय हैं।[6]

६२. दशरथ आजेय—अज का पुत्र दशरथ था।[7] दशरथ स्वाध्यायवान्, शुचि और इन्द्रसखा था।[7] महाराज दशरथ की तीन प्रमुख पत्नियाँ थीं। कालिदास के

---

१. रघुवंश ६।७६॥ २. वनपर्व २५८।६॥
३. रघुवंश ५।३९,४०॥ ४. लोचन पृ० ३३५।
५. काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोसलेन्द्राः। रघुवंश ६।७१॥ ६. पृ० १०, श्लोक १५।
७. वनपर्व २५८।६॥ बुद्धचरित ८।७९॥ रामायण बालकाण्ड११।८॥ ६६।३०॥

अनुसार वे मगध, कोसल और केकय-देश की राजकुमारियां थीं।[1] सुमित्रा मागधी थी। कौसल्या दक्षिण कोसल-राज की कन्या थी। अनर्घराघव नाटक में मुरारि लिखता है— दक्षिणकोसलेश्वरसुताम्।[2] कैकेयी नाम बताता है कि वह केकय-राज की कन्या थी।

राजसिंह—दशरथ को लोग राजसिंह भी कहते थे।[3] यह पदवी दशरथ के गुणों के कारण उसे मिली होगी। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न दशरथ के चार पुत्र और शान्ता उस की कन्या[4] थी।

एक देवासुर युद्ध—दशरथ के राज के प्रारम्भिक दिनों में दक्षिण भारत में एक भयंकर देवासुर युद्ध हुआ। उसका वर्णन रामायण में मिलता है। हम रामायण के तत्सम्बन्धी श्लोक नीचे उद्धृत करते हैं—

लाहौर संस्करण अयो० ११।११—॥

पुरा देवासुरे युद्धे युद्धसज्ञः पतिस्तव।
याचितो देवराजेन युद्धं कर्तुमितो गतः॥
दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकां प्रति।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः॥
स शम्बर इति ख्यातो बहुमायो महासुरः।
ददौ शक्राय संग्रामं दैवसंघैर्विनिर्जितः॥
तस्मिन्महति संग्रामे राजा शस्त्रपरिक्षतः।
विजित्याभ्यागतो देवि त्वयोपचारितः स्वयं।
व्रणसंरोपणं चास्य तत्र देवि त्वया कृतम्।

मद्रास संस्करण ९।११—॥

पुरा दैवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
अगच्छत्त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत्॥
दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान्प्रति।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः॥
स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः।
ददौ शक्रस्य संग्रामं देवसंघैरनिर्जितः॥
तस्मिन्महति संग्रामे पुरुषान् क्षतविक्षतान्।
रात्रौ प्रसुप्तान्घ्नन्ति स्म तरसासाद्य राक्षसाः॥
तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः॥
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया॥

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि दण्डकारण्य के दक्षिण भाग के पास एक वैजयन्तपुर था। वहां तिमिध्वज शम्बर राज्य करता था। उसने युद्ध के लिए इन्द्र को निमन्त्रित किया। तिमिध्वज महाबली था। इन्द्र देवसेनाओं से उसे जीत नहीं सका। इन्द्र ने उत्तर भारत के राजाओं की सहायता ली। उन में एक दशरथ था। दशरथ को हम इन्द्रसखा लिख चुके हैं। दशरथ के साथ कुछ राजर्षि भी थे। रामायण में उनके नाम नहीं लिखे।

ये राजर्षि कौन थे—अध्यापक प्रधान का मत है कि ये दिवोदास आदि थे।

तिमिध्वज और दशग्रीव रावण—अध्यापक सीतानाथ ने शिवपुराण ६।१३ के प्रमाण से यह बताया है कि मय असुर की दो कन्याएं थीं, मायावती और मन्दोदरी। मय ने मायावती का

१. रघुवंश ९।१७॥ २. अंक १ श्लोक ५९ के पश्चात्॥ ३. बालकाण्ड ९।८१, ८२॥
४. मत्स्य ४८।९४—॥

विवाह शम्बर से कर दिया और मन्दोदरी का दशग्रीव से।[1] दशग्रीव अनेक कन्याओं का सतीत्व नष्ट करता रहता था। उस ने वेदवती आङ्गिरसी और दूसरी कन्याओं को भी तंग किया।[2] कभी वह अपनी साली मायावती को भगाने का यत्न करने लगा। फलतः शम्बर की राजधानी में दशग्रीव अपने प्रहस्त आदि साथियों सहित शम्बर के लोहकवचधारी सैनिकों और रक्षकों से पकड़ा गया। अन्त में मय की प्रार्थना पर दशग्रीव शम्बर के बन्दीगृह से मुक्त हुआ।

शिवपुराण वाला शम्बर रामायण वाला महाबली तिमिध्वज शम्बर ही निश्चित होता है। तिमिध्वज के साथ दशरथ का युद्ध हुआ और सीता को भगाने के कारण दशग्रीव दाशरथि राम से मारा गया। इन कथाओं से उस काल का कुछ ज्ञान हो जाता है।

गृध्रराज जटायु—गृध्रराज जटायु एक ब्राह्मण-वीर था।[3] वह दशरथ का सखा था। उस का छोटा सा राज्य पञ्चवटी के समीप था। बहुत संभव है कि तिमिध्वज और इन्द्र के युद्ध के समय जटायु और दशरथ की मैत्री हुई हो। वह युद्ध दण्डक की दक्षिण दिशा में हुआ था।

केकय-राज—केकयी के पिता का नाम रामायण में नहीं है। केकयी के भाई का नाम युधाजित् था। यद्यपि उसे अश्वपति भी कहा है, पर अश्वपति केकयराजों की उपाधिमात्र है। वह भरत को लिवाने के लिए अयोध्या गया।[4] केकय-राज की राजधानी गिरिव्रज[5] या राजगृह[6] पुर में थी। कनिंघम के अनुसार वर्तमान जलालपुर राजगृह था। इसका पहला नाम गिरजक था।

अयोध्या से गिरिव्रज—रामायण में लिखा है कि महाराज दशरथ की मृत्यु पर राजगुरु वसिष्ठ की आज्ञा से अयोध्या से कई दूत भरत को बुलाने गिरिव्रज गए। वे सात दिन में गिरिव्रज पहुँचे। वे दूत कुरुक्षेत्र में से होते शतद्रु और विपाशा को पार करके विष्णुपद तीर्थ को देखते शीघ्र गिरिव्रज पहुँचे। यह वर्णन अयोध्या काण्ड सर्ग ७४ (दा० रा० स० ६८) के अन्त में है। भरत के लौटने का वृत्तान्त भी अयो० काण्ड सर्ग ७७ (दा० रा० अयो० स० ७१) में वर्णित है। इस में गिरिव्रज के समीप दूरपारा नदी का उल्लेख है। यदि इन लेखों की तुलना नीलमतपुराण अध्याय १२ से की जाए तो पञ्जाब के कई ऐतिहासिक स्थानों के नाम ज्ञात हो सकते हैं।

---

१. मन्दोदरी का विवाह-वृत्तान्त रामायण उत्तर काण्ड अध्याय १२ में भी है।

२. रामायण युद्धकाण्ड ६०।१० में भी इसका उल्लेख है।

३. रामस्य वचनं श्रुत्वा सर्वभूतसमुद्भवम्।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै कुलमात्मानमेव च ॥ दा० रा० अरण्यकाड १४।१५॥

४. उ० रा० अयोध्याकाण्ड १।२॥ ५. उ० रा० अयो० ७३।६॥ ६. दा० रा० ६७।७॥

सम्राट् दशरथ—दशरथ एक सम्राट् था। वह स्वयं कहता है[1]—

यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुंधरा ॥
प्राच्याश्च सिन्धुसौवीराः सुरसावर्तयस्तथा ।
वंगांगमगधा देशाः समृद्धाः काशिकोसलाः ॥
पृथिव्यां सर्वराजोऽस्मि सम्राडस्मि महीक्षिताम्।[2] उत्तर पाठ
द्राविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
वंगांगमगधा मत्स्याः समृद्धाः काशिकोसलाः ॥ दक्षिण पाठ

इस से दशरथ एक समर्थ और प्रतिष्ठित सम्राट् स्पष्ट ज्ञात होता है।

मृत्यु—दशरथ की मृत्यु वृद्धावस्था में हुई।[3] तब राम अभी छोटी आयु का था। उत्तर पाठ में राम की उस समय की आयु अठारह वर्ष[4] की और मद्रास पाठ में सत्तरह वर्ष[5] की लिखी है।

भरत—दशरथ का ज्येष्ठ-पुत्र राम था। वह चौदह वर्ष के लिए पिता की आज्ञा से वनवासी हो गया। इन चौदह वर्षों में भरत ने राम के प्रतिनिधि के रूप में अयोध्या का शासन किया।

६३. दाशरथि राम—लङ्काधिपति दशग्रीव-रावण पर विजय पा कर बत्तीस वर्ष की आयु में राम ने अयोध्या का राजसिंहासन संभाला। राम श्यामवर्ण, लोहिताक्ष और आजानुबाहु था।[6]

रामभद्र—कथासरित्सागर, भवभूतिकृत उत्तररामचरित में तथा अनेक ताम्रशासनों के अन्त में रामभद्र नाम उपलब्ध होता है।

राम और वाल्मीकि—राम का वृत्तान्त रामायण में लिखा है। रामायण का कर्ता भार्गव वाल्मीकि था।[7] अश्वघोष स्वीकार करता है कि रामायण की रचना च्यवन-कुलोत्पन्न वाल्मीकि ने की।[8] विष्णुपुराण ३।३।१८ में वाल्मीकि का मूल नाम ऋक्ष लिखा है। वह २४वां व्यास था। वाल्मीकि राम का समकालीन था। प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने रामायण के छः काण्ड लिखे थे। रामायण की फलश्रुति उस काण्ड के अन्त में मिलती है। परन्तु सातवां या उत्तर काण्ड बहुत नया नहीं है। यह सातवां काण्ड प्रसिद्ध कवि भवभूति के काल में विद्यमान था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा को सुशोभित करने वाला कवि कालिदास भी सप्तम काण्ड से परिचित था। उसका पूर्ववर्ती अश्वघोष इस काण्ड में कही

---

१. उ० रा० अयो० १३।१४—॥ दा० १०।३६—॥
२. उ० रा० अयो० १३।२१॥ दाक्षिणात्य-पाठ में यह श्लोक नहीं है।
३. दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः ॥ उत्तर-पाठ अयो० का० १४।१६॥
४. अयो० का० २०।३५॥
५. अयो० का० २०।४५॥
६. द्रोणपर्व ५९।२७॥
७. दा० रा० उत्तर काण्ड ९४।२५,२६॥
८. वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः। बुद्धचरित १।४३॥

कई घटनाएं अपने ग्रन्थों में उद्धृत करता है।[1] यह काण्ड अश्वघोष से बहुत पहले रामायण में मिल गया होगा। राम का इतिहास जानने में रामायण एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

च्यवन=वल्मीक—तपस्या करता च्यवन वल्मीकभूत हो गया था।[2]

लिपिकला—भारतीय आर्य रामकाल में लेखनकला में प्रवीण थे। राम के बाणों पर राम नामाङ्कित था।[3]

लवण-वध—राम-राज्य के आरम्भ की एक बड़ी घटना लवण-वध है। उस राक्षस ने मधु-वन के दुर्ग में वास रखा था और वह मधुरा=मथुरा का राज्य संभाल चुका था। यमुना-तीर वासी ऋषियों को वह बहुत त्रासित करता था। उन्हीं की प्रार्थना पर राम की आज्ञा से भरत ने लवण-वध किया। शत्रुघ्न मथुरा में राज्य करने लगा।

युधाजित् और गन्धर्व-देश-विजय—पेशावर से लेकर वर्तमान डेरागाजीखां तक का सारा प्रदेश कभी गन्धर्व देश कहाता था। फिर उसी का या उस से भी अधिक भाग का नाम गांधार देश हुआ। युधाजित्-अश्वपति उस को विजय करना चाहता था। उस ने अपने पुरोहित गार्ग्याङ्गिरस को इस कर्म में सहायता प्राप्ति के लिए राम के पास भेजा। गार्ग्य ने राम से कहा—सिन्धु के दोनों ओर यह गन्धर्व देश परम शोभायमान है, इसे आप विजय करें।[4] सर्वसम्मति से भरत-पुत्र तक्ष और पुष्कल ने अपने पिता के साथ केकय-देश को प्रस्थान किया। गंधर्व देश विजित हुआ। वहीं तक्ष और पुष्कल के नाम पर दो प्रसिद्ध नगर बसाए गए। तक्षशिला और पुष्कलावत नगर वही हैं। ये नगर गान्धार प्रदेश के गन्धर्व राज्य में हैं।[5] भारतीय इतिहास में इन दोनों नगरों की बड़ी प्रसिद्धि रही है।

कुश और लव—राम-पुत्र कुश और लव थे। कोसल में कुश स्थापित हुआ। तब कोसल की राजधानी कुशावती बनाई गई। यह नगरी विन्ध्यपर्वतरोध पर थी।[6] लव की राजधानी श्रावस्ती कर दी गई।

शत्रुघ्न-पुत्र सुबाहु और शत्रुघाती—सुबाहु मथुरा में अभिषिक्त हुआ और शत्रुघाती विदिशा या वैदिश में।

लक्ष्मण-पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु—लक्ष्मण के दोनों पुत्र भी दो राज्यों में स्थापित किए गए।[7] राम ने अपने और अपने भाइयों के कुल में जो आठ राज्य बांटे, उनका उल्लेख महाभारत में भी है।[8]

---

१. मांधाता ने शक्र का अर्धासन प्राप्त किया। बुद्धचरित ११।१३॥ सौन्दरनन्द ११।४३॥ उत्तरकाण्ड सर्ग ६७॥

२. विराटपर्व २०।७॥

३. युद्धकाण्ड ४४।२३॥

४. उत्तरकाण्ड १००।१०-१३॥ रघुवंश १५।८७ में इसे सिन्धु देश लिखा है।

५. उत्तरकाण्ड १०१।११॥

६. उत्तरकाण्ड १०८।४॥

७. रघुवंश १५।९० में कारापथेश्वर कहा है।

८. द्रोणपर्व ५९।३०॥

राम का राज्य काल—राम ने दश सहस्र (अर्थात् लगभग दश वर्ष) तक राज्य करके कई अश्वमेध यज्ञ किए।[1] राम का राज्य लगभग बीस वर्ष का था।[2] इस का ब्योरा इस प्रकार से है। बारह वर्ष के पश्चात् शत्रुघ्न मथुरा से अयोध्या में आया।[3] शत्रुघ्न के मथुरा गमन और राम के लंका से लौटने का अन्तर एक वर्ष का प्रतीत होता है। इस के अनन्तर राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। इस में एक वर्ष लगा। सीता-मृत्यु इसी समय हुई। फिर राम ने दश वर्ष तक और यज्ञ किए।[4] इस के कुछ काल पश्चात् राम ने स्वेच्छा से इहलोकयात्रा समाप्त की। यह सारा काल २५ वर्ष से कुछ न्यून था। इसे ही दश सहस्र और दश शत वर्ष शब्दों में प्रकट किया है। अर्थात् लगभग बीस वर्ष, या पच्चीस से न्यून और बीस से ऊपर।

रामायण में एक बालक को पांच सहस्र वर्ष का लिखा है।[5] इस का अभिप्राय भी पूर्ववत् है।

---

१. राज्यं दश सहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान्॥ युद्धकाण्ड १३१।९५॥

२. दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥ यु० का० १३१।१०६॥
द्रोणपर्व ५९।१४॥ शान्तिपर्व २८।६१॥

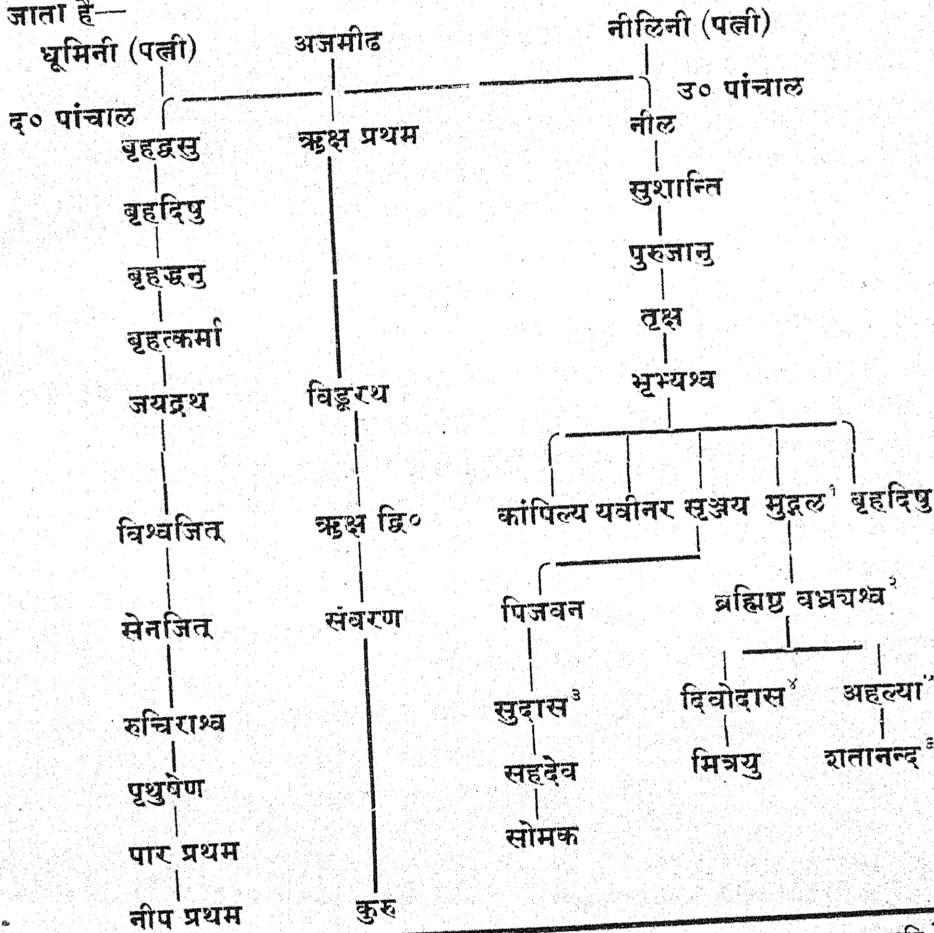
३. उत्तरकाण्ड ७१।१॥७२।११॥ ४. उत्तरकाण्ड ९९।९॥१०२।१६॥

५. उत्तरकाण्ड ७३।५॥

बीसवां अध्याय

अजमीढ-पुत्र ऋक्ष से कुरु पर्यन्त

२८. ऋक्ष प्रथम—अजमीढ के पश्चात् पौरवों की हस्तिनापुर वाली शाखा का इतिहास बहुत गड़बड़ में पड़ गया है। अध्यापक प्रधान ने उस के ठीक करने का यत्न किया है, पर उन के परिणामों से हम सहमत नहीं हैं। पार्जिटर ने एक सरलता का मार्ग पकड़ा है और ऋक्ष प्रथम तथा अजमीढ के मध्य में कई पीढ़ियां छोड़ दी हैं। अजमीढ के कुलों का वंश-वृक्ष नीचे दिया जाता है—



१. मन्त्रद्रष्टा ऋ० १०।१०२॥ २. एक सुमित्र वाध्र्यश्व ऋ० १०।६९,७० का ऋषि है।
३. मन्त्रद्रष्टा ऋ० १०।१३३॥ ४. दिवोदासं वाध्र्यश्वाय दाशुषे। ऋ० ६।६१।१ से ये नाम लिए गए हैं।
५. अहल्या मैत्रेयी, षड्विंशब्राह्मण १।१॥ ६. बालकाण्ड ४७।६॥ मत्स्यपुराण ५०।८॥

यह वंश-वृक्ष काम चलाने के लिए बनाया गया है। आदिपर्व की प्रथम वंशावली में इस से कुछ मतभेद मिलता है। आदिपर्व की दूसरी वंशावली में अधिक गड़बड़ है। पुराणों में भी सब वृत्तान्त एक समान नहीं हैं। विडूरथ को हम ने ऋक्ष द्वितीय से पहले रखा है। इसके लिए पृ० १०४ देखना चाहिए। ऋक्ष प्रथम के सम्बन्ध में हम अधिक नहीं जानते।

२९. विडूरथ—महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ४८ से हम इतना अनुमान कर सकते हैं कि यह राजा जामदग्न्य-राम के हाथों मारा गया होगा।

३०. ऋक्ष द्वितीय—यह राजा परशुराम के कारण कहीं छिपा दिया गया था। कश्यप की कृपा से यह फिर राजसिंहासन पर बिठाया गया।

३१. संवरण—आर्क्ष संवरण का कुछ अधिक वृत्तान्त प्राप्त हो जाता है। इस के काल में पौरव राज्य पर भारी आपत्ति आई।

पाञ्चाल्य आक्रमण—आदिपर्व की पहली वंशावली के अनुसार कोई पञ्चालराजा दश अक्षौहिणी सेना ले कर इस पर चढ़ आया।[1] दोनों का युद्ध हुआ। संवरण हार गया।

यह पांचाल्य कौन था—बहुत संभव है कि उत्तर पांचाल के राजा दिवोदास या पैजवन सुदास ने इतनी भारी सेना के साथ संवरण पर आक्रमण किया हो। इस प्रकार दिवोदास, दशरथ और संवरण लगभग समकालीन होंगे। अयोध्या की वंशावली में सर्वकर्मा के पश्चात् और दशरथ से पहले कुछ नाम अवश्य दूसरे कोसल के राजाओं के मिल गए हैं।

संवरण का सिन्धु-नद-निकुञ्ज वास—ऐसे प्रतापी राजा से हार कर संवरण सिन्धु नद की ओर भागा। वहां पर्वत के समीप वह किसी निकुञ्ज में रहने लगा।[2] उस के साथ उसका पुत्र, उस के मन्त्री और सुहृज्जन भी भागे।[2] वहां वे सहस्र परिवत्सर तक रहे।[2] तब वसिष्ठ ऋषि की कृपा से संवरण ने अपना नष्ट-राज्य फिर प्राप्त किया। आदिपर्वान्तर्गत चैत्ररथपर्व के तापत्योपाख्यान से प्रतीत होता है कि संवरण बारह वर्ष मात्र अपने राज्य से बाहर रहा।[3] अतः यहां सहस्र का अर्थ "बहुत" है। प्रतीत होता है संवरण ने अपने निर्वासन के दिन तक्षशिला से परे की पर्वत-शृङ्खला में अतिवाहित किए होंगे। वहां उसका तपती पौषिकी से विवाह हुआ था। यह तपती सूर्य-कन्या भी कही जाती है।

३२. कुरु—तपती और संवरण का पुत्र कुरु था। इस राजा के नाम से कुरुजाङ्गल भूमि विख्यात हुई।

---

१. अभ्यघ्नन् भारतांश्चैव सपत्नानां बलानि च ॥३२॥
चालयन्वसुधां चैव बलेन चतुरङ्गिणा।
अभ्ययात्तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम्।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एनं समरेऽजयत् ॥३३॥ अध्याय ८९।

२. आदिपर्व ८९।३४—३६॥

३. आदिपर्व १६३।१४—२०॥

राजधानी परिवर्तन—संवरण तक पौरव राजधानी प्रयाग थी। कुरु ने कुरुक्षेत्र का प्रदेश कृषियोग्य किया। पहले यह भारी जंगल रहा होगा।[1]

उत्तर-पांचाल-वंश

दोनों पांचालों में से उत्तर-पांचाल के कुछ राजा भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुए। उन में से भृम्यश्व और मुद्गल का वर्णन पृ० १०२ पर हो चुका है। मुद्गल की संतान में वध्र्यश्व और दिवोदास बहुत प्रसिद्ध हुए। यह मुद्गल शाकल्य-शिष्य मुद्गल नहीं था।[2] दिवोदास की भगिनी विख्याता अहल्या थी। इसी अहल्या का राम ने उद्धार किया था। दिवोदासो वै वाध्र्यश्विः—प्रयोग जैमिनीय ब्राह्मण में मिलता है।[3] वहां लिखा है कि दिवोदास राजा होता हुआ भी ऋषि हो गया। वध्र्यश्व और मेनका से दिवोदास और अहल्या मिथुन जन्मे।[4]

सृञ्जय और उस का कुल—भृम्यश्व का एक पुत्र या मुद्गल का एक भाई सृञ्जय था। वायु-पुराण ८६।१९ के अनुसार सृञ्जय विद्वान् था। उस सृञ्जय का पुत्र सुप्रसिद्ध पिजवन था। पिजवन का पुत्र सुदास[5] और सुदास-पुत्र सहदेव था। सहदेव के यज्ञ की महिमा आरण्यक-पर्व ८८।६ में उल्लिखित है। इस कुल के विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों के निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं—

एतमु हैव प्रोचतुः पर्वतनारदौ सोमकाय साहदेव्याय। सहदेवाय सार्ञ्जयाय।... ......एतमु हैव प्रोवाच वसिष्ठः सुदासे पैजवनाय। ते ह ते सर्वे महज्जग्मुः। ऐ० ब्रा० ७।३४॥

वसिष्ठः सुदासं पैजवनमभिषिषेच। ऐ० ब्रा० ८।२१॥

तेनो ह तत ईजे। प्रतीदर्शः श्वैक्नः.........तमाजगाम सुप्ला सार्ञ्जयो ब्रह्मचर्यं।.........स वै सहदेवः सार्ञ्जयस्तदप्येतन्निवचनमिवास्त्यन्यद्वाऽअरे सुप्ला नाम दधऽइति। माध्य० श० २।४।४।३,४॥ काण्व श० १।३।४।२॥

तद्वैतत्पप्रच्छ। सुप्ला सार्ञ्जयः प्रतीदर्शमैभावतम्। श० १२।८।२।३॥

ब्राह्मणों के इन पाठों से निश्चित होता है कि सार्ञ्जय सुप्ला ने अपना नाम सहदेव रख लिया था। इस सहदेव का पुत्र सोमक था। सोमक को पर्वत-नारद ने उपदेश दिया था। श्विक्नियों का राजा प्रतीदर्श इस सुप्ला-सहदेव का समकालीन था।

सायण और कीथ की भूल—दिवोदासं न पितरं सुदासः। ऋग्वेद ७।१८।२५ के अनुसार सायण लिखता है—दिवोदास इति पिजवनस्यैव नामान्तरम्। अर्थात् पिजवन का नाम दिवोदास है।

---

१. यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत्॥ मत्स्य ५०।२०॥
यः प्रयागं पदाक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह। वायु ९९।२१५॥

२. वैदिक वाङ्मय प्रथम भाग पृ० ८४, ८५ पर हम ने शाकल्य-शिष्य मुद्गल को भार्म्यश्व मुद्गल लिखा था। यह बात ठीक नहीं।

३. १।२२२॥ ४. मत्स्य ५०।७॥ ५. सुदाः पैजवनो नाम सहस्राणां शतं ददौ।
ऐन्द्राग्नेन विधानेन दक्षिणामिति नः श्रुतम्॥ शान्तिपर्व ५९।४२॥

इतिहास में यह बात सत्य नहीं। वेद में इतिहास नहीं। दोनों का एकीकरण महाभ्रान्ति है। ऐतिहासिक पुरुषों ने वेदों से नाम लेकर अपने नाम रखे थे। पर पिजवन और दिवोदास में भेद ही रहा। केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया[1] में कीथ के अनुसार सुदास का पिता या पितामह दिवोदास था। वेदमन्त्रों में इतिहास मानने वालों के अज्ञान का यह एक दृष्टान्त है। पैजवन अर्थात् पिजवन पुत्र सुदास अविनय से नष्ट हुआ।[2]

श्विक्न राज्य—प्रतीदर्श को शतपथ के पूर्वोक्त प्रमाण में श्वैक्न कहा गया है। फिर प्रतीदर्श को ऐभावत भी कहा है। सम्भवतः इभावत नगर श्विक्नों की राजधानी थी। श्विक्नों का एक राज्य था। उसका एक और राजा याज्ञतुर ऋषभ भी था।[3] वह गौरीविति शाक्त्य का समकालीन था।[4]

पाञ्चाल देश पहले क्रैव्य था—भृम्यश्व के पांच पुत्रों के कारण इस देश का नाम पाञ्चाल पड़ा। पहले यह देश क्रैव्य कहाता था। शतपथ में लिखा है—तेन हैतेन क्रैव्य ईजे पाञ्चालो राजा, क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण वंशावली—ब्राह्मण ग्रन्थों के उपर्युक्त पाठों से निश्चय होता है कि सृञ्जय की पुराण-वंशावली ठीक है।

यह हुआ उत्तर पञ्चाल के सम्बन्ध में। दक्षिण पञ्चाल के राजाओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अभी न के तुल्य है।

भरद्वाज और दिवोदास—ताण्ड्य ब्राह्मण १५।३।७ के अनुसार दिवोदास का पुरोहित भरद्वाज था। जैमिनीय ब्राह्मण ३।२४४ में लिखा है कि प्रतर्दन का पुत्र क्षत्र, दस राजाओं के युद्ध में मानुष पर दस राजाओं से घिर गया। वह अपने पुरोहित भरद्वाज के पास गया। गोपथ ब्राह्मण में भरद्वाज और प्रतर्दन का सम्बन्ध बताया है।[6]

इन तीन ब्राह्मण-वचनों से दिवोदास, प्रतर्दन और क्षत्र का पुरोहित भरद्वाज ज्ञात होता है।

काशिपति दिवोदास—यह दिवोदास काशिपति था। इस का पुत्र प्रतर्दन था।[7] एक बार प्रतर्दन दैवोदासि नैमिषीयों के सत्र में गया। वहां उस ने अलीकयुवाचस्पत से एक प्रश्न किया। अलीकयु उत्तर नहीं दे सका। अलीकयु ने इसी प्रश्न का उत्तर अपने पूर्वजों के भी आचार्य स्थविर जातूकर्ण्य से पूछा।[8]

---

१. भाग १, पृ० ८२। २. मनुस्मृति ७।४१॥ ३. शतपथ १३।५।४।१५॥

४. शतपथ १२।८।३।७॥ ५. १३।५।४।७॥

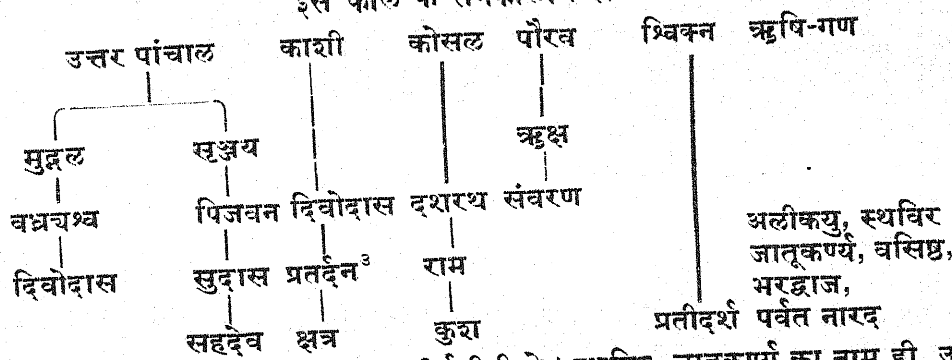
६. ऐतेन ह वै भरद्वाजः प्रतर्दनं समनह्यत्। उत्तरार्ध १।१८॥ काठकसंहिता २१।१०॥

७. प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम॥ शां० आरण्यक ५।१॥ प्रतर्दनं दैवोदासिम्। मैत्रायणीसंहिता ३।३।७॥ ८. कौषीतकि ब्रा० २६।५॥

प्रतर्दन और दाशरथि राम—यह प्रतर्दन दाशरथि राम का समकालीन था।[1] शान्तिपर्व अध्याय ९९ में प्रतर्दन और मैथिल-जनक के संग्राम का उल्लेख है। इस रण में जनक विजयी हुआ। इस काशिपति प्रतर्दन ने अपने नेत्र ब्राह्मण को दिए थे।[2]

दीर्घजीवी भरद्वाज—हम देख चुके हैं कि एक भरद्वाज पिता, पुत्र और पौत्र सभी का पुरोहित था। एक भरद्वाज की कथा तैत्तिरीय ब्रा० ३।१०।११।४ में लिखी है। भरद्वाज ने तीन आयु तक ब्रह्मचर्य रखा। तब वह इन्द्र के परामर्श से अमृत हो कर स्वर्ग को गया। इस प्रमाण से विदित होता है कि एक भरद्वाज ३०० वर्ष तक जीता रहा। एक भरद्वाज पौरव भरत के पश्चात् हुआ। उस का उल्लेख पृ० ८५ पर हो चुका है। और भी कई भरद्वाज हैं। इन के व्यक्तित्व का निश्चय होना शेष है।

इस काल के समकालीन राजगण



इन सब में से ऋषि-गण बहुत दीर्घजीवी थे। स्थविर जातूकर्ण्य का नाम ही उस के दीर्घायु का द्योतक है। वसिष्ठ, भरद्वाज और पर्वतनारद भी दीर्घजीवी थे। हम पृ० १०२ पर मुद्गल का पिता भृम्यश्व महाराज ऋतुपर्ण का समकालीन था ऐसा लिख चुके हैं। दाशरथि राम ने पांचाल दिवोदास की भगिनी अहल्या का उद्धार किया। अतः वाध्र्यश्व दिवोदास और राम समकालीन थे। उधर पृ० १०४ पर हमने महाभारत के प्रमाण से दिखाया है कि प्रतर्दन और सौदास-कल्माषपाद भी समकालीन थे। इन सब वर्णनों से यही परिणाम निकलता है कि अयोध्या की वंशावली में कई भाइयों के वंश मिल गए हैं। इस के विपरीत पार्जिटर ने परिणाम निकाला है कि अयोध्या की वंशावली ठीक है और महाभारत आदि में ही कई स्थानों पर भूल हुई है। इस विषय में हम पार्जिटर से सहमत नहीं हैं।

व्युषिताश्व पौरव—आदिपर्व अध्याय ११२ में किसी व्युषिताश्व चक्रवर्ती का उल्लेख है। उसकी भार्या कक्षीवान् की कन्या भद्रा थी। यदि यह कक्षीवान् दीर्घतमा का पुत्र था, तो व्युषिताश्व का काल अजमीढ के आस पास होना चाहिए।

---

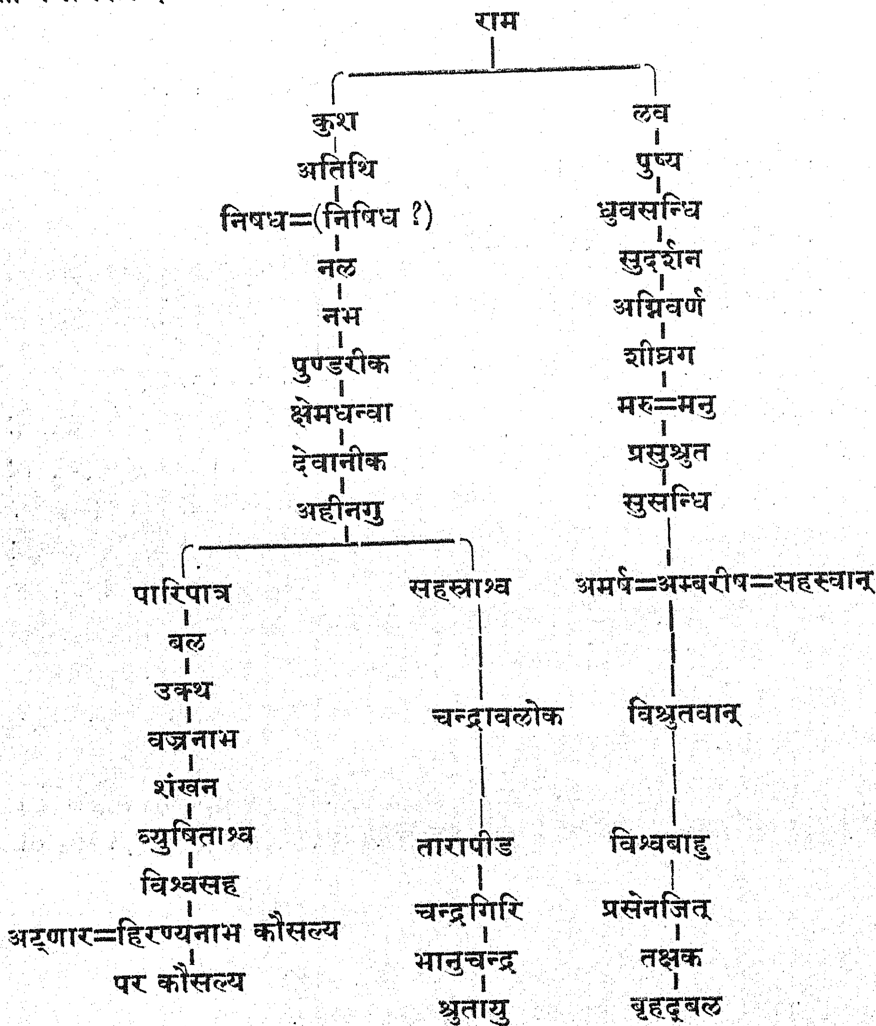
१. तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ वा० रा० उत्तराकाण्ड ३८।१६॥

२. शान्तिपर्व २४०।२०॥   ३. ऋग्वेद ९।९६ का ऋषि।

इक्कीसवां अध्याय

राम-पुत्र कुश से भारत-युद्ध पर्यन्त

वंशावलियों की अस्पष्टता—राम के पश्चात् की वंश-परम्परा का वंशावलियों में स्पष्ट वृत्त नहीं रहा। पार्जिटर ने राम की उत्तरकालीन ऐक्ष्वाक-वंशावली को ठीक नहीं समझा। प्रधान महाशय का परिश्रम बड़ा स्तुत्य है। उन्होंने सत्य का लगभग दर्शन किया है। हमारा उन से थोड़ा ही भेद है। राम के पश्चात् का वृत्तान्त जानने के लिए कोसल-वंशावली का यथार्थरूप देना आवश्यक है, अतः पहले उसी का उल्लेख किया जाता है—



प्रधान से मतभेद—इस वंश-वृक्ष में हम ने हिरण्यनाभ कौसल्य को भारत-युद्ध से कुछ पहले माना है। प्रधान के मतानुसार हिरण्यनाभ भारत-युद्ध से कुछ पश्चात् हुआ। हम आगे चक्रवर्ती उग्रायुध के पिता का वर्णन करेंगे। उस का नाम कृत था। यह कृत इस हिरण्यनाभ का शिष्य था।[1] इसलिए हिरण्यनाभ का काल भारत-युद्ध के पश्चात् का नहीं हो सकता। इस का निर्णय-विशेष आगे करेंगे।

६४. कुश—कुश सब भाइयों में ज्येष्ठ था। सारे भाई उस को बड़ा मानते थे। राम के आदेश से वह कुशावती में अभिषिक्त हुआ।

राजधानी परिवर्तन—कुछ काल कुशावती में निवास कर के कुश ने अयोध्या को पुनः अपनी राजधानी बनाया। अयोध्या में जो क्षति हो गई थी, शिल्पियों ने उसे ठीक ठाक कर दिया। कुशावती नगरी ब्राह्मणों को दे दी गई।[2]

विवाह—कुश के कई विवाह हुए होंगे। कुश का एक विवाह नाग-कन्या कुमुद्वती से हुआ। कुमुद नाम का एक नाग-राज था। उस ने अपनी छोटी भगिनी कुमुद्वती का विवाह कुश से कर दिया।[3]

इन्द्र सहायता—ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों भारत के पूर्व की ओर इन्द्र और असुर तथा दैत्यों के कई युद्ध हो रहे थे। ये युद्ध महाराज दशरथ के काल से चल रहे थे। ऐसे एक युद्ध में इन्द्र की सहायता करता हुआ कुश रण-भूमि पर मारा गया।[4]

६५. अतिथि—कुमुद्वती और कुश का पुत्र अतिथि था। अतिथि का विवाह नैषधराज की कन्या से हुआ।[5] इन दोनों का पुत्र निषध था।

६६. निषध—इस राजा का नाम सम्प्रति निषध ही लिखा मिलता है। हमारा अनुमान है कि इसका वास्तविक नाम निषिध होगा। शतपथ ब्राह्मण २।३।२।१,२ में नड नैषिध पाठ है। यह नाम वीरसेनात्मज नल का नहीं हो सकता। वह स्पष्ट निषधों का अधिपति था। अतः यही व्यक्ति निषिध हो सकता है। इसका पुत्र नल था।

६७. नल—इस के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

६८. नभ—यह नल-पुत्र था।

६९. पुण्डरीक—नभ के पश्चात् यह राजा बना।

७०. क्षेमधन्वा—पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा था। ताण्ड्यब्राह्मण में लिखा है—एतेन वै क्षेमधृत्वा पौण्डरीक इष्ट्वा सुदामस्तीर उत्तरे ......।[6] इस प्रमाण से अध्यापक प्रधान ने क्षेमधन्वा और क्षेमधृत्वा के एक होने का अनुमान किया है।[7] महाभारत शान्तिपर्व में मुनि

१. वायु ८८।१९०॥
२. रघुवंश १६।२५॥
३. रघुवंश १६।८५॥
४. रघुवंश १७।५॥
५. रघुवंश १८।१॥
६. २२।१८।७॥
७. क्रो० ए० इ० पृ० ११८।

कालकवृक्षीय और कौसल्य क्षेमदर्शी का एक लम्बा संवाद है।[1] उस से ज्ञात होता है कि क्षेमदर्शी के कोशाध्यक्ष आदि उस के धन का हरण कर रहे थे। यह क्षेमदर्शी किसी विदेह राजा से हार गया। तब कालकवृक्षीय ने दोनों की सन्धि करा दी। विदेह-राज ने अपनी कन्या का विवाह क्षेमदर्शी से कर दिया।[1] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय कालकवृक्षीय का निधन हो चुका था। वह तब शक्रसभा में जा चुका था।[2]

नहीं कह सकते कि क्षेमदर्शी ही क्षेमधन्वा था। परन्तु उन के एक होने की संभावना है।

७१. देवानीक—पुराणों में इसे प्रतापवान् लिखा है।[3]

७२. अहीनगु—देवानीक का पुत्र अहीनगु था। अहीनगु का कुल दो वंशों में विभक्त हुआ। इन में से एक वंश का उल्लेख वायु आदि में और दूसरे का उल्लेख मत्स्य आदि में है।

वायुपुराण-प्रदर्शित परंपरा—वायुपुराण के अनुसार अहीनगु का पुत्र पारिपात्र = पारियात्र था। उस का पुत्र दल था। हरिवंश में इस का नाम सुधन्वा लिखा है। महाभारत में इस राजा का नाम परीक्षित् है।[4] पुराणों में इस की सन्तति के विषय में बड़ी गड़बड़ है। महाभारत के पाठ से वह सब ठीक हो जाती है।[5] अध्यापक प्रधान का मत ठीक है कि दल और बल भाई थे, पिता पुत्र नहीं थे।[6]

७३. बल—पारिपात्र का पुत्र बल था। बल और वामदेव की कथा वनपर्व के पूर्वोक्त प्रकरण में उल्लिखित है। रघुवंश में बल का नाम न देकर उस के भाई शिल का नाम लिखा है।[7]

७४. उक्थ—इस नाम के अनेक पाठान्तर पुराणों में पाए जाते हैं। कालिदास उन्नाभ नाम लिखता है।[8]

७५. वज्रनाभ—इस का नाममात्र मिलता है।

७६. शंखन—वज्रनाभ का पुत्र शंखन था।

७७. व्युषिताश्व—वायु में इसे विद्वान् लिखा है।[9]

७८. विश्वसह—यह व्युषिताश्व का पुत्र था।

७९. हिरण्यनाभ कौसल्य—वैदिक साहित्य में यह राजा अत्यन्त प्रसिद्ध है। अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम पृ० १५५ पर हम ने हिरण्यनाभ के काल के सम्बन्ध में कई पक्ष उपस्थित किए थे। वहीं पृ० २०८ पर हम ने पुनः लिखा था—

"हिरण्यनाभ कौसल्य महाभारत-काल में विद्यमान था। पुराण-पाठों की अस्त-व्यस्त अवस्था में इस से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।"

इस पक्ष का अब हम सर्वथा समर्थन करते हैं। प्रधान महाशय ने ठीक दर्शाया है कि

---

१. शान्तिपर्व अध्याय ८२। अध्याय १०४—१०६॥
२. सभापर्व ७।१८॥
३. वायु ८८।२०३॥ मत्स्य १२।५३॥
४. वनपर्व १९५।३॥
५. वनपर्व १९५।३८॥
६. क्रो० ए० इ० पृ० १२१,१२२॥
७. रघुवंश १८।१७॥
८. रघुवंश १८।२०॥
९. वायु ८८।२०६॥

कोसलों की एक वंशावली हिरण्यनाभ पर समाप्त हो जाती है। उस से आगे बृहद्बल तक के नाम राम-पुत्र लव के कुल के हैं।

हिरण्यनाभ के पश्चात् इस पुराणस्थ कोसल वंशावली का ले जाना एक पुरानी भूल है। कालिदास ऐसा विद्वान् भी इस भूल से नहीं बच सका।

अध्यापक प्रधान से मत-भेद—अध्यापक प्रधान हिरण्यनाभ को कौरव जनमेजय तृतीय का समकालीन मानते हैं। उन के मत से हिरण्यनाभ का काल भारतयुद्ध से १०० वर्ष पश्चात् का है। क्योंकि युद्ध के पश्चात् ३६ वर्ष तक युधिष्ठिर ने राज्य किया और परीक्षित् की सारी आयु ६० वर्ष की थी। तत्पश्चात् जनमेजय ने राज्यभार संभाला। दूसरी ओर शन्तनु की मृत्यु के ठीक कुछ दिन पश्चात् हिरण्यनाभ-शिष्य कृत का पुत्र उग्रायुध भीष्म से मारा गया। इस घटना के न्यून से न्यून १२५ वर्ष पश्चात् भारत-युद्ध हुआ। कृत का पुत्र मृत्यु के समय ३० वर्ष से कम का न होगा। अतः भारत-युद्ध से १५५ वर्ष पहले कृत हुआ था। बहुत संभव है कृत वानप्रस्थ हो गया हो। इसी प्रकार हिरण्यनाभ भी संन्यासी या वानप्रस्थ हो गया हो। इस अवस्था में उन दोनों की आयु दीर्घ हो सकती है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि हिरण्यनाभ भारत-युद्ध से १५० वर्ष पहले जीवित था। हिरण्यनाभ योगविद्या में याज्ञवल्क्य का गुरु था।[1] याज्ञवल्क्य की आयु दीर्घ थी, इसी प्रकार हिरण्यनाभ की आयु भी दीर्घ हो सकती है। व्यास ने भारत-युद्ध से लगभग १०० वर्ष पहले वेद-चरण प्रवचन किया था। तब जैमिनि और उस के पुत्र, पौत्र आदि जीते होंगे। उस समय या उस के कुछ काल पश्चात् हिरण्यनाभ ने साम-संहिता प्रवचन किया।

प्रधान महाशय ने कृति जनक के साथ हिरण्यनाभ का सम्बन्ध जोड़ा है, यह युक्ति-युक्त नहीं।

वैदिक आचार्य समान आयु के होकर भी एक दूसरे के शिष्य हो सकते हैं। वैदिक ग्रन्थों में ऐसे उदाहरण बहुत हैं। जैमिनि का पुत्र सुमन्तु और उसका पुत्र सुत्वा था। सुत्वा-शिष्य सुकर्मा था। अनेक पुराणों के विपरीत भागवत का मत इस विषय में ठीक प्रतीत होता है।[2] इसी सुकर्मा से हिरण्यनाभ ने सामवेद पढ़ा। बहुत संभव है हिरण्य-नाभ ने जैमिनि से भी सामवेद पढ़ा हो। कई पुराणों में ऐसा भी लिखा है।[3]

रघुवंश में भूल—मुद्रित रघुवंश के अनुसार हिरण्यनाभ का पुत्र एक कौसल्य था। यदि यह भूल कालिदास की है, तो इस का एक कारण प्रतीत होता है। आदिपर्व की दूसरी वंशावली में विचित्रवीर्य का विवाह कौसल्यात्माजा कन्याओं से लिखा है।[4] यह कौसल्य काशिराज भी था। संभवतः रघुवंश में इसे ही हिरण्यनाभ का पुत्र समझा गया है।

मत्स्यपुराण की परम्परा—अहीनगु की सन्तान का वायु के अनुसार वर्णन हो चुका। यह

---

१. तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता। वायु ८८।२०८॥

२. भागवत १२।६।७५–७७॥ ३. विष्णु ४।४।४८॥ ४. ९०।५४॥

वर्णन अहीनगु के पुत्र पारिपात्र के वंश का था। अब अहीनगु के दूसरे पुत्र सहस्राश्व के वंश का मत्स्य के अनुसार वर्णन किया जाता है।

सहस्राश्व के पश्चात् इन्द्रावलोक राजा हुआ। उस के पश्चात् तारापीड राजा था। तारापीड के पश्चात् चन्द्रगिरि राजा बना। उस के पश्चात् भानुश्चन्द्र और फिर श्रुतायु राजा हुआ। यह श्रुतायु भारत-युद्ध में मारा गया।[1]

भारत-युद्ध में तीन श्रुतायु मारे गए थे। एक श्रुतायु कालिङ्ग था, दूसरा आम्बष्ठ्य था और तीसरे के साथ महाभारत में कोई विशेषण नहीं मिलता। सम्भवतः यह तीसरा मत्स्य-पुराण-निर्दिष्ट श्रुतायु हो। इस का भाई अच्युतायु भी इस के साथ मिल कर भारत-युद्ध में लड़ रहा था।[2] इस का एक और भाई शतायु भी इसी के साथ लड़ता हुआ प्रतीत होता है।[3] ये सब भाई दुर्योधन के पक्ष में लड़ रहे थे।

मत्स्य में पाठ टूटने की सम्भावना—मत्स्य और कूर्म आदि पुराणों में सहस्राश्व के वंश में कई नाम छोड़े गए प्रतीत होते हैं। परन्तु इन का पूर्ण निर्णय अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के पश्चात् किया जा सकता है।

हिरण्यनाभ की सन्तति—शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।४ में लिखा है —

तेन ह पर आट्णार ईजे कौसल्यो राजा ......।
अट्णारस्य परः पुत्रोऽश्वं मेध्यमबन्धयत्।
हैरण्यनाभः कौसल्यो दिशः पूर्णा अमंहत ॥ इति

अर्थात्—अभिजिदतिरात्र से अट्णार के पुत्र कौसल्य पर ने यज्ञ किया। उस यज्ञ में हिरण्यनाभ कौसल्य अथवा अट्णार के पुत्र पर ने (सोने से) पूर्ण दिशाएं दान कीं।

अट्णार हिरण्यनाभ का विशेषण है। निरुक्त ३।१४ के टीकाकार दुर्ग और स्कन्द आट्णार का अर्थ अटनशील करते हैं। हिरण्यनाभ संन्यासी हो गया था। अतः उस का अट्-णार विशेषण युक्त है। संभव है पर भी उत्तर आयु में संन्यासी हो गया हो।

लगभग यही वर्णन शांखायन श्रौतसूत्र १६।९।११-१३ में है। वहां पर को विदेह-राज लिखा है और अट्णार के स्थान में अह्णार पाठ है। ताण्ड्य ब्रा० २५।१६।३ में भी पर आह्णार स्मरण किया गया है। वहां लिखा है कि पर के सहस्र पुत्र थे। जैमिनीय आरण्यक २।६।११ में ताण्ड्य की प्रतिध्वनिमात्र है, परन्तु पाठ पर आट्णार है। काठकसंहिता २२।३ में यही वार्ता उल्लिखित है। परन्तु नाम पर आङ्नार है। इन आह्णार, आङ्नार या आट्णार पाठों में से आट्णार पाठ शुद्ध प्रतीत होता। शांखायन के पाठ से प्रतीत होता है कि पर ने विदेह-विजय कर लिया था। इस विवरण से इतना निश्चित होता है कि हिरण्यनाभ का वीरुद् अट्णार था और अट्णार का पुत्र पर था।

---

१. श्रुतायुरभवत्तस्मात् भारते यो निपातितः। मत्स्य १२।५५। २. भीष्मपर्व ५१।१८॥
३. भीष्मपर्व ७५।२२॥

लव का कुल

हम पहले पृ० १११ पर लिख चुके हैं कि लव की राजधानी श्रावस्ती थी। लव के वंश में कौसल्य-राज बृहद्बल था जो भारत-युद्ध में अभिमन्यु से मारा गया। इस बृहद्बल के कुल में महात्मा बुद्ध के समय महाराज प्रसेनजित् श्रावस्ती में राज्य करता था। बौद्ध साहित्य में प्रसेनजित् और उसकी राजधानी श्रावस्ती का बहुधा उल्लेख मिलता है।

ब्रह्माण्ड और वायु का पाठभ्रंश—लव-वंश ब्रह्माण्ड और वायु में कभी अपने स्थान पर ही होगा। वायु और ब्रह्माण्ड के निम्नलिखित वर्तमान पाठ को देखने से विद्वान् पाठक यह बात भले प्रकार समझ सकते हैं—

उत्तराकोसले राज्यं लवस्य च महात्मनः।
श्रावस्ती लोकविख्याता ....॥
..................कुशवंशं निबोधत।[1]

यहां बिन्दु हमने दिए हैं। मुद्रित पाठ में इनका अभाव है। विख्याता पद के आगे यदि कुशवंशं पाठ आ जाए तो संगति टूटती है। यह भूल नई नहीं। कालिदास के काल में भी यह भूल विद्यमान थी। इस भूल के सुधारने का श्रेय प्रधान महाशय को है।

रामायण में प्रक्षेप—रामायण की कोसल-वंशावली में रघु और अज के मध्य में कई नाम ऐसे मिलते हैं जो वायु आदि में हिरण्यनाभ के पश्चात् हैं, और जो हमारे अनुमान के अनुसार लव के पश्चात् होने चाहिएं। यदि हमारा अनुमान सत्य सिद्ध हुआ, तो रामायण में इनका प्रक्षेप मानना पड़ेगा। नीचे भिन्न भिन्न ग्रन्थों के अनुसार इस वंश के राजाओं के नाम लिखे जाते हैं—

वायु[2]	ब्रह्माण्ड[3]	विष्णु[4]	उ० रा०[5]	उ० रा०[6]
१. पुष्य	...	...	कलमाषपाद	सौदास
२. ध्रुवसन्धि	...	...	शृंखल	खड्गी
३. सुदर्शन	...	...	...	...
४. अग्निवर्ण	...	...	...	...
५. शीघ्रग	...	...	...	...
६. मनु=मरु	मरु	मरु	मनु=मुनि	मनु
७. प्रसुश्रुत	प्रभुसुत	प्रसुश्रुत	सुश्रुत=प्रस्तुक	प्रसुस्तक
८. सुसन्धि	...	...		

१. वायु ८८।२००॥ ब्रह्माण्ड मध्य भाग, ६४।२००॥ २. ८८।२०९—२१२॥
३. ३।६४।२०९—२१३॥ ४. ४।५।१०८—११२॥
५. बालकाण्ड ६६।२७—३०॥ दा० रा० ७०।४०—४३॥
६. अयोध्याकाण्ड १२३।२५—२९॥ दा० रा० ११०।२८—३२॥

९. अमर्ष=सहस्वान्	...	अमर्ष	अम्बरीष	अम्बरीष
१०.		सहस्वान्	नहुष	नहुष
११. विश्रुतवान्	...	विश्वभव	ययाति	ययाति
१२. बृहद्बल	...	बृहद्बल	नाभाग	

इन में से रामायण का पाठ केवल नाम-समता बताने के लिए लिखा गया है। विष्णु के पाठ में सहस्वान् एक पृथक् राजा माना गया है। हम इसे विश्रुतवान् के स्थान में समझते हैं। इसलिए विष्णु का विश्वभव नाम नया है। भागवतपुराण में बृहद्बल का पिता तक्षक लिखा है।

इन सब बातों को देख कर अध्यापक प्रधान ने जो वंशावली ठीक की है, वही हमने मान ली है। वह वंशावली पृ० ११८ पर दी गई है।

पार्जिटर और रामायण-वंशावली—पार्जिटर का मत है कि रामायण-वंशावली के पांच नाम पुराण-वंशावलियों में स्थान भेद से मिलते हैं। हमारा विचार है कि पांच नाम नहीं, प्रत्युत छः नाम परस्पर मिलते हैं। पुराणों का अमर्ष रामायण का अम्बरीष बना है।

प्रतीत होता है कि रामायण की वंशावली कभी बहुत टूट चुकी थी। उसे पुराणों की सहायता से ठीक करते करते यह गड़बड़ हुई है।

मरु—लव-वंश में मरु या मनु का नाम उल्लेख-योग्य है। पुराणों के अनुसार यह राजा कलापग्राम में चला गया और योगाभ्यास में लग गया और वही नए युग में कौरव देवापि के साथ क्षात्रधर्म का प्रवर्तक होगा।

बृहद्बल—यह राजा भारत-युद्ध में आर्जुनि अभिमन्यु से मारा गया।[1] इसका वंश चिर-काल तक श्रावस्ती में राज करता रहा। सभापर्व २७।१ से वह कोसलाधिपति ज्ञात होता है।

---

१. द्रोणपर्व ४७।२२॥

बाईसवा अध्याय

कुरु से भारत-युद्ध पर्यन्त

काल—लगभग ९५० वर्ष

काल-निर्णय—व्यास-शिष्य वैशंपायन महाराज ययाति का चरित अभिमन्युपौत्र जनमेजय को सुना रहा है। अन्त में वह जनमेजय को सम्बोधन करके कहता है—

पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव। इदं वर्षसहस्राय राज्यं कारयितुं वशी॥[1]

इस कथा को सुनाए चिरकाल होगया। जनमेजय-पुत्र शतानीक ने एक अश्वमेध यज्ञ किया।[2] सम्भवतः उसी यज्ञ में शौनक ने यह ययाति-चरित शतानीक को सुनाया। इस का उल्लेख मत्स्यपुराण में है। शतानीक को सम्बोधन करके शौनक कहता है—

पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव। इदं वर्षसहस्राणां राज्यं कुरुकुलागतम्॥[3]

इदं वर्षसहस्राणां राज्यं कारयितुं वशी॥[4]

इस से ज्ञात होता है कि यदि मत्स्य का मुद्रित-पाठ ठीक हो तो कुरु से शतानीक के अश्वमेध तक एक सहस्र वर्ष का काल होना चाहिए।

यद्यपि महाभारत का पाठ और मत्स्य के दो हस्तलेखों का पाठ बताता है कि मत्स्य का मुद्रित-पाठ संदिग्ध है, तथापि महाभारत का एक और प्रकरण बताता है कि मत्स्य में कहा काल-विषयक परिमाण सत्य हो सकता है। अभिमन्यु-पुत्र परिक्षित् कालधर्म को प्राप्त हो गया। उस का पुत्र जनमेजय बाल्य-काल में ही राजा बना। उस जनमेजय को मन्त्री कहते हैं—

ततस्त्वं पुरुषश्रेष्ठ धर्मेण प्रतिपेदिवान्। इदं वर्षसहस्राय राज्यं कुरुकुलागतम्।

बाल एवाभिजातोऽसि सर्वभूतानुपालकः॥[5]

यदि सहस्र-पद यहां "बहु" का द्योतक नहीं, तो कुरु से जनमेजय या शतानीक तक का काल लगभग एक सहस्र वर्ष का होना चाहिए।

कुरु से शन्तनु तक के राजाओं का व्यक्तिगत काल यद्यपि नहीं दिया जा सकता, तथापि शन्तनु से लेकर अगले राजाओं का काल महाभारत के आधार पर कुछ कुछ निश्चित किया जायगा।

---

१. आदिपर्व ८०।२७॥ २. मत्स्य ५०।६६॥ ३. मत्स्य ३४।३१॥

४. आनन्दाश्रम संस्करण के दो हस्त-लेखों का पाठान्तर।

५. आदिपर्व ४५।१६॥

१. वंशकर कुरु—यह राजा बड़ा तपस्वी था। इस ने अपने तप से कुरुक्षेत्र को पवित्र किया। इस की स्त्री का नाम वाहिनी था।[1] आदिपर्व की प्रथम वंशावली के अनुसार उस का वंश निम्नलिखित है—

- कुरु
  - अश्ववान्
  - अभिष्वान्
    - परिक्षित्
      - जनमेजय
        - भीमसेन
          - प्रतीप
            - शन्तनु=महाभिष
      - कक्षसेन
      - उग्रसेन
      - चित्रसेन
      - इन्द्रसेन
      - सुषेण वा श्रुतसेन ?
      - भीमसेन
    - शबलाश्व
    - अभिराज
    - विराज
    - शल्मल
    - उच्चैःश्रवा
    - भद्रकार
    - जितारि
  - चित्ररथ
  - मुनि
  - जनमेजय
    - धृतराष्ट्र
      - कुण्डिक

यह वंश-वृक्ष महाभारत[2] के पूना संस्करण के आधार पर बनाया गया है। परन्तु पूना संस्करण का तत्सम्बन्धी पाठ सर्वथा अस्पष्ट है। इस का अर्थ समझने में हम ने थोड़ी सी कल्पना की है।

उस कल्पना के विना आदिपर्व की इस प्रथम वंशावली का अर्थ लगना कठिन सा है। तदनुसार जनमेजय दो ही मानने पड़ते हैं।

पुराण-वंशावली—वायु और मत्स्यपुराण में कुरु के चार पुत्र लिखे हैं। वे थे—सुधन्वा, जह्नु, परिक्षित् और पुत्रक (प्रजन—मत्स्य)।[3] विष्णु में तीन प्रमुख-पुत्रों के नाम मिलते हैं—

सुधनुर्जह्नुपरिक्षित्प्रमुखाः कुरोः पुत्रा बभूवुः।[4]

आदिपर्व की दूसरी वंशावली—इस वंशावली में परिक्षित् का पिता अश्ववान् लिखा है। पहली वंशावली के अनुसार परिक्षित् का पिता अभिष्वान् है। हमें ये दोनों नाम किसी एक मूल पाठ के रूपान्तर प्रतीत होते हैं। दूसरी वंशावली का विदूरथ कदाचित् पहली का चित्ररथ हो। इस प्रकार संभव है इन दोनों वंशावलियों में यहां पर कभी कोई भेद न रहा हो।

---

१. आदिपर्व ८९।४४॥ २. आदिपर्व ८९।४४–५१॥

३. वायु ९९।२१७,२१८॥ मत्स्य ५०।२३॥ ४. विष्णु ४।१९।७८॥

आदिपर्वस्थ और पुराणस्थ वंशावलियों में भेद का कारण—आदिपर्व की वंशावलियों में हस्तिनापुर के वंश का ही वृत्तान्त मिलता है। इन वंशावलियों का लक्ष्य भी यही था। पुराण-वंशावलियों में कुरु से उत्पन्न होने वाले मागध आदि वंशों का वृत्त भी उल्लेखनीय था, अतः उन में सारा वृत्तान्त उसी दृष्टि से दिया गया है।

२. अभिष्वान्—इसका वर्णन हो चुका।

३. परिक्षित् प्रथम—मत्स्य के अनुसार यह परिक्षित् महातेज था।[1] वायु में इसे महाराज लिखा है।[2]

परिक्षित्-भ्राता उच्चैःश्रवा—उच्चैःश्रवा नाम के एक कौरव्य-राज का वर्णन जैमिनीय ब्राह्मण और आरण्यक में मिलता है—

अथैषोऽन्तर्वसुः खण्डिकश्च हौद्रारिः केशी च दार्भ्यः पश्चालेषु पस्पृधाते। .... स ह केशी उच्चैःश्रवसं कौवयेयं जगाम कौरव्यं राजानं मातुर्भ्रातरम्। जै० ब्रा० २।२७९॥

उच्चैःश्रवा ह कौपयेयः (कौवयेयः—पाठान्तर) कौरव्यो राजास। तस्य ह केशी दार्भ्यः पाश्चालो राजा स्वस्रीय आस। जै० आ० ३।२९।१॥

इन दोनों उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कुवय या कुपय का पुत्र उच्चैःश्रवा था। आदिपर्व की प्रथम वंशावली में परिक्षित् और उच्चैःश्रवा के पिता का नाम अभिष्वान् लिखा है। यदि यह उच्चैःश्रवा उसी का पुत्र था, तो अभिष्वान् का एक नाम कुवय या कुपय होगा। केशी की माता अर्थात् दर्भ की पत्नी उच्चैःश्रवा कौरव की भगिनी थी।

एक और संभावना—यदि परिक्षित्-भ्राता उच्चैःश्रवा जैमिनीय ब्राह्मण वाला उच्चैःश्रवा न माना जाए तो क्या कौरव कुल में कोई और भी उच्चैःश्रवा हो सकता है? उपलब्ध वाङ्मय से इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। यह प्रश्न इस लिए उत्पन्न होता है कि दर्भ और केशी का काल उच्चैःश्रवा के काल से सम्बन्ध रखता है। हम पृ० ३७ पर कौषीतकि ब्राह्मण के प्रमाण से लिख चुके हैं कि याज्ञसेन शिखडी का समकालीन केशी दार्भ्य था। यह शिखण्डी भारत-युद्ध में मारा गया। युद्ध के समय उस की आयु छोटी नहीं थी। कौषीतकि ब्राह्मण में वर्णित घटना युद्ध से बीस पच्चीस वर्ष पहले की होगी। केशी का मामा उच्चैःश्रवा था। इस प्रकार उच्चैःश्रवा भारत-युद्ध से बहुत पहले का नहीं हो सकता। यह सारा विचार शिखण्डी को द्रुपद=यज्ञसेन का पुत्र मानने से उत्पन्न होता है। महाराज प्रतीप का एक नाम पर्यश्रवा था। क्या उनका कोई छोटा भाई उच्चैःश्रवा हो सकता है?

उच्चैःश्रवा कौवयेय—उच्चैःश्रवा कुवय का पुत्र था। यह कुवय कोई कौरव राजा था। इस का नाम अन्यत्र नहीं मिलता।

४. जनमेजय द्वितीय—परिक्षित् प्रथम का पुत्र जनमेजय द्वितीय था। वह बड़ा बलवान् राजा था।

१. मत्स्य ५०।२३॥ २. वायु ९९।२१८॥

वैदिक ग्रन्थ और जनमेजय—ऐतरेय ब्राह्मण के कई प्रकरणों में महाराज जनमेजय और तुरः कावषेय का उल्लेख मिलता है।[1] तुरः कावषेय एक प्रसिद्ध याज्ञिक था।[2] शतपथ की एक वंशावली में लिखा है कि तुरः कावषेय प्रजापति-शिष्य था।[3] तुरः कावषेय के समान दन्तावल धौम्र भी जनमेजय पारिक्षित् का समकालीन था।[4]

जनमेजय का दूसरा प्रधान याज्ञिक इन्द्रोत दैवाप शौनक था।[5] जनमेजय ने आसन्दीवान्[6] नाम स्थान पर एक भारी यज्ञ किया।[7] इन्द्रोत दैवाप शौनक और तुरः कावषेय उस यज्ञ में उपस्थित थे।

जैमिनीय आरण्यक के एक वंश में इन्द्रोत दैवाप शौनक का सम्बन्ध दृति ऐन्द्रोति शौनक से बताया गया है। यह दृति इन्द्रोत का पुत्र होगा। ये लोग शौनक पक्षान्तर्गत होंगे। इस वंशावली का थोड़ा सा आवश्यक भाग नीचे दिया जाता है[8]—

१. श्रुष वाह्नेय काश्यप
२. इन्द्रोत दैवाप शौनक
३. दृति ऐन्द्रोति शौनक
४. पुलुष प्राचीनयोग्य
५. सत्ययज्ञ पौलुषि प्राचीनयोग्य
६. सोमशुष्म सात्ययज्ञि प्राचीनयोग्य
७. हृत्स्वाशय आल्लकेय[9] (महावृषराज)
८. जनश्रुत काण्ड्वीय

इस वंशावली में कई नाम पिता-पुत्र के हैं, और कई नाम निरन्तर समकालीन आचार्यों के आते हैं। पूर्वोक्त नामों में पाचवां व्यक्ति सत्ययज्ञ पौलुषि उपवेश-पुत्र अरुण का समकालीन था।[10] उपवेश-पुत्र अरुण भारत-युद्ध से बहुत पहले हो चुका था। उस से भी पहले इन्द्रोत दैवाप शौनक हुआ। वह इन्द्रोत जनमेजय द्वितीय का याज्ञिक था।

अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरी की भूल—अध्यापक राय ने न्यून से न्यून तीन जनमेजयों को

---

१. तत्रापि तुरः कावषेय उवाचोपः पोषो जनमेजय केति। ऐ० ब्रा० ४।२७॥
एतमु हैव प्रोवाच तुरः कावषेयो जनमेजयाय पारिक्षिताय। ऐ० ब्रा० ७।३४॥
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो जनमेजयं पारिक्षितमभिषिषेच। ऐ० ब्रा० ८।२१॥
२. तुरो ह कावषेयः कारोत्यां देवेभ्योऽग्निं चिकाय। श० ब्रा० ९।५।२।१५॥
३. १०।६।५।९॥ ४. गो० ब्रा० पूर्वार्ध २।५॥
५. श० ब्रा० १३।५।४।१॥ ६. आसन्दीवान् एक ग्राम था। पाणिनीय सूत्र ८।२।१२ में उसका उल्लेख है। उस पर काशिका में लिखा है—आसन्दीवान् ग्रामः। आसन्दीवदहिस्थलम्। क्या यह ग्राम अहिस्थल में था? अध्यापक राय चौधरी (पो. हि. ए. इ. सन् १९३८, पृ० ३३ पर) आसन्दीवान् को जनमेजय की राजधानी मानते हैं। यह ठीक नहीं। यह ग्राम राजधानी नहीं हो सकता। यह स्थान यज्ञ के लिए चुना गया होगा।
७. श० ब्रा० १३।५।४।२॥ ऐ० ब्रा० ८।२१॥ ८. जै० आ० ३।४०।१॥
९. तुलना करो—जै० ब्रा० १। २३४॥ १०. अथ हैतेऽरुणे औपवेशौ समाजग्मुः। सत्ययज्ञः पौलुषिः महाशालो जाबालः...... । श० ब्रा० १०।६।१।१२॥

एक बना दिया है। रामायण का जनमेजय बहुत पहला था।[1] वह दशरथ से भी पहला कोई जनमेजय था। उसे और कौरव जनमेजय द्वितीय और तृतीय को रायजी ने एक कर दिया है।[2] सर्वथा पृथक् ऐतिहासिक व्यक्तियों का ऐसा सम्मिश्रण उचित नहीं। दोनों जनमेजयों में आठ सौ वर्ष से कम का अंतर नहीं है। अध्यापक राय को जानना चाहिए कि जनमेजय नाम के न्यून से न्यून अस्सी प्रसिद्ध राजा पुरातन भारतीय इतिहास में हो चुके हैं।[3] अध्यापक राय की भूल निम्नलिखित घटना के उल्लेख से और भी स्पष्ट हो जायगी।

जनमेजय और गार्ग्य-पुत्र की हिंसा—वायुपुराण में लिखा है[4]—कुरु-पौत्र और परिक्षित्-पुत्र जनमेजय ने गार्ग्य के बाल-सुत की दुर्बुद्धिता से हिंसा की। वह जनमेजय राजर्षि लोहगन्धी अर्थात् दुर्गन्धयुक्त रक्त वाला होगया। पौर और जानपद लोगों ने उसे त्याग दिया। तब राजा ने उदारबुद्धि विख्यात इन्द्रोत शौनक की शरण ली। इन्द्रोत शौनक ने राजा का अश्वमेध यज्ञ कराया। अवभृथ स्नान के पश्चात् राजा का लोहगन्ध दूर हुआ। जनमेजय के पास ययाति को रुद्र-द्वारा मिला हुआ दिव्य रथ था। वह पौरवों की सम्पत्ति में था। इन्द्र ने जनमेजय के अनार्य कर्म को देख कर वह रथ जनमेजय से ले लिया और उसे अपने मित्र चैद्य-वसु को दे दिया।[5]

चैद्य-उपरिचर-वसु इन्द्र का मित्र था। यह वायुपुराण में अन्यत्र भी लिखा है।[6] सम्भवतः इस वसु ने भी किसी युद्ध में इन्द्र की सहायता की होगी।

चैद्य-वसु भारत-युद्ध से अनेक पीढ़ी पहले हुआ। वह जनमेजय द्वितीय का समकालीन था। इसलिए अध्यापक राय का जनमेजय सम्बन्धी मत ऐतिहासिकों को मान्य नहीं।

जनमेजय द्वितीय की इस पुरातन-कथा को भीष्म ने भी युधिष्ठर को सुनाया था।[7] इस लिए भी जनमेजय द्वितीय का जनमेजय तृतीय से मिलाना युक्तिसंगत नहीं।

जनमेजय भ्राता कक्षसेन—जनमेजय द्वितीय का एक भाई कक्षसेन था। इस के सम्बन्ध में ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के निम्नलिखित वचन ध्यान देने योग्य हैं—

अथ ह ब्रह्मदत्तश्चैकितानेयः कुरु जगामाभिप्रतारिणं काक्षसेनिम्। अथ ह······पुरोहितः······शौनकः। ·········तं होवाच······दाल्भ्य········· । जै० आ० १।५९।१॥ तद्ध शौनकं च कापेयम् अभिप्रतारिणं च......।[8] जै० आ० ३।१।२१॥ इन वचनों से ज्ञात होता है कि ब्रह्मदत्त चैकितानेय, अभिप्रतारी काक्षसेनि कौरव, पुरोहित शौनक और शौनक कापेय समकालीन थे। सम्भवतः शौनक और शौनक

---

१. पो. हि. ए. इ. पृ० ३२, The Ramayana also refers to Janamejaya as a great king of the past,
२. पो. हि. ए. इ. पृ० ३०–३२।
३. वायु ९९।४५४॥
४. वायु-पुराण ९३।१८–२७॥
५. देखो पृ० ५९।
६. वायु-पुराण ९९।२२०॥
७. शान्तिपर्व अध्याय १४९–१५१।
८. तुलना करो छां० उप० ४।३।५॥—अभिप्रतारिणं च काक्षसेनिम्।

कापेय एक ही हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १०।५।७ में अभिप्रतारी[1] काक्षसेनि और गिरिक्षित् औचामन्यव का संवाद है। ताण्ड्य ब्रा० १४।१।१२ में कक्षसेन-पुत्र अभिप्रतारी[2] दृति ऐन्द्रोत से एक प्रश्न पूछता है।

ता ह शुचिवृक्षो गौपालायनो वृद्धद्युम्नस्याभिप्रतारिणस्योभयीर्यज्ञे संनिरुवाप तस्य ह रथगृत्सं गाहमानं दृष्ट्वोवाच। ऐ० ब्रा० १५।४८॥

तेनो ह त्रिष्टोमेन वृद्धद्युम्न आभिप्रतारिण ईजे।१०। तमु ह ब्राह्मणोऽनुव्याजहार। न क्षत्रस्य धृतिनायष्ट इममेव प्रति समरं कुरवः कुरुक्षेत्रात् च्योष्यन्त इति।११। तदु किल तथैवास यथैवेनं प्रोवाच।१२। शां० श्रौ० सू० १५।१६॥

इन दोनों वचनों से और पूर्वोक्त उद्धरणों से कक्षसेन का निम्नलिखित वंशक्रम उपलब्ध होता है—

जनमेजय	कक्षसेन	इन्द्रोत दैवाप शौनक	
|	|		
भीमसेन	अभिप्रतारी	दृति ऐन्द्रोत	ब्रह्मदत्त चैकितानेय[2]
|	|		
प्रतीप	वृद्धद्युम्न	शुचिवृक्ष गौपालायन	
|	|		
शन्तनु	रथगृत्स		

जनमेजय का वंश हस्तिनापुर में और कक्षसेन का वंश कुरुक्षेत्र के किसी और विभाग में राज करता था। ब्राह्मण ग्रन्थों की सहायता से उस काल के अनेक समकालीन राजाओं और ऋषियों का वृत्तान्त पूरा किया जा सकता है। स्थानाभाव से हम केवल कोसल के समकालीन राजा का वर्णन नीचे करते हैं।

कोसल-राज ब्रह्मदत्त प्रासेनजित—जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है प्रसेनजित् के पुत्र ब्रह्मदत्त कौसल्य ने ब्रह्मदत्त चैकितानेय को वरा।[3] यदि पृ० ११८ पर दी गई कोसल-राज-वंशावली देखी जाए तो बृहद्बल से दो नाम पहले प्रसेनजित् का नाम लिखा है। यह नाम कुछ और पहले चाहिए। संभव है वहां तक्षक से पहले ब्रह्मदत्त आदि नाम जोड़ने पड़ें। यदि भागवतपुराण ९।१२।७,८ में कोसल-वंशावली के प्रसेनजित् आदि नाम न मिलते, तो जैमिनीय ब्राह्मण के प्रमाण का कोई दूसरा साक्ष्य रहा ही न था। प्रसेनजित् नाम अन्यत्र नहीं है।

जनमेजय के दूसरे भाई—जनमेजय के कई भाई पृ० १२६ पर लिखे गए हैं। इनमें से कक्षसेन और उस के कुल का वर्णन हो चुका। शेष में से उग्रसेन, श्रुतसेन और भीमसेन का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है।[4] हरिवंश में भूल से श्रुतसेन उग्रसेन और भीमसेन को जनमेजय का दायाद लिखा है।[5]

१५. भीमसेन—भीमसेन का नाममात्र मिलता है। कई पुराणों में भीमसेन के स्थान पर दिलीप नाम मिलता है।

---

१. परलोकगत अध्यापक कालेण्ड अपने अनुवाद में आभिप्रतारिण पाठ पढ़ता है।

२. इसका समकालीन गलुना आर्क्षकायण था। जै० ब्रा० १।३३७॥

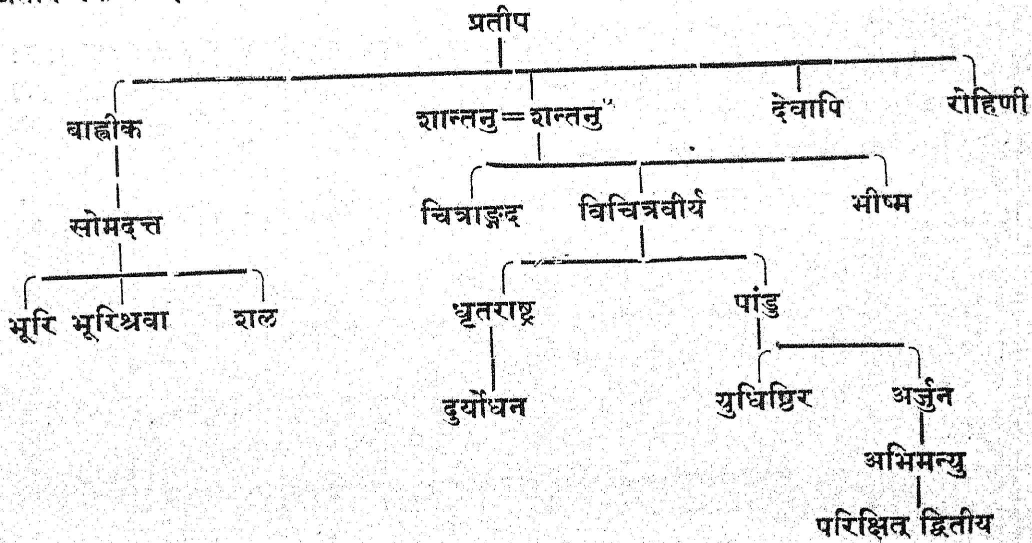
३. १।३३७॥ ४. श० ब्रा० १३।५।४।३॥ शां० श्रौ० १६।९।२–७॥ ५. हरिवंश १।३२।१०१॥

प्रतीप=प्रतिप=पर्यश्रवा—गत पृष्ठ पर शांखायन श्रौतसूत्र का एकवचन उद्धृत किया गया है। उसके अनुसार वृद्धद्युम्न कौरव के काल में कुरु-लोग किसी समर के पश्चात् कुरुक्षेत्र से निकाले गए। वृद्धद्युम्न और प्रतीप समकालीन प्रतीत होते हैं। वृद्धद्युम्न के साथ प्रतीप को भी उन संग्रामों में क्षति उठानी पड़ी होगी। पर प्रतीत होता है प्रतीप ने अपना राज्य संभाला होगा। उद्योगपर्व में लिखा है—प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति १४०।३०। संभवतः इन युद्धों के कारण यौवन में महाराज प्रतीप के कोई सन्तान न हुई।

स्त्री—प्रतीप की स्त्री शैब्या सुनन्दा थी। चौदहवें अध्याय में शिबि-कुल का वर्णन हो चुका है।[1] वृषादर्व का कुल शिबिपुर में प्रतिष्ठित हुआ था। यह पुर पंजाबांतर्गत झंग के समीप का वर्तमान शोरकोट था। सुनन्दा वहां की राजकुमारी थी।

सन्तति—सुनन्दा और प्रतीप ने गंगा-तट पर पुत्रार्थ तप तपा। वृद्धावस्था में उन के तीन पुत्र हुए। उन के नाम थे देवापि, शन्तनु और वाह्लीक। बाह्लीक से छोटी इन की एक कन्या रोहिणी थी। वह यादव वसुदेव की स्त्री थी।[2]

वानप्रस्थ प्रतीप—देवापि बाल्यकाल में वनस्थ होगया। बाह्लीक अपने मामा के घर में चला गया। शन्तनु युवा हो गया था। पिता ने उस का अभिषेक किया।[3] प्रतीप पहले देवापि का अभिषेक करना चाहता था। प्रजाओं के वर्जने पर उस ने शन्तनु का अभिषेक किया। दुःखित अवस्था में तपस्या के निमित्त वह वानप्रस्थ हुआ और परलोक सिधारा।[4] यहां पर प्रतीप वंश का देना आवश्यक प्रतीत होता है—



१. पृ० ७९। २. ब्रह्माण्ड ३।७१।१६३॥ हरिवंश १।३५।४॥
३. आदिपर्व ९२।२३॥ ४. उद्योगपर्व १४७।१६—२६॥ ५. प्रातीपः शन्तनुः। उद्योग १४८।२॥

राजराजेश्वर शंतनु—राज्यकाल लगभग ५० वर्ष

७. महाभिष[1]-शन्तनु—लगभग २० वर्ष की आयु में शन्तनु का राज्याभिषेक हुआ होगा। शन्तनु मृगयाशील राजा था। गंगा-तीर पर विचरण करते हुए उस ने गंगा नाम्नी एक परम सुंदरी स्त्री को वरा। वह स्त्री लगभग दस वर्ष तक शन्तनु के पास रही। राजा से जाते समय वह अपने नव-जात पुत्र देवव्रत को साथ ले गई।

इस शन्तनु का द्युतिमान् इतिहास महाभारत कहा जाता है।[2] शन्तनु के गुणों का विस्तृत वर्णन आदिपर्व में मिलता है।[3] छत्तीस वर्ष या अठाइस वर्ष[4] के पश्चात् वह गृहस्थधर्म से कुछ उन्मुख हुआ। अठाइस वर्ष अधिक युक्त-काल प्रतीत होता है।

देवव्रत से मिलन—अपने अड़तालीसवें वर्ष में राजा ने यमुना-तट पर विचरते हुए अपने पुत्र देवव्रत को फिर पाया। तब देवव्रत की आयु लगभग अठारह वर्ष की होगी।

देवव्रत का राज्याभिषेक—देवव्रत धनुर्वेद, अर्थवेद और वेद का पंडित हो चुका था।[5] पिता ने हस्तिनापुर में ला कर देवव्रत को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। तब चार वर्ष और बीत गये। शन्तनु की आयु तब ५२ वर्ष की होगी।

सत्यवती से विवाह—तभी यमुना-तीर पर शन्तनु ने दाशराज-कन्या सत्यवती को देखा।[6] शन्तनु और सत्यवती के विवाह प्रसंग में देवव्रत के भीष्म-व्रत का आख्यान संसार के साहित्य में एक अनुपम स्थान रखता है। आर्य-जाति को भीष्म ऐसे पुत्र-रत्न उत्पन्न करने का गौरव है।

पुत्र के असाधारण त्याग से प्रसन्न होकर महाभिष ने भीष्म को स्वच्छन्दमरण दिया।[7] संभवतः शन्तनु के पास कोई ऐसी रसायन थी जो बहुत काल में बनती थी। उसे स्वयं न वर्त कर शन्तनु ने पुत्र को दे दिया होगा। उस औषध के दूसरी बार बनने से पहले ही शन्तनु परलोक सिधार गया होगा।

सत्यवती के विवाह-समय शन्तनु की आयु ५३ वर्ष की और भीष्म की लगभग २३ वर्ष की होगी।

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य—सत्यवती से शन्तनु के दो पुत्र हुए। छोटा पुत्र विचित्रवीर्य अभी अप्राप्त-यौवन या लगभग १६ वर्ष का होगा जब शन्तनु कालधर्म को प्राप्त हुआ।[8] उस समय शन्तनु की आयु लगभग बहत्तर वर्ष की होगी।

शन्तनु के राज्य में बारह वर्ष की अनावृष्टि—यास्कीय निरुक्त २।१० में लिखा है—देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीयानभिषेचयांचक्रे देवापिस्तपः प्रतिपेदे। ततः शन्तनो राज्ये

---

१. आदिपर्व ६२।१८॥ २. आदिपर्व ६३।४६॥ ३. ६४।१–१७॥

४. पूना संस्करण, आदिपर्व ६४।१८॥ तथा इस श्लोक के पाठान्तर।

५. आदिपर्व ६४।३२–३६॥ ६. आदिपर्व ६४।४१,४२॥ ७. आदिपर्व ६४।६४॥

८. आदिपर्व ६५।४॥

द्वादश वर्षाणि देवो न ववर्ष । तमूचुर्ब्राह्मणाः । इस वचन में आर्ष्टिषेण का अर्थ यास्कादि द्वारा ऋष्टिषेण का पुत्र किया जाता है। निरुक्तभाष्यकार स्कन्दस्वामी इस पद की व्याख्या में लिखता है कि देवापि ने च्यवन के पास ब्रह्मचर्य वास किया। इसी च्यवन का दूसरा नाम ऋष्टिषेण था।[1] वायुपुराण का एक भ्रष्टपाठ स्कन्द की व्याख्या का समर्थन करता है।[2]

दुर्गाचार्य और स्कन्द दोनों निरुक्त-टीकाकार लिखते हैं कि देवापि ब्राह्मण हो गया। स्कन्द देवापि और शन्तनु को भीमसेनपुत्रौ—लिखता है। क्या यहां भीमसेनपौत्रौ पाठ अधिक युक्त नहीं ?

नहीं कह सकते कि शन्तनु के राज्य-काल के किस भाग में यह अनावृष्टि हुई।

शन्तनु विद्वान्—वायु और मत्स्य में शन्तनु को विद्वान् लिखा है।[3] क्या वह मन्त्रद्रष्टा था ? इस सम्बन्ध में प्रधान महाशय ने एक कल्पना की है।[4] हमारे पास उसके मानने के लिए अभी पर्याप्त सामग्री नहीं है।

शन्तनु की मृत्यु को कुछ दिन हुए थे कि भारत के इतिहास में एक असाधारण घटना-हुई। उसका उल्लेख अगले अध्याय में होगा।

---

१. स च किल च्यवननामापरनाम्नि ऋष्टिषेणे ब्रह्मचर्यमुवास ।२।१०॥

२. च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः । वायु ९९।२३७॥

हरिवंश का पाठ अधिक अच्छा है—च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः ॥१।३२।१०९॥

सम्भवतः शुद्ध पाठ निम्नलिखित होगा—च्यवनस्य कृतः पुत्र आर्ष्टिषेणो महात्मनः ॥

३. वायु ९९।२३७॥ मत्स्य ५०।४२॥ ४. क्रो. ए. इ. पृ० ८०।

तेईसवां अध्याय

भारतयुद्ध से लगभग सौ वर्ष पूर्व

चक्रवर्ती उग्रायुध=जनमेजय

वंश-क्रम—पौरव अजमीढ का एक भ्राता द्विमीढ या द्विजमीढ था। उस के वंश में प्रसिद्ध सामग कृत हुआ। कृत हिरण्यनाभ कौसल्य का शिष्य था। कृत का पुत्र उग्रायुध था।

उग्रायुध बड़ा विजयी राजा हुआ। वह क्रूरकर्मा था। इस के सम्बन्ध में निम्नलिखित पुराण-पाठ ध्यान देने योग्य हैं—

वायु[1]

बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
नीलो नाम महाबाहुः पञ्चालाधिपतिर्हतः॥

मत्स्य[2]

बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः।
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी॥

इन से अधिक ठीक पाठ हरिवंश[3] का है—

बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः। नीपो नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः॥

इस का यह अर्थ है कि कार्ति उग्रायुध ने पृषत का पिता या पितामह नीप मारा। यह नीप द्वितीय नीप होगा। पार्जिटर ने अपनी वंश-सूची में इस नीप का उल्लेख नहीं किया।[4] हरिवंश आदि के पाठ से पता लगता है कि उग्रायुध ने नीपों के अतिरिक्त दूसरे राजाओं को भी मारा।[5] उसी उग्रायुध का भीष्म के साथ भी युद्ध हुआ।

उग्रायुध की भीष्म द्वारा मृत्यु—महाराज शन्तनु को दिवंगत हुए अभी कुछ दिन हुए थे। अभिमानी उग्रायुध ने कुरुपुंगव भीष्म के पास दूत भेजा। दूत ने आ कर कहा, हे भीष्म अपनी माता काली=सत्यवती का विवाह उग्रायुध से कर दो, अन्यथा तुम्हारे देश पर आक्रमण होगा। मन्त्रिमण्डल और पुरोहितवर्ग की अनुमति से आशौच के दिनों तक भीष्म चुप रहा। साम आदि उपायों से अमात्यों ने उग्रायुध को रोक रखा। आशौच के पश्चात् स्वस्त्ययन-पूर्वक भीष्म रण के लिए निकला। तीन दिन तक भीष्म का उग्रायुध से लोमहर्षण युद्ध हुआ।[6] तब भीष्म ने अस्त्रप्रताप से उग्रायुध को मार दिया। उग्रायुध की मृत्यु का संकेत महाभारत में मिलता है—

---

१. ९९।१९२॥ २. ४९।७७,७८॥
३. १।२०।४५॥ ४. ए. इ. हि. ट्रै. पृ० १४८॥
५. स दर्पपूर्णो हत्वाजौ नीपानन्यांश्च पार्थिवान्॥ हरिवंश १।२०।४८॥
६. हरिवंश १।२०।३०॥

येन चोग्रायुधो राजा चक्रवर्ती दुरासदः । दग्धश्चास्त्रप्रतापेन स मया युधि पातितः ॥[1]

उग्रायुध का नाम जनमेजय था—भदन्त अश्वघोष हरिवंश में वर्णित पूर्वोक्त घटना का संकेत अपने ग्रन्थों में करता है। उस के अनुसार उग्रायुध का नाम जनमेजय था —

स्वर्गं गते भर्तरि शन्तनौ च कालीं जिहीर्षन् जनमेजयः सः ।
अवाप भीष्मात् समवेत्य मृत्युं न तद्गतं मन्मथमुत्ससर्ज ॥[2]

नहीं कह सकते अश्वघोष ने किस प्रमाण के आधार पर उग्रायुध का नाम जनमेजय लिखा है।

नीपों के नाश का कारण—दूत बन कर कृष्ण हस्तिनापुर को जा रहे थे। भीम ने उन से कहा कि अठारह राजा अपने कुलों के नाशक प्रसिद्ध हैं, दुर्योधन भी वैसा ही होने वाला है। उन में से नीपों का नाशक जनमेजय है—

हैहयानामुदावर्तो नीपानां जनमेजयः ।[3]

मत्स्य, वायु और हरिवंश में काम्पिल्य के एक वंश का उल्लेख है। उस वंश में अणुह, ब्रह्मदत्त, विष्वक्सेन, उदकसेन =दण्डसेन, भल्लाट और जनमेजय नामक राजा हुए। पुराणों के अनुसार भल्लाट-पुत्र जनमेजय के परामर्श से उग्रायुध ने नीपों का नाश किया। इस मत के अनुसार जनमेजय का काल उग्रायुध के समीप होना चाहिए, परन्तु वर्तमान पुराण-पाठ-स्थिति के अनुसार यह काल-क्रम निम्नलिखित पड़ता है—

१. प्रतीप	प्रतीप	ब्रह्मदत्त	नीपद्वितीय	बृहद्रथ	कृत
२. बाह्लीक	शन्तनु	विष्वक्सेन	पृषत	|	उग्रायुध
३. सोमदत्त	भीष्म	उदकसेन	द्रुपद	जरासन्ध	
४. भूरिश्रवा	पाण्डु	भल्लाट	|	|	
५. अनेक पुत्र	अर्जुन	जनमेजय	धृष्टद्युम्न	सहदेव	

हमारा विचार है कि जनमेजय अथवा भल्लाट और जनमेजय नाम किसी और कुल के हैं। पांचाल-वंशों के वर्णन के नष्ट होने से यह समस्या उत्पन्न हुई है।

पांच भागों से फिर एक ही पांचाल—पृ० ११३ पर हम लिख चुके हैं कि कभी उत्तर पांचाल पांच भागों में बंट गया था। इन भागों पर भृम्यश्व के पांच पुत्रों का अधिकार हुआ। उन पांचों के कुल चिर काल तक अपने अपने भाग के राजा बने रहे। अन्त में उग्रायुध ने उन सब का नाश किया। उसने दक्षिण पांचाल के नीपों का भी नाश किया। उग्रायुध की मृत्यु के पश्चात् पांचालों के कुल में पृषत बच गया था। भीष्म की अनुमति से पृषत ने उत्तर और

---

१. शान्तिपर्व २६।१०॥ २. सौन्दरनन्द ७।४४॥ तुलना करो बुद्धचरित ११।१८—
उग्रायुधश्चोग्रधृतायुधोऽपि येषां कृते मृत्युमवाप भीष्मात् ।
३. उद्योगपर्व ७३।१३॥

दक्षिण पांचाल का राज्य संभाला। पृषत के साथ कुछ सृञ्जय और सोमक कुमार भी बचे थे। वे पृषत के अनुयाइयों के रूप में रहे। उन्हीं में से कई एक का वर्णन महाभारत के युद्ध-पर्वों में मिलता है। मुद्रित पुराणों में इन पांच कुलों का वंश-क्रम अधूरा रह गया है। कभी यह वंश-क्रम पूरा विद्यमान होगा।

अध्यापक प्रधान ने शतपथ ब्राह्मण १२।९।३।१–१३ के प्रमाण से सृञ्जयों के दो ऐसे राजाओं का पता दिया है जो पुराण-वंशावलियोंसे लुप्त हो चुके थे।[1] ये राजा थे पुंस और उसका पुत्र दुष्टरीतु। दुष्टरीतु कौरव्य बाह्लीक का समकालीन था।

दुर्मुख पांचाल

उन्हीं दिनों दुर्मुख भी पांचालों का एक प्रसिद्ध राजा था। दुर्मुख का वर्णन वैदिक, जैन और बौद्ध साहित्य में मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण ८।२३ में लिखा है कि बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पांचाल को ऐन्द्र महाभिषेक का उपदेश दिया। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में एक संग्रामजित् दुर्मुख उपस्थित था।[2] अध्यापक हेमचन्द्र राय चौधरी ने कुम्भकार जातक के प्रमाण से लिखा है कि दुर्मुख उत्तर पञ्चालरथ का राजा था। उसकी राजधानी कंपिलनगर थी। वह कलिङ्ग-राज करण्डु, गांधार नग्नजित् और वैदेह निमि का समकालीन था।[3] जैनउत्तराध्ययन सूत्र से भी अध्यापक राय ने यह बात सिद्ध की है।[3]

जैन विविधतीर्थ-कल्प में दुर्मुख के विषय में निम्नलिखित लेख है[4]—

इत्थेव नयरे दिव्वमउडरयणपडिबिंबिअमुहत्तणपसिद्धेण नामधिज्जेण दुमुहो नाम नरवई कोमुईमहूसवे इंदकेउं.........दट्ठुं।

अर्थात् दुर्मुख नरपति कांपिल्य में था।

गान्धारवर्णन के समय हम नग्नजित् का वृत्तान्त लिखेंगे। उससे निश्चय हो जायगा कि भारत-युद्ध से कुछ पहले एक नग्नजित् गान्धार के एक भाग पर राज्य करता था। उस की कन्या नाग्नजिती सत्या से देवकीपुत्र कृष्ण ने एक विवाह किया था। दुर्मुख पांचाल उसी का समकालीन था।

भारत-युद्ध में दुर्मुख का पुत्र—यद्यपि भारत-युद्ध के काल में दुर्मुख का कहीं पता नहीं लगता तथापि उसके पुत्र जनमेजय का नाम मिलता है। जनमेजय सोमकात्मज था।[5] वह पाण्डव पक्ष की ओर से लड़ रहा था। कर्ण को सुनाकर आचार्य कृप कह रहा है कि जिस युधिष्ठिर के ऐसे सहायक हैं, वह कैसे पराजित हो सकता है—

---

१. क्रो. ए. इ. पृ० १००,१०१। २. सभापर्व ४।१९॥

३. पो. हि. ए. इ. सन् १९३८। पृ० ७०, ११४,११५।

४. सिंघी जैन ग्रन्थमाला। विविधतीर्थकल्पान्तर्गत कांपिल्यपुरतीर्थकल्प, पृ० ५०।

५. कर्णपर्व अध्याय ८६ के १७–२२ श्लोकों को मिलाकर पढ़ने से यह ज्ञात होता है।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ॥३८॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥३९॥[1]

यहां श्लोक ३८ के द्वितीय चरण में दुर्मुख के पुत्र सोमक जनमेजय का स्पष्ट उल्लेख है। प्रतीत होता है भारत-युद्ध के समय दुर्मुख सोमक की मृत्यु हो चुकी थी।

भारत-युद्ध कालीन पांचालों का वर्णन आगे होगा।

---

१. द्रोणपर्व अध्याय १५६।

चौबीसवां अध्याय

शन्तनु-पुत्र विचित्रवीर्य से भारत-युद्ध पर्यन्त

विचित्रवीर्य राज्य—बारह वर्ष

शन्तनु-पुत्र चित्राङ्गद शीघ्र मारा गया। तब माता सत्यवती के परामर्श से भीष्म ने उस के छोटे भाई विचित्रवीर्य को हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बिठाया।[1] अभिषेक के समय विचित्रवीर्य की आयु लगभग सत्तरह वर्ष की होगी। वह बाल और अप्राप्तयौवन था।[2] जब वह यौवन को प्राप्त हुआ तो भीष्म ने काशी-राज की दो कुमारियों से उसका विवाह कर दिया। उन कन्याओं के नाम थे अम्बिका अम्बालिका। उस समय विचित्रवीर्य की आयु बाईस वर्ष की होगी।

यह काशी-राज कौन था—आदिपर्व ९०।५४ में इसे कौसल्य लिखा है। उद्योगपर्व १७५।७ से ज्ञात होता है कि सृञ्जय होत्रवाहन की कन्या इस कौसल्य से ब्याही गई थी। यह कौसल्य हिरण्यनाभ अथवा उस का कोई सम्बन्धी हो सकता है।

विचित्रवीर्य की मृत्यु—विवाह के पश्चात् सात वर्ष तक विचित्रवीर्य धर्मपूर्वक राज करता रहा।[3] हास्तिनापुर के नागरों ने जामदग्न्य राम के भय से उसे कुछ काल के लिए विप्रवासित कर दिया।[4] तब उस की आयु लगभग २९ वर्ष की होगी। उस समय दाराओं में अतिप्रसक्त रहने से तरुणावस्था में उसे राजयक्ष्मा का रोग हो गया। इस रोग से उस का जीवनान्त हुआ।

अनावृष्टि—तब अराजक राष्ट्र में वर्षा नहीं हुई— न ववर्ष सुरेश्वरः।

भीष्म का नेतृत्व लगभग बीस वर्ष

अब कुरुओं का कोई राजा नहीं था। भीष्म आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत का ग्रहण कर चुका था। तब भीष्म और सत्यवती की सम्मति से कुरु-कुल को विनाश से बचाने के लिए कृष्ण-

---

१. मंजुश्रीमूलकल्प में इन भाइयों का वर्णन करने वाला श्लोक कुछ भ्रष्ट हो गया है, शान्तनुश्चित्र-सुचित्रश्च पाण्डवा स नराधिपाः ॥३३३॥ यहां चित्र, चित्राङ्गद का और सुचित्र, विचित्रवीर्य का वाची है।

२. आदिपर्व ९५।१२॥

३. ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपतिः।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्माणं समपद्यत ॥ आदिपर्व ९६।५७॥
इस घटना का संकेत वल्लभदेव ने किया है। उसका उद्धरण पं० पन्नालाल-संशोधित नीतिवाक्यामृत टीका, मुम्बई संस्करण, संवत् १९७९, पृ० ३७ पर है।

४. उद्योगपर्व १४५।२३॥

द्वैपायन व्यास ने विचित्रवीर्य की पत्नियों से नियोगज सन्तान उत्पन्न की। इस प्रकार अम्बिका से धृतराष्ट्र, अंबालिका से पाण्डु और दासी से महाबुद्धिमान् विदुर का जन्म हुआ।

पाण्डु—पांच वर्ष

लगभग २० वर्ष की अवस्था में पाण्डु कौरवों का राजा बना। नेत्रहीन होने के कारण धृतराष्ट्र राजा नहीं बना। धृतराष्ट्र का विवाह सुबलात्मजा यादवी गांधारी से हुआ।[1] पाण्डु का विवाह मद्रदेशाधिपति शल्य की भगिनी माद्री और कुंतिभोज की कन्या कुंति=पृथा से हुआ। पृथा वस्तुतः वसुदेव के पिता शूर की कन्या थी। वह वसुदेव की भगिनी और कृष्ण की बुआ थी। शूर ने पृथा को अपने पैतृष्वसेय कुंतिभोज के लिए दे दिया। पृथा ने पाण्डु को स्वयंवर में वरा था।[2] माद्री महाधन से परिक्रीता थी।[3]

पाण्डु-विजय—पाण्डु ने दशार्ण, मगध, विदेह, काशी, सुम्ह और पुण्ड्र जीते। मगधराष्ट्र में राजगृह पर दार्व को मारा। कुरु राष्ट्र के जितने भाग गत वर्षों में कई राजाओं ने ले लिए थे, वे पाण्डु ने पुनः जीत लिए।[4]

तब पांडु अपनी पत्नियों सहित वनस्थ हो गया, उसने तापसधर्म ग्रहण कर लिया।

धृतराष्ट्र २०+२०=चालीस वर्ष

कुरु-राष्ट्र की अवस्था फिर बिगड़ने लगी। भीष्म ने तब धृतराष्ट्र को राजा बना दिया। धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और एक कन्या हुई। पाण्डु के भी पांच नियोगज पुत्र हुए। तीन कुंति से और पुत्रयुगल माद्री से। कुछ काल के पश्चात् पाण्डु की मृत्यु हो गई। ऋषि और तपस्वी लोग कुन्ती और पांडु-पुत्रों को हस्तिनापुर छोड़ गए। उस समय युधिष्ठिर सोलह वर्ष का, भीम पन्द्रह का और अर्जुन चौदह वर्ष का था। नकुल और सहदेव तेरह-तेरह वर्ष के थे।[5] दुर्योधन युधिष्ठिर से कुछ छोटा था। इतने में धृतराष्ट्र को राज्य संभाले कोई २० वर्ष हुए होंगे।

बीस वर्ष और—तेरह वर्ष तक दुर्योधन और युधिष्ठिर ने गुरु द्रोण से शिक्षा पाई और हस्तिनापुर में सहवास रखा। छः मास जतुगृह की घटना में लगे। छः मास पाञ्चाल में भ्रमण

---

१. जैन शत्रुञ्जयमाहात्म्य १०।६४१-४३ के अनुसार गान्धारी आदि आठ बहनों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ था। महाभारत आदिपर्व के पूना संस्करण में पृ० ४६७ पर क्षेपक-रूप ४ श्लोक पढ़े गये हैं। हमारा विचार है कभी ये श्लोक क्षेपक नहीं थे। इन श्लोकों में लिखा है कि गान्धारी आदि १० बहनों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ। प्रतीत होता है कि एक ही मांसपिण्ड से धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की कथा घड़ने के लिए ये श्लोक शनैः शनैः महाभारत से लुप्त हुए हैं। वस्तुतः इन्हीं दस बहनों से धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे।

२. आदिपर्व १०५।१,२॥ ३. आदिपर्व १०५।५॥ ४. आदिपर्व १०५।२१॥

५. पाण्डु-पुत्रों का आयु-परिमाण कुछ हस्तलेखों में मिलता है। इस के ठीक होने में कोई सन्देह नहीं। सम्भवतः यह पाठ महाभारत की कभी एक शाखा में हो। पूना संस्करण का आदिपर्व प्रक्षेप पृ० ९१३।

हुआ। तब द्रौपदी स्वयंवर हुआ। उस समय अर्जुन की आयु लगभग अठाईस वर्ष की होगी। एक वर्ष तक पाण्डव द्रुपद-गृह में रहे। तदनन्तर पांडव हस्तिनापुर को लौटे और पांच वर्ष तक धृतराष्ट्र की छत्रछाया में रहे। यह समय बीस वर्ष का हुआ। इस गणना में भेद का कोई स्थान दिखाई नहीं देता। अधिक से अधिक कोई यह कह सकता है कि इसमें से पांच छः वर्ष और न्यून कर लिए जाएं। परन्तु यह युक्त नहीं होगा।

सम्राट् दुर्योधन—छत्तीस वर्ष

अब दुर्योधन बड़ा हो गया था। उस की आयु लगभग पैंतीस वर्ष की होगी। धृतराष्ट्र ने उसे राजा बना दिया। दुर्योधन हस्तिनापुर में और युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में राज्य करने लगे। युधिष्ठिर २३ वर्ष तक इन्द्रप्रस्थ में रहा। यह काल भी अनुमानित हो सकता है। इन्द्रप्रस्थ में आने पर नारद ने पांडवों से भेंट की। उसके दीर्घ काल पश्चात् अर्जुन ने ब्राह्मण-गौओं को बचाया।[1] यह दीर्घकाल लगभग छः वर्ष का होगा। तब अर्जुन १२ वर्ष के लिए स्वयं निर्वासित हो गया।[2] ग्यारहवें वर्ष के अन्त में अर्जुन ने सुभद्रा-हरण किया। तब अर्जुन खाण्डवप्रस्थ को लौटा।[3] खांडवप्रस्थ में ही सुभद्रा ने अभिमन्यु को जन्म दिया। दूसरे वृष्णि-अंधकों के द्वारवती को लौटने पर भी कृष्ण अभी इन्द्रप्रस्थ में थे। उन्होंने जन्म से लेकर अभिमन्यु के सब संस्कार किए। इसके कुछ दिन पश्चात् प्रसिद्ध खांडव-दाह हुआ। उस खांडव-दाह में से छः व्यक्ति बचे। एक तक्षक-पुत्र अश्वसेन, दूसरा शिल्पी मय असुर और शेष चार मन्दपाल ऋषि के ब्रह्मवादी-पुत्र।[4]

इसके पश्चात् मय ने युधिष्ठिर की राजसभा बनाई। उसके बनने में १४ मास लगे।[5] तब युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ हुआ, और फिर द्यूत के पश्चात् पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास हुआ। खाण्डव-दाह इन्द्रप्रस्थ-प्रवेश के उन्नीसवें या बीसवें वर्ष में हुआ। उन दिनों अभिमन्यु का जन्म हो चुका था। इस प्रकार युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ-राज्य २३ वर्ष का हुआ। प्रवास के १३ वर्ष मिला कर कुल ३६ वर्ष हुए। यही हम ने दुर्योधन का राज्य-काल लिखा है। तदनन्तर घोर भारत-संग्राम हुआ।

पूर्वोक्त लेख से ज्ञात हो जाता है कि शन्तनु के राज्यारम्भ से लेकर भारतयुद्ध तक १६३ वर्ष बीते थे। इस का व्योरा निम्नलिखित है—

शन्तनु	५० वर्ष
विचित्रवीर्य	१२ ,,
भीष्म-नेतृत्व	२० ,,
पाण्डु	५ ,,
धृतराष्ट्र	४० ,,
दुर्योधन	३६ ,,
भारत-युद्ध तक	१६३ वर्ष

१. अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशांपते। आदिपर्व २०५।५॥ २. आदिपर्व २०५।३०॥
३. आदिपर्व २१३।१३॥ ४. आदिपर्व २१९।४०॥ ५. सभापर्व ३।४०॥

पच्चीसवां अध्याय

भारत-युद्ध-काल का भारतवर्ष

राजनीतिक-स्थिति

एक सौ एक क्षत्रिय राजवंश—भारत-युद्ध के समय अथवा उस से कुछ पहले भारतवर्ष में १०१ प्रसिद्ध क्षत्रिय-राज-वंश थे।[1] मत्स्य और विष्णु में केवल यादवों के एक सौ एक वंश कहे हैं।[2] इन्हीं भावों से मिलते जुलते श्लोक दूसरे पुराणों में हैं, परन्तु उनमें थोड़ा सा पाठ भ्रष्ट हुआ है।[3] मागध जरासन्ध का प्रताप आगे लिखा जायगा। महाभारत में लिखा है कि जरासन्ध ने इन में से ८६ राजकुलों को परास्त कर दिया था। शेष १४ कुल स्वतन्त्र रह गए थे।[4]

जनपद और महाजनपद—इन एक सौ एक कुलों के इतने जनपद थे। कई उनमें से छोटे जनपद और कई महाजनपद थे। जनपदों में से कुछ एक का वर्णन उदीच्य आदि क्रम से आगे किया जाता है। उनकी स्थिति समझने से भारतयुद्ध-काल की राजनीतिक स्थिति समझ में आ जायगी।

यथास्मृति—जनपदों का वर्णन पुरातन काल से चला आता था। व्यास जी ने वही वर्णन महाभारत में सन्निविष्ट किया है। इसके आरम्भ में वे लिखते हैं कि यह वर्णन यथास्मृति अर्थात् पुरातन भूगोल शास्त्रों के अनुसार है।[5]

उदीच्य देश

महाभारत और पुराणों में भारतीय जनपदों का विस्तृत वर्णन मिलता है। पुराणों में उदीच्य, प्राच्य आदि भेद से सब जनपदों के नाम लिखे हैं, परन्तु महाभारत में ऐसा भेद नहीं किया गया। हम पहले उदीच्य देशों के भेदों का वृत्त लिखेंगे। पुराण-पाठ कई स्थानों

---

१. ऐलवंश्यास्तु ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः। तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ ॥५॥ ययातेस्त्वेव भोजानां विस्तरोऽतिगुणो महान्। भजतेऽद्य महाराज विस्तरं सचतुर्दिशम् ॥६॥ सभा-पर्व अध्याय १४। २. कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्। मत्स्य ४७।२८॥
तेषामुत्पादनार्थाय भुवि देवा यदोः कुले।
अवतीर्णाः कुलशतं यत्रैकाभ्यधिकं द्विज ॥ विष्णु ४।१५।४८॥

३. ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः।
तेषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिषेकिणाम् ॥
तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः। वायु ९९।४५१, ४५२ ॥ वायु ३२।४७–५१॥
तुलना करो ब्रह्माण्ड उप० ३।७४।२६४,२६५ ॥ ४. सभापर्व १४।१९॥
५. भीष्मपर्व १०। ॥ तथा धौम्य का तीर्थवर्णन, आरण्यकपर्व ८५।३॥

पर बहुत भ्रष्ट हो चुके हैं। उन का शोधन वराहमिहिर की बृहत्संहिता और राजशेखर की काव्यमीमांसा के आधार पर किया गया है।[1]

१. वाहीक
२. वाटधान
३. आभीर
४. कालतोयक
५. अपरान्त=अपरीत
६. परान्त=शूद्र
७. पल्लव=पह्लव
८. चर्मखण्डिक
९. गान्धार
१०. यवन
११. सिन्धु
१२. सौवीर
१३. मद्रक
१४. चीन
१५. तुषार=तुखार
१६. गिरिगह्वर
१७. शक
१८. ह्रद=भद्र
१९. कुलिन्द=कुनिन्द
२०. पारद
२१. हारपूरिक=हारमूर्तिक
२२. रामठ=रमठ
२३. कण्टकार=करकण्ठ=रुद्धकटक
२४. केकेय
२५. दशमालिक=दासमीय[2]?
२६. क्षत्रियोपनिवेश
२७. वैश्यशूद्रकुल
२८. काम्बोज
२९. दरद
३०. बर्बर
३१. आत्रेय
३२. भरद्वाज
३३. दशेरक
३४. लम्पाक
३५. प्रस्थल
३६. उलूत=कुलूत
३७. तोमर=तामर
३८. हंसमार्ग
३९. काश्मीर
४०. तङ्गण
४१. दार्व
४२. अभिसार
४३. चूडिक
४४. आहुक
४५. अपग

राजशेखर के अनुसार उदीच्य देश का आरम्भ पृथूदक तीर्थ से होता है।[3] कर्नाल जिले का वर्तमान पेहोआ ही पुराना पृथूदक तीर्थ है। थानेसर से १४ मील पश्चिम की ओर सरस्वती के तट पर यह तीर्थ-स्थान है।

सिन्धु-तट के प्रदेश और उनमें बसने वाली क्षत्रिय जातियां

पुराणों में सिन्धु-तीर के प्रदेशों का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है।[4] इनमें से वायु का पाठ अन्त में टूट गया है। अलबेरूनी भी मत्स्य के प्रमाण से इन प्रदेशों का वर्णन करता है।[5] इन सब ग्रन्थों का सार नीचे दिया जाता है—

---

१. भीष्मपर्व १०।४५— ॥ वायु ४५।११५—१२१॥ ब्रह्माण्ड पूर्वभाग २।१६।४६—५० ॥ मत्स्य ११४। ४०—४३ ॥ मार्कण्डेय ५७।३५— ॥ बृहत्संहिता अध्याय १४, १६। काव्यमीमांसा अध्याय १७। अलबेरूनी का भारत, अंग्रेजी अनुवाद प्रथम भाग, पृ० ३००। २. कर्णपर्व ७७।१७॥

३. पृथूदकात्परत उत्तरापथः। काव्यमीमांसा, अध्याय १७। पृथूदक के लिए देखो नीलमतपुराण १७४॥

४. वायु ४७।४५-४६ ॥ मत्स्य १२१।४६-४८॥ ब्रह्माण्ड २।१८।४८-४९ ॥

५. अलबेरूनी का भारत, अंगरेजी अनुवाद, भाग प्रथम, पृ० २६१, अध्याय २५।

अलबेरूनी (मत्स्य)	मत्स्य	वायु	ब्रह्माण्ड
१. सिन्धु	......	......	......
२. दरद	दरद	दरद	दरद
३. ज़िन्दुतुन्द ?	ऊर्जगुड	काश्मीर	काश्मीर
४. गान्धार	गान्धार	गान्धार	गान्धार
५. रूरसा ?	औरस	वरय	रौरस
६. क्रूर ?	कुहू	हद	कुह
७. शिवपुर[1]	शिवपौर	शिवपौर	शिवशैल
८. इन्द्रमुरु	इन्द्रमरु	इन्दहास	इन्द्रपद
९. सबाती	वसाती	वसाती	वसाती
१०.	समतेजस	विसर्जय	विसर्जम
११. सैन्धव	सैन्धव	सैन्धव	सैन्धव
१२.	उर्वस-बर्व	रन्ध्रकरक	रन्ध्रकरक
१३. कुबत	कुपथ	......	......
१४. भीमर्वर	भीम	भ्रमर	शमठ
१५.	......	आभीर	आभीर
१६. मर	रोमक	रोहक	रोहक
१७.	शुनामुख	शुनामुख	शुनामुख
१८. मरून	उर्दमरू	ऊर्ध्वमनु[2]	ऊर्ध्वमरू
१९. सुकुर्द	......	......	......

इन प्रदेशों में कई बड़े और कई छोटे जनपद थे। उन में से मुख्य मुख्य जनपदों और प्रदेशों का वर्णन आगे होगा।

उदीच्य जनपद

१. वाहीक देश

वाहीक और मद्र साथ साथ थे, परन्तु थे पृथक् पृथक्।[3] सम्भव है इन दोनों में से एक बड़ा प्रदेश हो और दूसरा उसके अन्तर्गत हो। शल्य वाहीकों का छठा भाग कर रूप में लेता था।[4] इस से प्रतीत होता है कि वाहीक मद्रों का भाग था। वाहीकों का एक नाम आरट्ट भी था।[5] उन्हें पञ्चनद[6] और टक्क[7] भी कहते थे। शक संवत् ७०० में लिखी गई कुवलयमाला कथा में टक्क देश वर्णित है।[8]

१. महाभाष्य ४।२।१०४ के अनुसार उदीच्यग्राम। २. यहां से आगे वायु का पाठ टूट गया है।
३. कर्णपर्व ३७।१५॥ ४. कर्णपर्व ३७।३३॥ ५. कर्णपर्व ३७।४३,५१॥
६. कर्णपर्व ३८।३०॥ ७. अभिधानचिन्तामणि ४।२५॥ ८. अपभ्रंशकाव्यत्रयी, बड़ोदा संस्करण पृ० ९२॥

महाभारत का टीकाकार नीलकण्ठ उद्योगपर्व ३९।७९ पर टीका करता हुआ लिखता है—पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां यत्र संगमः। वाहीका नाम ते देशाः........।[1] अर्थात् वर्तमान पञ्चनद से वाहीक देश आरम्भ होता था। सरस्वतीकण्ठाभरण ४।१।१६ के अनुसार-वहिर्भवो वाहीकः है।

आरट्टों के वन, नगर और ग्राम—पीलुवन यहीं था।[2] शमी और करीर के वन भी यहीं थे।[3] वाहीकों में गोवर्धन वट और सुभाण्ड पत्तन थे।[4] वाहीकों में—कारस्कर, माहिषक, करम्भ, कटकालिक, कर्कर और वीरक आदि ग्राम या नगर थे।[5] इनके परे या साथ वसाती, सिन्धु और सौवीर थे।[6] पाणिनि के काल से कुछ पहले वाहीकों में निम्नलिखित ग्राम भी थे—

१. आरात्[7]
२. कास्तीर[7]
३. दासरूप[7]
४. शाकल[7]
५. सौसुक[7]
६. पातानप्रस्थ[7]
७. नान्दीपुर[7]
८. कौक्कुडीवह[7]
९. मौञ्ज[8]
१०. देवदत्त[9]
११. कारतन्तव[10]
१२. नापितवस्तु[10]
१३. सेपुर[11]
१४. स्कोनगर[11]
१५. मान्थव = मान्धव[12]
१६. मघनगर[13]
१७. शिवपुर[13]
१८. कौण्डीवृस्य[14]
१९. दाक्षिकर्षू[15]
२०. अयोमुख[16]

वाहीक ग्रामों के लिये पाणिनि ने एक सूत्र बनाया है।[17]

अन्तर्घन देश—वाहीकों में एक अन्तर्घन देश था। पाणिनि ने उसके लिये सूत्र विशेष

---

१. नागेश भाष्यप्रदीपोद्योत १।१।७५ में महाभारत कर्णपर्व का "पञ्चानां सिन्धुषष्ठानामन्तरं ये समाश्रिताः। वाहीका नाम ते देशाः..." पाठ उद्धृत करता है। तुलना करो महाभारतकर्णपर्व ४४।७॥

२. कर्णपर्व ३७।३९,४२॥ ३. कर्णपर्व ३७।३१॥ ४. कर्णपर्व ३७।१८॥

५. कर्णपर्व ३७।५४॥ ६. कर्णपर्व ३७।५६॥

७. पातञ्जल महाभाष्य ४।२।१०४॥ अष्टाध्यायी ६।१।१५५ के अनुसार कास्तीर नाम का एक नगर भी था। कौटल्य अर्थशास्त्र में कास्तीर राष्ट्रक नाम है। आदि से अध्याय ३२॥

८. महाभाष्य ४।२।१२४॥ टीकाकार कैय्यट के अनुसार यह वाहीक सीमा पर था।

९. काशिका १।१।७५॥ १०. महाभाष्य ४।२।१०४ में उल्लिखित। नागेश के अनुसार वाहीकग्राम।

११. महाभाष्य १।१।७५॥ कैय्यट तथा हरदत्त के अनुसार ये दोनों वाहीक ग्राम थे।

१२. काशिका ४।२।११७॥ सरस्वतीकण्ठाभरण ४।३।५१॥ १३. सरस्वतीकण्ठाभरण ४।३।५१॥

१४. अष्टाध्यायी ५।३।११४॥ १५. महाभाष्य ४।२।१०४॥ कैय्यट के अनुसार यह वाहीक ग्राम था।

१६. सिद्धान्तकौमुदी सूत्र १३६५। तत्त्वबोधिनी और बालमनोरमा टीकानुसार।

१७. अष्टाध्यायी ४।२।११७॥

बनाया है।[1] वाहीकों में क्षुद्रक और मालव आयुधजीवी थे।[2] अतः वाहीक देश वर्तमान पंचनद के समीप और नीचे था।

शतपथ और वाहीक—शतपथ में लिखा है कि रुद्र का शर्वनाम प्राच्य बोलते थे और भव नाम वाहीकों में प्रयुक्त होता था।[3]

भाषा—भरतनाट्यशास्त्र १७।४९,५३ के अनुसार वाहीक भाषा उदीच्य भाषा थी।

भारत-युद्ध-काल में मध्यभारतवासी वाहीकों को प्रायः अनार्यवृत्ति लोग समझते थे।[4]

शिग्रुक—मनुस्मृति ६।१४ में शिग्रुक नाम का शाक उल्लिखित है। टीकाकार मेधातिथि के अनुसार यह शाक वाहीकों में बहुत होता था। शिग्रुक को पञ्जाब में सुहांजना कहते हैं।

२. वाटधान

यह देश वाहीकों के पास होगा। उद्योगपर्व ४।२४ में वाटधान पार्थिव उल्लिखित है। आदिपर्व ६१।५८ में वाटधान के गोमुख का नाम है। महाभारत युद्ध के समय सेना शिविरों का विस्तार वाटधान तक था। वाटधान क्षत्रिय दुर्योधन पक्ष में लड़ रहे थे।[5] वाटधान और वर्तमान भटिण्डा का ऐक्य विचारणीय है। सभापर्व २९।७ के अनुसार मध्यमिका में वाटधान ब्राह्मण नकुल से जीते गए।

३. आभीर—आभीर लोग सरस्वती के नाशस्थान विनशन के वासी थे।[6] इनका वर्णन आगे होगा।

४. कालतोयक—अभिधानचिन्तामणि ४।२४ में इन्हें तर्जिका लिखा है। तर्ज़ी शब्द पठानों के अनेक नामों के साथ लगा अब भी मिलता है। गुप्तों के काल में कालतोयकों पर मणिधान्यजों का राज्य था।[7]

५. अपरान्त या अपरीत—ये वर्तमान अफ़रीदी पठान हैं।

महाभारत के पूना संस्करण का मूलपाठ अपरन्ध्र है।

६. परान्त या शूद्र—यह देश अभी तक हमें अज्ञात हैं।

७. पल्लव या पह्लव—वायुपुराण के इस वर्णन में यह नाम दो बार आया है।

८. चर्मखण्डिक—कई लोग इस का अपभ्रंश वर्तमान समरकन्द कहते हैं। युवन च्वङ्ग स-मो-किन (कन) में गया था। वाटर्स के अनुवाद में इसे समरकन्द से मिलता जुलता शब्द माना है।[8]

---

१. अष्टाध्यायी ३।३।७६॥ इस पर काशिकावृत्ति देखो।
२. काशिका ५।३।११४॥
३. शतपथ ब्रा० १।७।३।८॥
४. देखो कर्णपर्व अध्याय ३७, ३८॥
५. भीष्मपर्व ५२।४॥
६. शल्यपर्व ३८।१॥
७. वायु ९९।३८४॥
८. भाग १, पृ० ९२।

९. गान्धार

देश की प्राचीनता—द्रुह्यु की सन्तान में गान्धार नामक एक राजा था। वह सुप्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् महाराज मान्धाता से कुछ काल पश्चात् हुआ। इस ने सिंधुनद से परे एक अत्यन्त विस्तृत देश बसने योग्य किया।[1]

सीमा—वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि सिन्धु के दोनों तीरों पर गांधार देश बसा हुआ था।[2] वायु और ब्रह्माण्ड के पाठों से प्रतीत होता है कि दाशरथि भरत के दोनों पुत्रों तक्ष और पुष्कर की नगरियां इसी गान्धार देश की सीमा पर थीं।[3] महाभारत आश्वमेधिक पर्व अध्याय ८४ में लिखा है कि यज्ञीय घोड़े के पीछे चलता हुआ अर्जुन पंचनद पहुँचा।[4] वहां से वह घोड़ा गान्धार देश को गया।[4] इस से प्रतीत होता है कि पंचनद से परे अर्थात् वर्तमान डेरागाज़ी के समीप से पुरातन गान्धार आरम्भ होता होगा। इस गांधार में वर्णु=बन्नू का प्रदेश सम्मिलित न था। पाणिनि गान्धार देश से वर्णु देश पृथक् मानता है।[5] पाणिनि के ४।३।९३ सूत्र के गणों से सन्देह होता है कि तक्षशिला भी गान्धार से पृथक् प्रदेश था।[6] टाल्मी का भी यही मत है। वह तक्षशिला को उरसा में मानता है।[7] इस प्रकार हम स्थूल रूप से कह सकते हैं कि सिन्धुनद गान्धार देश की पूर्व सीमा थी। उत्तर में सिन्धुनद गान्धार देश को प्लावित करता था। गान्धार की पश्चिम और दक्षिण सीमा के विषय में हम अभी तक कुछ नहीं कह सकते। बहुत सम्भव है समय समय पर गान्धार देश की सीमा बदलती रही हो।

राजधानी—भारत-युद्ध-काल अथवा उस से पूर्व गान्धार की राजधानी क्या थी, यह हम नहीं जानते। टाल्मी आदि यवन-लेखकों के अनुसार पुष्कलावती गान्धार की एक प्रसिद्ध

---

१. गान्धारविषयो महान्। वायु ९९।९॥ २. सिन्धोरुभयतः पार्श्वे। उत्तरकाण्ड ११३।११॥

३. गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः॥
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या [नाम्ना] तक्षशिला पुरी।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती॥ वायु ८८।१८९, १९०॥ ब्रह्माण्ड ३।६३।१९०, १९१॥

४. ततः स पश्चिमं देशं समुद्रस्य तदा हयः। क्रमेण व्यचरत् स्फीतं ततः पञ्चनदं ययौ॥१७॥
तस्मादपि स कौरव्य गान्धारविषयं हयः॥१८॥

५. सिन्धु। वर्णु। गान्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। गणपाठ ४।२।१३३॥४।३।९३॥
काशिकावृत्ति से ज्ञात होता है कि ये सब भिन्न २ देशों के नाम थे।

६. सिन्धु। वर्णु। गान्धार।........। तक्षशिला। वत्सोद्धरण।......। भीष्मपर्व १०।४७ के पाठान्तरों में उदीच्य देशों में एक वत्सवृद्ध देश है। (देखो, पूनासंस्करण)

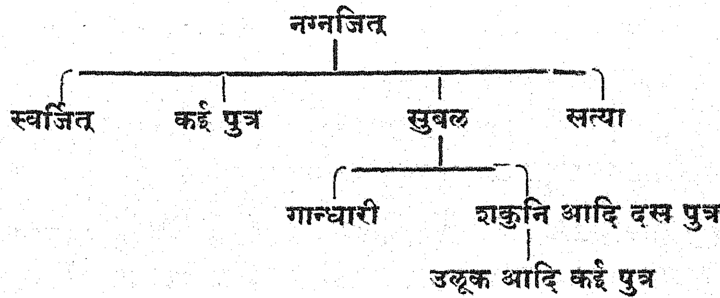
७. एन्शिएण्ट इण्डिया, टाल्मीकृत, कलकत्ता, सन् १९२७, पृ० ११८।

नगरी थी।[1] कथासरित्सागर के अनुसार प्रालेय शैल के अग्रभाग में पुष्करावती नगरी थी।[2] हर्षकुल लिङ्गानुशासन कारिका ५९ की टीका में पृथ्वीश्वर लिखता है—प्रालेयं तुषार:। क्या इसी के पास तुषार देश था। आयुर्वेद की सुश्रुतसंहिता में पौष्कलावत नाम का एक आचार्य स्मरण किया गया है।[3] संभवतः वह इस नगर का रहने वाला होगा। मुसलमान यात्री अब्बुरिहां अलबेरूनी के अनुसार वैहिन्द[4] या वैहन्द[5] (संस्कृत-उद्भाण्ड) गान्धार की राजधानी थी।

राजवंश—भारत-युद्ध-काल में गान्धार पर नग्नजित् का कुल राज कर रहा था।[7] नग्नजित् एक भारी देश का राजा था और उस के नीचे कई छोटे छोटे गणराज्य भी थे।[8] महाभारत आदिपर्व में नग्नजित् के कुल के विषय में निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

प्रह्लादशिष्यो नग्नजित् सुबलश्चाभवत्ततः। तस्य प्रजा धर्महन्त्री जज्ञे देवप्रकोपनात् ॥९३॥
गान्धारराजपुत्रोऽभूच्छकुनिः सौबलस्तथा। दुर्योधनस्य माता च जज्ञातेऽर्थविदावुभौ ॥९४॥[9]

इन श्लोकों के तथा दूसरे कई प्रमाणों के आधार पर गान्धार-राजाओं का निम्नलिखित वंश-क्रम उपलब्ध होता है—



१. Peukelaotis, Peukolaitis, Peukelas. टाल्मी का भारत पृ० ११५–११७।

२. निर्णयसागर संस्करण, पृ० १६७। ३. सुश्रुत-संहिता, सूत्रस्थान ५।९॥

४. वैहिन्द, कन्धार की राजधानी, सिन्धु नदी के पश्चिम में २० फरसख़। अंग्रेजी अनुवाद भाग १, पृ० २०६।

५. Ghorvand is a great river opposite the town of Purushavar.........and it falls into the river Sindh near the castle of Bitur, below the capital of Alkandhar, i.e., Vaihand. भाग १, पृ० २५९।

६. आधुनिक उन्द अथवा ओहिन्द, राजतरङ्गिणी का उद्भाण्ड और ह्यूनसांग का उदकभाण्ड, देखो—नोट्स आन दि एन्शिएण्ट ज्योग्राफी आफ गन्धार। एच० हारग्रीव्स का अंग्रेजी अनुवाद, सन् १९१५।

७. गान्धारभूमौ राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्णमार्गदः। भेलसंहिता पृ० ३०।

८. नग्नजित् प्रमुखांश्चैव गणान् जित्वा महारथान्। महाभारत, वनपर्व २५५।२१॥

९. आदिपर्व, अध्याय ५७।

नग्नजित्—सोरेनसन महाशय ने महाभारतान्तर्गत व्यक्ति आदि नामों की एक सूची बनाई है। उसमें नग्नजित् शब्द पर लिखते हुए उन्होंने अनुमान किया है कि सम्भवतः सुबल और नग्नजित् एक व्यक्ति थे।[1] यह बात ठीक नहीं। सुबल तो नग्नजित् का पुत्र था।

नग्नजित् राजर्षि और वैद्य था—भेलसंहिता में नग्नजित् के लिए राजर्षि पद वर्ता गया है।[2] वाग्भट के अष्टाङ्गसंग्रह में नग्नजित् का एक मत उद्धृत किया गया है।[3] अष्टाङ्गसंग्रह का टीकाकार इन्दु लिखता है कि नग्नजित् का पर्याय दारुवाही है।[4] कश्यपसंहिता में दारुवाह को राजर्षि कहा गया है।[5] इसलिए नग्नजित् और दारुवाह के एक होने की संभावना है। कश्यपसंहिता में दारुवाह का कई स्थानों पर उल्लेख है।[6] चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय १२ और २५ तथा कश्यपसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय २७ के एक साथ देखने से ज्ञात होता है कि दारुवाह और वैदेह-निमि-जनक[7] समकालीन थे। नग्नजित् और निमि-जनक के समकालीन होने के अधिक प्रमाण हम अपने आयुर्वेद के इतिहास में देंगे।

दारुवाह और दारुवाही का सम्बन्ध विचारणीय है। संभव है कि लेखक-प्रमाद से दारुवाह का ही दारुवाही बन गया हो।

दारुवाह अथवा नग्नजित्-रचित किसी आयुर्वेद संहिता के कई श्लोक चरकसंहिता की चक्रपाणिटीका[8] और अष्टाङ्गहृदय की सर्वाङ्गसुन्दरा[9] आदि टीकाओं में मिलते हैं।

वास्तु-शास्त्र-कर्ता नग्नजित्—मत्स्य पुराण २५२।२-४ के अनुसार एक नग्नजित् वास्तुशास्त्र का उपदेशक था। यदि मत्स्य पुराण का नग्नजित् यही गान्धारराज था, तो समझना चाहिए कि किसी काल में गान्धार की वास्तु-कला बड़ी प्रसिद्ध रही होगी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक राय चौधरी ने कुम्भकार जातक और उत्तराध्ययन सूत्र के आधार पर नग्नजित् के कई तुल्यकालीन राजाओं का वर्णन किया है।[10] इस सम्बन्ध में यह निश्चय से कहा जा सकता है कि नग्नजित् गान्धार दुर्मुख पांचाल और वैदेह-निमि तो अवश्य ही तुल्यकालिक थे।

कर्ण और नग्नजित्—गिरिव्रज नाम के दो नगर कभी भारत में थे। एक गिरिव्रज था

१. Is not Nagnajit another name of Subala ? p. 494.

२. देखो पूर्व पृ० १४७, टि० ७। ३. उत्तरस्थान, अध्याय ४०, पृ० ३१४।

४. नग्नजितो दारुवाहिनः। पृ० ३१४।

५. पृ० २६। ६. अ० २५। श्लोक ३॥ २७। खण्ड ३॥

७. कश्यप संहिता, सिद्धिस्थान, अध्याय ३।

८. चिकित्सा स्थान ३।७४। ९. शारीरस्थान ३।६२॥

१०. देखो पूर्व पृ० १३६।

मगध में और दूसरा था केकयदेश में। कर्ण ने एक गिरिव्रज में किसी नग्नजित् को पराजित किया था।[1]

ब्राह्मण-ग्रन्थों में नग्नजित् का नाम—शतपथ ब्राह्मण में नग्नजित् और उसके पुत्र स्वर्जित् का नामोल्लेख है।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में भी नग्नजित् का उल्लेख है।[3] हमें तो ऐतरेय ब्राह्मण का तत्सम्बन्धी पाठ भ्रष्ट प्रतीत होता है। सायण ने उस वचन के भाष्य में और भी गड़बड़ उत्पन्न की है। शतपथ का स्वर्जित सुबल का कोई भाई होगा। अथवा सुबल का नाम स्वर्जित् हो सकता है, पर इसकी संभावना न्यून है।

श्रीकृष्ण और नाग्नजिती—नग्नजित् की एक कन्या सत्या थी। वह कन्या अपने भाइयों में सब से छोटी होगी। संभवतः वह अपनी भतीजी गान्धारी से भी कुछ छोटी हो। यादव कृष्ण ने इसी नाग्नजिती सत्या से एक विवाह किया था।[4] कृष्ण की एक और पत्नी भी गान्धारी अर्थात् गान्धार-राज की पुत्री थी।[5] वह सत्या से भिन्न थी। मत्स्य के एक ही श्लोक में सत्या नाग्नजिती और गान्धारी दो पृथक् पृथक् नाम हैं। संभव है वह सुबल अथवा उस के किसी भाई की कन्या हो। उस का नाम या विशेषण सुकेशी था।[6] सत्या या गान्धारी के साथ बलपूर्वक विवाह करने के कारण ही यादव कृष्ण का गान्धारों से युद्ध हुआ था।[7] श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र का सम्बन्धी था। उद्योगपर्व ८९।१४ में दयितश्चासि धृतराष्ट्र लिखा है। कदाचित् उसी समय कृष्ण ने काश्मीरक दामोदर को मारा था। इस घटना का विस्तृत वर्णन नीलमत-पुराण में है।[8]

नग्नजित्-पुत्र सुबल का कुल और दायाद—नग्नजित् के पश्चात् सुबल गान्धार का राजा बना। शकुनि, अचल, वृषक, गज, गवाक्ष, चर्मवान्, आर्जव, शुक, बल तथा

---

१. गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥५॥ द्रोणपर्व, अध्याय ४।

२. अथ ह स्माह स्वर्जिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः।८।१।४।१०॥ ३. ७।३४॥

४. रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा। मत्स्य ४७।१३॥
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा। वायु ९६।२३३॥

५. गान्धारी लक्ष्मणा तथा। मत्स्य ४७।१३॥
एष चैव शतं हत्वा रथेन क्षत्रपुङ्गवान्।
गान्धारीमवहत्कृष्णो महिषीं यादवर्षभः॥ सभापर्व ६१।१३॥ तुलना करो, द्रोणपर्व ११।१०॥

६. तस्मिन् गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी।
सुकेशी नाम विख्याता केशवेन निवेशिता॥ सभापर्व ५७।२६॥

७. अयं गान्धारांस्तरसा सम्प्रमथ्य जित्वा पुत्रान् नग्नजितः समग्रान्। उद्योगपर्व ४८।७५॥

८. नीलमत पुराण, लाहौर संस्करण, पृ० २,३, श्लोक २०–२७॥

बृहद्बल ये दश सुबल के पुत्र थे।[1] महाभारत में कई स्थानों पर शकुनि को कितव भी कहा है।[2] इन में से वृषक और अचल एक माता के पुत्र थे।[3] शेष भाई कितनी माताओं के पुत्र थे, यह ज्ञात नहीं हो सका। सुबल का एक दायाद कालिकेय भी लिखा है।[4]

कन्याएं—सुबल की गान्धारी आदि कई कन्याएं थीं। इन का वर्णन पृ० १३९ पर हो चुका है।

सुबल की मृत्यु—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सुबल उपस्थित था।[5] यज्ञ की समाप्ति पर नकुल उसे विदा करने गया था।[6] भारत-युद्ध के समय सुबल कालधर्म को प्राप्त हो चुका था। उस समय के इतिवृत्त में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सुबल-पौत्र—शकुनि का एक पुत्र उलूक था।[7] वह भारत-युद्ध में मारा गया। अष्टाध्यायी गणपाठ ८।३।११० में शकुनिसवनम् पद द्रष्टव्य है।

भारत-युद्ध के पश्चात्—युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ के समय शकुनि का एक पुत्र गान्धार के सिंहासन पर विराजमान था।[8]

गान्धारों का भोजन—सरस्वतीकण्ठाभरण १।४।१११ में लिखा है—कषायपायिणो गान्धाराः। अर्थात् गान्धार लोग कषायपान करते हैं।

---

१. (क) शकुनिश्च बलश्चैव वृषकोऽथ बृहद्बलः।
एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः॥ आदिपर्व १७७।५॥
सौबलश्च बृहद्बलः। भीष्मपर्व १०८।१४॥
(ख) सौबलस्यानुजाः शूरा निर्गता रणमूर्धनि॥२८॥
गजो गवाक्षो वृषकश्चर्मवानार्जवः शुकः।
षडेते बलसंपन्ना निर्ययुर्महतो बलात्॥३०॥ भीष्मपर्व ९०॥
(ग) ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरंजयौ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ॥ द्रोणपर्व ३०।२॥

२. गान्धारराजा कितवः। द्रोणपर्व ३४।१२॥ यह शकुनि का ही दूसरा नाम है। सभापर्व ४७।१० के अनुसार कितव और उलूक दो जातियां भी थीं।

३. ……राजानौ वृषकाचलौ।११॥
…… सोदर्याविकलक्षणौ॥१२॥ द्रोणपर्व ३०॥

४. ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत्। द्रोणपर्व ४९।८॥

५. गान्धारराजः सुबलः शकुनिश्च महाबलः॥ सभापर्व ३७।९॥

६. नकुलः सुबलं राजन् सहपुत्रं समन्वयात्। सभापर्व ७२।१८॥

७. सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम्।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ॥५॥ भीष्मपर्व ७२।

८. आश्वमेधिकपर्व अध्याय ८५।

यावा शब्द का अर्थ करते हुए चरकसंहिता-टीकाकार चक्रपाणि लिखता है—यावा इति यवचिपिटा:। अन्ये तु गान्धारदेशप्रसिद्धान् संपिष्टसंज्ञानाहुः।[१]

१०. यवन—बहुत पुराने दिनों में यवन लोग भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर रहते थे। कालान्तर में वहीं से वर्तमान यूनान या ग्रीस देशको गये। उनकी भाषा संस्कृत से ही निकली है। आधुनिक भाषा-विज्ञानियों ने इनकी स्थिति पूर्णतया नहीं समझी। सम्राट् मांधाता के काल में भी यवन विद्यमान थे।[२] यवन शब्द धृतवसु=दारय-वहुष्=डेरिअस के शिलालेखों में प्रयुक्त हुआ है। योरुपियन लेखकों के अनुसार ये शिलालेख ईसा से लगभग ५०० वर्ष पहले के हैं।

अज=अज़ेस ?—अज एक पुराना नाम है। भारत के कई उदीच्य राजा इस नाम को समय समय पर धारण करते रहे हैं। किसी अज का उल्लेख उद्योगपर्व में मिलता है।[३] यशस्तिलक का कर्ता सोमदेव सूरी लिखता है—

आत्मनः किल स्वच्छन्दवृत्तिमिच्छन्ती विषदूषितगण्डूषेण मणिकुण्डला महादेवी यवनेषु निजतनुजराज्यार्थम् अजराजं राजानं जघान।[४] सोमदेवका संकेत किस अजराज की ओर है, यह हम नहीं कह सकते।

भारत-युद्ध-काल में यवन—कशेरुक यवन को श्रीकृष्ण ने मारा था।[५] युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश-उत्सव में एक यवनाधिपति उपस्थित था।[६] उसका विरोधी कम्पन भी वहीं था।[७] यवन लोग अश्वयुद्ध में बड़े कुशल थे।[८]

दातामित्र या डेमेट्रिअस नाम यवनों में बहुत प्रसिद्ध है। इस की तुलना पाणिनीय दासमित्रि और दासमित्रायण से करनी चाहिए।[९] दत्तामित्र का नाम काशिका ४।२।७६ में मिलता है। एक प्राचीन लेख है—ओतराहस दातामितियकस्य। यहां ओतराह संस्कृत शब्द औत्तराह का अपभ्रंश है।[१०]

११. सिन्धु—भारत-युद्ध-काल में सिन्धु एक महाजनपद था। सैन्धव राज को सिन्धु और सौवीर दोनों ही अपना प्रधान राजा मानते थे।[११] सिन्धु-राष्ट्र के अन्तर्गत दस और राष्ट्र थे।[१२] उनके नाम हम नहीं जानते। संभवतः शिबी, वसाती और सौवीर उन दस में से ही थे।

---

१. निर्णयसागर संस्करण पृ० १६९।

२. शान्तिपर्व ६४।१३॥ ३. १७१।१२॥

४. आश्वास ४, पृ० १५२, १५३। तथा नीतिवाक्यामृत २४।३५॥

५. सभापर्व ६१।६॥ वनपर्व १२।३३॥ ६. सभापर्व ४।३१॥

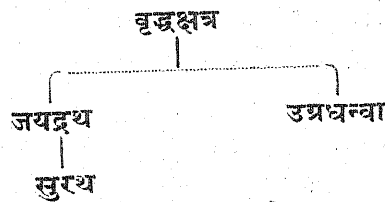
७. सभापर्व ४।२१॥ ८. शान्तिपर्व १०१।५॥

९. गणपाठ ४।२।५४॥ १०. सिद्धान्तकौमुदी १३२५ पर वार्त्तिक।

११. पतिः सौवीरसिन्धुनां दुष्टभावो जयद्रथः॥ वनपर्व २६८।८॥
जयद्रथो नाम यदि श्रुतस्ते सौवीरराजः सुभगे स एषः॥ वनपर्व २६६।१२॥
सिन्धुसौवीरभर्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम्।
भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दन जयद्रथम्॥ स्त्रीपर्व २२।९॥

१२. सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दशराष्ट्राणि यानि ह। कर्णपर्व २।१३॥

राजवंश—भारत-युद्ध कालीन सैन्धव-राज स्थिति निम्नलिखित थी—



भारत-युद्ध-काल में सिन्धुराज वृद्धक्षत्र वानप्रस्थ हो चुका था।[1] जयद्रथ उस का पुत्र था। जयद्रथ का विवाह धृतराष्ट्र की कन्या दुःशला से हुआ था। भारत-युद्ध में वीर अर्जुन ने जयद्रथ को मारा। यह जयद्रथ अक्षौहिणीपति था।[2] एक सैन्धव उग्रधन्वा भी भारत-युद्ध में लड़ रहा था।[3] वह संभवतः जयद्रथ का छोटा भाई था।[4] जयद्रथ के कई भाई थे।[5]

जयद्रथ का केतु वराह-चिह्न युक्त था।[6]

सुरथ—जयद्रथ का पुत्र सुरथ था। भारत-युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस अश्वमेध का घोड़ा अर्जुन की रक्षा में विचरता हुआ सिन्धु देश को चला गया। सिन्धुराज सुरथ अर्जुन का आगमन सुन कर घबराहट में ही मर गया। उस समय सुरथ का पुत्र बहुत छोटा था। उस का नाम नहीं मिलता।

सैंधवों का भोजन—कातन्त्र का टीकाकार दुर्गसिंह लिखता है—सक्तु-प्रधानाः सिन्धवः।[7] अर्थात् सिन्ध देश वासी सत्तु अधिक पीते थे।

१२. सौवीर—सौवीर जनपद की स्थापना का उल्लेख पृ० ७९ पर हो चुका है।

भौगोलिक स्थिति—सौवीरों की पुरातन राजधानी के नामान्वेषण का श्रेय परलोकगत अध्यापक सिल्वेन लेवी को है। उन्होंने ही निम्नलिखित प्राकृत-श्लोक सर्वतः प्रथम प्रकाशित किया था।

दन्तपुरं कलिङ्गानां अस्सकानाञ्च पोटनम्। माहिस्सती अवन्तीनां सोवीरानां च रोरुकम्॥[8]

इस के अनुसार रोरुक ही सौवीरों की राजधानी थी। अरबी ग्रन्थों में इस नगर का नाम अल-रूर है। श्री स्टेन कोनों आदि विद्वानों के अनुसार वर्तमान रोढी या रोहरी ही यह स्थान है।[9] अलबेरूनी मुलतान तथा जह्रावार को सौवीर मानता है।[10] अलबेरूनी के अनुसार जह्रावर से ५० मील ऊपर वितस्ता और चनाब नदियां मिलती हैं।[11] जैन आचार्य हेमचन्द्र

---

१. द्रोणपर्व १४८।१०,११॥ २. भीष्मपर्व १६।१५-१७॥ ३. द्रोणपर्व २५।१०॥

४. द्रोणपर्व ४२।८॥ ५. वनपर्व २६६।१३॥ ६. द्रोणपर्व ४३।३॥१०५।२०॥

७. २।६।४९॥ ८. Notes Indiennes, Jan-Mars, 1925, पृ० ४८।

९. जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री, भाग १२, संख्या १, पृ० १८।

१०. अलबेरूनी का भारत, अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० ३००। ११. भाग १, पृ० २६०।

कुमालक को सौवीर देश लिखता है।[1] क्या यह शब्द कुमालव का अपभ्रंश है ? इस प्रकार यह छोटा मालवा होगा। परन्तु कुमालक या कुमालव दोनों पाठ अशुद्ध हो सकते हैं। पूर्व पृ० ७९ पर कुमिलापुरी के अन्तर्गत यह विचार हो चुका है।

सौवीरों की एक दात्तामित्री नगरी का उल्लेख अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति में मिलता है।[2] इस नगरी का उल्लेख नासिक के आभीर शिलालेख में है।

सुवीरा नदी—चरकसंहिता सूत्रस्थान ५।१५ की टीका में चक्रपाणि लिखता है—सुवीरा-नदीभवं सौवीरम् अञ्जनम्। सौवीरों में कूल शब्द के प्रयोग के लिए पाणिनि को सूत्र बनाना पड़ा।[3]

गण-राज्य—सौवीरों में गणराज्य भी थे।[4]

सौवीरों के राजा—सौवीरों में महारथ राजा शत्रुंतप था।[5] उस का किसी भारद्वाज से संवाद हुआ था। सुवीरों का एक राजा अजबिन्दु भी था। यह उन अठारह निकृष्ट राजाओं में से था, जिन्होंने अपने ही कुलों का नाश किया।[6] कौटल्य ने भी इस अजबिन्दु का उल्लेख किया है।[7]

विदुला और संजय—विदुला और उस के पुत्र संजय का आख्यान सौवीर सम्बन्धी है। संजय को किसी सैन्धव राज ने परास्त किया था।[8]

अर्जुन विजय और सौवीर—आदिपर्व में लिखा है कि अर्जुन ने वित्तल, दत्तमित्र और सुमित्र नामक सौवीरों को जीता।[9]

वीरसेन परंतप—आचार्य विष्णुगुप्त लिखता है कि किसी सौवीर राजा को उस की स्त्री ने विषदिग्ध मेखलामणि से मार डाला।[10] गणपति शास्त्री ने पुरानी टीकाओं के आधार पर अर्थशास्त्र की जो व्याख्या की है, उस में इस राजा का नाम परन्तप लिखा है। परन्तप उस राजा का विशेषण होगा। भट्ट बाण ने उस राजा का नाम वीरसेन लिखा है—रसदिग्धमध्येन च

---

१. अभिधान चिन्तामणि, ४ भूमिकाण्ड, २६। २. ४।२।७६॥ ३. ४।२।१२७॥
४. प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे। भीष्मपर्व ५९।७६॥
५. राजा शत्रुंतपो नाम सौवीरेषु महारथः। शान्तिपर्व १४०।४॥
६. उद्योगपर्व ७३।१४॥
७. सौवीरश्चाजबिन्दुः मानात्। आदि से अध्याय ६।
८. उद्योगपर्व अध्याय १३२।
९. पूना संस्करण, परिशिष्ट, पृ० ९२६, पंक्तियां ४४-४६।
१०. मेखलामणिना सौवीरम्। आदि से अध्याय २०। देखो कामन्दक नीति ११।५३ और उस की टीका।

मेखलामणिना हंसवती सौवीरं वीरसेनं (जघान)।[1] यही बात वर्तमान भविष्य पुराण में लिखी मिलती है।[2] यह वीरसेन आचार्य विष्णुगुप्त से पहले हुआ था।

अविमारक में सौवीर-राज—अविमारक नाटक में एक सौवीर राज की कथा है। वह भारत-युद्ध के कुछ पश्चात् कौरव जनमेजय का समकालीन था। उसे चण्डभार्गव ने शाप दिया था। यह चण्डभार्गव जनमेजय के सर्पसत्र में उपस्थित था।[3]

सभापर्व में लिखा है कि बभ्रु-भार्या सौवीरों को जा रही थी।[4] एक सौवीर राजकुमारी को युयुधान-सात्यकि सौवीरों से युद्ध करके लाया था।[5]

सौवीरों के प्रसिद्ध व्यक्ति—यमुन्द, सुयाम, वार्ष्यायणि, फाण्टाहृति और मिमत सौवीरों के प्रसिद्ध व्यक्ति थे।[6] इन के पुत्र आदिकों के नामों के तद्धित-प्रयोगों के लिए पाणिनि ने विशेष नियम लिखे हैं।[6] सौवीरों के लिए एक और प्रयोग भागवित्तिक भी बनाया गया है।

सौवीरों के प्रसिद्ध पदार्थ—कोशों और आयुर्वेद के ग्रन्थों में कुछ प्रसिद्ध सौवीर पदार्थों के नाम मिलते हैं। काञ्जी, बदरीफल और अञ्जन के लिए सौवीरक शब्द वर्ता जाता है।[7] ये पदार्थ वहीं अधिक और उत्तम पाए जाते होंगे।

१३. मद्र=मद्रक

देश की प्राचीनता—अनु की सन्तान में उशीनर नाम का एक प्रसिद्ध राजा हो चुका है। उस का पुत्र शिवि था। इतिहास में उसे शिबि औशीनर कहते हैं। उस के चार पुत्रों में से मद्रक भी एक था। मद्र अथवा मद्रक देश उस का बसाया हुआ है।[8]

सीमा—शतद्रु और विपाशा को पार करके उनके उत्तर की ओर मद्र देश का प्रारम्भ माना गया है।[9] देविका नदी मद्र प्रान्त में से बहती है।[10] यह देविका नदी ज़िला स्यालकोट

---

१. हर्षचरित उच्छ्वास ६, पृ० ६९८।

२. मेखलामणिना देव्या सौवीरश्च नराधिपः। भविष्यपुराण ८।५७॥

३. आदिपर्व ४८।५॥ ४. सभापर्व ६८।१८॥ ५. द्रोणपर्व १०।३३॥

६. अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति ४।१।१४८—१५०॥ ७. त्रिकाण्डशेष ३।३७९॥

८. देखो पूर्व पृ० ७९।

९. शतद्रुं च ततस्तीर्त्वा मुनिगंगां च निम्नगाम्।
अर्जुनाश्रममासाद्य देवसुन्दं तथैव च ॥१७५॥
उत्तीर्य च महाभागां विपाशां पापनाशिनीम्।
दृष्टवान् सकलं देशं तदा शून्यं स कश्यपः ॥१७६॥
दृष्ट्वा स मद्रविषयं शून्यं प्रोवाच पन्नगम्। नीलमतपुराण।

१०. यैव देवी उमा सैव देविका प्रथिता भुवि ॥१५२॥
मद्राणामनुकम्पार्थं भवद्भिरवतारिता। नीलमतपुराण।

से होती हुई, कुजरांवाला ज़िला को स्पर्श करके, कालाशाह काकू के परे टपियाला ग्राम के पास से बहती है।[1] इससे प्रतीत होता है कि वर्तमान स्यालकोट से लेकर लाहौर अथवा अमृतसर तक मद्र देश था।

पञ्जाव के प्रसिद्ध नगर और हमारे जन्मस्थान अमृतसर में अब भी मन्द्रों की एक गली है। लाहौर से कुजरांवाला की ओर कामोंकि, साधोके, मुरीदके, छज्जूके घणियेके और कस्सोके ग्राम अब भी मिलते हैं।

मद्र और वाहीक—कई लोग मद्र और वाहीक में कोई भेद नहीं करते।[2] यह मत भ्रान्तिपूर्ण है। वाहीक अथवा आरट्ट मध्य पञ्जाव और पञ्जनद से दक्षिण के प्रदेश का नाम था। मद्र इन से पृथक् थे। महाभारत कर्णपर्व में गान्धार, मद्रक और वाहीक भिन्न भिन्न माने गए हैं।[3] पूना संस्करण के आदिपर्व में मद्र-राज को वाह्लीकपुङ्गवः लिखा है।[4] यह पाठ ठीक नहीं। पाठान्तरों में वाहीक-पुंगवः भी है। यह दूसरा पाठ ही श्रेष्ठ पाठ है। प्रतीत होता है मद्राधिपति वाहीकपति भी था। इसी कारण आदिपर्व ११६।२१ में माद्री को वाहीकि लिखा है।

मद्रों के दो विभाग—पाणिनि के काल में मद्रों के दो विभाग हो गए थे, पूर्वमद्र और अपरमद्र। ऐतरेय ब्राह्मण के उत्तर-मद्र जो हिमवान् से परे थे, इन से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं।[6]

राजधानी—मद्रों की राजधानी शाकल थी।[7] कई स्यालकोट को और दूसरे सांगला को शाकल मानते हैं।[8] अलबेरूनी (भाग १, पृ० ३१७) के काल में स्यालकोट का नाम सालकोट था।

राज्य और गण—मद्रों में एक प्रधान राजा था और कई गण राज्य थे।[9] वे गण प्रधान राजा के अधीन थे।[10] मद्रराज शल्य और उसके दो पुत्र रुक्माङ्गद और रुक्मरथ द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित थे।[11] मद्रकों का एक राजा जटासुर था। वह युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश-

१. टपियाला ग्राम की छात्राएं हमारे पास पढ़ती रही हैं। वे इसे अब भी धोका कहती हैं। पाणिनि के काल में देविका नदी के तट पर होने वाले चावल बहुत प्रसिद्ध थे। यथा—दाविका कूला शालयः।

२. नन्दुलाल दे के कोश में मद्र शब्द देखो—Some suppose that Madra was also called Bahika. Bahika, however, appears to be a part of the kingdom of Madra.

३. गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाप्यतेजसः॥ कर्णपर्व ३८।८॥

४. आदिपर्व ६१।६॥

५. काशिकावृत्ति ४।२।१०८॥

६. ऐ० ब्रा० ३८।१४॥

७. मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा। मत्स्य २०८।५॥
शाकलं नाम मद्रेषु बभूव नगरं पुरा। कथासरित् सागर ८।१।१७॥

८. मक्क्रिण्डल, टाल्मी का भारत पृ० १२२, १२३।

९. यौधेयान् मालवान् राजन् मद्रकाणां गणान् युधि। द्रोणपर्व १५८।३०॥

१०. उद्योगपर्व ४।११॥

११. आदिपर्व १७७।१३॥

उत्सव में सम्मिलित हुआ था।[1] भारत-युद्ध में मद्रों के सम्राट् शल्य और उसके पुत्र रुक्मरथ ने भाग लिया था।[2] शल्य को आर्तायनि भी लिखा है।[3] एक मद्रराज द्युतिमान् की कन्या विजया का विवाह पाण्डव सहदेव से हुआ था।[4] शल्य का एक अनुज भी भारत-युद्ध में था।[5]

काशिका-वृत्ति में मद्रों के कहीं बाहर कर भेजने का उल्लेख है—मद्राः करं विनयन्ते। निर्यातयन्तीत्यर्थः।[6]

मद्रदेश में याजुष चरक शाखा के पढ़ने वाले ब्राह्मण रहते थे।[7]

१४. चीन—यह चीन महाचीन से पृथक् है। ऐसा दूसरा चीन प्राग्ज्योतिष के पास पूर्व में भी था।

१५. तुषार—ये लोग युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित थे।[8] भारतयुद्ध में ये दुर्योधन-पक्ष में लड़े थे।[9] तुषार उग्र और भीमकर्मा थे।[10]

देश-स्थिति—सुप्रसिद्ध चक्षु या वक्षु नदी तुषार, लम्पाक, पह्लव, पारद और शक देशों से बहती हुई समुद्र में गिरती है।[11] वक्षु को ही आक्सस या अमु दरिया कहते हैं। महाभारत, हर्षचरित और काव्यमीमांसा आदि ग्रन्थों में तुषार-गिरि नाम मिलता है।[12]

यूहेचि और तुषार—तुषार लोग चीनी भाषा में यूहेचि कहे जाते हैं। कनिष्क आदि सम्राट् इस जाति के थे।

अनेक लोग तुषार और शकों को एक समझते हैं, यह भूल है। सारे संस्कृतवाङ्मय में वे एक दूसरे से भिन्न कहे गये हैं। उच्चारण भेद से तुषार ही तुखार है। डा० प्रबोधचन्द्र बागची के अनुसार तुखार या डोगर एक थे।[13] यूनानी लेखक टालमी उन्हें थगौरोई लिखता है। क्या वर्तमान ठाकुर शब्द का इन शब्दों से सम्बन्ध है? ठाकुर लोग राजपूत जाति के हैं।

लिपि और लेख—युवनच्वङ्ग के अनुसार उनकी लिपि खड़ी और वाम से दक्षिण लिखी जाती थी।[14]

---

१. सभापर्व ४।३०॥ २. भीष्मपर्व ४७।४८॥ ३. कर्णपर्व ४।९॥२३।६३॥
४. आदिपर्व ९०।८७॥ तथा इस के पाठान्तर।
५. शल्यपर्व १६।५७॥ ६. १।३।३६॥
७. बृहदारण्यक उपनिषत् ३।३।१॥
८. सभापर्व ७८।६०॥ ९. भीष्मपर्व ७५।२१॥ १०. कर्णपर्व ७७।१९॥
११. वायु ४७।४४॥ मत्स्य १२१।४५,४६॥ १२. महाभारत १३।८३६॥ हर्षचरित पृ० ७६०। काव्यमीमांसा तीसरे अध्याय का अन्त। १३. इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९४३, पृ० ३६॥
१४. वाटर्स का अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० १०२॥

१६. गिरिगह्वर—इस देश की स्थिति का ज्ञान अभी तक नहीं हो सका।

१७. शक—दरदों से पश्चिम की ओर वक्षु=आक्सस अथवा चक्षु=जिहूँ के तट पर शक लोग रहते थे। पुराणों में उन्हीं के देश को शकद्वीप लिखा है। नन्दुलालदे के भौगोलिक कोश में पुराणों के शकद्वीप की टाल्मी के सीथिया से अपूर्व तुलना की गई है। टाल्मी का वर्णन पुराणों के लेख से अत्यधिक मिलता है।

शकजाति—यवन और काम्बोजों के समान शक लोग भी कभी शुद्ध आर्य थे। कालान्तर में ब्राह्मणादर्शन से वे वृषल हो गए।[1] महाभाष्य में शकयवनम् समास से आर्यावर्त से निरवसित शूद्रों का ग्रहण है।[2] महाभाष्य ६।१।१०८ में शकन्धर्थम् पद देखने योग्य है।[3] भारत-युद्ध में वे दुर्योधन-पक्ष में थे।[4]

कर्णपर्व के अनुसार शक, यवन, दरद आदि जातियां दुर्योधन की ओर से लड़ रही थीं।[5] इन योधाओं में से बहुत से वेतनभोगी सैनिक होंगे। चरकसंहिता में लिखा है कि बाह्लीकों के समान शक, यवन आदि मांस, गेहूँ का आटा और माध्वीक का सेवन करते थे।[6]

रुडल्फ हार्नलि की भूल—इंगलिश जाति के हार्नलि आदि लेखकों ने चरकसंहिता का काल बड़ा अर्वाचीन मान लिया है।[7] यह उनकी भारी भूल है। चरक का प्रसिद्ध टीकाकार भट्टार हरिश्चन्द्र महाराज साहसांक का समकालीन था।[8] साहसांक प्रसिद्ध गुप्त चन्द्रगुप्त था। हरिश्चन्द्र ने चिकित्सास्थान के चौबीसवें अध्याय पर अपनी व्याख्या लिखी थी।[9] चरक-संहिता के चिकित्सा स्थान के ये अन्तिम अध्याय दृढ़बल के लिखे हुए हैं। इस से ज्ञात होता है हरिश्चन्द्र से पहले ही दृढ़बल चरकसंहिता का पुनरुद्धार कर चुका था। यह दृढ़बल कापिलबलि=कपिलबल का पुत्र था।[10] अष्टाङ्गसंग्रह में वाग्भट्ट कपिलबल को उद्धृत करता है।[11] ये पिता पुत्र गुप्तकाल से पहले के वैद्य थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि हार्नलि ने दृढ़बल का काल सातवीं से नवमी शताब्दी ईसा के अन्तर्गत माना है।[12] आर्थर बैरिडेल कीथ ने भी यह भूल की है।[13]

---

१. अनुशासन पर्व ६८।२१॥ २. २।४।१० ॥ ३. देखो सत्यश्रवा कृत अंग्रेजी ग्रन्थ भारत में शक, पृ० १००। ४. भीष्मपर्व ७५।२१॥ ५. कर्णपर्व ७७।१९॥९४।१६॥
६. चिकित्सास्थान ३०।११६॥ ७. देखो उनका ग्रन्थ आस्टिआलोजी सन् १९०७ भूमिका।
८. विश्वप्रकाशकोश, आरम्भ, श्लोक ५। ९. माधवनिदान १८।९ की मधुकोश व्याख्या में चौबीसवें अध्याय पर हरिश्चन्द्र व्याख्या का अस्तित्व माना है। १०. चिकित्सास्थान ३०।२९०॥
११. भाग प्रथम, पृ० १५२ ॥ १२. आस्टिओलिजि भूमिका पृ० १६ ॥
१३. हिस्ट्री आफ ए संस्कृत लिट्० आक्सफोर्ड, सन् १९२८ पृ० ५०६।

१८. ह्रद=भद्र—शकों के साथ भद्र देश था। वायु के अनुसार ह्रददेश सिन्धु तट पर था।

१९. कुणिन्द=कुलिन्द—ये लोग महाभारत में बहुधा वर्णित हैं।[1] कई कुणिन्द-पुत्र पाण्डव-पक्ष में लड़े थे।[2] कुणिन्द सदा पर्वतवासी थे।[3] उनका देश पार्वत्य था। यदि वायु पुराण ४७।४३ का पाठ ठीक है तो कुणिन्द पहले मध्य एशिया में सीता नदी पर रहते थे। कुणिन्दों की कई प्राचीन मुद्राएं प्राप्त हो चुकी हैं।[4] इन मुद्राओं के बनने के समय शकों और तुषारों के समान वे भारत में आचुके थे। एक मुद्रा पर ब्राह्मी अक्षरों में लिखा है—रञो कुणिंदस अमोघभूतिस महाराजस।

२०. पारद—कुणिन्दों के साथ पारद थे। सभापर्व ४८। १२ में बाल्हीक और पारद साथ साथ वर्णित हैं।

२१. हारपूरिक और हारमूर्तिक—दोनों पाठ अशुद्ध प्रतीत होते हैं। कौटल्य के अर्थशास्त्र में हारहूरक सुरा वर्णित है।[5] महाभारत आरण्यकपर्व अध्याय ४८ के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं। उनसे हारहूण पाठ शुद्ध प्रतीत होता है—

पह्लवान् दरदान् सर्वान् किरातान् यवनान् शकान्॥ २०॥
हारहूणांश्च चीनांश्च तुषारान् सैन्धवांस्तथा।
जागुडान् रमठान् मुण्डान् स्त्रीराज्यानथ तङ्गणान्॥ २१॥

२२. रामठ—अमरकोश और उसके टीकाकारों के अनुसार यह स्थान हिङ्गु के लिये प्रसिद्ध था।[6]

२३. कण्टकार, करकण्ठ अथवा रुद्रकटक—ये तीन पाठ हैं। सिन्धुतट के प्रदेशों में वायु और ब्रह्माण्ड के अनुसार रन्ध्रकरक देश था। रन्ध्रकटक पाठ शुद्ध होना चाहिये।

२४. केकय

भौगोलिक स्थिति—केकय देश का स्पष्ट वर्णन अभी तक कहीं नहीं किया गया। पार्जीटर ने मद्रों के पश्चात् केकय देश माना है, परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति पार्जिटर ने भी प्रकट नहीं की। बहुत संभव है पुरातन वर्णु केकय देश का एक भाग हो। वर्तमान बन्नु के पास भरत और कक्की या ककैई नाम के दो ग्राम अब तक विद्यमान हैं। पुरातन वर्णु के पास वर्णु नाम का एक नद था।[7] बन्नु के पास एक नद कुर्म और एक नाला वाणु अब भी है। बन्नु के समीप अक्करा नाम का एक ग्राम है। उस में से यवन-ग्रीक काल की मुद्राएँ अब भी मिलती हैं।

केकय देश के राजा—भारत-युद्ध-काल में केकय देश के राजा दो भागों में विभक्त हो

---

१. द्रोणपर्व १२१। १४, १६॥ कर्णपर्व ५।१९॥ २. कर्णपर्व ८९। २—७॥
३. आरण्यकपर्व २४९। ७॥ ४. काएन्ज आफ एन्शिएण्ट इण्डिया पृ० १५, १५९॥
५. आदि से अध्याय ४६। ६. २। ९। ४०॥
७. वर्णुर्नाम नदः तत्समीपो देशो वर्णुः। काशिकावृत्ति ४। २। १०३॥

चुके प्रतीत होते हैं। केकय-देश के राजा तो अवश्य अनेक थे। एक केकय-सेना दुर्योधन पक्ष में थी। उस के संचालक केकय विन्द और अनुविन्द थे।[2] वे दोनों सात्यकि से मारे गए।[3] विन्द और अनुविन्द के विरुद्ध पक्ष में पांच केकय राजकुमार थे।[4] वे सब भाई थे उन्हें केकयों ने राज्य नहीं दिया था। वे केकयों से अपना राज्य भाग लेना चाहते थे।[5] वे सब पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़े। वस्तुतः केकय-भाई ही केकय-भाइयों के विरुद्ध लड़े थे।[5]

पञ्च केकय-भ्राता कुन्ति-पृथा की भगिनी के पुत्र थे—शूर की पांच कन्याएं भारतीय इतिहास में अति प्रसिद्ध हैं। वे पांचों वीर-माताएं थीं। पुराणों में उन पांचों की सन्तति का कभी पूरा वर्णन था। सम्प्रति यह वर्णन बहुत टूट गया है। कुन्ति अर्थात् पृथा के पुत्र युधिष्ठिर आदि तीन पाण्डव थे। कुन्ति की भगिनी श्रुतकीर्ति केकय-राज से ब्याही गई थी। उसकी सन्तान कितनी थी, यह हम नहीं कह सकते। परन्तु पांच केकय-कुमार उसी के पुत्र प्रतीत होते हैं।[7] उन में से दो थे चेकितान और बृहत्क्षत्र। बृहत्क्षत्र भारत-युद्ध का एक महारथी था।[8] एक कैकेय पुत्र विशोक कर्ण से मारा गया।[9] कैकेय सेनापति मित्रवर्मा ने विशोक का बदला कर्णपुत्र सुदेव को मार कर लिया, पर फिर वह भी कर्ण से मारा गया।[10] श्रुतकीर्ति का एक और पुत्र सन्तर्दन था।[11] एक कैकेय धृष्टकेतु था।[12] केकयकुमार लोहध्वज थे। पाणिनीयसूत्र ६।२।२८ इस पर प्रकाश डालता है।

पूना संस्करण के एक पाठ में दोष—पूना-संस्करण का महाभारत एक आशातीत परिश्रम का फल है। उस के अनेक पाठ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, पर केकय-कुमारों के सम्बन्धी पाठ उद्योग-पर्व में भ्रष्ट ही रहे हैं। पूना संस्करण के अनुसार केकय पंच-कुमार दुर्योधन-पक्ष में थे।[13] परन्तु उसी संस्करण में आगे चल कर उन्हें पृथापुत्रों का साथी लिखा है।[14] सम्पादन की यह भूल कही जायगी। पूना संस्करण के अनुसार पाण्डव-पक्ष में छः अक्षौहिणी सेना थी

---

१. केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ॥ उद्योगपर्व ४। ८॥

२. विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ॥ कर्णपर्व १०।६॥

३. कर्णपर्व १०।११–३५॥ ४. उद्योगपर्व २२।२०॥

५. वृकोदरसमो युद्धे वृतः केकयजो युधि।
केकयेन च विक्रम्य भ्राता भ्राता निपातितः ॥ कर्णपर्व ३।१८॥

६. मत्स्य ४६।४–६॥ वायु ९६।१५५-१५९॥ ब्रह्माण्ड उपो० पा० ३,७१।१५०-१५९॥

७. भ्रातरः पञ्च कैकेयाः...।
मातृष्वसुः सुता वीराः ॥ द्रोणपर्व १०।५६,५७॥

८. भीष्मपर्व ४५। ५५ ॥ द्रोणपर्व २३।२४॥

९. कर्णपर्व ८६।३॥ १०. कर्णपर्व ६८।४,५॥ ११. विष्णु ४।१४।४१,४२॥ वायु ९६।१५६॥

१२. भीष्मपर्व ४८।१०१॥ १३. उद्योगपर्व १९।२५॥ १४. उद्योगपर्व २२।१९॥

और दुर्योधन पक्ष में बारह अक्षौहिणी सेना।[1] इस से ज्ञात हो जाता है कि केकय-राजकुमारों के पाठ वाले श्लोकों को दुर्योधन-पक्ष में नहीं रखना चाहिये। इस स्थान पर कुछ अल्प अच्छे पाठ वाले हस्तलेखों का पाठ सर्वश्रेष्ठ है। तथ्य के सम्मुख सम्पादन कला को झुकना ही पड़ेगा।

सहस्रचित्य और शतयूप—केकयों का एक प्रसिद्ध राजा सहस्रचित्य था। वह शतयूप का पितामह था।[2] शतयूप केकयों का एक महान् राजा था। वह भारतयुद्ध के पर-काल में कुरुक्षेत्र में तप तपता था। धृतराष्ट्र और गान्धारी उसके आश्रम में रहे थे।[3]

उपनिषदों में ब्रह्मवादी केकय अश्वपति का वर्णन मिलता है।[4] अश्वपति केकय-राजाओं की उपाधिमात्र है। यह कोई नाम नहीं। युधाजित्-अश्वपति दाशरथि-भरत का मामा था।[5]

भाषा—केकय देश की भाषा पैशाची थी।

२५. दशमालिक, दशमानिक (वायु)—इनकी तथा दासमीयों की एकता अभी विचारणीय है। पञ्जाब में इस समय भी दसनामी लोग मिलते हैं। क्या वायुपुराण के दशमानिकों से उनका कोई संबन्ध है।

२६, २७. क्षत्रियोपनिवेश और वैश्यशूद्रकुलदेश—अन्वेषण योग्य हैं।

२८. काम्बोज—दरदों के साथ ही काम्बोज जनपद था।[7] काम्बोज के परे सम्भवतः परमकाम्भोज भी थे।[8] वहां के घोड़े बहुत प्रसिद्ध थे।[9] काम्भोजों के कुछ गणराज्य भी थे।[10] राय चौधरी की दृष्टि में महाभारत का वचन नहीं पड़ा। उनका कथन है कि काम्बोजों में पहले केवल एक सत्तात्मक राज्य था। संघ-राज्य पीछे चला। यह ठीक नहीं। काम्भोज बड़े भारी योधा थे।[11] काम्भोज लोग मुण्डशिर होते थे।[12] कौटल्य के अनुसार काम्बोज वार्ता और शस्त्र उपजीवी थे।[13] अमरकोश २।४।१३८ में काम्बोजी माषपर्णी उल्लिखित है।

राजधानी—अनुमान होता है कि काम्भोजों की राजधानी राजपुर थी।[14] कनिंघम और राय चौधरी के अनुसार वर्तमान रामपुर-राजौरी काम्बोजों का राजपुर था।[15]

---

१. उद्योगपर्व १९।६—२६॥ २. आश्रमवासिक पर्व २१।६,७॥ ३. आश्रम० पर्व २०।८—१२॥
४. छा० उप० ५।११।४॥ श० ब्रा० १०।६।१।२॥ ५. पूर्व, पृ० १११॥
६. भण्डारकर संस्थान पूना का बुलेटिन, अध्यापक उपाध्ये का लेख, सन् १९४०।
७. सभापर्व २८।२३॥ ८. सभापर्व २८।२५॥ ९. द्रोणपर्व २३।४३॥
१०. काम्भोजानां च ये गणाः। द्रोणपर्व ९१।४१॥
११. दुर्वारणा नाम काम्भोजाः। द्रोणपर्व ११२।४४॥
१२. अष्टाध्यायी गणपाठ २।१।७२॥ द्रोणपर्व ११९।३३॥
१३. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय १३५॥ १४. द्रोणपर्व ४।५॥
१५. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ए. इ. सन् १९३८। पृ० १२६, टिप्पणी।

राजवंश—काम्बोजों के तीन राजाओं के नाम महाभारत में मिलते हैं, कमठ, चन्द्रवर्म और सुदक्षिण। कमठ युधिष्ठिर की राजसभा के उत्सव में उपस्थित था।[1] चन्द्रवर्म का नाम आदि-पर्व के वंशावतरण में मिलता है।[2] भारतयुद्ध में काम्बोज सुदक्षिण अर्जुन से मारा गया।[3] इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध हम अभी तक नहीं जान सके। सुदक्षिण का छोटा भाई प्रपक्ष भी अर्जुन से मारा गया।[4]

२९. दरद—सिन्धु का उद्गम दरद देश में है। अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति ४।३।८३ में लिखा है—दारदी सिन्धुः। वर्तमान दर्दिस्तान कुछ छोटा हो गया है। कभी दरदों की सीमा सिन्धु के उद्गम तक थी।[5] दरद शूर क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणादर्शन से वृषलत्व को प्राप्त होगए थे।[6] विश्वामित्र,जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम और वसिष्ठ के अति प्राचीन काल में भी दरद मोघ ज्ञान वाले थे।[7] यादव कृष्ण ने दुर्जय दरदों को जीता था।[8] अर्जुन ने युधिष्ठिर के राज-सूय यज्ञ से पहले बाह्लीकों के पश्चात् दरदों को काम्भोजों के साथ जीता।[9] इस से ज्ञात होता है कि काम्भोज और दरद साथ ही साथ थे। महाभारत में एक और स्थान पर चीन, तुषार और दरदों का एक साथ उल्लेख है।[10] उससे ज्ञात होता है कि तुषारों के साथ ही दरद भी थे। तुषारों का अधिक वर्णन कनिष्क वर्णन के समय होगा। उद्योगपर्व में लिखा है कि द्रुपद ने कहा कि शक, पह्लव, दरद, काम्बोज और ऋषिकों के राजाओं के पास सहायता के लिये दूत भेजने चाहिएं।[11] क्या ये ऋषिक ही थे कि जिनका आर्षी भाषा में बहुत सा साहित्य अभी मिला है? महाभारत में अन्यत्र लिखा गया है कि महाराज बाह्लीक दरद था।[12] ये दरद भारतयुद्ध में भाग ले रहे थे।[13]

अमरकोश १।८।१०,११ में दारद विष उल्लिखित है।

३०. बर्बर—इस देश की स्थिति काम्बोजों और दरदों के साथ थी।

३१. ३२. आत्रेय और भरद्वाज—अष्टाध्यायी ४।२।१४५ में भरद्वाज देश का उल्लेख है। वहीं इस देश के दो ग्राम कृकण और पर्ण भी वर्णित हैं। आयुर्वेदीय चरकसंहिता का मूल उपदेष्टा आत्रेय था। और वह भरद्वाज का शिष्य था। किसी पुरातन राजा ने इन दोनों को

---

१. सभापर्व ४।२८॥ २. ६१।३० का प्रक्षेप, पूना संस्करण।

३. द्रोणपर्व ९२।६२–७२॥ ४. कर्णपर्व ५१।१०८–११५॥

५. यवन लेखक टाल्मी भी सिन्धु का स्रोत दरद पर्वतों में मानता है। उसने यह बात पुराणों आदि से ली होगी। मक्क्रिण्डल का मत है कि टाल्मी ने भूल की है। देखो टाल्मी का प्राचीन भारत, पृ० ८३। हमारा विचार है कभी दरद प्रदेश सिन्धु के स्रोत तक जाता था।

६. अनुशासनपर्व ७०।१९॥ मनुस्मृति १०।४४। ७. आर्षेय उपनिषद्।

८. द्रोणपर्व ११।१७॥ ९. सभापर्व २८।२३॥ १०. वनपर्व १७९।१२॥

११. उद्योगपर्व ४।१५॥ महाभाष्य ४।२।१०४ में ऋषिकः, आर्षिकः पाठ है।

१२. सभापर्व ६७।८॥ आदिपर्व ६१।५५॥ तथा ६१।५३ के पाठान्तर।

१३. बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः। भीष्मपर्व ११७।३३॥

ये प्रदेश दिये होंगे। वे प्रदेश इन दो ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्मपर्व १०।६७ के अनुसार ये म्लेच्छ देश थे। वहां ओषधियां अधिक होती होंगी।

३३. दशेरक—हेमचन्द्र की अभिधानचिन्तामणि ४।२३ में मरवस्तु दशेरकः लिखा है। अर्थात् मरु देश दशेरक था। अभिधानचिन्तामणि ४।२७ की टीका में मरवः साल्वाश्च प्रतीच्याः लिखा है। अतः दशेरक सिन्धु-मरु का कोई स्थान होगा। पादताडितक भाण में दाशेरक रुद्रवर्मा का नाम मिलता है।[1] वायुपुराण का पाठ दशेरुक है। पाणिनीयसूत्र २।४।६८ के गणपाठ में अग्निवेशदाशेरकाः पाठ है। क्या आत्रेयों और भरद्वाजों के साथ अग्निवेश देश भी था। यदि ऐसी बात है तो कायचिकित्सा के तीनों प्रधान आचार्य आत्रेय, भरद्वाज और अग्निवेश के देश साथ साथ और दशेरुकों या सिन्धुमरु के समीप होंगे। संस्कृत में दासेरक शब्द का अर्थ ऊंट है, अर्थात् दशेरक देश में होने वाला पशु। अग्निवेश्य योधा पाण्डव पक्ष में लड़ रहे थे।[2] दाशेरकों में कई गण थे।[3]

३४. लम्पाक—हेमचन्द्र के अनुसार ये लोग मुरुण्ड थे। चीनी यात्री युवनच्वङ्ग के मार्ग में यह देश पड़ा था। वर्तमान लघमान अथवा लमघान देश पुराना लम्पाक था।[1] वायुपुराण के अनुसार लम्पाक चक्षु=वक्षु अथवा आक्सस के तट पर रहने वाले थे।

३५. त्रिगर्त, और प्रस्थल

देश स्थिति—त्रिगर्त वर्तमान कांगड़ा है और प्रस्थल जालन्धर आदि के प्रदेश हैं। नन्दुलाल दे ने ए. बरूहा के इङ्गलिश-संस्कृत कोश के प्रमाण से पटियाला को प्रस्थल का अपभ्रंश समझा है। पटियाला तो अभी कल का बसा नगर है। एक बाबा आला था। उसकी पत्ति (या भाग) में यह स्थान आया। वहीं से इस का नाम पटियाला हो गया। वस्तुतः पार्वत्य प्रदेश के साथ की भूमि का समतल भाग ही प्रस्थल कहा जाता था। वह भाग जिला जालन्धर और वर्तमान होश्यारपुर है। यह सारा प्रदेश त्रिगर्तराज के अधीन था। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा भी है—जालन्धरास्त्रिगर्त्ताः स्युः।[4] वर्तमान नगर कपूरथला का थला पद स्थल का अपभ्रंश है।

संवत् १०३९—४० में लिखे हुदुद-अल-अलम् नामक फारसी ग्रन्थ में लिखा है, जलहन्दर नगर पर्वत पर है। जलवायु ठण्डा है।.........यह नगर कनौज राज्य में ह।[5] यह कथन विचारणीय है। उसी काल का अलबेरुनी लिखता है-दहमाल, जालन्धर की राजधानी जो पर्वत की उपत्यका में है।[6]

राजा—जब सरस्वतीतीरस्थ काम्यक वन में पाण्डव विचरते थे, तब सैन्धव जयद्रथ के साथ त्रिगर्तराज क्षेमंकर भी था।[7] यह क्षेमंकर पाण्डव-नकुल से उसी वन में मारा गया।[8]

---

१. पृ० ७। २. भीष्मपर्व ४६।५१॥ ३. भीष्मपर्व ४६।४६॥५२।८॥
४. अभिधान चिन्तामणि ४।२४॥ ५. इण्डियन हि० कांग्रेस, सन् १९३९, पृ० ६६८।
६. अंग्रेज़ी अनुवाद, भाग १, पृ० २०५। ७. वनपर्व २६६।७॥ ८. वनपर्व २७२।१६,१७॥

भारत-युद्ध में त्रिगर्तराज सुशर्मा और उसके भाई सुरथ, सुधर्मा, सुधनु और सुबाहु भाग ले रहे थे।[1] महाभारत में सुशर्मा को प्रस्थलाधिप भी लिखा है।[2] इस से ज्ञात होता है कि सुशर्मा का राज्य बड़े विस्तृत प्रदेश पर था। सुशर्मा और उस के भाई भारत-युद्ध में मारे गए। युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ के समय त्रिगर्तों का राजा सूर्यवर्मा था।[3] उस के दो भाई केतुवर्मा और धृतवर्मा थे।

संसप्तक आयुधजीवी थे—त्रैगर्त-क्षत्रिय संसप्तक या संशप्तक नाम से प्रसिद्ध थे। अमर ने नामलिङ्गानुशासन कोश में लिखा है कि संशप्तक लोग समय करके युद्ध करते थे और युद्ध से लौटते नहीं थे।[4] पाणिनि ने छः सुप्रसिद्ध आयुधजीवियों का उल्लेख किया है। त्रिगर्त उनमें छठे थे।[5] महाभारत के युद्ध पर्वों से ज्ञात होता है कि त्रिगर्त युद्ध करने में अतिनिपुण थे।

भार्गायण—त्रिगर्त्तों में भर्ग कुल में भार्गायण नाम का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ होगा। पाणिनि ने उसके लिये एक सूत्रविशेष रचा था।[6] दूसरे भर्ग का जनपद पूर्व में था।[7]

३६. उलूत=कुलूत—यह देश वर्तमान कुल्लू देश था।

३७. तोमर—यह नाम अज्ञात है। भीष्मपर्व १०।६८ का पाठ तामर है।

३८. हंसमार्ग—वायु ४५।१३५ के अनुसार यह पार्वत्य प्रदेश था। भीष्मपर्व १०।६८ के अनुसार यह एक म्लेच्छ देश था।

३९. काश्मीर

देश स्थिति—काश्मीर सुप्रसिद्ध देश है। इस की सीमाएं समय समय पर बदलती रही हैं।

राजा—एक काश्मीर-राज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में बलि लिये उपस्थित था।[8]

एक काश्मीरराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित था।

गोनन्द प्रथम—गोनन्द महाराज जरासन्ध का सम्बन्धी था। कंस की मृत्यु के पश्चात् जरासन्ध से निमन्त्रित होकर गोनन्द मथुरा के पास बलराम और कृष्ण आदि वृष्णियों से लड़ा। वहीं उसकी मृत्यु हुई।

दामोदर—गोनन्द प्रथम का पुत्र दामोदर था। वही गोनन्द के पश्चात् काश्मीरों का राजा हुआ। तब सिन्धु के समीप गान्धार देश में एक स्वयंवर हुआ। उस स्वयंवर के अवसर पर दामोदर और श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ। दामोदर मारा गया। उसकी पत्नी अन्तर्वत्नी थी।

पुण्डरीकाक्ष के काश्मीरों को जीतने का संकेत महाभारत में भी है।[10]

---

१. द्रोणपर्व अध्याय २८—३०॥ २. भीष्मपर्व ११३।५१, ५२॥
३. आश्वमेधिकपर्व ७४।९—१७॥ ४. २।८।९७॥ ५. ५।३।११६॥
६. भर्गात् त्रैगर्त्ते ४।१।१११॥ ७. सभापर्व ३१।११॥
८. सभापर्व ७८।१६॥ ९. सभापर्व ३७।१५॥ १०. द्रोणपर्व ११।१६॥

गोनन्द द्वितीय—श्रीकृष्ण ने दामोदर की पत्नी का अभिषेक किया। इस रानी के पुत्र का नाम गोनन्द द्वितीय था। भारतयुद्ध के समय बाल गोनन्द अभी छोटा था, अतः वह युद्ध में नहीं लाया गया।[१]

४०. तङ्गण—काश्मीरों के बहुत उत्तर में तङ्गण थे। वायु के अनुसार तङ्गण जनपद में से मध्य एशिया की वक्षु नदी बहती थी। बाल्मीकि रामायण दाक्षिणात्य पाठ किष्किन्धा काण्ड ४३।१२ का टङ्कण पाठ शुद्ध प्रतीत नहीं होता।

४१. ४२. दार्व, अभिसार—ये पार्वत्य प्रदेश थे। अभिसार तो वर्तमान हजारा है। यहां के क्षत्रिय भारत-युद्ध में भाग ले रहे थे। वे दुर्योधन पक्ष में थे।[२]

इण्डियन अण्टीकेरी में चार्लस स्विन्नर्टन ने लिखा है—हजारा······जिस में अब तन ओलिस, हस्सरज़ई और अकज़ई रहते हैं।[३]

४३. ४४. चूडिक, आहुक—ये दोनों नाम अज्ञात हैं।

४५. अपग—यह पाठ वायुपुराण का है। भीष्मपर्व अध्याय १० का पाठ है—

औपकाश्च कलिङ्गाश्च किराताना च जातयः ॥६७॥

यहां कलिङ्ग पाठ सन्दिग्ध है। अपग और औपक पाठ परस्पर मिलते हैं।

नौ अन्य जनपद

इनके अतिरिक्त नौ और जनपद हैं, जो या तो स्वतन्त्र जनपद होंगे अथवा पूर्वलिखित जनपदों के भाग होंगे। वे हैं—बाह्लीक, शिवि, वसाती, उरसा, सुवास्तु, क्षुद्रक, मालव, अम्बष्ठ, और यौधेय। इनका वर्णन आगे किया जाता है।

४६. बाह्लीक—पुराने ग्रन्थों में बाह्लीक और वाहीक नामों में बहुत गड़बड़ हुई है। वाहीक पञ्जाब या पञ्चनद का भाग था और बाह्लीक भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा का देश था। यह काम्बोज और लम्पाक आदि के पास था।[४] बाह्लीक देश के हींग और कुंकुम बहुत प्रसिद्ध हैं।[५] अतएव बाह्लीक पञ्जाब में नहीं हो सकता। पञ्जाबान्तर्गत तो वाहीक ही है। वाट्र्स के अनुसार वर्तमान बदखशां देश पुराने बाह्लीक देश का कुछ भाग है।[६]

राजवंश—आदिपर्व में प्रह्लाद को बाह्लीक-राज लिखा है।[७] क्या यही प्रह्लाद नग्नजित गान्धार का गुरु था?[८] बाह्लीक देशवासी कोई काङ्कायन आयुर्वेद-संहिताओं में बड़े आदर से स्मरण किया गया है।[९] चरकसंहिता के अनुसार काङ्कायन बाह्लीक भिषजों में सर्वश्रेष्ठ था।

---

१. नीलमतपुराण ११—२५॥ २. कर्णपर्व ७७।१९,२२॥

३. भाग २०, सितम्बर १८९१, पृ० ३३६, ३३७॥

४. आयुर्वेदीय कश्यपसंहिता, कल्पस्थान, भोजनकल्प श्लोक ४२,४३ से भी यही ज्ञात होता है।

५. अमरकोश सर्वानन्दटीका २।६।१२४॥ ६. युवनच्वङ्, भा० १ पृ० १०५।

७. प्रह्लादो नाम बाह्लीकः स बभूव नराधिपः ॥ आदिपर्व ६१।२८॥

८. तुलना करो पूर्व पृष्ठ १५१। ९. चरकसंहिता सूत्रस्थान १२।६॥२६।५॥ कश्यपसं० पृ० २६॥

निमि विदेह और काङ्कायन आदि आचार्य एक बार चैत्ररथ वन में आयुर्वेद-विचार के लिये एकत्रित हुए थे।[1] पाणिनीय गणपाठ चित्ररथबाह्लीकम् २।२।३१ से ज्ञात होता है कि बाह्लीक और चित्ररथ-प्रदेश पास ही पास थे। चित्ररथी नदी चित्ररथ देश को प्लावित करती है। संभव है प्रह्लाद भी वैद्य हो और नग्नजित्=दारुवाह ने यह शास्त्र उसीसे पढ़ा हो। द्रोणपर्व ९६।७,१२ में बाह्लीकराज रभस वर्णित है।

बाह्लीक भोजन—सरस्वतीकण्ठाभरण में १।४।१११ सूत्र पर एक उदाहरण दिया गया है सौवीरपायिणो बाह्लीकाः। चरकसंहिता विमानस्थान में लिखा है कि बाह्लीक आदि लोग अत्यधिक लवण खाते थे, वे दूध के साथ भी लवण खाते थे।[2] बाह्लीक लोग मांस और गेहूं का चूर्ण आदि खाते थे।[3]

४७. शिबि जनपद

देश-स्थिति—शिबि जनपद की स्थिति निश्चित हो चुकी है। शोरकोट नाम का वर्तमान ग्राम कभी शिबियों का एक प्रधान नगर रहा होगा। राजा शिबि औशीनर के वृषादर्व आदि चार पुत्र थे। उनका उल्लेख पहले पृ० ७९ पर हो चुका है। अमरकोश ३।५।२८ की टीका में उशीनर देश के ग्राम उल्लिखित हैं। शिबि का मूल-कुल वृषादर्व द्वारा चला। शेष केकय आदि पुत्रों ने अपने अवान्तर राज्य स्थापित किए।

राजा—पंच पाण्डव पञ्जाब के काम्यक वन में विचरते हुए अपने वनवास के दिन अतिवाहित कर रहे थे। वहां जयद्रथ और उसके साथी शैब्य-राज कोटिकाश्य ने द्रौपदी को देखा। यह कोटिकाश्य शैब्य सुरथ का पुत्र था।[4] एक शैब्य राजा गोवासन था। युधिष्ठिर ने उस की पुत्री देविका को स्वयंवर में वरा था।[5] यह गोवासन भारत-युद्ध में दुर्योधन-पक्ष की ओर से लड़ा था।[6] भारत-युद्ध में एक शैब्य चित्ररथ भी लड़ रहा था।[7] एक शैब्य पाण्डव-पक्ष में था।[8] कोई शिबि-राज द्रोण से मारा गया था।[9] किसी शैब्य को श्रीकृष्ण ने जीता था।[10]

प्रतीत होता है शिबि-राज्य सैन्धव-राज के करदाता बन चुके थे। सिकन्दर के ऐतिहासिक इस राज्य को सिबोई लिखते हैं।

४८. वसाति

वसाति जाति के लोग सिन्धु-तट पर रहते थे। उन का देश कितना लम्बा चौड़ा था, यह हम नहीं कह सकते। सिकन्दर के ऐतिहासिकों का अस्सदिओई यही देश प्रतीत

---

१. चरक, सूत्र० २६।६॥ २. १।१४॥ ३. चरक, चिकित्सा ३०।३१७॥
४. वनपर्व २६६।६॥२६७।५॥ ५. आदिपर्व ९०।८३॥ ६. द्रोणपर्व ९५।३९॥९६।११॥
७. द्रोणपर्व २३।६२॥ ८. द्रोणपर्व १०।६५॥७०॥ ९. द्रोणपर्व १५६।१८,१९॥
१०. वनपर्व १२।३१॥

होता है। वसाति, सिन्धु और सौवीर पास ही पास थे। भीष्मपर्व में वसातियों को जनपद कहा है।[1]

राजा—वसातीय राजा को अभिमन्यु ने मारा था।[2] न्यून से न्यून दो सहस्र वसाति भारत-युद्ध में लड़े थे।[3] वसातियों के गण थे।[4]

४९. उरसा

देश-स्थिति—सिन्धु-तटों पर गांधार के पश्चात् पुरातन उरसा था। कई लेखक वर्तमान हज़ारा को उरसा का अपभ्रंश मानते हैं।[5] यह बात ठीक नहीं। हज़ारा तो अभिसार का अपभ्रंश है। हम पृ० १४६ पर लिख चुके हैं कि टालमी के अनुसार तक्षशिला[6] नगर उरसा में था। अतः उरसा का पुरातन प्रान्त वर्तमान अटक पुल के पास से तक्षशिला के कुछ परे तक होगा। टालमी इसे अरसा लिखता है।[7] उरसा के पश्चात् पुराणों के अनुसार सिन्धु-तट का अगला देश कुहू है। यह स्थान काला बाग से उत्तर की ओर वर्तमान कोहाट ज़िला के पूर्व का देश होगा। पाणिनि ने ४।३।९३ के गण में उरसा शब्द पढ़ा है।

टालमी ने उरसा के एक और नगर का नाम इथगैरोस लिखा है। यद्यपि सेंट मार्टिन आदि ने उसे पहचानने का यत्न किया हैं, पर हमें उस पहचान से सन्तोष नहीं हुआ।

द्रोणपर्व ११।१६ के अनुसार औरसिकों को पुण्डरीकाक्ष ने जीता था।

५०. सुवास्तु—वर्तमान स्वात ही पुराना सुवास्तु है। होती, मर्दान के नगर इस प्रदेश में हैं। सुवास्तु का उल्लेख पाणिनि ने अष्टाध्यायी ४।२।७७ में किया है। सुवास्तु-राजा चित्रवर्मा भारतयुद्ध-काल में जीवित था।[8]

५१. क्षुद्रक—क्षुद्रक-मालव महाभारत में बहुधा वर्णित मिलते हैं।[9] पतञ्जलि भी क्षुद्रक और मालवों का नाम स्मरण करता है।[10] सिकन्दर के ऐतिहासिकों का औक्सीड्रूकै क्षुद्रक है। पतञ्जलि ने एक ऐसे युद्ध का पता दिया है जिसमें अकेले क्षुद्रकों ने विजय प्राप्त की थी—

एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितमिति। असहायैरित्यर्थः।[11]

श्री नन्दुलाल दे का मत है कि क्षुद्रक ही शूद्रक थे।[12] हमें इस के मानने में कठिनाई

---

१. भीष्मपर्व १८।१२–१४॥
२. द्रोणपर्व ४४।८–११॥
३. वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः। कर्णपर्व २।३९॥
४. गणाश्च दासमीयानां वसातीनां च भारत। कर्णपर्व ७७।१७॥
५. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ० १०६७।
६. अलबेरूनी इसे मारीकल लिखता है। भाग १, पृ० ३०२।
७. टालमी का भारत, पृ० ११८।
८. चित्रवर्मा सुवास्तुकः। उद्योगपर्व ४।१३॥
९. सभापर्व ७८।९०॥ भीष्मपर्व ५९।७६॥८७।७॥ कर्णपर्व २।५०॥
१०. महाभाष्य ४।१।१६८॥४।२।४५॥
११. महाभाष्य १।१।२४॥
१२. देखो भौगोलिक कोश, शूद्रक शब्द।

प्रतीत होती है। महाभारत आदि ग्रन्थों में क्षुद्रक और मालव तथा शूद्र और आभीर[1] साथ साथ एक एक समास में आते हैं। क्षुद्रक और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया। इस के अतिरिक्त शूद्र और आभीरों का स्थान विनशन के आस पास है जहां सरस्वती रेत में लुप्त होती है।[2] क्षुद्रकों का स्थान शतद्रु या सतलज के ऊपर से रावी तक है।

५२. मालव—मालवों का नाम सभापर्व में मिलता है।[3] वे गोधूम के भरे घड़े युधिष्ठिर की भेंट के लिए लाए थे।[3] मालव वीर योधा थे। पञ्जाब का वर्तमान काल का मालवा भारतयुद्ध-काल का मालव प्रदेश है। यह प्रदेश आधुनिक फीरोज़पुर से आरम्भ होता है। पञ्चनद के मालव उदीच्य मालव थे और सुराष्ट्र के साथ के मालव प्रतीच्य=पश्चिमीय मालव कहाते थे। भारत-युद्ध-काल में दोनों विद्यमान थे।[4] क्षुद्रक और मालवों के सम्बन्ध में कर्णपर्व के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है—

केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥४९॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः।

यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥५०॥ अध्याय २।

एक मालव सुदर्शन भारतयुद्ध में लड़ रहा था।[5]

५३. अम्बष्ठ—चन्द्रभागा या असिक्नी के अन्तिम भाग में अम्बष्ठ लोग बसते थे। अम्बष्ठ राज्य का आरम्भ प्रसिद्ध उशीनर के पुत्र सुव्रत से हुआ था। उस का उल्लेख पृ० ७९ पर हो चुका है। किसी विजयी अम्बष्ठ राजा का वर्णन ऐतरेय ब्रा० ८।२१ में किया गया है। यूनानी लेखकों ने इसी देश को अम्बुताई या अब्स्तनोई लिखा है।

प्राकृतग्रन्थ भविष्यतकहाकी सन्धि १०,११ में कई नगरों के नाम हैं। उन में अब्भोट्ट जट्ट, और जालन्धर भी हैं। यह अब्भोट्ट होशियारपुर ज़िले का वर्तमान अम्बोटा या पुराना अम्बष्ठ है।

भारत-युद्ध में अम्बष्ठपति श्रुतायु दुर्योधन-पक्ष की ओर से लड़ा था।[6] वह राजा लोकविश्रुत था।[7] श्रुतायु अर्जुन से मारा गया।[8] अम्बष्ठ-पुत्र भी भारत-युद्ध में मारा गया था।[9] भारत-युद्ध में अम्बष्ठ क्षत्रिय थे।[10] महाभाष्य में आम्बष्ठ्य प्रयोग है।[11]

---

१. शूद्राभीराश्च दरदाः। भीष्मपर्व ९।६८॥ शूद्राभीरमिति। आभीरा जात्यन्तराणि। महाभाष्य १।२।७२॥

२. शूद्राभीरान्प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती।
तस्मात्तामृषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च ॥ शल्यपर्व ३८।१॥

३. सभापर्व ७८।७०॥

४. भीष्मपर्व ११७।३३॥११९।८५॥ द्रोणपर्व ७।१५॥

५. द्रोणपर्व २०१।७५॥

६. भीष्मपर्व ५१।७६॥

७. भीष्मपर्व ९७।३८॥

८. द्रोणपर्व ९३।६३—७१॥

९. कर्णपर्व ३।१०,११॥

१०. भीष्मपर्व २०।१०॥

११. ४।१।१७० ॥

५४. यौधेय—अम्बष्ठों के साथ यौधेयों का वर्णन भी आवश्यक प्रतीत होता है। ये लोग भी उशीनर की सन्तान में थे। यौधेयों का उल्लेख महाभारत के पूर्वोद्धृत श्लोक में मिलता है। कनिंघम के अनुसार यौधेय क्षत्रिय शतद्रु के निचले तटों पर रहते थे, और उन का स्थान वर्तमान जोहियवार था। यौधेयों की पुरानी मुद्राएं लुधियाना के पास 'सुनित' से मिली हैं।[1]

मध्यदेश के जनपद

महाभारत और पुराण आदि में मध्यदेश के प्रधान जनपद निम्नलिखित गिनाए गए हैं[2]—

१. कुरु+भरत	८. पटच्चर	१५. अपर काशी
२. पाञ्चाल	९. चेदि	१६. कोसल
३. साल्व	१०. वत्स	१७. कुलिङ्ग
४. मद्र जाङ्गल	११. मत्स्य	१८. मगध
५. शूरसेन	१२. कुशल्य=कुल्य	१९. उत्कल
६. भद्रकार	१३. कुन्तल	२०. दशार्ण
७. बोध	१४. काशी	

१. कुरु जनपद

भौगोलिक स्थिति—भारत की प्रसिद्ध नदी गङ्गा कुरु और भरत जनपदों को प्लावित करती है।[3] कुरुओं की पश्चिमोत्तर सीमा कुरुक्षेत्र की उत्तर सीमा तक थी। कुरु जनपद मध्य देश से निकल कर उदीच्य और पश्चिम देशों तक फैलता था। उसका फैलाव वर्तमान अम्बाला नगर के पास तक था। काश्यपसंहिता से प्रतीत होता है कि मध्यदेश से १०० योजन पर कुरुक्षेत्र था।[4] यह योजन साधारण योजन से बहुत छोटा होगा।

राजधानी—कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर या नागपुर थी। गङ्गा के तट पर हस्तिनापुर नगर कभी बड़ा कान्तिमान् रहा होगा।[5] अब तो हस्तिनापुर नाम का एक ग्राम शेष है।

राजवंश—इस हस्तिनापुर में भारत-सम्राट् दुर्योधन राज्य करता था। उसका वंश पहले कीर्तित किया गया है। दुर्योधन की आज्ञा में भारत के बड़े बड़े राजगण थे। उस के पक्ष में लड़ने के लिए वे कुरुक्षेत्र की युद्ध-स्थली पर एकत्र हुए थे।

---

१. Coins of Ancient India सन् १९३६, भूमिका पृ० CLii तथा पृ० २६५।

२. भीष्मपर्व ९।३९–४२ ॥ वायु ४५।१०९–१११॥ ब्रह्माण्ड पूर्वभाग २।१६।४०–४२॥ मत्स्य ११४। ३४–३६॥ अलबेरूनी द्वारा उद्धृत वायु-पाठ, भाग १, पृ० २९९। काश्यपसंहिता, कल्पस्थान, भोजनकल्प, श्लोक ४१।

३. वायु ४७।४८॥

४. खिलस्थान २५।५॥

५. अनुगङ्गं हास्तिनपुरम्। महाभाष्य २।१।१६॥

भरत-जनपद—भरत जनपद कुरुओं का पूर्वभाग था। याजुषों की तैत्तिरीय संहिता में इस जनपद का नाम मिलता है—एष वो भरता राजा।[1]

कुरुओं की युद्ध-यात्रा—तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि "शिशिर ऋतु में कुरुपाञ्चाल प्राची=पूर्व दिशा की ओर युद्ध के लिए निकलते हैं।" उस दिशा में शीत अधिक नहीं होता। इस के विपरीत "वर्षा के आरम्भ में कुरुपाञ्चाल पश्चिम की ओर युद्ध से आते हैं।"[2]

कुरुओं में वीरों का जन्म—कुरु-पाञ्चालों में वीरों के साथ वीर उत्पन्न होते हैं, यह जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है।[3]

कुरुविस्त—कुरु देश में प्रचलित सोने की एक प्रसिद्ध मुद्रा कुरुविस्त कहाती थी।[4] अष्टाध्यायी ५।१।३१ का भी ऐसा ही अभिप्राय है।

२. पञ्चाल

भौगोलिक स्थिति—पञ्चाल देश का अत्यन्त सुंदर वर्णन श्रीयुत उमेशचन्द्रदेव जी ने किया है। वह वर्णन सरस्वती पत्रिका जनवरी सन् १९३८ में मुद्रित हुआ था। उस के कतिपय अंश आगे दिये जाते हैं। "फ़रुखाबाद से छोटी लाइन के द्वारा मथुरा की ओर चलने पर, कायमगंज और रुदायन के बीच में, रेल से उत्तर की ओर एक झील दिखाई देती है।.........इसे 'सरदीपक ताल' कहते हैं। महाभारत तथा हरिवंशपुराण में इस तालाब का नाम 'शरद्वीपतीर्थ' लिखा है।......शरद्वीप से पश्चिम डेढ़ मील की दूरी पर 'रुदायन' गांव है। महाभारत में इस का नाम 'रुद्रायण-तीर्थ' है।......रुदायन से दो मील पश्चिम 'भारागैन' नाम का एक बड़ा गांव है। महाभारत में इस का नाम भार्गवायन है। पाण्डव इस ग्राम में एक कुम्हार के घर ठहरे थे। भार्गव का अर्थ कुम्हार है।......पास ही धौम्य का...धौमपुरा...है। धौमपुरा से आगे जाजपुरा......उस से आगे 'जिजवट' ग्राम है। इस का शुद्ध नाम 'यज्ञवाट' था। यही राजा द्रुपद का कोट था।"[5]

पाञ्चालों में एक उत्पलावत स्थान था जहां विश्वामित्र कौशिक ने शक्र के साथ यज्ञ किया था।[6] इस विषय का जामदग्न्य का अनुवंश श्लोक देखने योग्य है।[6]

राजधानी—पञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य थी। इस का नाम अब कंपिल है। "कंपिल अब प्रायः खंडहर है। जिसे द्रुपद का कोट कहते हैं वह एक ऊंचा खेरा है, केवल एक गुंबद शेष रह गया है।"[7]

उत्तर पंचाल—"गंगा के उत्तर-प्रदेश को उत्तर-पञ्चाल कहते थे।.........इस की राजधानी कंपिल से ३५ मील उत्तर 'अहिच्छत्र' थी। इसे आजकल 'अहिच्छता' कहते हैं।......पास ही एक ग्राम 'सोन सूबा' है, जो स्थूणश्रुवा यक्ष की नगरी थी। इस यक्ष ने

१. तै० सं० १।८।१०।१२॥ २. तै० ब्रा० १।८।४।१२,१३॥ ३. १।२६२॥
४. अमरनामलिङ्गानुशासन २।९।८७॥ ५. सरस्वती पत्रिका, जनवरी १९३८, पृ० २–४।
६. आरण्यकपर्व ८५।११॥ ७. सरस्वती, पृ० ६।

राजकन्या शिखंडिनी को पुंस्त्व प्रदान किया था। यहां से कुछ पूर्व पलावन गांव है। यह प्रसिद्ध उत्पलावन तीर्थ था। कंपिला से साठ मील पश्चिम नदरई के पुल के समीप एक घंटा रखा है, जिसका भार अस्सी मन के लगभग होगा। इसे भीमसेन का घंटा कहते हैं। इसी प्रकार मदार दरवाज़े के पास अष्टधातु-निर्मित गदा के दो टुकड़े एक चबूतरे में गड़े हुए हैं। इन को भीमसेन की गदा कहते हैं।...सैकड़ों वर्ष से पड़े रहने पर भी इन पर जंग का प्रभाव नहीं हुआ।"[1]

अहिच्छत्र का पुरातन नाम—जैन विविधतीर्थ कल्प में लिखा है कि कुरुजांगल जनपद में एक संखावई = शंखावती नाम की नगरी थी। उस का नाम अहिच्छत्र हो गया।[2]

पंचाल का पुरातन नाम—हम पृ० ११६ पर शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से लिख चुके हैं कि पञ्चाल नाम से पहले इस देश का नाम क्रैव्य देश था। वहाँ क्रिवि क्षत्रिय रहते होंगे। पश्चात् इस देश का नाम पञ्चाल हुआ।

जैन ग्रन्थों में पाञ्चाल कृतवर्मा का उल्लेख है। उस की पत्नी का नाम जयश्यामा था। उन दोनों का पुत्र तीर्थङ्कर विमलनाथ था।[3]

राजवंश—चक्रवर्ती उग्रायुध का वर्णन पृ० १३४,१३५ पर हो चुका है। उस की मृत्यु के अनन्तर भीष्म की अनुमति से पृषत् पञ्चाल-नरेश बना। पृषत् का पुत्र यज्ञसेन-द्रुपद था।[4]

यज्ञसेन-द्रुपद—भारत-युद्ध के समय यज्ञसेन बड़ा वृद्ध था। वृष्णि-सिंह कृष्ण महाराज-विराट् की सभा में वक्तृता करते हुए कहता है—

भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च। शिष्यवत्ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः॥[5]

द्रुपद की सन्तान—द्रौपदी-कृष्णा के स्वयंवर समय द्रुपद के सात पुत्र धार्तराष्ट्रों से युद्ध कर रहे थे।[6] उन के नाम थे—

१. धृष्टद्युम्न	२. शिखण्डी	३. सुमित्र	४. प्रियदर्शन
५. चित्रकेतु	६. सुकेतु	७. ध्वजकेतु = ध्वजसेन

इन में से सुमित्र और प्रियदर्शन जयद्रथ और कर्ण से वहीं मारे गए। उद्योगपर्व में द्रुपद के एक अन्य पुत्र का भी उल्लेख है।[7] वह था—

८. सत्यजित्

पांच पाञ्चाल-कुमार द्रोणपर्व अध्याय १२२ में वर्णित हैं। वे सब भाई थे। यही नहीं, वे द्रुपदात्मज भी थे। कारण उनमें से एक चित्रकेतु भी था, और वह पहले संख्या ५ में द्रुपद-पुत्र कहा गया है। उन पांच के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

---

१. सरस्वती, पृ० ७,८।	२. विविधतीर्थकल्पान्तर्गत अहिच्छत्रा नगरी कल्प पृ० १४।

३. तिलोयपण्णत्ति, अध्याय २। उत्तरपुराणपर्व ५९।१४,१५॥ ७२।१९२—२१४॥ हरिवंशपुराण सर्ग ६०।

४. द्रुपदो यज्ञसेनः। उद्योगपर्व १९१।५॥

५. उद्योगपर्व ५।६॥ तथा देखो उद्योगपर्व २५।३॥ ७०।८,९॥

६. आदिपर्व, पूना संस्करण, परिशिष्ट, पृ० ९५२।	७. १७१।२४॥

९. वीरकेतु ९. चित्रकेतु १०. सुधन्वा[1] ११. चित्रवर्मा १२. चित्ररथ

द्रुपद के दो और पुत्र द्रोणपर्व अध्याय १५७ में उल्लिखित हैं—

१३. सुरथ[2] १४. शत्रुञ्जय[3]

इस प्रकार द्रुपद के चौदह पुत्रों का हमें पता मिला है। उन में से दो तो द्रौपदी-स्वयंवर-समय रण में मर चुके थे। शेष बारह भारत-युद्ध में लड़े थे। यही बात उद्योगपर्व में भी लिखी है, कि द्रुपद दस पुत्रों से घिरा हुआ एक अक्षौहिणी सेना सहित था।[4] संभवतः धृष्टद्युम्न और शिखण्डी इस दस संख्या में नहीं गिने गए। वे सेनानायक थे।[5]

भारत-युद्ध में पाण्डव-पक्ष के दो प्रधान वीर महारथ उत्तमौजा और युधामन्यु थे। वे द्रौपदेयों के मातुल थे।[6] इन में से उत्तमौजा को स्पष्ट ही सृञ्जय लिखा है।[7] अतः उस का भाई युधामन्यु भी सृञ्जय ही था। द्रुपद सोमक था। सोमक सृञ्जय के कुल में थे। अतः ये दोनों द्रुपद के किसी भाई के पुत्र होंगे। द्रौपदेयों का एक मातुल जनमेजय भी था।[8] प्रतीत होता है पृ० १३६ पर लिखा हुआ यही दुर्मुख-पुत्र जनमेजय था। यदि यह बात सत्य हो, तो दुर्मुख-पाञ्चाल निश्चय यज्ञसेन-द्रुपद का भाई होगा। चाहे वह द्रुपद का सगा भाई हो या उसके किसी ताया अथवा चाचा का पुत्र हो।

अन्य पांचाल—सुचित्र पाञ्चाल-कुमार था।[9] एक पाञ्चाल द्रुत था।[10] जयन्त और अमितौजा दो पाञ्चाल महारथ थे।[11] इन के अतिरिक्त-भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिंदु, पतन, और शूरसेन भी पांचाल थे। भारत-युद्ध में ये कर्णाग्नि में भस्मीभूत हुए।[12] भारत-युद्ध में पांचाल गोपति और उसका पुत्र सिंहसेन भी था।[13] एक पाञ्चाल वृक था।[14] द्रुपद का एक पुत्र सत्यजित् अभी लिखा जा चुका है। कदाचित् वही पांचालों का महामात्र था। वह द्रोण से मारा गया।[15] इन के अतिरिक्त कुछ और प्रसिद्ध पांचाल भी थे।

धृष्टद्युम्न आदि के पुत्र—धृष्टद्युम्न का एक पुत्र क्षत्रधर्मा भारत-युद्ध में द्रोण से मारा गया।[16] क्या सत्यधर्मा सौमकि इसी का भाई था?[17] शिखण्डी के दो पुत्रों के नाम मिलते हैं। एक था क्षत्रदेव[18] और दूसरा ऋक्षदेव।[19]

---

१. द्रोणपर्व २३।५६॥ भी देखो। २. द्रोणपर्व १५७।१८०॥ ३. द्रोणपर्व १५७।१८१॥
४. उद्योगपर्व ५७।४,५॥ ५. इन को अन्यत्र भी द्रुपद-पुत्रों से पृथक् गिना है, द्रोणपर्व १५९।३८,३९॥
६. कर्णपर्व ८६।२४॥ ७. कर्णपर्व ७९।९॥ ८. कर्णपर्व ८६।१७,२४॥ मिला कर पढ़ने चाहिएं। तथा देखो द्रोणपर्व २३।५२॥ कर्णपर्व ४४।३७॥
९. द्रोणपर्व २१।६२,६४॥ १०. द्रोणपर्व २३।५३॥ ११. उद्योगपर्व १७१।११॥
१२. कर्णपर्व ४३।१५। १३. द्रोणपर्व २३।५१॥ १४. द्रोणपर्व २१।१२॥
१५. द्रोणपर्व २१।२१,२२॥ १६. उद्योगपर्व १७१।७॥ तथा द्रोणपर्व १२५।६७॥
१७. उद्योगपर्व १४१।२५॥ १८. द्रोणपर्व २३।७॥ १९. द्रोणपर्व २३।२५॥

भारत-युद्ध के पश्चात्—विष्णुपुराण में धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु का नाम मिलता है।[1] क्या भारत-युद्ध के पश्चात् वही पांचालों का राजा बना?

३. सालव=शाल्व

भौगोलिक स्थिति—नन्दुलाल दे के अनुसार इस देश का नाम मार्तिकावत था। शाल्व देश निश्चय ही कुरुओं के समीप था। विराटपर्व में लिखा है—

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः।
दशार्णा नवराष्ट्रं च मल्लाः शाल्वा युगंधराः॥[2]

कनिंघम के अनुसार वर्तमान अलवर ही पुरातन शाल्वपुर था।[3]

सालवों के छः भाग—विशाल साल्व-साम्राज्य पाणिनि के काल से पहले छः भागों में विभक्त हो चुका था। काशिकावृत्ति ४।१।१७३ में उन छः भागों के नाम देने वाला एक श्लोक उद्धृत है—

उदुम्बरास् तिलखला मद्रकारा[4] युगन्धराः। भुलिङ्गा शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिताः॥

इन छः में से युगन्धर भाग तो भारत-युद्ध-काल से पहले ही साल्वों से पृथक् हो गया था। विराटपर्व के पूर्वोद्धृत श्लोक से यह ज्ञात हो जायगा। पाणिनि का भुलिङ्ग देश प्लायनी का बोलिङ्गई और टालमी का बायोलिङ्गई अथवा बोलिङ्गाई था।[5]

पतञ्जलि के व्याकरण-महाभाष्य से ज्ञात होता है कि—अजमीढ, अजक्रन्द और बुध भी सालवायव जनपद थे।[6]

राजधानी—सौभनगर या सौभपुर शाल्वों की एक राजधानी थी।[7] कनिंघम ने इसे ही
शाल्वपुर=अलवर कहा है। हमें इस बात में अभी सन्देह प्रतीत होता है। सौभगर समुद्र-
कुक्षी के अन्दर समुद्रनाभि में था।[8] वह अलवर नहीं हो सकता। क्या उन दिनों समुद्र
अलवर के समीप था? सालवों की राजधानी मार्तिकावत भी होगी। साल्वों की एक बड़ी
नगरी वैधूमाग्नि थी। इसे विधूमाग्नि राजा ने बसाया था।[9]

एक शाल्वराज द्रुम वन से नगर को आया।[10]

---

१. ४।१६।७३॥
२. पूना संस्करण १।९॥ मुद्रित पाठ अत्यन्त श्रेष्ठ और भौगोलिक स्थितियों के अनुसार है।
३. देखो नन्दुलाल दे के कोश में शाल्वपुर शब्द।
४. भद्रकार पाठ अधिक उत्तम है। ५. टालमी का भारत, पृ० १६३। ६. ४।१।१७०॥
७. हतः सौभपतिः साल्वस्त्वया सौभं च पातितम्। वनपर्व १२।३३॥ सालवस्य नगरं सौभं। वनपर्व १४।२॥ ८. वनपर्व १४।१९॥२०।१६—१८॥ ९. काशिकावृत्ति ४।२।७६॥
१०. बुद्धचरित ९।७०॥

राजवंश—एक मार्तिकावतक चित्ररथ नृप जामदग्न्य राम का समकालीन था।[१] प्रसिद्ध शिशुपाल साल्वराज का किसी नाते से भाई था।[२] साल्वराज मार्तिकावतक-नृप था।[३] सौभ दैत्यपुर भी कहा जाता था। यह निश्चय ही समुद्र की कुक्षि में था। महाभारत द्रोणपर्व में शाल्व की कृष्ण द्वारा मृत्यु का उल्लेख है—

सौभं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम्। समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥११।१४॥

एक मार्तिकावत भोज भारत-युद्ध में लड़ा था।[४] शाल्व जनपद भोजों के अधीन था। ये पहले उदीची दिशा में थे, पर जरासन्ध के भय से पश्चिम में चले गए थे।[५] एक साल्व जो म्लेच्छगणाधिप था भारत-युद्ध में दुर्योधन-पक्ष की ओर से लड़ा था।[६] आश्चर्य है कि मत्स्यराज भी शाल्वराज लिखा गया है—शाल्वेयानामधिपो वै विराटः। उद्योगपर्व २२।१८॥

शाल्व और मत्स्य साथ साथ थे। शाल्वैः समत्स्यैः।[७] अतः संभव है शाल्व के किसी भाग पर विराट का राज्य हो।

युगन्धर—शाल्वों के छः भागों मे युगन्धर भी एक थे। एक युगन्धर पाण्डवपक्ष में लड़ा था।[८]

यौगन्धर लोग यमुना-तीर पर थे। इस विषय में एकाग्निकाण्डस्थ वीणागाथियों का निम्नलिखित पाठ देखने योग्य है—

यौगन्धरिरेव नो राजेति साल्वीरवादिषुः। निवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने तव ॥

नन्दुलाल दे इसे यमुना के पश्चिम तीर पर कुरुक्षेत्र के दक्षिण में मानता है। यही भाव महाभारत से भी ज्ञात होता है।[९]

औदुम्बर—काशिका वृत्ति ४।२।८१ के अनुसार यह देश उदुम्बर वृक्षों से युक्त था। औदुम्बर राज्य शाल्वों का एक भाग था। पठानकोट (पञ्जाब) से औदुम्बरों की कई मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। जेम्स एलन के अनुसार ये मुद्राएं दूसरी से पहली शताब्दी ईसा-पूर्व की हैं।[१०] वस्तुतः ये अधिक पुरानी होंगी। मुद्राओं के अन्वेषकों ने भारतीय इतिहास की बहुत तिथियां कुछ उत्तरकाल की कर दी हैं। इन मुद्राओं पर—

१. शिवदास
२. रुद्रदास
३. महादेव
४. धरघोष
५. रुद्रवर्मा
६. आर्यमित्र
७. महिमित्र
८. भानुमित्र
९. महाभूतिमित्र

---

१. आरण्यकपर्व ११६।६॥

२. मम पाप स्वभावेन भ्राता येन निपातितः।
शिशुपालो महीपालस्तं वधिष्ये महीतले ॥ वनपर्व १४।१३॥

३. वनपर्व १४।१६॥
४. द्रोणपर्व ४८।८॥
५. सभापर्व १४।२५,२६॥
६. शल्यपर्व १६।१॥
७. उद्योगपर्व १५८।२०॥
८. द्रोणपर्व १६।४१॥
९. कर्णपर्व ३७।५०॥

१०. काएन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया जेम्स एलन, सन् १९३६। पृ० १२२–१२८, २८७।

नाम मिलते हैं। एक मुद्रा पर विश्वामित्र भी लिखा है।[1] उदुम्बर-राज्य का पठानकोट से क्या सम्बन्ध था, यह जानना चाहिए। नन्दुलाल दे के भौगोलिक कोश में मध्यदेश का औदुम्बर जनपद कनौज की पूर्व दिशा में बताया गया है।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में औदुम्बर उपस्थित थे।[2]

एक उदुम्बरावती नदी भी थी।[3]

४. शूरसेन

देश स्थिति—शूरसेन जनपद की स्थिति स्पष्ट है। मथुरा के चारों ओर का प्रदेश शूरसेन जनपद कहाता था। यूनानी लेखक एरायन के अनुसार शूरसेनों का एक और प्रधान पुर क्लाईसोबर (क्लाईसोबर—प्लायनी) था।[4]

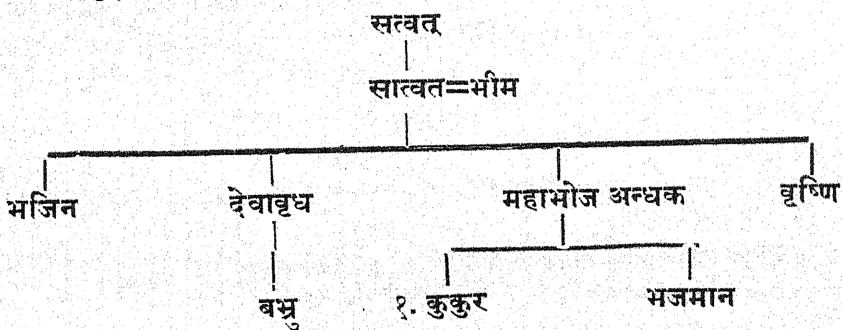
शूरसेनों में कभी पांच स्थल और बारह वन थे—

१. अक्कथलं २. वीरथलं ३. पउमत्थलं=पद्मस्थल ४. कुसत्थलं ५. महाथलं

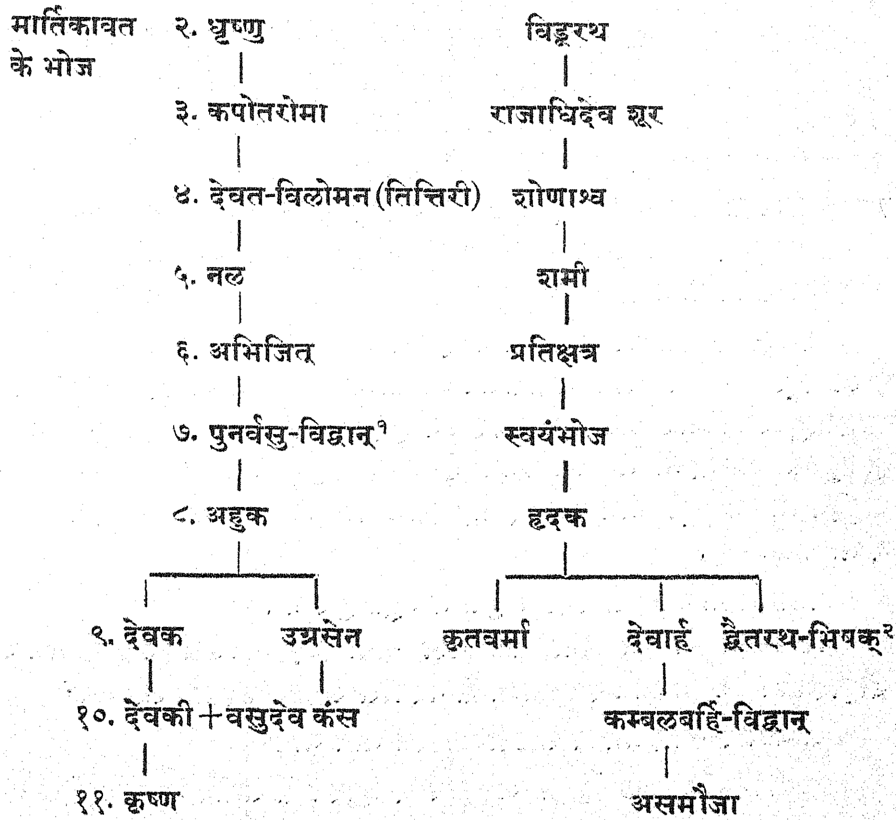
१. लोहजंघवणं	५. कुमुअवणं	९. कामिअवणं
२. महुवणं	६. विंदावणं	१०. कोलवणं
३. बिल्लुवणं	७. भंडीरवणं	११. बहुलावणं
४. तालवणं	८. खइरवणं	१२. महावणं[5]

इन में से वृन्दावन, महावन आदि स्थान अब भी विद्यमान हैं। वृन्दावन नाम महाभारत में भी है।[6]

राजवंश—शूरसेन जनपद में भोज-कुलोत्पन्न यादव राज्य करते थे। उन का वृत्तांत निम्नलिखित वंश-वृक्ष से स्पष्ट हो जायगा—



१. भूमिका, पृ० ८४।
२. सभापर्व ७८।८९॥
३. काशिकावृत्ति ४।२।८५॥
४. टाल्मी का भारत, पृ० ९८।
५. विविधतीर्थकल्प पृ० १८।
६. सभापर्व ५२।३६॥



उग्रसेन और कंस—उग्रसेन के जीवन-काल में ही कंस शूरसेनों का राजा हो गया। उग्रसेन का मन्त्री यादव वसुदेव था।[3] यह वसुदेव श्रीकृष्ण का पिता था। कंस ने पिता का निग्रह करके राज्य स्वयं संभाला था।[4] कंस के साथ जरासन्ध की एक कन्या ब्याही गई थी। जरासन्ध ने अपनी कन्या इस प्रतिज्ञा पर दी थी कि कंस राजा हो जायगा।[5] कंस क्रूरकर्मा हो गया। बली कंस को श्रीकृष्ण ने भारत-युद्ध से पहले ही मार दिया। तब श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को पुनः राजा बना दिया। जब जरासन्ध को इस बात का पता लगा, तो उस ने भारी सेना लेकर मधुरा=मथुरा पर आक्रमण किया।[6] उस ने वसुदेव को पकड़ लिया और कंस-पुत्र को शूरसेनों का राजा अभिषिक्त किया। एक कंसभ्राता सुनाभ था।[7]

---

१. वायु ९६।११६॥ २. वायु ९६।१३९॥ ३. सभापर्व २३।३॥ ४. सभापर्व २३।७॥

५. सभापर्व २३।५,६॥ सभापर्व १४।३१,३२॥ में कंस की दो स्त्रियां लिखी हैं। वे दोनों जरासन्ध की कन्याएं थीं। नाम थे उनके अस्ति और प्रास्ति।

६. सभापर्व २३।३३॥ ७. द्रोणपर्व ११।७॥

कंस-पुत्र—इस कंस-पुत्र का नाम हम नहीं जानते। संभव है उसका नाम बृहद्रथ हो। एक माथुर बृहद्रथ को विडूरथ-सेना ने मारा था। यह बृहद्रथ अति लोभी था, और भूमि के अन्दर से रत्न खोदता रहता था। ऐसे ही एक कर्म में वह मारा गया।[1] भारत-युद्ध-काल में एक विडूरथ वृष्णियों का मन्त्री था।[2] यदि वही विडूरथ वृष्णि विडूरथ था, तो निस्सन्देह बृहद्रथ कंस का पुत्र होगा। युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में कोई शूरसेन राजा उपस्थित था।[3]

भारतयुद्ध में शूरसेन राजा—एक शूरसेन राजा दुर्योधन पक्ष में था।[4] शूरसेन राजा को वृष्णि सात्यकि ने मारा।[5]

वसुदेव—इन की एक धर्मपत्नी बाह्लिककन्या पौरवी थी।[6] पंजाब में बाह्लिक कुल था जो पौरव कुल कहाता था। राजशेखर की काव्यमीमांसा में वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक और साहसाङ्क राजा और कवि माने गए हैं। वासुदेव के स्थान में वसुदेव पाठ अधिक युक्त है। सुबंधुकृत वासदत्ता में एक वचन है—आनकदुन्दुभिरिव कृतकाव्यादरः। आनक दुन्दुभि—वसुदेव जी का पूर्व नाम था। (वायुपुराण ९६।१४४) काव्य साहित्य उस पुरातन काल में भी बनता था।

पतञ्जलि के काल से पहले मथुरा में बहुत कुरु थे।[7]

शिल्प—मथुरा का बना एक वस्त्र कभी बड़ा प्रसिद्ध रहा होगा। समान लम्बाई, चौड़ाई होने पर भी लोग इसे काशी के वस्त्र से सहसा पहचान लेते थे।[8]

५. भद्रकार—यह जनपद साल्वों का एक भाग था।

६. बोध—नन्दुलाल दे के अनुसार इन्द्रप्रस्थ के समीप का एक देश बोध था। बोध क्षत्रिय उन अठारह कुलों में से एक थे, जो जरासन्ध के भय से पश्चिम को चले गए थे।[9]

पूर्व पृ० १७२ पर महाभाष्य से जिस साल्वावयव बुध जनपद का उल्लेख किया गया है, क्या वह इस बोध से सम्बन्ध रखता है ?

७. पटच्चर—नन्दुलाल दे के अनुसार वर्तमान बान्दा ज़िला पुराना पटच्चर देश था। पटच्चर क्षत्रिय भी जरासन्ध के भय से पश्चिम को चले गये थे। यह जनपद भोजों के अधिकार में था।[10] पटच्चर लोग पाण्डव-सेना में लड़े थे।[11] भारत-युद्ध में एक अत्यन्त शूर राजा था। वह पटच्चर-हन्ता[12] तथा अम्बष्ठसुत था।[13]

---

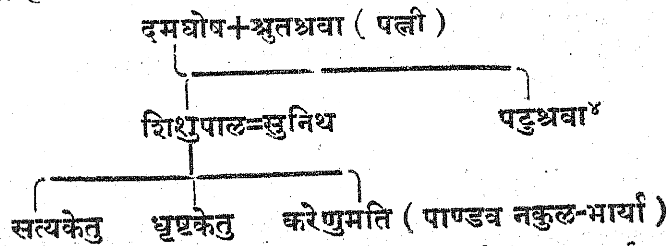
१. लोभबहुलश्च बहुलनिशि निधानमुत्खनन्तम् उत्खातखड्गप्रमाथिनी ममन्थ माथुरं बृहद्रथं विडूरथ-वरूथिनी। हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९१।
२. सभापर्व १४।६३॥
३. सभापर्व ७८।३०॥
४. भीष्मपर्व ७५।१८॥
५. द्रोणपर्व११९।२॥
६. वायु ९६।१६१॥
७. बहुकुरुचरा मथुरा। महाभाष्य ४।१।१४॥
८. महाभाष्य ५।३।५५॥ पृ० ४१३।
९. सभापर्व १४।२६॥
१०. सभापर्व १४।२६॥
११. भीष्मपर्व ५०।४८॥
१२. द्रोणपर्व २३।६४॥
१३. कर्णपर्व ३।१०,११॥

८. चेदी

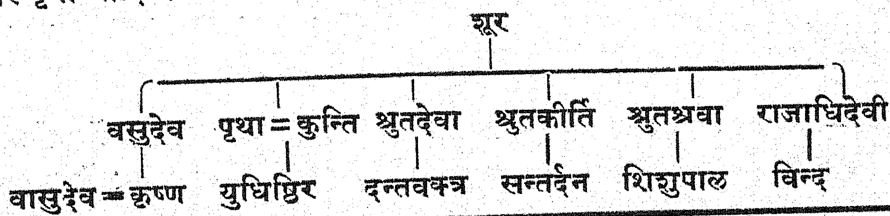
देश स्थिति—वर्तमान बुन्देलखण्ड पुराना चेदी जनपद था। कई विद्वान् त्रिपुरी को भी चेदी जनपद के अन्तर्गत मानते हैं, परन्तु भारत-युद्ध-काल में त्रिपुरी प्रदेश चेदी जनपद से पृथक् होगा। चेदी-राज पाण्डव-पक्ष में था। त्रिपुरी के क्षत्रिय दुर्योधन-पक्ष में थे।[1] त्रिपुरी की पुरानी मुद्राएं बृटिश म्यूज़ियम के संग्रह में विद्यमान हैं।

राजधानी—चेदी-राज की राजधानी शुक्तिमती थी।[2] कलचूरी राजाओं के काल में चेदिमण्डल बहुत विस्तृत हो गया था। उस समय चेदिमण्डल की राजधानी माहिष्मती थी।[3]

राजवंश—भारत-युद्ध-काल में भोजकुल के क्षत्रिय चेदी पर राज करते थे। उन का वंश-वृक्ष नीचे दिया जाता है—



प्रसिद्ध शिशुपाल दमघोषात्मज था।[5] शिशुपाल महाबली राजा था।[6] वह जन्म से ही वृष्णियों का शत्रु था।[7] जब यादव-कृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण करने गया था, तब शिशुपाल ने द्वारका पर आक्रमण कर दिया था।[8] कृष्ण-पिता वसुदेव के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को शिशुपाल ने ही हरा था।[9] विदर्भकुमारी रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होने लगा था। तब कृष्ण कुण्डिनपुर से रुक्मिणी को हर लाया था।[10] इस प्रकार शिशुपाल और कृष्ण का वैर बढ़ता गया। शिशुपाल-माता श्रुतश्रवा कृष्ण की बुआ थी। श्रुतश्रवा और पृथा आदि पांच भगिनियां थीं। उन के नाम नीचे दिए जाते हैं—



---

१. मेकलैः कुरुविन्देश्च त्रैपुरेश्च समन्वितः। भीष्मपर्व ८७।९॥
२. वनपर्व २२।५०॥
३. अनर्घराघव ७।११५॥
४. वायु ९६।१५९॥
५. सभापर्व ७०।६४॥ वनपर्व १४।३॥
६. चेदिराजो महाबलः। सभापर्व ३९।५२॥
७. जन्मप्रभृति वृष्णीनां सुनीथः शत्रुरब्रवीत्। सभापर्व ३९।५४॥
८. सभापर्व ६८।१५॥
९. सभापर्व ६८।१७॥
१०. विष्णुपुराण ५।२६।१–१०॥

यह वृत्तान्त पुराणों में मिलता है।[1] परन्तु पुराण-पाठ टूट गए हैं। महाभारत में भी शूर की इन कन्याओं की सन्तति का यत्र तत्र प्रसंगवश उल्लेख मिलता है। पृथा-कुन्ति के युधिष्ठिर आदि तीन पुत्र प्रसिद्ध हैं। श्रुतदेवा करूषाधिपति वृद्धधर्मा को ब्याही गई थी। दन्तवक्त्र इन्हीं दोनों का पुत्र था। श्रुतकीर्ति केकयराज की धर्मपत्नी बनी। उसका पुत्र सन्तर्दन था। मत्स्य ४६।५ से उस का नाम अनुव्रत प्रतीत होता है। पांच केकय-कुमार भी उसी के पुत्र थे।[2] श्रुतश्रवा शिशुपाल की माता थी।[3] राजाधिदेवी आवन्त्य-राज से ब्याही गई। उस के पुत्र विन्द और अनुविन्द थे। इस प्रकार आर्य इतिहास में ये पांच देवियां वीर-माताएँ कही जाती हैं।

शिशुपाल अपने पुत्र धृष्टकेतु के साथ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित था। उस समय शिशुपाल का कृष्ण से द्वैरथ-युद्ध हुआ। शिशुपाल मारा गया। वहीं धृष्टकेतु चेदीराज स्वीकृत हुआ। इस धृष्टकेतु की एक बहन करेणुमती थी। वह पाण्डव-नकुल से ब्याही गई।[4] नरव्याघ्र[5] धृष्टकेतु और उस का भाई सत्यकेतु[6] भारत-युद्ध में पांडव-पक्ष की ओर से लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए।

९. वत्स

भारत-युद्ध-काल में वत्स देश अधिक प्रसिद्ध नहीं था। वत्सों की प्रसिद्धि गौतम-बुद्ध के काल में महाराज उदयन के कारण अधिक हुई। वर्तमान प्रयाग के समीप ही वत्स जनपद था। भीम ने अपनी विजय यात्रा में वत्सों को जीता था।[7] काशी-राजकुमारी अम्बा ने वत्स भूमि में नदी तट पर तपस्या की थी।[8] वत्सराज धृतिमान् द्रौपदी स्वयंवर में विद्यमान था।[9]

राजधानी—वत्सों की राजधानी कौशाम्बी थी। काशिका ४।२।९७ में पाणिनीय गणपाठ के गणों में एक शब्द नवकौशाम्बी पढ़ा है। क्या पुरातन कौशाम्बी नष्ट हुई थी और उस के स्थान में पाणिनि से पहले कोई नई कौशाम्बी बन गई थी।

भर्ग—वत्सों के साथ भर्ग जनपद था। ऐतरेय ब्राह्मण ८।२८ और अष्टाध्यायी ४।१।१११, १७७ में इस का उल्लेख है।

१०. मत्स्य

देश स्थिति—वर्तमान जयपुर का प्रदेश पुरातन मत्स्य था। पुराने मत्स्य में वर्तमान भरतपुर का प्रदेश भी होगा। विराटपर्व में स्पष्ट लिखा है कि मत्स्यों के उत्तर में दशार्ण

---

१. मत्स्य ४६।४—६॥ वायु ९६।१५५—१५९॥ ब्रह्माण्ड उपो० पा० ३।७१।१५०—१५९॥

२. पांच केकय कुमार पाण्डवों की माता के भागिनेय थे। द्रोणपर्व १०।५६, ५७॥

३. वनपर्व १५।२॥ भी देखो

४. वनपर्व २३।५०॥ वायु ९९।२४८॥

५. भीष्मपर्व ७५।१०॥

६. कर्णपर्व ३।३२॥

७. वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान्बलात्। सभापर्व ३१।१०॥

८. उद्योगपर्व १८६।३९॥

९. आदिपर्व १७७।२०॥

और दक्षिण में पाञ्चाल थे।[1] मत्स्य जनपद शूरसेनों और यकृल्लोमों के मध्य में था।[1] दशार्ण तो रोहतक और सिरसा आदि हैं। इस के प्रमाण आगे दशार्ण जनपद के वर्णन में देंगे। पाञ्चालों का विस्तार आगरे से भी नीचे तक होगा। तभी पाञ्चाल देश भरतपुर और जयपुर आदि के दक्षिण में होगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अलवर भी मत्स्यों में होगा। अतः अलवर शाल्वपुर नहीं हो सकता। हम पहले विराटपर्व के एक प्रमाण से दिखा चुके हैं कि मत्स्य देश कुरुओं की परिधि के समीप था।[2]

राजधानी—विराट नगर मत्स्यों की राजधानी थी।[3] विराट या वैराट नगर देहली से १०५ मील दक्षिण की ओर है और जयपुर से ४० मील उत्तर की ओर है।[4] नहीं कह सकते कि पंजाब में होश्यारपुर जिला का दसूहा कब से विराट कहाने लगा है? विराट नगर और विराट-राज के नामों का सम्बन्ध अभी हमें स्पष्ट नहीं हुआ। पाणिनीयसूत्र अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् ६।२।८९ है। इस के उदाहरण में काशिका में विराट नगर लिखा है। अतः यह औदीच्य या दसूहा नगर कैसे हो सकता है।

मत्स्यराज द्वैतवन—शतपथ ब्राह्मण ११।५।४।९ में यह नाम है। उसी के नाम पर द्वैतवनसर बना।

राजवंश—मत्स्यों का राजा सुप्रसिद्ध विराट था। भारत-युद्ध-काल में वह वृद्ध था।[5] उसकी धर्मपत्नी कैकेयी सुदेष्णा थी।[6] विराट और उसका भाई शतानीक[7] भारत-युद्ध में लड़े थे। विराट के दो पुत्र थे उत्तर और श्वेत। विराट इन दोनों के साथ द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित था।[8] भारत-युद्ध में मद्रराज शल्य से उत्तर मारा गया।[9] श्वेत को भीष्म ने यमलोक का मार्ग दिखाया।[10] विराट-कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से हुआ। इन्हीं दोनों का पुत्र परिक्षित् था जो युधिष्ठिर के पश्चात् हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठा।

११. कुन्तल

महाभारत आदि ग्रन्थों में दो कुन्तल लिखे गए हैं।[11] एक कुन्तल था मध्यदेश में और दूसरा था दक्षिण में। इन का कोई स्पष्ट वृत्त हमें नहीं मिला। कुन्तल भारतयुद्ध में लड़े थे।[12]

१२. काशी

जनपद-स्थिति—काशी-जनपद की स्थिति स्पष्ट है। वर्तमान काशी नगर भारत के उन थोड़े से नगरों में से एक है कि जिस का नाम गत सहस्रों वर्ष में भी नहीं बदला। गंगा-तट

---

१. विराटपर्व ५।३,४॥ २. पूर्व पृ० १७२। ३. विराटपर्व १।१४॥
४. नन्दुलाल दे द्वारा उद्धृत कनिंघम का लेख। ५. विराटपर्व १।१३॥उद्योगपर्व १७०।८,९॥
६. विराटपर्व ३।१८॥८।६॥ ७. भीष्मपर्व ११८।२७॥ ८. आदिपर्व १७३।८॥
९. भीष्मपर्व ४७।३५–३९॥ १०. भीष्मपर्व ४८।११५॥
११. भीष्मपर्व ६।५२,५६॥ १२. भीष्मपर्व ४७।१२॥

पर काशी का नगर चिर काल से अपनी विचित्र शोभा दिखाता रहा है। इस नगर के चारों ओर का प्रदेश काशी जनपद था। इस नगर का अथवा काशी-जनपद की राजधानी का नाम वाराणसी था और है भी।

वत्स और भर्गदेश—वत्स-जनपद का वर्णन पृ० १७८ पर हो चुका है। इस के साथ एक भर्ग-जनपद भी था। वत्स और भर्ग प्रसिद्ध काशिराज प्रतर्दन के पुत्रों में से थे। प्रतर्दन का उल्लेख पृ० ११७ पर किया गया है। उसके दोनों पुत्रों ने विशाल काशी साम्राज्य के दो नए भाग बनाए। एक हुआ वत्स जनपद और दूसरा भर्ग-जनपद। वायु और ब्रह्माण्ड में भर्ग के स्थान में अशुद्ध-पाठ गर्ग छप गया है।[1] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भीम ने वत्स-राज और भर्गाधिपति को जीता था।[2] त्रिगर्तों में भी कोई भर्ग नाम का व्यक्ति-विशेष हुआ होगा। उस भर्ग की संतति का इस पूर्व-देशीय भर्ग की संतति से भेद करने के लिए पाणिनि ने एक सूत्र रचा।[3]

राजवंश—पुराणों में प्रतर्दन के उत्तरवर्ती अनेक राजाओं के नाम मिलते हैं, परन्तु उन में कुछ गड़ बड़ हो गई है। इस वर्णन के कई श्लोक आगे पीछे हुए हैं। भारत-युद्ध काल में काशी-राजाओं की स्थिति निम्नलिखित थी—

काशी में	काशी के किसी भाग में
१—विभु[4]	
|	|
२—अभिभू=सुविभु=आनर्त	सुपार्श्व, सुबाहु
|	
३—सुकुमार[5]	

विभु—काशिराज विभु ने अपनी एक कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क से किया। इन्हीं श्वफल्क और गान्दिनी का पुत्र श्वफल्क=श्वाफल्क=बभ्रु=अक्रूर था।[6] इस से ज्ञात होता है कि विभु भारत-युद्ध से लगभग ४० वर्ष पहले हुआ था। अक्रूर भारत-युद्ध-काल में जीवित था।

अभिभू—अभिभू अपने पुत्र के साथ द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित था।[7] अभिभू भारत-युद्ध में दुर्योधन-पक्ष में था।[8] यह मत युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता। अन्यत्र लिखा है कि अभिभू और उस का पुत्र सुकुमार पाण्डव-पक्ष में थे।[9]

---

१. वायु ९२।६५॥ ब्रह्माण्ड ३।६७।६९॥ २. सभापर्व ३१।११॥ ३. ४।१।१११॥

४. वायु ९२।७१,७२॥ ब्रह्माण्ड ३।६७।७५,७६॥ ५. उद्योगपर्व १६८।१४॥

६. वायु ९६।१०३—१०९॥ हरिवंश ३४।५—११॥ ७. आदिपर्व १७७।९॥

८. केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः॥ भीष्मपर्व ४७।२०॥

९. भीष्मपर्व ६३।१३॥ द्रोणपर्व २३।४२॥ द्रोणपर्व २३।२७॥ उद्योगपर्व १७१।१५॥

श्लाघनीय—एक काशिराज श्लाघनीय भी भारत-युद्ध में लड़ा था।[1]

सुपार्श्व, सुबाहु—ये दोनों भी काशी के किसी भाग के राजा थे। सम्भव है, वे वत्सों या भर्गों के पास के काशी के किसी भाग के राजा हों। सुपार्श्व की एक कन्या कृष्ण-पुत्र साम्ब से ब्याही गई थी।[2]

कृष्ण + जाम्बवती
|
साम्ब + सुपार्श्व-कन्या
|
पांच पुत्र

युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ से पहले भीम ने सुपार्श्व और काशिराज सुबाहु को जीता था।[3] भीम को काशिराज कन्या बलधरा ने स्वयंवर में वरा था।[4] काश्य बभ्रु उद्योगपर्व २८।१३ में उल्लिखित है।

१३. अपरकाशी

अनेक विद्वान् गढ़वाल प्रान्त को अपरकाशी कहते हैं। हम इस समस्या का अभी निर्णय नहीं कर सके।

१४. कोसल

कोसल जनपद का वर्णन गत कई अध्यायों में हो चुका है। कोसलाधिपतिपुत्र सुक्षत्र द्रोणपर्व २४।५८ में वर्णित है।

१५. मगध

भारत के इतिहास में मगध एक प्रसिद्ध जनपद रहा है। इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। उस के भग्नावशेष सम्भवतः पुरातन पाटलिपुत्र के पास कहीं निकलेंगे। कभी मगध-राज्य बड़ा विस्तृत होगा। मगध-जनपद पूर्व में भी दूर तक था।

राजवंश—मगधों में एक बृहद्रथ राजा था। बहुत संभव है वह मगध का बृहद्रथ द्वितीय हो। इस का वंश-क्रम नीचे दिया जाता है—

बृहद्रथ
|
जरासन्ध
|
जयत्सेन | सहदेव | असति + | प्राप्ति + कंस

१. उद्योगपर्व १७१।२२॥ द्रोणपर्व २३।३९॥
२. मत्स्य ४७।२४॥ वायु ९६।२५२॥
३. सभापर्व ३१।६,७॥
४. आदिपर्व ९०।८४॥

बृहद्रथ—बृहद्रथ बड़ा शक्तिशाली राजा था। वह तीन अक्षौहिणी सेना का अधिपति था।[1] उस ने काशिराज की दो यमजा कन्याओं से विवाह किया।[2] श्रेष्ठ ऋषि चण्डकौशिक के आशीर्वाद से बृहद्रथ का एक पुत्र हुआ। उस का नाम जरासन्ध रखा गया। जरासन्ध के बड़ा होने पर राजा बृहद्रथ ने उसका अभिषेक किया और स्वयं वनस्थ हो गया।[3] सम्भवतः इसी बृहद्रथ के वनस्थ होने का संकेत मैत्रायणी उपनिषद् में मिलता है।[4]

सम्राट् जरासन्ध

जरासन्ध बड़ा प्रतापी सम्राट् था। उस ने मगध का ऐश्वर्य बहुत ऊंचा किया। मागधों का यही अभिमान था जिस के कारण वे भारत के उत्तर-इतिहास में भी फिर एक बार बड़े प्रबल हो गए। भारत-युद्ध-काल में भारतवर्ष में १०१ प्रधान क्षत्रिय-कुल थे। उनमें से ८६ को जरासन्ध ने परास्त किया। भारतवर्ष में जरासन्ध का आतङ्क छा गया था। शिशुपाल, कंस, कारूष, दन्तवक्त्र और सौभ आदि राजगण जरासन्ध के मित्र थे और उसकी प्रधानता को मानते थे। जरासन्ध के भय से वृष्णि-अन्धक द्वारका को चले गए थे।[5] जरासन्ध के दो पुत्र और दो कन्याएँ न्यून से न्यून थीं।[6]

जरासन्ध के विजयस्तम्भ—कर्नल विलफोर्ड ने लिखा है कि काशी में जरासन्ध का विजयस्तम्भ था जो मुसलमानों के आक्रमण समय तोड़ा गया। उनका कथन है कि जरासन्ध के नाम से यूनानी लेखक परिचित थे।[7]

सहदेव—भीम ने जरासन्ध को मारा। तब जरासन्ध का पुत्र सहदेव मगधों का राजा अभिषिक्त हुआ।[8] जरासन्ध के पास दायाद-रूप में पौरव जनमेजय द्वितीय का एक विख्यात रथ था। उसका वर्णन पृ० १२९ पर हो चुका है। वह रथ युधिष्ठिर की मति से यादवकृष्ण को मिला।[9] जारासन्धि जयत्सेन एक और मागध राजकुमार था।[10] वह दुर्योधन-पक्ष में था।[10] अन्यत्र इसे युधिष्ठिर का साथी लिखा है।[11] यह भेद संपादन की गड़बड़ का फल है। सहदेव भारत-युद्ध में मारा गया।

१६. उत्कल

देश स्थिति—वर्तमान उड़ीसा प्रान्त का अधिकांश भाग ही पुरातन उत्कल था।

देश-प्राचीनता—मनु की कन्या इला-सुद्युम्न थी। इस नाम के साथ एक विचित्र कथा है।

---

१. सभापर्व १७।१३॥ २. सभापर्व १७।१७॥ ३. सभापर्व १९।१८,१९॥
४. १।१॥ ५. सभापर्व अध्याय १४। ६. सभापर्व २५।६३॥ १४।३२॥
७. एशियाटिक रिसर्चिज़ भाग ९ सन् १८०९ पृ० ९३,९४। ८. सभापर्व २५।६७॥
९. सभापर्व २५।९२॥ वायु ९३।२७॥
१०. सभापर्व ६७।१९॥ कर्णपर्व २।३३॥
११. उद्योगपर्व १९।८॥

हम उस का भाव समझने में अभी तक असमर्थ हैं। उस सुद्युम्न का एक पुत्र उत्कल था।[1] उस ने जिस देश में अपना राज्य स्थापित किया, उस का नाम उत्कल देश हुआ।

उत्कलों को कर्ण ने जीता था।[2]

१७. दशार्ण

देश स्थिति—दशार्ण नाम के न्यून से न्यून तीन प्रदेश भारत-युद्ध-काल में थे। दो दशार्णों का उल्लेख प्रायः कई विद्वानों ने किया है। नन्दुलाल दे ने उन लेखकों का मत संक्षेप में प्रकट किया है। तदनुसार एक दशार्ण पूर्व में था और एक पश्चिम में। पूर्व का दशार्ण वर्तमान छत्तीसगढ़ का एक भाग था। पश्चिम का दशार्ण विदिशा के चारों ओर था। उसी में भूपाल का प्रान्त था। वहीं दशार्ण नदी बहती है। ऋण का अर्थ दुर्गभूमि और जल है।[3] पदमञ्जरीकार हरदत्त लिखता है दशार्णशब्दो नदीविशेषस्य देशविशेषस्य च संज्ञा। ६।१।८९॥ विदिशा का दशार्ण नदी के कारण से दशार्ण कहाता था और कुरुओं के समीप का दशार्ण दुर्गभूमि के कारण इस नाम से पुकारा जाता था। इस तीसरे दशार्ण की ओर किसी विद्वान् का ध्यान नहीं गया।

दशार्ण = हरयाणा—रोहतक, हिसार, सिरसा आदि प्रदेशों को भी कभी दशार्ण कहते थे। इस दशार्ण शब्द का अपभ्रंश हरयाणा है। दशार्ण और हरयाणा की एकता में निम्नलिखित प्रमाण देखने चाहिएं—

१. विराटपर्व में लिखा है कि कुरुओं की परिधि पर दशार्ण जनपद था। वह दशार्ण कुरु-सीमा के अत्यन्त समीप होना चाहिए—

सन्ति रम्याः जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः।
दशार्णा नवराष्ट्रं च मल्लाः शाल्वा युगंधराः॥[4]

२. फिर विराटपर्व में लिखा है कि मत्स्यों की उत्तर दिशा में दशार्ण थे—

उत्तरेण दशार्णांस्ते पाञ्चालान्दक्षिणेन तु॥
अन्तरेण यकृल्लोमाञ्शूरसेनांश्च पाण्डवाः।
लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन्वनात्॥[5]

पहले पृ० १७८ पर लिखा जा चुका है कि मत्स्य प्रदेश वर्तमान जयपुर और अलवर आदि देश ही थे। वर्तमान हरयाणा या हिरयाना ठीक उन के उत्तर में है। अतः यह हरयाणा कुरुओं के समीप का दशार्ण था।

---

१. वायु ८५।१८॥ २. द्रोणपर्व ४।८॥
३. अष्टाध्यायी ६।१।८९ पर सिद्धांतकौमुदी देखो।
४. विराटपर्व १।९॥ ५. विराटपर्व ५।३,४॥

३. सभापर्व के निम्नलिखित श्लोक ध्यान से देखने योग्य हैं—

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् । कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत् ॥
तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्मत्तमयूरकैः । मरुभूमिं स कार्त्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम् ॥
शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महाद्युतिः । आक्रोशं चैव राजर्षिं तेन युद्धमभून्महत् ॥
तान् दशार्णान् स जित्वा च प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः ।[१]

इन श्लोकों में नकुल-विजय का वर्णन है । इन्द्रप्रस्थ से निकल कर नकुल ने रोहतक, मरुभूमि, सिरसा और महेत्थ आदि को जीता । इन दशार्णों को जीत कर नकुल शिबियों और त्रिगर्तों की ओर चला अर्थात् वर्तमान पञ्जाब के दक्षिण में पहुँचा । महाभारत का वर्णन कितना स्पष्ट है । आश्चर्य है श्रीजयचन्द्र जी को दशार्ण और हरयाणा की समता नहीं सूझी । इसीलिए उन्होंने लिखा—

"इस वर्णन में रोहतक-महेम-सिरसा इलाके का अत्यन्त प्रसिद्ध नाम हरियाणक या हरियाना नहीं है, वह नाम मध्य काल से चला दीखता है, जब कि रोहीतक, महेम और शैरीषक पुराने नाम हैं ।"[२]

अब श्री जयचन्द्र जी को विश्वास होना चाहिए कि हरियाणक नाम मध्यकाल का नहीं प्रत्युत दशार्ण के रूप में भारत-युद्ध-काल से भी पहले का होगा । स्मरण रहे फारसी के हिसार शब्द का अर्थ भी दुर्ग है, और दशार्ण में ऋण शब्द का एक अर्थ दुर्गभूमि भी है ।

आक्रोश—राजर्षि आक्रोश हरयाणा के किसी दुर्ग का अधिपति होगा ।

भारत-युद्ध-काल के मध्यदेश के प्रधान जनपदों का वर्णन हो चुका । अब आगे पूर्व दिशा के जनपदों का उल्लेख होगा ।

प्राच्य जनपद

महाभारत और पुराणों में वर्णित प्राच्य-जनपदों में से निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध और उल्लेख योग्य हैं ।

१. अङ्ग	६. विदेह
२. वङ्ग	७. ताम्रलिप्तक
३. सुम्ह	८. मल्ल
४. प्राग्ज्योतिष	९. मगध
५. पुण्ड्र	१०. गोनर्द

एक आनव बलि का वर्णन पृ० ७३ पर हो चुका है । उस बलि के पांच पुत्र थे । उन बालेयों के नाम थे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुम्ह और पुण्ड्र ।[३] इन बालेय राजकुमारों ने पूर्व और पूर्व-दक्षिण दिशा के पांच जनपदों में अपने अपने राज्य स्थापित किए । अङ्ग का जनपद इन में से पहला है ।

---

१. सभापर्व ३५।४—७॥ २. भारतीय अनुशीलन प्रकरण ८, पृ० ४ । ३. वायु ९९।८५,८६ ॥

१. अङ्ग

देश स्थिति—वर्तमान बङ्गालान्तर्गत मोंघिर और भागलपुर के चारों ओर का प्रदेश पुराना अङ्ग जनपद था।

राजवंश—अङ्ग का पुत्र दधिवाहन था। उसके कई पीढ़ी पश्चात् अङ्ग-राज रोमपाद था। यह रोमपाद आजेय दशरथ का सखा था। दशरथ ने अपनी कन्या शान्ता इसी को गोद दी थी। उसके कुछ पीढ़ी पश्चात् चम्प राजा हुआ। इस चम्प ने चम्पावती नगरी बसाई। पहले इस पुरी का नाम मालिनी था।[1] यह नगरी चिरकाल तक अङ्गों की राजधानी रही। रामायण में इस नगरी का वर्णन मिलता है।[2]

बृहन्मना—चम्प के कई पीढ़ी पश्चात् राजा बृहन्मना हुआ। उस ने चैद्य की दो कन्याओं से विवाह किया।[3] क्या यह चैद्य उपरिचर वसु चैद्य हो सकता है? इन दोनों पत्नियों के कारण बृहन्मना का वंश दो भागों में विभक्त हो गया। राज्य का अधिकारी बृहन्मना-पुत्र जयद्रथ बना। उसका भाई विजय उसका अनुजीवी रहा। इस विजय के कुल में अधिरथ सूत हुआ। उसने कुन्ति-पृथा के कानीन-पुत्र कर्ण का पालन-पोषण किया।

पुराणों के वर्णन से प्रतीत होता है कि जयद्रथ का वंश कुछ काल के पीछे विनष्ट हो गया। तब अङ्ग-राज्य दुर्योधन ने संभाला। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्गों का राजा बना दिया।[4]

अङ्ग-राज्य पर हस्तिनापुर के पौरवों का आधिपत्य जनमेजय तृतीय के काल में भी किसी रूप में था। यह आगे स्पष्ट किया जायगा।

आधिरथ कर्ण—दानवीर-कर्ण प्रसिद्ध धनुर्धारी था। उसका ज्येष्ठ-पुत्र वृषसेन था। वृषसेन के अतिरिक्त कर्ण के चार और पुत्र थे। उनके नाम थे सुषेण, सत्यसेन, सुदेव और सुशर्मा। ये सब कर्ण के साथ भारत-युद्ध में लड़े और कुरुक्षेत्र भूमि पर मारे गए। सुषेण सात्यकि से मारा गया।[5] सुदेव को केकय-सेनापति मित्रवर्मा ने परलोक का मार्ग दिखाया।[6] सत्यसेन[7] और सुशर्मा[8] युद्ध के अन्तिम दिन मारे गए।

वायुपुराण में कर्ण के पुत्र सुरसेन और पौत्र द्विज के नाम लिखे हैं।[9]

कथासरित्सागर में एक अङ्गराज यशःकेतु वर्णित है।[10]

२. वङ्ग

देश-स्थिति—पुराना वङ्ग जनपद बहुत बड़ा प्रदेश नहीं था। पुण्ड्र और कौशिकीकच्छ तथा ताम्रलिप्त के समीप वङ्ग जनपद था।[11]

---

१. हरिवंश ३२।४६॥ वायुपुराण ६४।१०५–१०७॥ २. बालकाण्ड १३।१०॥
३. वायु ६६।११४॥ ४. तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते॥ आदिपर्व १२६।३५॥
५. कर्णपर्व ८६।६॥ ६. कर्णपर्व ८६।४॥ ७. शल्यपर्व १।२८॥
८. शल्यपर्व ६।२२॥ ९. वायु ६६। ११२॥ १०. पृ० ४३०॥
११. सभापर्व ३१।२२–२४॥

राजवंश—वंग-राज-वंश का हम सुनिश्चित पता नहीं दे सकते। परन्तु सभापर्व के पाठ से भासित होता है कि समुद्रसेन और चन्द्रसेन वङ्गों के राजा थे।[1] समुद्रसेनपुत्र चन्द्रसेन द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित था। उद्योगपर्व में लिखा है कि द्रुपद ने जहां अन्य राजाओं को सहायता का निमन्त्रण भेजने के लिए कहा, वहां समुद्रसेन को पुत्र-सहित निमन्त्रित करने के लिए भी कहा।[2] वङ्गों का एक बली राजा हाथी पर चढ़ कर दुर्योधन की ओर से लड़ रहा था।[3] संभव है वह समुद्रसेन या चन्द्रसेन में से कोई एक हो। द्रोणपर्व में समुद्रसेन-पुत्र चन्द्रसेन के रथ के घोड़ों का वर्णन है।[4]

वङ्गराज शतानन्द का अनुजीवी एक किञ्जल्क आचार्य था। कौटल्य ने उसका उल्लेख किया है।[5]

३. सुह्म

देश-स्थिति—सुह्मों के दो भाग थे। सुह्म और उत्तर-सुह्म। राढ देश को ही प्रायः विद्वान् सुह्म नाम से पुकारते हैं।[6] वर्तमान मिदनापुर, हुगली और बर्दवान आदि के जिले सुह्म में थे। संभवतः सुह्मोत्तर को प्रसुह्म कहते थे।[7] सुह्मों का अधिक वर्णन हम अभी नहीं कर सकते।

४. प्राग्ज्योतिष

जनपद-स्थिति—ज्योतिष नाम के निश्चय ही दो देश थे। प्राग्ज्योतिष जनपद प्राची दिशा में था और उत्तरज्योतिष उत्तर दिशा में। उत्तरज्योतिष अमरपर्वत के समीप था।[8] प्राग्ज्योतिष का वर्तमान नाम आसाम है। रामायण बालकाण्ड ३०।६ में प्राग्ज्योतिष की स्थापना का उल्लेख है। भारत-युद्ध-काल में इस जनपद की सीमा कहां तक थी, यह हम नहीं कह सकते।

कामरूप—प्राग्ज्योतिष जनपद का दूसरा नाम कामरूप था। यह नाम विष्णु-पुराण और रघुवंश में मिलता है।[9] ह्यूनसांग और अलबेरूनी के लेखों से पता चलता है कि कभी कामरूप को चीन और वर्तमान चीन को महाचीन कहते थे।[10] कौटल्य भी चीन शब्द का

---

१. निर्जित्याजौ महाराज वङ्गराजमुपाद्रवत् ॥२४॥
समुद्रसेनं निर्जित्य चन्द्रसेनं च पार्थिवम्।
ताम्रलिप्तं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा ॥२५॥ सभापर्व अध्याय ३१।

२. उद्योगपर्व ४।२२॥ ३. भीष्मपर्व ९२।७—१२॥ ४. द्रोणपर्व २३।६१॥

५. आदि से अध्याय ९५। ६. राढा तु सुह्माः। वैजयन्ती, भूमिकाण्ड, श्लोक ३०।

७. सभापर्व ३१।१६॥ ८. सभापर्व ३५।११॥

९. विष्णुपुराण २।३,१५॥ रघु० ४।८३, ८४॥

१०. ह्यूनत्सांग (सन् ६२९) अंग्रेज़ी अनुवाद, सैमूअल बील कृत, सन् १९०६, भाग २, पृ०१९५। तथा अलबेरूनीका भारत, अङ्गरेजी अनुवाद, भाग प्रथम पृ० २०७।

प्रयोग कामरूप के लिए करता है। कामरूपस्थ सुवर्णकुड्य ग्राम का उल्लेख करके वह लिखता है कि इस से चीनपट्ट आदि की व्याख्या हो गई।[1] महाभारत में भी चीन शब्द का प्रयोग इस देश के निवासियों के लिए किया गया प्रतीत होता है।[2] कामरूप के निम्नलिखित ग्रामों और भूभागों के नाम कौटल्य अर्थ-शास्त्र और उस की टीकाओं में मिलते हैं—

१. अशोक ग्राम ३. ग्रामेरू ५. पूर्णकद्वीप
२. जोङ्गक ४. सुवर्णकुड्य

जोङ्गक पर्वत[3]—वर्तमान कम्बोडिया के अन्तगर्त डोंङ्ग पर्वत प्रतीत होता है। यदि यह सत्य हो तो प्राचीन कामरूप के क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार होगा। सभापर्व १३।१३ के अनुसार मुरु और नरक देश इसी में थे।

राजवंश—प्राग्ज्योतिष का प्रसिद्ध राजा नरक था। अपने दुष्ट कर्मों के कारण वह नरकासुर नाम प्राप्त कर चुका था। देवकी-पुत्र कृष्ण ने इस नरक को मारा था। यह घटना युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ से पहले हुई होगी। स्वयं भगवान् वासुदेव कहते हैं—"हमें प्राग्ज्योतिषपुर को गया हुआ सुन कर इस हमारी बुआ के पुत्र शिशुपाल ने द्वारका को आ जलाया था।"[4] ये वचन भगवान् कृष्ण ने भारत-युद्ध से लगभग १६ वर्ष पहले कहे थे। नरकासुर-वध की घटना उस राजसूय से और भी कई वर्ष पहले हुई थी। राजसूय-यज्ञ से कुछ पहले अर्जुन ने अपने दिग्विजय में नरक-पुत्र भगदत्त से युद्ध किया था। नरकासुर बड़ा दीर्घजीवी था।[5] योगिनी तन्त्र में भगदत्त की वंशावली मिलती है।

भगदत्त—नरक का पुत्र भगदत्त उस का उत्तराधिकारी हुआ। वह भारत-युद्ध के समय बहुत वृद्ध था।[6] इस से ज्ञात होता है कि अपने अभिषेक के समय भी वह पर्याप्त आयु का होगा। भगदत्त को अर्जुन ने भारत-युद्ध में मारा।[7] भगदत्त का एक पुत्र भी भारत-युद्ध में नकुल से मारा गया।[8] संभव है, उस का नाम पुष्पदत्त हो। बाण अपने हर्षचरित में भगदत्त, पुष्पदत्त और वज्रदत्त आदि तीन नाम लिखता है।[9]

वज्रदत्त—भगदत्त का पुत्र वज्रदत्त उस का उत्तरवर्ती राजा हुआ। वज्रदत्त नाम महाभारत, हर्षचरित और एक ताम्रपत्र में मिलता है।[10] भारत-युद्ध के पश्चात् वह कामरूप का राजा था।[11]

---

१. आदि से ३२ अध्याय। २. सभापर्व ३४।४१॥ ३. अभिधान चिन्तामणि ३।३०४॥
४. सभापर्व ६८।१५॥ ५. उद्योगपर्व १३०।५८॥
६. द्रोणपर्व २९।५०—५२॥ ७. द्रोणपर्व २९।५७॥ ८. कर्णपर्व २।३१॥
९. हर्षचरित सप्तम उच्छ्वास, पृ० ७८६,७८७।
१०. दखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० १७।
११. आश्वमेधिकपर्व ७५।२॥

ह्यूनसांग का साक्ष्य—सन् ६२९ में कामरूप की यात्रा करने वाला चीनी यात्री ह्यूनसांग लिखता है कि उसके काल से पहले एक ही कुल के १००० राजा अनुक्रम से कामरूप के राजा हुए।[१]

९. पुण्ड्र

जनपद स्थिति—पुण्ड्र देश की वास्तविक स्थिति अभी अनिश्चित है। इसके विषय में विद्वानों के कई मत हैं। इतना निश्चित है कि यह देश वंग के साथ था। यादवप्रकाश के अनुसार पुण्ड्र वरेन्द्र था—पुण्ड्रास्तु वरेन्द्री पुण्ड्रलक्षणा।[२] काशिकावृत्ति में भी इसे अङ्ग, वङ्ग और सुह्म के साथ पढ़ा है।[३]

वर्तमान बङ्गाल के बोगरा जिला का महास्थालगढ़ ग्राम पुण्ड्र जनपद में था। वहां से सम्राट् अशोक से पूर्वकाल का एक लेख मिला है। उस में पुण्ड्र नगर के महामात्र के लिए आज्ञा है।[४]

क्षत्रिय—पौण्ड्र क्षत्रिय भारत-युद्ध-काल में ही कुछ वृषल-प्रकृति हो गए थे।[५] पौण्ड्र क्षत्रिय युधिष्ठिर-सेना में थें।[६] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार पुण्ड्र-क्षत्रिय विश्वामित्र की सन्तति में से थे।[७]

राजवंश—भारत-युद्ध-काल में पुण्ड्रों का राजा वासुदेव था। वह युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में उपस्थित था।[८] वह द्रौपदी स्वयंवर में भी उपस्थित था। वासुदेव वङ्ग और किरातों में अधिक बलशाली था।[९] कृष्ण ने पौण्ड्रों को जीता था।[१०] कोई पौंड्रराजा भी कृष्ण से मारा गया था।[११] एक पुंड्र का पाण्डव सहदेव से युद्ध हुआ था।[१२]

पौण्ड्र देश में एक सोमदत्त राजा था। उस का मन्त्री था कात्यायन। वह राजा कौटल्य से पहले हो चुका था।[१३]

पौण्ड्रक-दुकूल—अर्थशास्त्र में लिखा है कि पुण्ड्र देश का रेशमी वस्त्र श्याम और मणिस्निग्ध-वर्ण का था।[१४] महाभारत में लिखा है कि पुण्ड्र लोग दुकूल आदि लेकर युधिष्ठिर के राजसूय में उपस्थित थे।[१५]

---

१. बील का अंग्रेजी अनुवाद, पृ० १९६। तथा देखो थामस वाटर्स का अनुवाद।
२. वैजयन्ती, भूमिकाण्ड, श्लोक ३०। ३. १।२।५१॥ ४. एपि०इण्डिका भाग २१, पृ० ८३।
५. अनुशासनपर्व ७०।१९॥ मनु १०।४३, ४४॥ ६. भीष्मपर्व ५०।४८,५०॥
७. ३३।१७॥ ८. सभापर्व ३७।१४॥ ९. सभापर्व १४।२०॥
१०. द्रोणपर्व ११।१५॥ ११. सभापर्व ६१।११,१२॥ १२. कर्णपर्व ६०।१४॥
१३. अर्थशास्त्र पर गणपति शास्त्री की टीका, आदि से अध्याय ९५।
१४. आदि से अध्याय ३२॥ १५. सभापर्व ७८।६३॥

६. विदेह

देश स्थिति—वर्तमान तिर्हुत का अधिकांश प्रदेश पुराना विदेह जनपद था। यादव-प्रकाश अपने वैजयन्ती कोश में लिखता है—विदेहास्तीरभुक्तिस्त्री ।[१] तीरभुक्ति का अपभ्रंश ही तिर्हुत है।

राजधानी—विदेहों की राजधानी मिथिला थी।[२] इसका बनाने वाला महाराज मिथी था।[३] नेपाल की वर्तमान सीमा के अन्दर जनकपुर नाम का एक छोटा सा नगर है। विद्वान् उसे ही मिथिला बताते हैं।

विदेहों के भाग—विदेह नाम के दो जनपद भारत-युद्ध-काल में थे। भीम-विजय में उन दोनों का उल्लेख है।[४] महाभारत के जनपद-वर्णन में भी दो विदेह लिखे गए हैं।[५] बौद्ध-काल का अपर-विदेह यह दूसरा विदेह था।[६]

राजवंश—विदेहों का संस्थापक निमि प्रथम था।[७] उस के कुल में प्रसिद्ध सीरध्वज जनक था। इस जनक की पुत्री लोकवन्द्या सीता थी। पुराणों में सीरध्वज के उत्तरवर्ती कई और राजा भी गिने गए हैं। परन्तु पुराण-वंशावलियां टूट गई हैं। इसका स्पष्टीकरण अगले वर्णन से होगा।

निमि द्वितीय-वैदेह—इस निमि के सम्बन्ध में इतिहास लेखकों ने बहुत गड़बड़ की है। अतः हम पहले निमि द्वितीय के काल को निश्चित करेंगे। चरक तन्त्र में लिखा है कि निम्नलिखित श्रुतवयोवृद्ध-महर्षि चैत्ररथ वन में एकत्र हुए।[८]

१. आत्रेय	२. भद्रकाप्य
३. शाकुन्तेय ब्राह्मण	४. पूर्णाक्ष मौद्गल्य
५. हिरण्याक्ष कौशिक	६. कुमारशिरा भरद्वाज
७. वार्योविद राजा	८. निमि वैदेह
९. वडिश महामति=धामार्गव	१०. काङ्कायन बाह्लीक

काश्यपसंहिता में भी वैदेह-निमि और वैदेह-जनक का उल्लेख है।[९] काश्यप संहिता[१०]

१. वैजयन्ती, भूमिकाण्ड, श्लोक ३०। अमर टीकासर्वस्व २।४।६६ में भी ऐसा लेख है॥

२. शान्तिपर्व १७।१९॥१७६।५६॥२८२।४॥

३. वायु ८९।६॥

४. सभापर्व ३०।४॥ ३१।१३॥

५. भीष्मपर्व ९।४५,५७॥

६. ललितविस्तर, राजेन्द्रलाल मित्र का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५२॥

७. रामायण, पश्चिमोत्तर शाखा, बालकाण्ड, ६७।३॥ वायु ८९।३॥ ब्रह्माण्ड, उपो०, पाद ३, अध्याय ६४॥

८. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, २६।१–८॥ तथा देखो सूत्रस्थान का बारहवां अध्याय।

९, पृ० २७, ११६॥

१०. पृ० २६, २७।

और चरकतन्त्र के पूर्वोक्त स्थल के पाठ से ज्ञात होता है कि दारुवाह राजर्षि=नग्नजित् गान्धार और निमि वैदेह समकालीन थे। आयुर्वेद तन्त्रों के और संग्रह-ग्रन्थों के अनेक टीकाकार निमि और वैदेह को एक समझते हैं।[1]

निमि-शालाक्यतन्त्रकार—निमि-वैदेह असाधारण योग्यता का वैद्य था। उसने एक विस्तृत शालाक्यतन्त्र रचा। उस के पुत्र और शिष्य कराल ने उस तन्त्र को परिवर्धित किया।[2] वैदेह ७६ नेत्ररोग मानता था। कराल ने अपने अन्वेषण से उनकी संख्या ९६ तक पहुँचाई। सात्यकि ८० नेत्ररोग मानता था। यह सात्यकि एक तीसरा शालाक्यतन्त्रकार था। क्या यही सात्यकि भारत-युद्ध में पाण्डव-पक्ष का एक वीराग्रगण्य योधा था? उद्योगपर्व के अनुसार सात्यकि कवि था।[3] तैत्तिरीय संहिता में एक जानकि नेत्र का चिकित्सक है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निमि और कराल भारत-युद्ध से लगभग ४०–५० वर्ष पहले हुए थे। प्रतीत होता है भारत-युद्ध में किसी विदेह-राज ने कोई विशेष भाग नहीं लिया। सम्भव है उस काल का विदेह-राज किसी दीर्घ-यज्ञ में लगा हो।

निमि और कराल पिता-पुत्र थे—आयुर्वेद के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि निमि और कराल पिता-पुत्र थे। यही बात भगवान् बुद्ध ने भी कही है—

"एक समय भगवान् मिथिला में मखादेव-आम्रवन में विहार करते थे। बुद्ध बोले—

आनन्द! पूर्वकाल में इसी मिथिला में मखादेव नामक धार्मिक राजा हुआ था।········· आनन्द! राजा मखादेव के पुत्र पौत्र आदि·········प्रव्रजित हुए। निमि उन राजाओं का अन्तिम धार्मिक महाराजा हुआ। निमि इसी वन में प्रव्रजित हुआ।

आनन्द! राजा निमि का कराल-जनक नामक पुत्र हुआ। वह···········प्रव्रजित नहीं हुआ। उसने उस कल्याण वर्त्म को उच्छिन्न कर दिया। वह उनका अन्तिम पुरुष हुआ।"[4]

कराल-वैदेह और कौटल्य—आचार्य विष्णुगुप्त अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि किसी ब्राह्मण-कन्या को तंग करने के कारण कराल-वैदेह नष्ट हो गया।[5] भगवान् बुद्ध ने ठीक कहा था कि वह प्रव्रजित नहीं हुआ। भदन्त अश्वघोष ने भी कराल का ब्राह्मण कन्या-हरण लिखा है।[6] मैत्रावरुणि-वसिष्ठ और कराल-जनक का संवाद महाभारत में मिलता है।[7] इस संवाद

---

१. चरक चिकित्सा स्थान, चक्रपाणि-टीका अध्याय २६। माधवनिदान, मधुकोशव्याख्या, निदान ५६-६१।

२. देखो अष्टाङ्गसंग्रह, सूत्रस्थान, प्रथमाध्याय आरंभ।

३. नीलकण्ठटीका सहित, १३०।१०॥

४. मज्झिम निकाय मखादेव, सुत्तन्त ८३।

५. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ६।

६. करालजनकश्चैव हृत्वा ब्राह्मणकन्यकाम्। अवाप भ्रंशमप्येवं न तु भेजे न मन्मथम्॥ बुद्धचरित ४।८०॥

७. शान्तिपर्व ३०८।७—।

में शीर्षरोग और अक्षिरोग आदि का संकेत बताता है कि कराल चिकित्सक था।[१] इस संवाद में कराल अपने आयुर्वेद-ज्ञान का अन्यत्र भी परिचय देता है।[२]

इस वर्णन के अन्त में यह स्पष्ट कहा गया है कि कराल भीष्म से पहले हो चुका था।[३]

हयग्रीव—उद्योगपर्व में भीम कहता है कि हयग्रीव विदेहों का कुलपांसन था।

उपनिषदों का सम्राट्[४] जनक—याज्ञिक सम्प्रदाय को न जानने वाले लोग सम्राट् शब्द को देखते ही चक्रवर्ती या प्रतापी राजा का अनुमान कर लेते हैं। यह बात ठीक नहीं। सम्राट् शब्द भारत के एकाधिपति के लिए वर्ता अवश्य जाता है,[५] पर सम्राट् शब्द विशेष सोम-संस्था करने वाले के लिए भी वर्ता जाता है। कई ब्राह्मण याज्ञिक भी सम्राट् हो चुके हैं।[६]

वैदिक वाङ्मय का वैदेह-जनक निमि-वैदेह ही था

उपनिषदों का सम्राट् जनक ऐसा ही सम्राट् प्रतीत होता है। हमारा विचार है कि निमि जनक ही उपनिषदों का प्रसिद्ध जनक था। याज्ञवल्क्य उसी का मित्र और गुरु था। यह याज्ञवल्क्य भारत-युद्ध-काल में वर्तमान था।[७] वही जनक परम ब्रह्मवादी था। वही कह सकता है कि मिथिला के जल जाने पर मेरा कुछ नहीं जलता है।[८] जैन उत्तराध्ययन-सूत्र भी इसी बात को पक्का करता है।

उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में इस जनक को वैदेह-जनक लिखा है। यह विशेषण सामान्य होता हुआ भी किसी एक ही व्यक्ति के लिए अधिकांश में प्रयुक्त हुआ है। आयुर्वेद ग्रन्थों से पता लगता है कि निमि के ग्रन्थ को वैदेह-तन्त्र भी कहते थे। आयुर्वेद की टीकाओं में तथा च वैदेहः बहुधा लिखा मिलता है। वे वचन निमि के ही वचन हैं।[९] निमि-पुत्र कराल ने भी यद्यपि अपना तन्त्र लिखा, तथापि उस का तन्त्र वैदेह-तन्त्र नहीं था। उसे टीकाकार इति करालः तथा च करालः ही लिखते हैं। अतः निमि ही वैदेह नाम से पुकारा जाता था। ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के प्रवचन-कर्ताओं ने केवल वैदेह पद का प्रयोग किया। उन के लिए

---

१. शान्तिपर्व ३०९।५॥ २. शान्तिपर्व ३१०।१२—१७॥

३. शान्तिपर्व ३१३।४४—४६॥ ४. शतपथ ब्राह्मण ११।३।१।२॥ ५. वायु ४५।८६॥

६. दीक्षित गदाधर अपने को सम्राट् स्थपति लिखता है। श्राद्धसूत्र भाष्य का अन्त।

७. देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० १५१—१६०॥

८. शान्तिपर्व १७।१९॥१७६।५६॥२८२।४॥

९. सुश्रुत उत्तरस्थान आरम्भ में—**विदेहाधिपतिकीर्तिता** की टीका में डल्हण लिखता है **निमि प्रणीताः**। अष्टाङ्ग हृदय १।१।४ की टीका में जनक कृत ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा सुश्रुत की वैसी ही चिकित्सा से श्रेष्ठ मानी गई है। यहां जनक से निमि का अभिप्राय है।

वैदेह नाम अधिक रुचिकर था। परमयोगी होने से निमि का वैदेह नाम अधिक युक्त है। काश्यपसंहिता से यह बात पूर्ण प्रमाणित हो जाती है।

अध्यापक रैपसन की भूल—रैपसन का अनुमान है कि महारानी सीता का पिता सीरध्वज जनक ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों का विदेह जनक था।[1] इतिहास से यह बात असिद्ध है।

कृतक्षण वैदेह—युधिष्ठिर के सभा-प्रवेश-उत्सव में एक कृतक्षण वैदेह सम्मिलित हुआ था।[2] यह कृतक्षण युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भी उपस्थित था।[3] विदेह नाम के कई जनपद हो गए थे, अतः विदेह-राजाओं का निश्चित वृत्तान्त अभी तक हम नहीं लिख सके। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जानकि नाम से सम्बोधन होने वाले सब व्यक्ति राजा नहीं हो सकते। पांच पाण्डवों में से केवल युधिष्ठिर-पाण्डव राजा था।

एक जानकि उद्योगपर्व में उल्लिखित है।[4] नहीं कह सकते वह कौन से जनक का पुत्र था। लगभग इसी काल में एक जानकि-आयस्थूण हुआ।[5]

७. ताम्रलिप्तक

देश-स्थिति—वर्तमान बङ्गाल प्रान्त के तमलुक नगर के चारों ओर का देश पुराना ताम्रलिप्तक-जनपद था। गङ्गा नदी के कारण इसकी स्थिति समय समय पर थोड़ी बहुत बदलती रही है। मत्स्यपुराण १२१।५० के अनुसार यह जनपद कभी गङ्गा तट पर था। भीम ने किसी ताम्रलिप्त राजा को विजय किया था।[6] इस का अधिक वृत्तान्त हम अभी नहीं कह सकते। ताम्रलिप्त-जनपद अपने रेशमी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था—

वङ्गाः कलिङ्गा मगधास्ताम्रलिप्ताः सपुण्ड्रकाः। दुकूलं कौशिकं चैव पत्रोर्णं चैव भारत ॥[7]

ताम्रलिप्तक योधा दुर्योधन-सेना में थे।[8]

८. मल्ल

प्रतीत होता है मल्लों के दक्षिण और उत्तर दो भाग थे। सभापर्व ३१।१२ के अनुसार दक्षिणमल्ल भोगवान् पर्वत के समीप थे। मल्ल राष्ट्र का नाम भीष्मपर्व ९।४४ में भी मिलता है। मल्ल जनपद बुद्ध के काल में प्रसिद्ध था। जैन ग्रन्थ विविधतीर्थकल्पान्तर्गत अपापाबृहत् कल्प के अनुसार इस की राजधानी पावा और कुसी नगर रहे हैं।

९. मगध

कीकट—मगध जनपद का वर्णन पृ० १८१ पर हो चुका है। यह जनपद दूर दूर तक फैला हुआ था। प्रतीत होता है मगध के वंग, पुण्ड्र और ताम्रलिप्त आदि के समीप के भाग

---

१. के० हि० इण्डिया पृ० ३१७। २. सभापर्व ४।३३॥
३. सभापर्व ७८।३८॥ ४. उद्योगपर्व ४।२०॥ ५. शतपथ ब्रा० १४।९।३।१५–२०।
६. सभापर्व ३१।२५॥ ७. सभापर्व ७८।९३॥ ८. द्रोणपर्व ११९।२२॥

कीकट नाम से पुकारे जाते थे। कीकट शब्द महाभारत में भी प्रयुक्त हुआ है—सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान्पुण्ड्रकीकटान्।[1]

यादवप्रकाश भी मगधों को कीकट लिखता है।[2] कीकटों में गया और राजगृह वन भी थे।[3] मगधों का पुण्ड्रो आदि के पास का भाग वृषल-प्रकृति के लोगों का हो गया था। अतः वेद के आश्रय से उन्हें कीकट-नाम दिया गया। निरुक्त में वेद-मन्त्र की व्याख्या करते हुए यास्क भी कीकट को अनार्य-निवास देश लिखता है।[4]

जयत्सेन—बहुत संभव है जरासन्ध की मृत्यु के पश्चात् मगध-राज्य दो भागों में बट गया हो। गिरिव्रज पर सहदेव राज्य करता हो और दूर-मगध का राजा जयत्सेन हो गया हो।

मुख्य मुख्य प्राच्य जनपदों का संक्षिप्त वर्णन यहां समाप्त किया जाता है। आगे विन्ध्य-पृष्ठ-वर्ती जनपदों का वर्णन होगा।

विन्ध्य-पृष्ठ-वर्ती जनपद

इन जनपदों का वर्णन भी महाभारत और पुराणादि ग्रन्थों में मिलता है।[5] तदनुसार इस प्रदेश के प्रधान जनपद निम्नलिखित हैं—

१. मालव	५. तोसल	९. तुहुण्ड
२. करूष	६. कोसल	१०. तुण्डिकेर
३. दशार्ण	७. त्रैपुर	११. निषध
४. भोज	८. वैदिश	१२. वीतिहोत्र = अवन्ति ?

१. मालव

देश-स्थिति—उज्जयिनी-नगरी के उत्तर-पश्चिम का देश भी मालव कहाता था। इसे अपर-मालव कहते थे।[6] महाभारत में इसे प्रतीच्य अर्थात् पश्चिमीय-मालव लिखा है।[7]

राजवंश—एक मालव सुदर्शन महाभारत में उल्लिखित है।[8] नहीं कह सकते, इस का सम्बन्ध किस मालव-जनपद से था।

२. करूष

देश-स्थिति—करूष मनु-पुत्रों में से एक था। उस के कुल में कारूष-क्षत्रिय हुए। उन का देश करूष था। पार्जिटर और नन्दुलाल दे के अनुसार वर्तमान रेवा पुरातन करूष था।

---

१. कर्णपर्व ५।१६॥
२. वंगास्तु हरिकेलीया मगधाः कीकटास्स्मृताः॥ वैजयन्ती, भूमिकाण्ड ३१।
३. कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। वायु १०८।७३॥ ४. ६।३२॥
५. वायु ४५।१३१—१३४॥ ब्रह्माण्ड २।१६।६३—६६॥ मत्स्य ११४।५१—५४॥
६. वात्स्यायन कामसूत्र, जयमंगला टीका। ७. भीष्मपर्व ११७।३३॥११९।८५॥
८. द्रोणपर्व २०१।७५॥

यादवप्रकाश के अनुसार करूषों का दूसरा नाम बृहद्गृह था।[1] श्री एस. के. दीक्षित के अनुसार यह स्थान वर्तमान शाहाबाद जिला था।[2] हमारा विचार है कभी यह जनपद बहुत बड़ा था। इस की सीमा दूर दूर तक जाती थी। इस का कारण अगली पंक्तियों से स्पष्ट होगा।

अनेक कारूषक राजा—महाभारत में लिखा है कि कारूषक राजा कई थे—कारूषकाश्च राजानः।[3] इस से प्रतीत होता है करूष जनपद कई राज्यों में विभक्त था।

राजधानी—करूषों का एक भाग या कदाचित् करूषों की एक राजधानी अधिराज थी।[4]

राजवंश, वृद्धशर्मा—भारत-युद्ध से लगभग ५० वर्ष पहले करूषों पर एक वृद्धशर्मा का राज्य था। वृद्धशर्मा का विवाह शूर-कन्या श्रुतदेवा से हुआ।[5] उन का पुत्र महाबल दन्तवक्त्र था।[6] कई स्थानों पर वक्त्र का वक्र पाठ भी मिलता है।[7]

दन्तवक्त्र—युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के समय दन्तवक्त्र राज्य कर रहा था।[8] भारत-युद्ध में दन्तवक्त्र ने कोई भाग नहीं लिया। भारत-युद्ध के पश्चात् कृष्णपौत्र अनिरुद्ध और रुक्मी-पौत्री का विवाह हुआ। उस अवसर पर द्यूत-क्रीडा करते करते रुक्मी को बलराम जी ने मार दिया।[9] रुक्मी भारत-युद्ध में भाग लेने गया था, पर किसी पक्ष ने उसे वरा नहीं।[10] इस से ज्ञात होता है कि रुक्मी-पौत्री का विवाह भारत-युद्ध के पश्चात् हुआ। उस विवाह में बलराम जी ने दन्तवक्त्र का दांत भी तोड़ा था।[11] विष्णुपुराण में दन्त-भंग की यह कथा कलिङ्गराज के साथ जोड़ी गई है।[12] प्रतीत होता है विष्णु-पुराण का पाठ भ्रष्ट हो गया है।

सुचन्द्र—वृष्णि-वीर कृष्ण का एक पुत्र सुचन्द्र था। कृष्ण ने उसे अनपत्य करूष को दे दिया।[13] अनपत्य करूष का नाम मत्स्य-पुराण में नहीं लिखा। वायु और ब्रह्माण्ड में करूष के स्थान में गण्डूष पाठ है।[14] गण्डूष एक ऐतिहासिक पुरुष था। शूर की सन्तान में वह वसुदेव का दशम भ्राता था।[15] वह कृष्ण का छोटा चाचा था। इस दृष्टि

---

१. वैजयन्ती कोश, भूमिकाण्ड, देशाध्याय, श्लोक ३६।

२. इण्डियन कलचर, जुलाई १९३९, पृ० ४०।

३. उद्योगपर्व ४।१८॥ ४. सभापर्व ३२।३॥ ५. देखो पृ० १८५।

६. वायु ९६।१५५॥ मत्स्य ४६।५॥ ब्रह्माण्ड ३।७१। १५०—१५९॥

७. सभापर्व १४।१२॥ ८. सभापर्व ३२।३॥

९. विष्णु ५।२८।२३॥ कामन्दकीय नीतिसार १४।५१॥ १०. उद्योगपर्व अध्याय १५८॥

११. राजा कैशि-करूषाणां दन्तवक्त्रोऽपि मन्दधीः।
तीव्रद्यूतकृताद् दोषाद्दन्तभङ्गमवाप्तवान्॥ कामन्दकीय १४।५२॥

१२. विष्णु ५।२८।२४॥ १३. मत्स्य ४६।२५॥ १४. वायु ९६।१८८॥ ब्रह्माण्ड ३।७१।१९१॥

१५. वायु ९६।१४४-१४८॥

से करूष और गण्डूष पाठ का विवेचन आवश्यक है। संभवतः गण्डूष पाठ युक्त है। इन दोनों पुराणों में दो पुत्रों के देने की वार्ता है।

करूषाधिपति क्षेमधूर्ति—यह राजा करूषों के किसी दूसरे भाग का राजा था। क्षेमधूर्ति भारत-युद्ध में भीम से मारा गया।[1] क्षेमधूर्ति का भाई बृहन्त भी भारत-युद्ध में लड़ा था।[2]

कौटल्य-वर्णित कारूश—विष्णुगुप्त लिखता है कि एक करूषदेशाधिपति माता की शय्या में छिपे अपने ही पुत्र से मारा गया।[3] आधुनिक भविष्यपुराण में लिखा है कि पुत्र ने दर्पण-रूपी खड्ग से पिता कारूश को मारा।[4]

इस करूष-राज का नाम दध्र था—भट्ट बाण लिखता है कि करूषाधिपति दध्र को उस के पुत्र ने मारा।[5]

३. दशार्ण

देश-स्थिति—पहले पृ० १८३ पर लिखा गया है कि वर्तमान भूपाल का प्रान्त एक दशार्ण में था। उस दशार्ण का अब वर्णन होता है। यादवप्रकाश के अनुसार इस दशार्ण को वेदिपर भी कहते थे।[6]

राजवंश—युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ से पहले भीम ने एक दाशार्णक सुधर्म्मा को जीता था।[7] सुधर्मा का दशार्ण विदेहों और गण्डकों के पास था। अतः उस दशार्ण का इस विन्ध्य-पृष्ठवर्ती दशार्ण से कोई सम्बन्ध नहीं।

हिरण्यवर्मा अथवा काञ्चनवर्मा—महाभारत में दशार्णों के एक महान् राजा हिरण्यवर्मा का भी उल्लेख है।[8] इसकी कन्या का विवाह यज्ञसेन द्रुपद के पुत्र शिखण्डी से हुआ था।[9] नहीं कह सकते, वह किन दशार्णों का राजा था।

४. भोज अथवा कुन्ति-भोज

देश-स्थिति—कुन्ति-भोज देश मालवा के समीप था। सभापर्व में लिखा है कि सहदेव पाण्डव कुन्ति-भोज देश से होकर चर्मण्वती के कूल पर आया।[10] यह चर्मण्वती विन्ध्याचल में से निकलती है। इस से ज्ञात होता है कि कुन्ति-भोज जनपद चर्मण्वती अर्थात् राजपूताना वाले चंबल-नद के समीप था। पुराणों के अनुसार कुन्ति देश महाराज कुन्ति का

---

१. कर्णपर्व ९।२५—४६॥ २. द्रोणपर्व २५।४८॥

३. मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम्। आदि से अध्याय २०।
मातुः शय्यान्तरे लीनः कारूषश्चौरसः सुतः॥ कामन्दकीय नी० ७।५१॥

४. तथा पुत्रेण कारूशो घातितो दर्पणासिना॥ भवि० पु० ८।५८॥

५. हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९५॥

६. वैजयन्ती कोश, भूमिकाण्ड, देशाध्याय, श्लोक ३७॥ ७. सभापर्व ३०।५०॥

८. उद्योगपर्व १८९।१०,१८,१९॥ ९. उद्योगपर्व १८९।१०॥

१०. सभापर्व ३२।६,७॥

बसाया प्रतीत होता है। कुन्ति का सम्बन्ध कैशिक और क्रथ से था। अतः कुन्ति-भोज जनपद विदर्भ जनपद के समीप होगा।[1]

अविमारक नाटक में किसी कुन्ति भोज का उल्लेख है। तदनुसार वैरन्त्य नगर कुन्ति-भोजों की राजधानी थी।[2] कामन्दक नीतिशास्त्र ७।५३ में किसी वैरन्त्य का नूपुर से मारा जाना लिखा है। एक वैरन्त्य रन्तिदेव हर्षचरित में वर्णित है।[3]

महाभारत में कुन्ति, भोज, कुन्ति और अपर-कुन्ति चार जनपद गिने हैं।[4]

राजवंश—कुन्ति-भोजों का राजा पुरुजित् बहुत प्रसिद्ध था। वह अर्जुन आदि का मामा था।[5] पुरुजित् के वृद्ध पिता वसुदेव (?) कुन्ति-भोज ने शूर-कन्या पृथा को गोद लिया था।[6] तभी से वह पृथा-कुन्ती कहाती थी।

एक कुन्तिभोज शतानीक था। वह पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़ा था।[7] संभव है पुरुजित् और शतानीक भाई हों। वे दोनों ही पाण्डवों के मामा कहे गए हैं।[8] इन दोनों में से एक कुन्तिभोज अपने पुत्र सहित लड़ा था।[9] भीम का मामा श्येनजित् कौन था?[10]

५. तोसल—यह जनपद दक्षिणोत्तर दो भागों में विभक्त था। सम्राट् अशोक के धौली शिलालेख में तोसली जनपद का नाम है। तोसली के महाराज शम्भुयशा का संवत् २६० का एक ताम्रशासन मिल चुका है।[11]

६. कोसल

देश-स्थिति—दक्षिण-कोसल विन्ध्य-पृष्ठ पर था। पृ० १०१ पर हम लिख चुके हैं कि अध्यापक प्रधान के अनुसार ऋतुपर्ण शफालों का राजा था। इस विषय में प्रधान जी ने बौधायन श्रौत का प्रमाण दिया है। हम कह चुके हैं कि हम प्रधान जी से सहमत नहीं। ऋतुपर्ण का राज्य उत्तर और दक्षिण दोनों कोसलों पर हो सकता है।

शफाला = शिफला—कोसलों के वर्णन में हमें शिफाला नगरी का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। कभी यह नगरी बहुत प्रसिद्ध रही होगी। यद्यपि बौधायन श्रौत के सम्पादक परलोकगत अध्यापक कालेण्ड ने शफाला शब्द का कोई पाठान्तर नहीं दिया, तथापि पतञ्जलि बताता है कि संभवतः नगरी का नाम शिफाला था। महाभाष्य का वह स्थल अत्यन्त रोचक है, अतः नीचे दिया जाता है—

अन्येन शुद्धं धौतकं कुर्वन्त्यन्येन शैफालिकम् अन्येन माध्यमिकम् ५।३।५५॥

अर्थात् शिफाला नगर में बनी हुई धोती को अन्य पदार्थ से धोते हैं और मध्यमिका नगरी की धोती को अन्य पदार्थ से। इस से प्रतीत होता है कभी शिफाला नगरी प्रसिद्ध व्यापारिक-केन्द्र थी।

---

१. मत्स्य ४४।३८॥ २. ६।१३॥
३. षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९८। ४. भीष्मपर्व ९।४०,४३॥ ५. द्रोणपर्व २३।४७॥
६. मत्स्य ४६।७,८॥ वायु ९६।१५०,१५१॥ ७. भीष्मपर्व ७५।११॥ ८. कर्णपर्व ३।२२॥
९. भीष्मपर्व ४५।७२॥ १०. उद्योगपर्व १४१।२७॥ ११. ऐ० इ० भाग २३, पृ० २००।

राजवंश—पृ० १२२ पर भारत-युद्ध में लड़ने वाले एक कोसल-राज का वर्णन हम कर चुके हैं। संभव है वह इसी कोसल का राजा हो।

७. त्रैपुर

देश-स्थिति—चेदी देश के समीप ही एक छोटा सा त्रैपुर जनपद भी था। इस का उल्लेख पृ० १७७ पर हो चुका है।

८. वैदिश

देश-स्थिति—वर्तमान भिलसा के चारों ओर का प्रदेश कभी वैदिश जनपद कहाता था। वैदिश-जनपद का अधिक वर्णन भारतीय इतिहास के शुङ्ग-काल में होगा।

९. तुहुण्ड

देश-स्थिति—अग्निवेश, तुहुण्ड और मालव विन्ध्य-पृष्ठवर्ती तीन साथ साथ के जनपद होंगे।

क्षत्रिय—तुहुण्ड-क्षत्रिय पाण्डव सेना में थे।[1]

१०. तुण्डिकेर

यहां के क्षत्रियों का महाभारत के युद्ध-पर्वों में उल्लेख मिलता है।[2]

११. निषध

देश-स्थिति—महाभारत के अनुसार पयोष्णी नदी के समीप और अवन्तियों के समीप निषध देश था।

राजवंश—निषधों के नल का उल्लेख पृ० १०१ और १०२ पर हो चुका है। नल-पुत्र इन्द्रसेन था। भारत-युद्ध में एक महाबल नैषध लड़ा था।[3] धृष्टद्युम्न ने बृहत्क्षत्र नैषध को मारा।[4] क्या वही नैषध-राज था?

१२. अवन्ति

देश-स्थिति—काशी, हस्तिनापुर और अयोध्या के समान उज्जैन नाम भी पुरातनकाल से अब तक चला आता है। उज्जैन का समीपवर्ती प्रदेश कभी अवन्ति कहाता था। कार्तवीर्य अर्जुन के कुल में अवन्ति नाम का एक राजकुमार था। उस के कारण इस प्रदेश का नाम अवन्ति हुआ।[5]

राजवंश—एक आवन्त्य भारत-युद्ध में दुर्योधन-पक्ष की ओर से लड़ा था।[6] संभवतः इस का विवाह शूर-कन्या राजाधिदेवी से हुआ था। इस आवन्त्य का नाम हम नहीं जान सके।

---

१. भीष्मपर्व ५०।५२॥
२. द्रोणपर्व १७।१९॥ कर्णपर्व २।५१॥
३. द्रोणपर्व २०।१३॥
४. द्रोणपर्व ३२।६५॥
५. मत्स्य ४३।४६—४८॥
६. भीष्मपर्व ९२।२३,४०॥ द्रोणपर्व ९५।४६॥

संभवतः इसी के पुत्र विन्द और अनुविन्द थे। वे दुर्योधन-पक्ष में थे।[१] वे दोनों जयद्रथ-वध वाले दिन अर्जुन से मारे गए।[२]

वायु और ब्रह्माण्ड में अवन्तियों को वीतिहोत्र भी लिखा है। यथा—वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः।[३] परन्तु मत्स्य में वीतिहोत्रा अवन्तयः पृथक् पृथक् जनपद लिखे हैं।[४] यदि दोनों राज्य एक नहीं थे, तो अत्यन्त समीप अवश्य थे।

भारत के उत्तर इतिहास में अवन्ति के राजाओं ने कई बार बड़ा ऊंचा स्थान ग्रहण किया है। उनका उल्लेख आगे होगा।

विन्ध्यपृष्ठवर्ती जनपदों का उल्लेख हो चुका। अब दक्षिणापथ के जनपदों का वर्णन किया जाता है।

दक्षिण के जनपद

महाभारत और पुराणों में दक्षिण के प्रधान जनपद निम्नलिखित लिखे हैं[५]—

१. पाण्ड्य	६. महाराष्ट्र=नवराष्ट्र	११. दण्डक
२. केरल	७. माहिषक	१२. मूलक
३. चोल	८. कलिङ्ग (अनेक)	१३. अश्मक
४. मूषिक	९. आभीर	१४. कुन्तल
५. वनवासी	१०. वैदर्भ	१५. आन्ध्र

१-३. पाण्ड्य, केरल, चोल

चोर जनपद आयुर्वेदीय काश्यपसंहिता पृ० ३३७ पर उल्लिखित है। अशोक के शिलालेखों में चोडा पाठ है।

पाण्ड्य और चोल सैनिक महाभारत में उल्लिखित हैं।[६] एक बार उनके साथ केरल भी गिनाए गये हैं।[७] पाण्ड्य-राज का अस्पष्ट सा वर्णन महाभारत में मिलता है। एक स्थान पर उसे पाण्डव-पक्ष में होने वाला लिखा है,[८] परन्तु दूसरे स्थान पर उसे पाण्डवों से मारा गया लिखा है।[९] एक पाण्ड्य-राज को श्री कृष्ण ने मारा था।

महाभारत के मुद्रित संस्करणों में अन्यत्र भी एक ही व्यक्ति को दोनों पक्षों में भाग लेने वाला लिखा है। यह भूल भ्रष्ट-पाठों से हुई है। ऐसे स्थानों के पाठों का थोड़ा बहुत निर्णय महाभारत के पूना-संस्करण के मुद्रित हो जाने के पश्चात् हो सकेगा।

---

१. उद्योगपर्व १९।२५,२६॥ भीष्मपर्व १६।१५॥ भीष्मपर्व का पाठ थोड़ा सा अशुद्ध है। विन्दानुविन्दौ कैकेयाः के स्थान में विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चाहिए। पूना संस्करण के भीष्मपर्व १६।३३ में, जो अब संवत् २००३ में छपा है, शुद्ध पाठ है।

२. द्रोणपर्व ९९।१८-३०॥ ३. वायु ४५।१३३॥ ब्रह्माण्ड २।१६।६५॥ ४. मत्स्य ११४।५४॥

५. भीष्मपर्व ९।५८-६३॥ वायु ४५।१२४-१२८॥ ब्रह्माण्ड २।१६।५६—५९॥ मत्स्य ११४।४६—४९॥

६. भीष्मपर्व ५०।५१॥ द्रोणपर्व ११।१७॥ ७. कर्णपर्व ९।१५॥

८. उद्योगपर्व १९।९॥ १६८।२४॥ द्रोणपर्व २३।७०-७४॥ ९. कर्णपर्व २।३६॥

पाण्डव सहदेव ने दक्षिण-विजय में पाण्ड्य जीते थे।[1] पाण्ड्यों की राजधानी मणलूर थी। वहां अर्जुन-पुत्र बभ्रुवाहन अपने नाना मलयध्वज के साथ रहता था।[2]

४. मूषिक–

यह जनपद बड़ा प्रसिद्ध रहा है। भीष्मपर्व १०।५७ में वनवासी के साथ मूषक जनपद का वर्णन है। खारवेल के शिलालेख में इस जनपद का नाम है।

५. वनवासी

महाभारत के युद्ध-पर्वों में इस स्थान के क्षत्रियों का उल्लेख नहीं है। बौद्धकाल से वनवासी का नाम भारतीय इतिहास में वर्णित होने लगता है।

६, ७. महाराष्ट्र, माहिषक

इन दोनों जनपदों के सम्बन्ध में भी हम न के तुल्य जानते हैं।

८. कलिङ्ग

देश-स्थिति—वर्तमान उड़ीसा के दक्षिण में और द्राविड़ों से ऊपर समुद्र के साथ-साथ पुराना कलिंग जनपद था। उड़ीसा का भी कुछ भाग इसी में सम्मिलित था।

भारत-युद्ध-काल में कलिङ्गों के कई भाग होंगे। पुराणों में लिखा है—कलिङ्गाश्चैव सर्वशः।[3] शिलालेखों में त्रिकलिङ्ग पाठ मिलता है।[4] महाभारत में कलिङ्गों का एक दन्तकूर नामक नगर उल्लिखित है।[5] पृ० १५२ पर हम लिख चुके हैं कि कलिङ्गों की राजधानी दन्तपुर थी। कलिङ्गों का एक दूसरा नगर राजपुर था।[6] कलिङ्गविषय में एक शोभावती पुरी थी।[7]

राजवंश—कलिङ्गों का एक राजा श्रुतायु[8] या श्रुतायुध[9] था। वह दुर्योधन की ओर से लड़ता हुआ भीम से मारा गया।[10] प्रतीत होता है उसके दो पुत्र भी उसके साथ युद्ध-क्षेत्र में थे। उनके नाम थे केतुमान्[11] और शक्रदेव।[12] कलिङ्ग राजा हस्तियुद्ध में बड़े चतुर थे। एक कलिङ्ग-सुत और उसका भाई द्रुम भीम से मारे गये।[13]

चित्राङ्गद—कलिङ्गों के एक पुरातन राजा चित्राङ्गद का नाम शान्तिपर्व में मिलता है।[14]

---

१. सभापर्व ३२।७३॥
२. सभापर्व ३३।२४–३०॥
३. वायु ४५।१२५॥
४. ऐ. इ. भाग २३, पृ. ६९।
५. उद्योगपर्व २४।२४॥
६. शान्तिपर्व ४।२,३॥
७. कथासरितसागर पृ० ४६२।
८. सभापर्व ७।१९॥ भीष्मपर्व ५४।७५॥
९. भीष्मपर्व १६।१६॥
१०. भीष्मपर्व ५४।७५॥
११. भीष्मपर्व ५४।१२१॥
१२. भीष्मपर्व ५४।२४॥
१३. द्रोणपर्व १५६।२३-२७॥
१४. शान्तिपर्व ४।२,३॥

दूर-दक्षिण—कलिङ्ग जनपद द्राविड-देशों का एक मार्ग है। जब भारत-युद्ध-काल में उत्तर के आर्यों को कलिङ्ग लोगों का ज्ञान था, तो उन्हें दूर-दक्षिण के लोगों का भी अवश्य ज्ञान था। अतः अनेक आधुनिक ऐतिहासिकों का मत कि आर्यों को दूर-दक्षिण का ज्ञान बहुत काल पीछे हुआ, सत्य नहीं।

९. आभीर

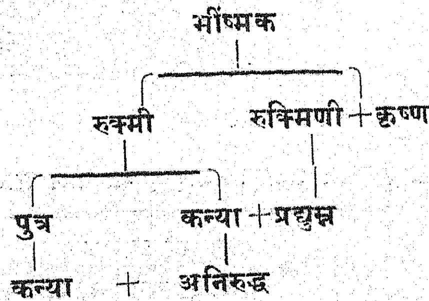
दक्षिण के आभीर सरस्वती-तीर वासी शूद्राभीरों से पृथक् थे। नासिक की पाण्डु-लेना गुफाओं पर इन्हीं आभीरों के उत्तरवर्ती आभीर-राजाओं के शिलालेख होंगे। महाराज भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण नामक व्याकरण ग्रन्थ का टीकाकार दण्डनाथ नारायण लिखता है—महाशूद्री आभीरजातिः।

१०. विदर्भ जनपद

देश-स्थिति—वर्तमान बरार, खानदेश और निज़ाम राज्य का उत्तर-भाग कभी पुराना विदर्भ जनपद था। यह जनपद बड़ा विशाल था। अर्थशास्त्र का टीकाकार भट्टस्वामी लिखता है—सभाराष्ट्रकं वैदर्भकम्।[1]

विदर्भ जनपद के भोजकट[2] और कुण्डिन नगर बहुत प्रसिद्ध थे।

राजवंश—विदर्भ-राज भीम और उसके पुत्र दम का वर्णन हम पृ० १०२ पर कर चुके हैं। इस दम की भगिनी विख्याता दमयन्ती थी। दम के पश्चात् का विदर्भों का इतिहास हम नहीं जानते। भारत-युद्ध-काल से कुछ पहले विदर्भों का राजा भीष्मक था। वह भोज-कुलोत्पन्न था। भीष्मक अपरनाम हिरण्यलोमा इन्द्रसखा तथा पाण्ड्य, क्रथ और कैशिकों का विजेता था।[3] युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के समय भीष्मक का पुत्र रुक्मी धनुर्धारी प्रसिद्ध हो चुका था।[4] भीष्मक का वंश-वृक्ष निम्नलिखित है—



रुक्मी किंपुरुषसिंह अथवा किंपुरुषाचार्य अर्थात् गन्धमादनवासी महाराज द्रुम का शिष्य था। उसे आकृतियों का अधिपति कहा है।[5]

---

१. पृ० ३५।
२. सभापर्व ३२।१२॥
३. उद्योगपर्व १५५।१॥ सभापर्व १४।२१,२२॥
४. सभापर्व १४।६९॥
५. उद्योगपर्व १५५।३,७॥

रुक्मी की भगिनी रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया। कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने अपने मामा की कन्या से विवाह कर लिया। प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध ने भी अपने मामा की कन्या अर्थात् रुक्मी की पौत्री से विवाह किया। अपने मामा की कन्या से विवाह करने की रीति दाक्षिणात्यों में कभी बहुत प्रचलित थी। अनिरुद्ध के विवाह पर रुक्मी और बलराम जी द्यूत-क्रीडा करने लगे। यह विवाह भारत-युद्ध के पश्चात् हुआ था। रुक्मी ने भारत-युद्ध में भाग नहीं लिया।[1] उस द्यूत में कुपित हो कर बलराम जी ने रुक्मी को मार दिया।[2]

११. दण्डक—दण्डक के भोज का वर्णन अर्थशास्त्र अध्याय ६ में है।

१२. मूलक—यह राज्य अश्मक के साथ था।

१३. अश्मक

देश-स्थिति—विदर्भों के साथ वर्तमान महाराष्ट्र का एक भाग अश्मक जनपद था। यह जनपद दूसरी ओर अवन्तियों तक फैला हुआ था। पाणिनि ने आवन्त्यश्मकम् समास बनाया है।[3] इस से ज्ञात होता है कि काशिकोसल और कुरुपाञ्चाल के समान अवन्ति और अश्मक साथ साथ थे। अश्मक जनपद के बसाने वाले ऐक्ष्वाक अश्मक का वृत्तान्त पृ० १०४ पर लिखा जा चुका है। अश्मकों की राजधानी कभी पोतन थी।

राजवंश—एक अश्मकेश्वर भारत-युद्ध में दुर्योधन-पक्ष की ओर से लड़ा था। वह अभिमन्यु से मारा गया।[4] अश्मकवंश नाम का एक इतिहास ग्रन्थ था। (देखो पूर्व पृ० २२)।

१४. कुन्तल—एक कुन्तल मध्यभारत में था और एक दक्षिण भारत में। हेमचन्द्रकृत अभिधान चिन्तामणि ४।२७ के अनुसार कुन्तला उपहालकाः थे। अर्थात् हाला नदी पर थे।

१५. आन्ध्र—आन्ध्र लोग भारत-युद्ध के समय विद्यमान थे।[5]

अपरान्त अर्थात् पश्चिम के जनपद

अपरान्त का सीधा अर्थ है दूसरा अन्त। अत एव अपरान्त देश का अर्थ है जहां भारत-भूमि समाप्त हो जाती है। पुराणों में अन्य भारतीय जनपदों का वर्णन करके अन्त में पश्चिम के देश गिनाए हैं, अतः यहां अपरान्त का अर्थ पश्चिम है। वायुपुराण का पाठ यहां भ्रष्ट हो गया है।[6] मुद्रित पाठ में अपरांस्तान्निबोधत छपा है। वस्तुतः अपरान्तान्निबोधत पाठ चाहिए। ब्रह्माण्ड में भी यही भूल हुई है। अलबेरूनी के काल में भी यह पाठ अशुद्ध हो चुका था।[7] मत्स्य का पाठ यहां कुछ टूटा है, पर मत्स्य के इस विषय के अन्तिम श्लोक से सब स्पष्ट हो जाता है।[8] अपरान्त शब्द के हमारे बताए अर्थ में यादवप्रकाश का प्रमाण

---

१. उद्योगपर्व १५८।३७॥ २. विष्णु ५।२८।२३॥ कामन्दकीय नीतिसार १४।५१॥
३. गणपाठ २।२।३१॥६।२।३७॥ ४. द्रोणपर्व ३७।२१-२४॥ ५. उद्योगपर्व १३८।२५॥
६. वायु ४५।१२८॥ ७. अंग्रेज़ी अनुवाद, भाग प्रथम, पृ० ३००, पंक्ति ४। ८. मत्स्य ११४।५१॥

है—अपरान्तास्तु पाश्चात्यास्ते च सूर्पारकादयः।[१] अष्टाङ्गहृदय का टीकाकार अरुणदत्त लिखता है—अपरान्ताः कौंकुणाः।[२]

पुराणों में जो अपरान्त जनपद गिने गए हैं, उन में से निम्नलिखित मुख्य हैं—

१. शूर्पकार=सूर्पारक
२. कारस्कर (अनेक)
३. नासिक आदि
४. भरुकच्छ
५. माहेय
६. सारस्वत
७. काच्छीय
८. सुराष्ट्र
९. आनर्त
१०. अर्बुद

१. सूर्पारक—सूर्पारक अथवा शूर्पारक पश्चिम का एक प्रसिद्ध स्थान था। मंखक के श्रीकण्ठ-चरित में शूर्पारक कोंकण का देश है।[३] यवन-ग्रन्थकार इसे सोपर लिखते हैं।[४] वर्तमान काल में इसे सोपर कहते हैं। मुम्बई से ३७ मील उत्तर की ओर थाना ज़िला में यह स्थान है। इसके समीप अशोक का एक शिलालेख मिला था। श्यामिलककृत पादताडितक का पाठ द्रष्टव्य है—सौपरस्तौण्डिकोकिः सूर्यनागः। यहां तौण्डिकेरि पाठ अधिक शुद्ध है। वायुपुराण ४५।१३४ के अनुसार तुण्डिकेर जनपद विन्ध्यपृष्ठ में है।

शूर्पारक में जमदग्नि की वेदी थी—वेदी शूर्पारके तात जमदग्नेर्महात्मनः।[५] वहां जामदग्न्य परशुराम रहते थे।[६]

२. कारस्कर—महाभारत में लिखा है कि कारस्कर हीन लोग थे।[७] बौधायन श्रौत में भी कारस्कर जनपद के वासियों को आर्य-क्रियाहीन लिखा है।[८] पुराणों के अनुसार अपरान्त के कारस्कर अनेक थे। वायु में लिखा है—सर्वे चैव कारस्कराः।[९]

३. नासिक्य—नासिक्य नाम महाभाष्य में मिलता है। वर्तमान नासिक वही नगर है। नासिक से जो राज-मार्ग मुम्बई को जाता है, उस पर नासिक से ५ मील दूर सुप्रसिद्ध पाण्डु-लेना गुफाएं हैं। वे त्रिरश्मि-शैल पर हैं। वहां आन्ध्रों, क्षत्रपों और आभीरों के शिलालेख अब भी पढ़े जा सकते हैं।

४. भरुकच्छ—इसे ही भृगुकच्छ भी कहते थे। वर्तमान भरोच वही स्थान है। यवन-लेखक इसे बरिगज़ लिख गए हैं।[१०] महाभारत में लिखा है कि कार्पासिक-निवासियों की सैकड़ों दासियों के साथ भारुकच्छ-राज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के लिए बलि लाया था।[११] मुम्बई गैजेटियर के अनुसार मियागाम का समीपवर्ती वर्तमान कार्वाण पुराना कार्पा-

---

१. वैजयन्ती कोश, भूमिकाण्ड, देशाध्याय, श्लोक ३५। २. १५।११॥
३. २५।११०॥ ४. टाल्मी का भारत पृ० ४०। ५. आरण्यकपर्व ८६।१२॥
६. आरण्यकपर्व ८३।४०॥ ७. कर्णपर्व ३७।५४॥
८. य आरट्टान्वा गान्धारान्वा सौवीरान्वा कारस्करान्वा कलिङ्गान्वा गच्छति। स यदि सर्वश एव पापकृन्मन्येत। १८।३॥
९. वायु ४५।१२९॥ १०. टाल्मी का भारत, पृ० ३८। ११. सभापर्व ७८।३५,३६॥

सिक था। यह लकुलीश पाशुपतों का केन्द्र था।[1] भरोच में विदेश के पदार्थ समुद्र-मार्ग से आते थे। प्रभावकचरित ५।१४३ में इसे लाटदेशान्तर्गत लिखा है।

५. माहेय—यह जनपद मही और नर्मदा नदियों के मध्य में था। महाभारत में भी इस जनपद का नाम लिखा है।[2] माहेय ऋषि वैदिक वाङ्मय में वर्णित हैं।[3] उन के नाम थे अर्चनाना, तरन्त और पुरुमीढ। एक जमदग्नि माहेयों का पुरोहित था।[4] वह परशुराम का पिता था। ब्राह्मण-ग्रन्थ के इस प्रकरण के अन्त में उसे भृगु कहा है। इस धारणा को एक और बात भी प्रमाणित करती है। भरुकच्छ का दूसरा नाम भृगुकच्छ था। इसे भृगुक्षेत्र भी कहते थे। यह स्थान माहेय जनपद के समीप है। अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ का जमदग्नि-भार्गव परशुराम का पिता था।

६. सुराष्ट्र—गुजरा का पुराना नाम सुराष्ट्र था। यवन-लेखक इसे सिरस्ट्र लिखते थे।[5] सहदेव-पाण्डव सुराष्ट्र में पहुँचा था।[6] सुराष्ट्र में ठहर कर सहदेव ने भोजकटस्थ रुक्मी को दूत भेजे थे।[7]

७. आनर्त—मथुरा को त्याग कर वृष्णि-अन्धक लोग आनर्त-विषय को चले गए थे। वहीं रैवतक पर्वत है। द्वारका भी [illegible] जनपद में थी। वर्तमान जूनागढ़=जीर्णगढ़ आनर्तों का पुराना दुर्ग है।

८. अर्बुद—वर्तमान आबु-पर्वत पुराना अर्बुद है।

जैन ग्रन्थकार वादिदेव सूरि ने अपने स्याद्वादरत्नाकर ५।८ में एक श्लोक उद्धृत किया है। उपयोगी समझ कर वह यहां उद्धृत किया जाता है—

प्राग्भागो यः सुराष्ट्राणां मालवानां स दक्षिणः।
प्राग्भागः पुनरेतेषां तेषामुत्तरतः स्थितः ॥ इति।

इस संक्षिप्त वर्णन के साथ भारत-युद्ध काल के जनपदों का उल्लेख समाप्त किया जाता है। इस को समझे बिना उस काल के भारत की घटनाएं स्वप्न-मात्र दिखाई देती हैं। भौगोलिक परिस्थितियों को न जान कर सैकड़ों पठित लोग भी महाभारत के पाठ का आनन्द नहीं उठा सकते। वे इस अनुपम-इतिहास को कल्पना मानने लगते हैं। महाभारत का लेखक सारे भारत का चित्र खींच रहा था। उस ने भौगोलिक-स्थितियों का पूरा ज्ञान रख कर उस काल के भारत का उल्लेख किया है। सहस्रों वर्ष तक समस्त संस्कृत ग्रन्थकार

---

१. भाग १, पूर्वार्ध पृ० ८३—८५। २. भीष्मपर्व ९।४८॥
३. जैमिनीय ब्राह्मण १।१५१॥ बृहद्देवता ५।६२॥ ऋक् सर्वानुक्रमणी ५।६१॥ शाट्यायन ब्रा०, ऋग्वेद ६।५८।३ के सायणभाष्य में उद्धृत। ४. जै० ब्रा० १।१५२॥
५. टाल्मी का भारत, पृ० ३७। ६. सभापर्व ३२।६४॥ ७. सभापर्व ३२।६५॥

उन सब घटनाओं को ठीक मानते रहे हैं। पुरातन ग्रन्थकार अपने अपने जनपदों के पुरातन वृत्तों को याथातथ्य से जानते थे। यदि कृष्ण-द्वैपायन व्यास ने कल्पना-मात्र से महाभारत लिखा होता, तो वे ग्रन्थकार इसे इतिहास कदापि न मानते। हम समझते हैं कि वर्तमान पाश्चात्य-लखेकों ने महाभारत ऐसे इतिहास के विरुद्ध लिखकर भारतीय जाति का बड़ा अनिष्ट किया है।

छब्बीसवां अध्याय

भारत-युद्ध का काल

भारतीय मत—(१) चालुक्य कुल के महाराज पुलकेशी द्वितीय का एक शिलालेख दक्षिण के कलाद्गी अर्थात् बीजापुर विषयान्तर्गत ऐहोल स्थान के मेगुटी नामक एक जैन मन्दिर पर मिला है। अक्षर इस के दाक्षिणात्य हैं। उस में लिखा है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु श(ग)तेष्वब्देषु पञ्चसु ॥३३॥
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥३४॥[1]

इन श्लोकों का अर्थ किया जाता है—"भारत-युद्ध से ३७३५ वर्ष बीत जाने पर जब कलि में शकों के ५५६ वर्ष व्यतीत हुए थे।"

हमें इस अर्थ में थोड़ा सा सन्देह है। फिर भी इस से इतना ज्ञात होता है कि शक संवत् ५५६ अथवा सन् ६३४ में भारत के दक्षिण के कई विद्वान् भारत-युद्ध को ईसा से लगभग ३१०० वर्ष पहले मानते थे।

(२) एक त्रुटित ताम्रपत्र का प्रथमांश सन् १९१२ में निधानपुर में मिला था।[2] कुछ काल पश्चात् उस का नष्ट अंश भी मिल गया था।[3] उस के प्रथम अंश में लिखा है—

धात्रीमुद्धिक्षिप्सोरम्बुनिधेः कपट कोलरूपस्य। चक्रभृतः सूनुरभूत्पार्थिववृन्दारको नरकः ॥४॥
तस्माद्दृष्टनरकादजनिष्ट नृपतिरिन्द्रसखः।[4] भगदत्तः ख्यातजयं विजयं युधि यः समाह्वयत ॥५॥
तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रगतिर्वज्रदत्तनामाभूत्। शतमखमखण्डबलगतिरतोषयद्यः सदा संख्ये ॥६॥
वंश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्रत्रयं पदमवाप्य। यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्म्माभूत् ॥७॥

अर्थात्—नरकासुर का पुत्र भगदत्त और भगदत्त का पुत्र वज्रदत्त[5] था। उस से ३००० वर्ष व्यतीत होने पर राजा पुष्यवर्मा हुआ।

ताम्रपत्र के अगले श्लोकों में पुष्यवर्मा के उत्तरवर्ती १२ राजाओं के नाम लिखे हैं। उन

---

१. ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० ७।
२. ऐपिग्राफिया इण्डिका, सन् १९१३–१४, पृ० ६५–७६।
३. ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग १९, पृ० ११५–१२४।
४. द्रोणपर्व २६।४४ में इस भगदत्त को सुरद्विष और २६।५ में सखायमिन्द्रस्य तथा ३०।१ में—प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायं—लिखा है।
५. महाभारत, आश्वमेधिकपर्व ७५।२ में इस का नाम यज्ञदत्त लिखा है। प्रतीत होता है, कुम्भघोण-संस्करण के पाठ में भूल हुई है। नीलकण्ठ टीका सहित मुम्बई-संस्करण में वज्रदत्त पाठ ही है।

में अन्तिम राजा भास्करवर्मा अपरनाम कुमारवर्मा है। इस भास्करवर्मा का उल्लेख हर्षचरित[1] और ह्यूनसांग के यात्रावृत्तान्त में मिलता है। यह ताम्रपत्र भास्करवर्मा के काल में दोबारा लिखा गया। मूल ताम्रशासन भास्करवर्मा से लगभग ८० वर्ष पहले लिखा गया था। इन बारह राजाओं का काल कम से कम ३०० वर्ष का होगा। ह्यूनसांग लगभग सन् ६३०–४० तक भारत में रहा। तभी वह महाराज भास्करवर्मा से मिला होगा।

भास्करवर्मा के इस दानपत्र में वज्रदत्त का राज्य काल नहीं लिखा। अतः स्थूल-रूप से गिन कर ज्ञात होता है। कि कामरूप के सन् ५५० के राजकीय ऐतिहासिकों के अनुसार भारत-युद्ध ईसा से लगभग २७०० वर्ष पहले हुआ होगा।

पूर्व-लिखित प्राचीन लेख भारत की पश्चिम-दक्षिण और पूर्व सीमाओं से मिले हैं। दोनों लेख अपने अपने राज्यों के ऐतिहासिकों की देख रेख में लिखे गए होंगे। अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि सन् ६०० के समीप भारत के दूर दूर देशों में भारत-युद्ध का काल ईसा से लगभग २७०० वर्ष पहले का माना जाता था।

(३) श्रीमान् विद्वद्वर राजगुरु पं० हेमराज शर्मा जी के पास एक ग्रन्थ सुमतितन्त्र है। वह ग्रन्थ सन् ५७६ के समीप लिखा गया था। उस की एक प्रति बृटिश म्यूज़िअम में भी है।[2] नेपाल की प्रति बारहवीं शताब्दी की लिपि में है। उस में लिखा है कि—युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्दराज्याब्द ८००, चन्द्रगुप्त राज्याब्द १३२, शूद्रकदेव राज्याब्द २४७ वर्ष शकराज्याब्द ४९८।

युधिष्ठिरो महाराजो दुर्योधनस्तथाऽपि वा। उभौ राजौ सहस्रे द्वे वर्षन्तु सम्प्रवर्त्तति!
नन्दराज्यं शताष्टं वाश्चन्द्रगुप्तास्ततो परम्। राज्यङ्करोति तेनापि द्वात्रिंशाचाधिकं शतम्।
राजा शूद्रकदेवश्च वर्षं सप्ताब्धि चाश्विनौ। शकराजा ततो पश्चाद्वसुरन्ध्रकृतं तथा।[3]

इस लेख का एक ही अभिप्राय हमारी समझ में आया है। तदनुसार युधिष्ठिर शक २००० वर्ष तक प्रचलित रहा, नन्द शक ८०० वर्ष तक, चन्द्रगुप्त शक १३२ वर्ष तक और शूद्रक शक २४७ वर्ष तक। तत्पश्चात् शक राज्य ४९८ वर्ष रहा। इस लेख का दूसरा अर्थ बनता नहीं। यदि यह भाव सत्य है, तो हम कह सकते हैं कि भारत-युद्ध विक्रम से २००० वर्ष से कहीं पहले हुआ होगा। परन्तु इस लेख से कोई निश्चित तिथि नहीं मिलती।

(४) विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व वृद्धगर्ग ने लिखा था—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्। मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥[4]

---

१. हर्षचरित में भगदत्त-पुष्पदत्त-वज्रदत्त पाठ है। पृ० ७८६। प्रतीत होता है पुष्पदत्त भी भारत-युद्ध में मारा गया।

२. नेपाल का कालक्रम, बिहार उड़ीसा रीसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २२, अंश ३, पृ० १६१-१६५।

३. बृटिश म्यूज़ियम की प्रति के अनुसार शूद्रक राज्य २२७ वर्ष और शकराज्य ४१८ वर्ष रहा। देखो बृटिश म्यूज़ियम में संस्कृत हस्तलखों का सूचीपत्र, सैसिल बैण्डल द्वारा सम्पादित १९०२, पृ० १९३, १९४, संख्या ३५६४।

४. वराहमिहिर-रचित बृहत्संहिता, सप्तर्षिचाराध्याय, भट्टोत्पली टीका में उद्धृत।

अर्थात्—कलि-द्वापर की संधि में मुनि अथवा सप्तर्षि पितृदैवत=मघानक्षत्र में थे।

(५) यही मत सब पुराणों का है। उन में लिखा है—

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम्। वायु ९९।४२३॥

सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः पित्र्ये पारिक्षिते शतम्। ब्रह्माण्ड ३।७४।२३०॥

अर्थात्—परिक्षित् के काल में सप्तर्षि मघा-नक्षत्र में थे। परिक्षित् काल भारतयुद्ध के ३६ वर्ष के पश्चात् आरम्भ हुआ था। अतः कलिद्वापर की संधि परिक्षित् के काल में अथवा उस से कुछ पहले हुई होगी।

(६) वृद्धगर्ग के अनुसार वराहमिहिर लिखता है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥[1]

अर्थात्—महाराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। तथा युधिष्ठिर से लेकर आगे २५२६ वर्ष जोड़ने से शककाल का आरम्भ होता है।

भारतीय इतिहास में शककाल दो थे—एक शकराज्य के आरम्भ से और दूसरा जो अति प्रसिद्ध है, शकराज्य के अन्त से। वराहमिहिर का अभिप्राय प्रथम शकलाल से प्रतीत होता है।

महाभारत का साक्ष्य—इन सब से अधिक महाभारत का प्रमाण है। उस के भिन्न भिन्न पर्वों में निम्नलिखित श्लोक हैं—

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत। समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥[2]

एतत्कलियुगं नाम अचिराद्यत्प्रवर्तते। युगानुवर्तनं त्वेतत्कुर्वन्ति चिरजीविनः॥[3]

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च। सात्वतं विधिमास्थाय गीतः संकर्षणेन यः॥[4]

द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके। प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति॥[5]

इन सब श्लोकों से प्रकट होता है कि भारतयुद्ध कलि और द्वापर की सन्धि में हुआ। वीर हनुमान् कौरव भीम से भारतयुद्ध से कुछ वर्ष पूर्व कह रहा है कि कलियुग शीघ्र प्रवृत्त होने वाला है।

यही मत गर्ग आदि प्राचीन ज्योतिषियों का भी है। इस विषय में इंगलैण्डदेशोत्पन्न फ्लीट आदि लोगों ने कई निस्सार कल्पनाएं की हैं। उनका खण्डन हम अपने वैदिकवाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम में कर चुके हैं।[6]

अलबेरूनी का मत—कलि संवत् और भारत-युद्ध काल के विषय में अलबेरूनी लिखता है।

"ब्रह्मगुप्त और पुलिष के अनुसार संवत् १०८८ तक कलियुग के ४१३२ वर्ष बीत गए हैं और संवत् १०८८ तक भारतयुद्ध के ३४७९ वर्ष बीते हैं।"

---

१. बृहत्संहिता १३।३॥ २. आदिपर्व २।९॥ ३. आरण्यकपर्व १४८।३७॥
४. भीष्मपर्व ६२।३९॥ ५. शान्तिपर्व ३४८।२१॥ ६. पृ० ९-१३।

इस से निश्चित होता है कि अलबेरूनी के काल के कतिपय लोगों के विचारों के अनुसार भारत-युद्ध विक्रम से लगभग २३९१ वर्ष पहले हुआ था।

पण्डित कल्हण काश्मीरी लिखता है कि कलि के ६५३ वर्ष बीतने पर कुरु-पाण्डव हुए थे।[1] इस का अभिप्राय यह है कि विक्रम से लगभग २३९१ वर्ष पूर्व कुरु-पाण्डव हुए। पण्डित कल्हण वराहमिहिर का पूर्वोद्धृत श्लोक भी उद्धृत करता है। अलबेरूनी के समान वह निश्चित समझता है कि वराहमिहिर संवत् १३५ विक्रम के शक-काल का संकेत करता है।

मघा-नक्षत्र से काल गणना—पूर्व लेख से ज्ञात होता है कि कल्हण और अलबेरूनी मघानक्षत्रस्थ सप्तर्षियों से की गई गणना को पूरा नहीं समझे। उन्हों ने शक शब्द देख कर सारी भूल की। वराहमिहिर इस दूसरे शककाल से पूर्व हो चुका था।

महाभारत का आन्तरिक साक्ष्य

(१) अध्यापक प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त ने महाभारत के उन श्लोकों पर प्रकाश डाला है जिन से भारत-युद्ध का काल स्पष्ट होता है।[2] उन में से दो श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

(क) सप्तमाचापि दिवसाद् आमावास्या भविष्यति। संग्रामे युज्यतां तस्यां तां ह्याहुः शक्रदेवताम् ॥[3]

(ख) आलक्षे प्रभया हीनां पौर्णमासीं च कार्तिकीम्। चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णो नभःस्थले ॥[4]

शेष श्लोक हैं—द्रोणपर्व १८५।१५,१६, २७,४९,५६,५७॥१८७।१॥ शल्यपर्व ३४।६॥ अनुशासनपर्व १६७।५,६,२६–२८॥

इन सब प्रमाणों से अध्यापक सेनगुप्त ने निश्चय किया है कि भारत-युद्ध ईसा से २४४९ वर्ष पूर्व हुआ था। यही मत अलबेरूनी और कल्हण पण्डित का है।

(२) अध्यापक वी० वी० अथावले ने भीष्मपर्व अध्याय ३ के निम्नलिखित श्लोकों के अनुसार गणना की है—

चित्रास्वात्यन्तरे चैव धिष्ठितः पुरुषो ग्रहः। रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ शशिभास्करौ ॥१६॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्। इमां तु नाभिजानामि अमावास्यां त्रयोदशीम् ॥२८॥[5]
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासे त्रयोदशीम्। अपर्वणि ग्रहावेतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ॥२९॥[5]

इन श्लोकों से उन्हों ने भारतयुद्ध की घटना २९५९ विक्रमपूर्व में मानी है।[6]

---

१. राजतरंगिणी १।४९–५६॥

२. जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, लैटर्स, भाग ३, १९३७, मुद्रण सन् १९३६, पृ० १०१—११९। तथा देखो वह जर्नल, भाग ४, १९३८, संख्या ३, पृ० ३९३—४१३।

३. उद्योगपर्व १४२।१८॥ ४. भीष्मपर्व २।२३॥

५. अद्भुत सागर पृ० ८५,८६ पर उद्धृत। श्लोक २९ बृहत्संहिता ५।२६ की उत्पल भट्ट की टीका में उद्धृत।

६. जर्नल आफ दि गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टिट्यूट, भाग ३, अंक १ पृ० १४-१८।

इस प्रकार इन सब मतों को ध्यान में रख कर हम कह सकते हैं कि २३९१-३०८० विक्रम पूर्व में से कोई काल भारत-युद्ध का काल होगा। अधिक सामग्री मिलने पर यह तिथि पूर्ण निश्चित हो सकेगी। कई लेखक भारत-युद्ध का काल ईसा से लगभग ९५० वर्ष पूर्व का[1], दूसरे लगभग १४२४ वर्ष पूर्व का[2] और तीसरे लगभग १९०० वर्ष पूर्व का मानते हैं। उन की गणनाएं भ्रम-पूर्ण हैं, अतः हम ने उन का यहां उल्लेख नहीं किया।

रैपसन-मत का खण्डन—अध्यापक रैपसन का मत है कि वैदिक आर्य ईसा से २५०० वर्ष पूर्व के अन्दर ही अन्दर भारत में आए। तभी से भारतीय-आर्यों का इतिहास आरम्भ होता है।[3] गत पृष्ठों के देखने से ज्ञात हो जायगा कि आर्य लोग अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में रह रहे थे। उन के सम्बन्ध में ऐसे भ्रान्त मत प्रकाशित करना भारतीय-जाति को पतनोन्मुख करने का प्रयास है। और जिस भाषाविज्ञान के आधार पर ऐसी मिथ्या कल्पनाएँ की जाती हैं उसे हम भी जानते हैं। उस से ऐसी कोई बात सिद्ध नहीं होती।

---

१. पार्जिटर, ए० इ० हि० ट्रै० पृ० १८२॥

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग प्रथम, पृ० २६२। लगभग यही मत श्री काशीप्रसाद जायसवाल का था।

३. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग प्रथम, पृ० ७०। इस के खण्डन के लिए देखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० २॥

सत्ताइसवां अध्याय

भारतयुद्ध-काल का वाङ्मय

समान द्रष्टा और प्रवक्ता[1]

वैदिक ग्रन्थों का अन्तिम संकलन—वैदिक ग्रन्थ अनेक बार संग्रहीत हुए। उन का अन्तिम संकलन कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास ने भारतयुद्ध से लगभग १०० वर्ष पहले किया।[2] व्यास जी के साथ उनके अनेक शिष्य-प्रशिष्यों ने भी इस काम में भाग लिया। उन स्वनामधन्य ऋषियों में सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। उन के साथ और भी अनेक ऋषि वैदिक-संकलन में प्रवृत्त हुए। उन में से अधिकांश ऋषियों का इतिहास हम 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' में लिख चुके हैं।[3] इस विषय में हमारे मत का अनुसरण बिना ऐसा लिखे श्री जयचन्द्र जी ने किया है।[4] जो कोई अन्य विद्वान् भी इस विषय का पक्षपात-रहित हो कर मनन करेंगे, वे निश्चय इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि कृष्णद्वैपायन और उन के शिष्य प्रशिष्यों ने भारत-युद्ध-काल में वैदिक-ग्रन्थों का संकलन किया। भारत-युद्ध काल को वे भले ही थोड़ा बहुत इधर उधर करें, पर इस परिणाम में भेद पड़ना असम्भव है।

वैदिक-चरण—वेदों के चरण और उन की अवान्तर संहिताओं का प्रवचन इसी काल में हुआ। महिदास का ऐतरेय, कौषीतक का कौषीतकि, याज्ञवल्क्य का शतपथ, ताण्ड्य का पञ्चविंश, जैमिनि का जैमिनीय और दूसरे सब ब्राह्मण-ग्रन्थ इस युग में संकलित हुए। आरण्यक, उपनिषद, श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब आदि सूत्र इस काल की रचना हैं।[5] बाभ्रव्य पाञ्चाल ने अपना ऋग्वेद का क्रमपाठ भी इस काल में रचा।

ज्योतिष का साक्ष्य—शंकर बालकृष्ण दीक्षित और अध्यापक प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने अनेक वैदिक वचनों के आधार पर कुछ ज्योतिष-गणनाएं की हैं। दीक्षित महोदय का कथन है कि शतपथ ब्राह्मण विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले बना था। सेनगुप्त जी ने बताया है कि वैदिक ग्रन्थों की रचना ३५०० ईसा पूर्व से लेकर २१२५ ईसा पूर्व तक हुई।[6] पुनः ब्राह्मण-ग्रन्थों के

---

१. न्याय, वात्स्यायन-भाष्य, २।२।६७॥४।१।६२॥

२. देखो, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६८,६९।

३. द्वितीय भाग सन् १९२४। प्रथम भाग सन् १९३५।
सन् १९२४ वाले ग्रन्थ में हम इस विषय का विशद वर्णन कर चुके थे।

४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, प्रथम भाग, पृ० २१२।

५. ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ॥ मत्स्य १४४।१३॥

६. जर्नल, रायल एशियाटिक सोसायटी, लेटर्स, भाग ४, सन् १९३८, पृ० ४३४।

सम्बन्ध में सेनगुप्त ने ज्योतिष के आधार पर लिखा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थ ३१०
२००० ईसा पूर्व तक बने ।[1]

आयुर्वेद की मूल-संहिताएँ—आयुर्वेद की अनेक मूल-संहिताएं थीं। उन में से अग्नि[illegible], भेल, जतुकर्ण, कश्यप, आलम्बायन, शाम्बव्य, निमि, कराल, सात्यकि, भोज और नग्नजित्-दारुवाह आदि की संहिताओं का रूप हम उन अनेक उद्धरणों से जान सकते हैं, जो आज आयुर्वेदीय टीकाओं में मिलते हैं। इन में से अग्निवेश का गृह्यसूत्र मिल गया है। जतुकर्ण का गृह्य कभी बड़ा प्रसिद्ध था। कश्यप का कल्प भी विख्यात है। आलम्बायन एक प्रसिद्ध याजुष-संहिता से सम्बन्ध रखता था। शाम्बव्य का गृह्यसूत्र अब भी मिलता है। शाम्बव्य के आयुर्वेद ग्रन्थ का पता नावनीतक के आरंभ में है। निमि, कराल और गान्धार-नग्नजित् के संबन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। इन ग्रन्थकारों का अधिक वृत्तान्त हमारे 'वैदिकवाङ्मय का इतिहास' में देखा जा सकता है। वैदिक ग्रन्थों के अनेक प्रवचनकर्ता ही आयुर्वेद-शास्त्र के रचयिता थे।[2] अतः आयुर्वेद-शास्त्र की प्रामाणिक संहिताएं भारत-युद्ध-काल के आस पास रची गई थीं।

मानव-आयु सौ वर्ष—ब्राह्मण-ग्रन्थों में बहुधा लिखा मिलता है—शतायुर्वै पुरुषः। अर्थात् मनुष्य की आयु सौ वर्ष है। यही बात चरकसंहिता में लिखी है—वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले।[3] अर्थात् अग्निवेश के काल में आयु का परिमाण सौ वर्ष था। अग्निवेश से बहुत पूर्व-काल में मानव आयु अधिक थी। अग्निवेशसंहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों का आयु-प्रमाण दोनों के एक काल में रचित होने का संकेत करता है। पुराणों में भी यही मत लिखा है।[4]

चरकसंहिता के आरम्भ में कहा है कि आयुर्वेद का विचार करने वाले ऋषि—ब्रह्म-ज्ञानस्य निधयः थे।[5] इस से भी निश्चित होता है कि अनेक द्रष्टा और प्रवक्ता समान थे।

महाभारत और मूल-पुराण संहिता—उस काल में भगवान् कृष्ण-द्वैपायन ने भारत-संहिता को रचा और उन के शिष्य-प्रशिष्यों ने उसे महाभारत का रूप दिया। पुरातन पुराणों की सहायता से भगवान् व्यास ने तभी एक पुराण-संहिता बनाई।[6] वायुपुराण का अधिक भाग उस काल का है।

स्मृति-ग्रन्थ—धर्मसूत्रों के अतिरिक्त कई अन्य स्मृतियां भी उस काल में बनी थीं। न्याय-भाष्यकार वात्स्यायन लिखता है कि ब्राह्मणों के प्रवक्ता ही धर्मशास्त्रों के रचने वाले थे।[7] मनुस्मृति का वर्तमान रूप अधिकांश में उस काल में विद्यमान था। याज्ञवल्क्य स्मृति का अधिकांश भाग उस काल का है।

---

१. Age of the Brahmanas. Indian Historical Quarterly, Vol X. 1934 पृ० ५३३—५४० |

२. न्यायसूत्र, वात्स्यायन भाष्य २।२।६७॥

३. शारीरस्थान ६।२९॥

४. परमायुः शतं त्वेतन्मानुषाणां कलौ स्मृतम् । मत्स्य १४५।६॥

५. चरक, सूत्रस्थान, १।१४॥

६. वायु ६०।१२—१६॥

७. न्यायसूत्र ४।१।६२॥

तीन प्रसिद्ध अर्थशास्त्र

कौणपदन्त—कई अर्थशास्त्र भी भारत-युद्ध-काल में लिखे गए। उन में से पहला अर्थशास्त्र भीष्म का था। भीष्म का एक नाम कौणपदन्त था। माधवयज्व कौटल्य अर्थशास्त्र की टीका में कौणपदन्त का पर्याय भीष्म लिखता है।[१] त्रिकाण्डशेष कोष में भी यही लिखा है।[२]

भारद्वाज—उन दिनों दूसरा अर्थशास्त्र भारद्वाज ने रचा। भारद्वाज द्रोण का नाम है। महाभारत में भी द्रोण को बहुधा भारद्वाज लिखा है।

वातव्याधि—तीसरा अर्थशास्त्र वात-व्याधि या उद्धव का था। उद्धव वृष्णि-अन्धकों के सात मन्त्रि-पुंगवों में से एक था।[३] मालव-संवत् ५८९ के यशोधर्मा के एक शिलालेख में उद्धव की कीर्ति स्मरण की गई है।[४]

उद्धव का पाण्डित्य उस काल में प्रख्यात हो गया था।[५]

ये तीनों अर्थशास्त्र भीष्म, द्रोण और उद्धव के थे। इस में सन्देह का स्थान नहीं है। मौर्य-सचिव कौटल्य इस का प्रमाण है; वही कौटल्य-विष्णुगुप्त जिस के पास अपने से कई सहस्र वर्ष पहले के ग्रन्थों की विपुल राशि होगी, जिस के संकेत-मात्र से भारत के कोने कोने से सारा संस्कृत-वाङ्मय एकत्र हो सकता था, जो स्वयं भारत-युद्ध से कोई सोलह सौ वर्ष पश्चात् हुआ, जिस के काल तक आर्यावर्त में विद्या और ज्ञान की परंपरा अनवच्छिन्न थी और जिसके साथी सहस्रों विद्वान् ब्राह्मण अपने इतिहास को जिह्वाग्र रखते थे।

दार्शनिक सूत्र

भारत-युद्ध-काल के समीप कई दार्शनिक सूत्र भी रचे गए। अक्षपाद और कणाद तथा उलूक और वत्स उसी काल में हुए थे।[६] ये सब मुनि कृष्ण द्वैपायन और उनके चचा जातूकर्ण्य के साथ थे। जैमिनि और बादरायण भी उसी काल में थे।

देव के शतशास्त्र पर टीका करता हुआ चि-त्साङ (सन् ५४९-६२३) लिखता है—"उलूक का जीवन-समय बुद्ध से ८०० वर्ष पूर्व था।"[७] स्मरण रहे चीनी ग्रन्थकार बुद्ध का काल विक्रम से १०००–१३०० वर्ष पूर्व मानते हैं। फिर युवन च्वाङ्ग का शिष्य क्व्हाई-त्रि लिखता है—"उलूक पञ्चशिख को अपनी कुटी में ले गया।"[८] पञ्चशिख भारत-युद्ध-काल का व्यक्ति था, अतः उलूक भी उसी काल का आचार्य था।

---

१. पृ० ७४। २. २।८।१०॥
३. सभापर्व १४।६३,६४॥ ४. अन्धकानामिवोद्धवः, फ्लीट के गुप्त-शिला-लेख।
५. देवभागसुतश्चापि नाम्नासावुद्धवः स्मृतः। पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्भवम्॥ मत्स्य ४६।२३॥
६. वायु २३।२१६॥ ७. दि वैशेषिक फिलासफी, दशपदार्थशास्त्रानुसार, लेखक हकुजु उई, सन् १९१७, पृ० ३–५। ८. टिप्पण ३ का ग्रन्थ, पृ० ७।

पञ्चशिख के सांख्य और वेदान्त के ग्रन्थ उन दिनों रचे जा चुके थे ।[1] पञ्चशिख के शिष्य थे-भार्गव, उलूक, वाल्मीकि, हारीत, देवल आदि ।[2] अतः चीनी ग्रन्थकार ठीक लिखते हैं कि उलूक पञ्चशिख को अपनी कुटी में ले गया । उद्योगपर्व १७७।२५ के अनुसार अम्बा उलूक के आश्रम में गई थी । उलूक भारतयुद्ध-काल का व्यक्ति था ।

ज्यौतिष संहिताएं—काश्यप और पराशर नामक ज्योतिष की संहिताएं तब बन चुकी थीं ।

उस काल के वाङ्मय का हम ने अत्यन्त संक्षिप्त दिग्दर्शन यहां कराया है। आधुनिक पाश्चात्य लेखकों ने इस सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियां फैला रखी हैं । उन का खण्डन अन्यत्र करेंगे । हां पाठकों को इतना स्मरण रखना चाहिए कि ईसा से ३००० वर्ष पहले भी पूर्वोक्त सब लेखक लगभग कालिदास ऐसी ही संस्कृत लिखते थे,

---

१. देखो प्रकाण्ड विद्वान् पं० ईश्वरचन्द्र का मुद्र्यमाण ग्रन्थ । वेदार्थ और आयुर्वेदादि के द्रष्टा और प्रवक्ताओं का अभेद ।

२. सांख्यसप्तति की माठरवृत्ति का चौखम्बा संस्करण, पृ० ८४ ।

भारत-युद्ध के पश्चात् से

आर्ष-काल के अन्त तक

समय—लगभग ३०० वर्ष

अठाईसवां अध्याय

प्रास्ताविक

सामग्री का अभाव—भारत-युद्ध तक के भारतीय इतिहास की सामग्री कुछ न कुछ सुरक्षित रही है। इस का एक कारण है। भारत-युद्ध तक अनेक ऋषि, मुनि हुए। आर्य लोग अपने ऋषियों का बड़ा आदर करते थे। उन का इतिहास सारे भारत के दायभाग में आया। अतः भारतोत्तर- काल के लेखक उन का नामोल्लेख करते रहे और जन-साधारण में भी उनके ग्रन्थों का मान बना रहा। रामायण, महाभारत और पुराणों को कथावाचकों ने जीवित रखा। वैदिक परंपरा को ब्राह्मण कण्ठस्थ करते रहे। इस प्रकार भारत-युद्ध तक का भारतीय इतिहास थोड़ा बहुत सुरक्षित रहा।

भारत-युद्ध-काल के कुछ ही पश्चात् आर्ष-काल समाप्त हो गया। अब प्रसिद्ध राजाओं का वर्णन राजकीय पण्डित ही कहीं कहीं अपने नाटकों में कर देते थे। राजाओं के इतिहास भी लिखे जाते थे, पर उन के लेखक वाल्मीकि और व्यास के पद को प्राप्त न कर सके। फलतः ये ग्रन्थ सारे भारत की सम्पत्ति नहीं बने। जन-साधारण भी उन के साथ अपना पूर्ण मैत्री-सम्बन्ध नहीं जोड़ सके। इन की प्रतिलिपियां थोड़ी ही होती रहीं। फिर भारत में दुःख के दिन आए, एक अन्धकार का युगारम्भ हुआ। मुसलमानी-राज्य के दिनों में साहित्य का अत्यधिक विनाश हुआ। लोगों ने इतिहास का विस्मरण सा कर दिया। अल्प प्रचलित ग्रन्थ अधिक नष्ट हुए। अनेक राजाओं के सरस्वती भाण्डार नष्ट कर दिये गए।

पुराण-सामग्री—इस अवस्था में भारतोत्तर-काल के इतिहास का आधार पुराण रह गए हैं। पुराणों की सामग्री कुछ अल्प प्रामाणिक नहीं है। हम अगले अध्याओं में बताएंगे कि पुराण-सामग्री बहुत विश्वसनीय है। कई लेखकों ने पुराणों के ऐतिहासिक तथ्यों को न समझ कर वृथा इन के विरुद्ध लिखा है। प्रतीत होता है पुराणों में कभी अनेक जनपदों की वंशावलियां थीं। वायु और मत्स्य में स्पष्ट लिखा है—

तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान् नृपान्। तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः ॥२६७॥
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः। अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह ॥२६८॥
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः। वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥२६९॥[1]

---

१. वायु, अध्याय ९९। मत्स्य ५०।७४–७६॥

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि अनेक क्षत्र, पारशव, शूद्र और ब्राह्मण आदि राजाओं के नाम इस समय पुराणों से लुप्त हो गए हैं। जब उन के नाम नहीं रहे, तो उन के वर्षों की संख्या के सम्बन्ध में कोई क्या कहे। ऋषियों ने सूत से पूछा—वर्षाग्रतोऽपि प्रब्रूहि[1] अर्थात् राजाओं का वर्ष-प्रमाण भी कहो। परन्तु यह वर्ष-प्रमाण अब लुप्त है। पुराणों में मगध, कोसल और हस्तिनापुर के वंशों के राजाओं का नामोल्लेख ही अब रह गया है। मगध के राजाओं का राज्य-काल तो लिखा है, पर शेष दो वंशों का राज्य-काल नहीं है।

हस्तिनापुर के पौरव-वंशीय राजाओं के नाम और राज्य-वर्ष या आयु-वर्ष अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं। उन सब ग्रन्थों का वर्णन आगे किया जाता है—

१. आईने अकबरी। यह अब्बुल फज़ल की कृति है। भाषा इस की फारसी है। इस की रचना सन् १६०० से पहले हुई थी। इस में सूबा देहली का वर्णन करते हुए हस्तिनापुर के कुछ राजाओं का उल्लेख किया गया है।[2]

२. खुलासतुत् तवारीख। यह भी फारसी भाषा में है। इस में देहली साम्राज्य का इतिहास है। इस का कर्ता पञ्जाबान्तर्गत बटाला-नगर-वासी मुंशी सुजानराय था। इस का रचना-काल था सन् १६६५। ग्रन्थकर्ता ने आईने-अकबरी की सहायता ली थी।

३. स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत सत्यार्थप्रकाश में इन्द्रप्रस्थ के राजाओं की वंशावली। इस का मूल विक्रम संवत् १७८२ या सन् १७२५ का था।[3]

४. कर्नल टाड-रचित राजस्थान। इस में पण्डित विद्याधर और पंडित रघुनाथ[4] रचित राजतरंगिणी के आधार पर पौरव-वंश के भारतोत्तर-काल के राजाओं के नाम लिखे हैं। कर्नल टाड का कथन है कि यह तरंगिणी सन् १७४० में एकत्र की गई थी।

५. संस्कृत भाषा में एक राजावलि थी। उस की बंगला भाषा में छाया संवत् १८६५ में छपी थी। उस में इन्द्रप्रस्थ के राजाओं के नाम हैं। हरगौरीसंवाद में भी इन्द्रप्रस्थ के वंश का उल्लेख है।[5]

६. इन के अतिरिक्त हमारे पास एक पुरातन-पत्र है। वह हमारे मित्र श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने बनारस से हमारे पास भेजा था। उस पर भी पुराणस्थ वंशावली, उन राजाओं के प्रचलित नाम और उन के राज्य के वर्ष लिखे हैं। यह पत्र ५० वर्ष पुराना होगा।

---

१. वायु ६६।२६१॥

२. हम ने इस का उल्लेख इस लिए किया है कि संख्या २ के लेखक का यह मूलाधार है।

३. एकादश समुल्लास का अन्त।

४. आश्चर्य है सन् १६९५ में लिखने वाला मुं० सुजानराय भी पंडित रघुनाथ की राजतरंगिणी का उल्लेख करता है। देखो, खुलासतुत् तवारीख पृ० ७। क्या कर्नल टाड ने भूल से उस का काल सन् १७४० लिखा है, या सुजानराय ही सन् १६६५ के बहुत पश्चात् हुआ।

५. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, सितम्बर, १९४२, पृ २४८, २४९।

इस प्रकार पुराणस्थ वंशावली के राजाओं के काल का सब से पहला उपलब्ध-वर्णन मुंशी सुजानराय का है। संभव है उस की आईने-अकबरी की प्रति में यह वर्णन हो, परन्तु मुद्रित आईने-अकबरी में यह नहीं है। इन राजाओं के काल-मान का मूल स्रोत क्या था, यह हम नहीं जान सके।

जीवन-काल, राज्य-काल नहीं—क्षेमक अन्तिम पौरव राजा था। युधिष्ठिर से क्षेमक तक १५०० वर्ष काल बीता था। सुजानराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, टाड, और हमारे पत्र के अनुसार इस काल की अवधि १७०० वर्ष के लगभग है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने परिक्षित् का राज्य-काल ६० वर्ष लिखा है। यह वस्तुतः परिक्षित् का जीवन-काल था। अतः हम कह सकते हैं कि इन वंशावलियों में प्रारम्भ के कई राजाओं का राज्य-काल न देकर उन का जीवन-काल दिया है। संस्कृत राजावलि के अनुसार महाराज क्षेमक तक कलि के १८१२ वर्ष बीते थे।

नीचे हम इन भिन्न भिन्न ग्रन्थों के अनुसार पौरव-वंशीय राजाओं के नाम लिखते हैं—

पुराण	खुलास०	सत्यार्थप्रकाश	टाड
१. युधिष्ठिर	युधिष्ठिर	युधिष्ठिर	...
२. परिक्षित्	परिक्षित्	परिक्षित्	परिखित
३. जनमेजय	जनमेजय	जनमेजय	जनमेजय
४. शतानीक	....	....	....
५. सहस्रानीक[1]	....	....	... ...
६. अश्वमेधदत्त	अस्मुन्द	अश्वमेध	अस्मुन्द
७. अधिसीमकृष्ण	अधन	द्वितीय राम	अधुन
८. निचक्षु	महाजसी	छत्रमल	महजुन
९. उष्ण	....	....	....
१०. चित्ररथ	जसरथ	चित्ररथ	जेसरित
११. शुचिद्रथ	दश्तवान	दुष्टशैल्य	देहतवन
१२. वृष्णिमान्	उग्रसेन	उग्रसेन	उग्रसेन
१३. सुषेण	सुरसेन	शूरसेन	....
१४. सुनीथ	सुसतसेन	भुवनपति	सुतुशाम
१५. रुच	रस्मी	रणजीत	रेश्मराज
१६. नृचक्षु	वृच्छल	ऋक्षक	बचिल
१७. सुखिबल	सोनपाल	सुखदेव	सुतपाल

१. पार्जिटर के पाठ में यह नाम नहीं है। भागवतपुराण, हमारे बनारस के पत्र और कथासरित्सागर में यह नाम मिलता है।

१८. परिप्लव	नरहरदेव	नरहरिदेव	नरहरदेव
....	सुजृत[1]	सुचिरथ[1]	जेसरित[1]
....	भूप[1]	शूरसेन दूसरा[1]	भूपट[1]
१९. सुनय	सूबन	पर्वतसेन	शेववंश
२०. मेधावी	मेधावी	मेधावी	मेदावी
२१. नृपञ्जय	स्रवनचित्र	सोनचीर	श्रवण
२२. दुर्व	भीकम	भीमदेव	कीकन
२३. तिग्मात्मा	....	नृहरिदेव	....
२४. बृहद्रथ	पधारत	पूर्णमल	पुद्वरुत
२५. वसुदान	वसदान	करदवी	दस्सुनुम
२६. शतानीक	....	अलंमिक	....
२७. उद्यन	ऊनी	उदयपाल	अदेलिक
२८. वहीनर	एनीपर=नरवान ?	दुवनमल	हुन्तवर्णु
२९. दण्डपाणि	दण्डपाल	दमात	दुन्दपाल
....	दरसाल	....	दुन्सल
३०. निरमित्र	शम्बाक	भीमपाल	शेनमल
३१. क्षेमक	खेम	क्षेमक	खेमराज

इन नामों की तुलना—इन नामों की तुलना से सुजानराय और टाड का एक ही मूल ज्ञात होता है। सत्यार्थप्रकाश का इन से थोड़ा सा भेद है। परन्तु अन्त में उन दोनों और सत्यार्थप्रकाश का भी एक ही मूल हो जाता है। यह बात संख्या १८ से आगे के प्रक्षिप्त-नामों के देखने से विदित हो जायगी। ध्यान रखना चाहिए कि सुजानराय आदि के अधिकांश नाम पुराणस्थ नामों के अपभ्रंश हैं। इस प्रकार इन सब वंशावलियों का मूल पुराण-पाठ हैं।

तीन सौ वर्ष का पहला युग—युधिष्ठिर से लेकर अधिसीमकृष्ण तक के इतिहास को हम ने एक युग में रखा है। अधिसीमकृष्ण के काल में ऋषि लोग नैमिष में एक दीर्घ सत्र कर रहे थे। तब मूल पुराण-संहिताएं बनीं और अन्य अनेक ग्रन्थ रचे गए। तभी आर्ष-काल का अन्त हुआ। पुराणों में मागध-राजाओं का राज्य-काल लिखा है। अधिसीमकृष्ण के समय में मगध पर सेनाजित् राज्य कर रहा था। भारत-युद्ध से उस तक का काल जब दीर्घसत्र हो रहा था, निम्नलिखित क्रम से है—

सोमाधि	५८ वर्ष
श्रुतश्रवा	६४ ,,

१. ये नाम भूल से दोहराए गए हैं। तुलना करो संख्या १०, ११ और १३।

अयुतायु	२६ ,,
निरमित्र	४० ,,
सुक्षत्र	५६ ,,
बृहत्कर्मा	२३ ,,
सेनाजित्	२३ ,,
नैमिष के दीर्घसत्र तक	२९० वर्ष[1]

मत्स्य के पाठ से हम जानते हैं कि सेनाजित् ने कुल ५० वर्ष राज्य किया। अर्थात् पुराण-श्रवण के २७ वर्ष पश्चात् तक सेनाजित् राज्य करता रहा। प्रतीत होता है आर्ष-काल धीरे धीरे लुप्त हो रहा था। मन्त्र-द्रष्टा ऋषि भारतयुद्ध तक समाप्त हो गए थे, पर वैदिक-ग्रन्थों का संकलन करने वाले ऋषि थोड़े बहुत चले आ रहे थे। उनका भी इस दीर्घ-सत्र के पश्चात् अन्त होता गया। इस विचार से हम ने इस युग को आर्ष-काल का अन्त लिखा है।

१. यह गणना पार्जिटर के पाठों के अनुसार है। अधिक सामग्री मिलने पर इस में थोड़ा सा अन्तर हो सकता है।

उनतीसवां अध्याय

सम्राट् युधिष्ठिर = अजातशत्रु

राज्य-समय ३६ वर्ष

युधिष्ठिर-अभिषेक—अर्जुन, भीम और युयुधान-सात्यकि के बाहुबल से तथा श्रीकृष्ण की अपार नीति और दूरदर्शिता के कारण पाण्डव-युधिष्ठिर भारतयुद्ध में विजयी हुआ। विजय के पश्चात् युधिष्ठिर हस्तिनापुर के सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। उस का मन उदास था। इतने भारी जन-संहार का प्रभाव हुए बिना न रहा। व्यास आदि विद्वानों ने अश्वमेध की अनुमति दी।

परिक्षित्-जन्म—युद्ध के कुछ काल पश्चात् परिक्षित् का जन्म हुआ।

अश्वमेध—यह अश्वमेध युद्ध के लगभग दो वर्ष पश्चात् चैत्र में हुआ।[1] यज्ञिय अश्व की रक्षा का भार अर्जुन पर था। अर्जुन के साथ याज्ञवल्क्य का एक शिष्य भी था।[2] इस अश्वमेध यज्ञ के समय युधिष्ठिर के समकालीन निम्नलिखित राजा थे।

१. त्रिगर्त	सूर्यवर्मा	६. चेदी	शरभ
२. प्राग्ज्योतिष	वज्रदत्त	७. दशार्ण	चित्राङ्गद
३. सैन्धव	सुरथ	८. निषाद	एकलव्य-पुत्र
४. मणलूर	पाण्डव बभ्रुवाहन	९. द्वारका	उग्रसेन
५. मगध, राजगृह	मेघसन्धि	१०. गान्धार	शकुनि-पुत्र

इन में से मागध मेघसन्धि पुराणों का सोमाधि प्रतीत होता है। त्रिगर्तों का सूर्यवर्मा अर्जुन से मारा गया। संभवतः धृतवर्मा तब त्रिगर्त-राज बना।[3]

राज्य प्रबन्ध—युधिष्ठिर के १८ मुख्याध्यक्ष थे। वे कर्मस्थानी भी कहाते थे।[4] इन का थोड़ा सा उल्लेख महाभारत में है।[5] महाबुद्धि विदुर युधिष्ठिर का प्रधान मन्त्री और षाड्गुण्य का चिन्तक था।

धृतराष्ट्र-प्रस्थान—युधिष्ठिर को राज्य करते करते १५ वर्ष हो गए थे। धृतराष्ट्र का मन बहुधा उद्विग्न हो जाता था। अन्त को इसी पन्द्रहवें वर्ष के अन्त में धृतराष्ट्र ने वानप्रस्थ होने का दृढ़ संकल्प कर लिया।[6]

---

१. आश्वमेधिकपर्व ८२।२३॥८३।२८॥
२. आश्वमेधिकपर्व ७३।१७॥
३. आश्वमेधिकपर्व ७४।१७—२६॥
४. राजतरंगिणी १।१२०॥
५. शान्तिपर्व अध्याय ४०।
६. आश्रमवासिकपर्व ३।१३—४०॥

अर्थशास्त्रवित् बह्वृच शाम्बव्य—कुरुजाङ्गल राज्य में धृतराष्ट्र और गान्धारी के प्रस्थान की घोषणा कर दी गई। तब प्रीतमना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र राजधानी में एकत्र हुए। उन सब का आगमन सुन कर धृतराष्ट्र अपने प्रासाद से बाहर आया। सब प्रजा-वर्ग के सामने धृतराष्ट्र ने एक अत्यन्त करुणाजनक और गम्भीर वक्तृता दी।[1] संसार भर के इतिहास में ऐसी वक्तृताएं आर्य राजाओं ने ही कभी की हैं। वर्तमान संसार उस भाव को समझने में भी कुछ देर लगाएगा।

अब प्रजा-गण ने उत्तर देना था। उत्तर का भार अर्थशास्त्र विशारद बह्वृच शाम्बव्य पर डाला गया।[2] उस ने यथार्थ रूप से अपने कर्तव्य का पालन किया। यह शाम्बव्य बह्वृच चरण के श्रौत और गृह्य का कर्ता था।[3]

शेष इक्कीस वर्ष—इस के पश्चात् इक्कीस वर्ष तक युधिष्ठिर ने धर्मपूर्वक प्रजा-पालन किया। तब कृष्ण का देहावसान और यादवों का नाश सुन कर युधिष्ठिर ने भी महाप्रस्थान का विचार दृढ़ कर लिया। तब निम्नलिखित राजकुमार भिन्न भिन्न जनपदों के राजा बनाए गए।

१. हार्दिक्य=कृतवर्मा का पुत्र	मृत्तिकावत में
२. अश्वपति	खाण्डवारण्य में
३. कृष्ण-पौत्र वज्र	इन्द्रप्रस्थ में
४. परिक्षित्	हस्तिनापुर में

कृष्ण-पौत्र वज्र—विष्वक्सेन-कृष्ण और सत्यभामा के नौ पुत्र और चार कन्याएं थीं।[4] इन में से एक पुत्र अश्व था। इस अश्व का युधिष्ठिर-कन्या सुतनु से विवाह हुआ।[5] अश्व और सुतनु का पुत्र वज्र था।[5] इन का और वंशकर पाण्डव अर्जुन का वंश-वृक्ष नीचे लिखा जाता है—

१. कृष्ण	अर्जुन
२. अश्व	अभिमन्यु
३. वज्र	परिक्षित्
४. प्रतिबाहु	जनमेजय
५. सुचारु	

२. परिक्षित् द्वितीय—राज्य २४ वर्ष

बाल्य काल—भारत-युद्ध के कुछ मास पश्चात् परिक्षित् का जन्म हुआ। कृपाचार्य अभी जीवित थे। उन्हीं से परिक्षित् ने धनुर्विद्या सीखी।[6]

---

१. आश्रमवासिकपर्व ९।१४—१०।१९॥ २. आश्रमवासिकपर्व ११। १०—१२॥

३. देखो, हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ११५।

४. वायु ९६।२३८—२४०॥ ५ वायु ९६।२५०, २५१॥ ६. आदिपर्व ४५।११॥

विवाह—परिक्षित् का विवाह माद्रवती नाम की किसी राजकुमारी से हुआ।[1] परिक्षित् और माद्रवती का पुत्र जनमेजय तृतीय था। इस के अतिरिक्त उस के तीन और पुत्र थे।[2]

राज्य-काल—महाभारत में एक स्थान पर परिक्षित् को ६० वर्ष तक प्रजापालन करने वाला लिखा है।[3] इस से कुछ श्लोक आगे लिखा है कि मृत्यु-समय परिक्षित् की आयु ६० वर्ष की थी,[4] और वह जरान्वित था। यहां जरान्वित पाठ खटकता है। उन दिनों ६० वर्ष में लोग वृद्ध नहीं होते थे। इस से पहले लिखा है कि बाल-जनमेजय ही राजा बना था।[5] इस से ज्ञात होता है कि मृत्यु-समय परिक्षित् ६० वर्ष से अधिक का नहीं होगा।

विष्णु-पुराण-निर्माण—विष्णु-पुराण नाम के कभी कई ग्रन्थ थे। वर्तमान विष्णु-पुराण में लिखा है कि एक विष्णु-पुराण परिक्षित् के काल में बना था।[6]

मृत्यु—परिक्षित् को मृगया का स्वभाव हो गया। उस के राज्य का भार मन्त्रियों पर रहता था।[7] २४ वर्ष राज्य पालन करके अर्थात् ६० वर्ष की आयु में परिक्षित् परलोक सिधारा।

३. जनमेजय तृतीय=अमित्रघात

राज्याभिषेक—परिक्षित् की मृत्यु के समय जनमेजय लगभग १५ या १६ वर्ष का होगा।[8] महामुनि व्यास लिखता है कि उस समय वह बाल या शिशु था।[8] इस छोटी आयु में ही उस का अभिषेक हुआ।

विवाह—मन्त्रि-मण्डल की सम्मति से जनमेजय का विवाह वपुष्टमा से हुआ।[9] वह काशिराज सुवर्णवर्मा की कन्या थी।[9] उस समय जनमेजय की आयु बीस से पचीस वर्ष के मध्य में होगी। प्रतीत होता है जनमेजय की एक ही पत्नी थी।

कुरुक्षेत्र का दीर्घ-सत्र—जनमेजय के तीन भाई थे।[10] नाम थे उन के श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन।[10] उन के साथ जनमेजय ने कुरुक्षेत्र में दीर्घ-सत्र किया।

हस्तिनापुर को प्रत्यागमन—दीर्घ-सत्र की समाप्ति पर महाराज हस्तिनापुर को लौटा।[11]

---

१. आदिपर्व ३।१॥ २. आदिपर्व ६०।९३॥ ३. आदिपर्व ४५।१५॥
४. आदिपर्व ४५।२३॥ ५. आदिपर्व ४५।१६॥
६. योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः परिक्षित्। विष्णु ४।२१।२॥
७. आदिपर्व ४५।२०॥
८. नृपं शिशुं तस्य सुतं प्रचक्रिरे समेत्य सर्वे पुरवासिनो जनाः।
नृपं यमाहुस्तम् अमित्रघातिनं कुरुप्रवीरं जनमेजयं जनाः ॥६॥
स बाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः·········॥७॥ आदिपर्व, अध्याय ४०।
बाल एवाभिजातोऽसि सर्वभूतानुपालकः ॥१६॥ आदिपर्व, अध्याय ४५।
९. आदिपर्व ४०।८॥ १०. आदिपर्व ३।१॥ ११. आदिपर्व ३।१०॥

पुरोहित—महाराज के राज्य में एक ऋषि श्रुतश्रवा नाम का रहता था। जनमेजय ने उस के पुत्र सोमश्रवा को अपना पुरोहित बनाया।[१]

तक्षशिला-आक्रमण—अपने भाइयों को सोमश्रवा का आज्ञाकारी रहने का आदेश कर के जनमेजय ने तक्षशिला पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया। तक्षशिला पहुँच कर उस ने अपने शत्रुओं को पराजित किया और अमित्रघात पद पाया। तक्षशिला का प्रदेश कौरव-राज्य में सम्मिलित हुआ।

तक्षक-नाग को मारने की प्रेरणा—जिस समय महाराज तक्षशिला को गया, उस समय की एक वार्ता है। धौम्य आयोद नामक ऋषि के तीन शिष्य थे। नाम थे उन के उपमन्यु, आरुणि और वेद।[२] दीर्घ-काल तक गुरुगृह-वास कर के वेद गृहस्थ हुआ।[३] अब वेद उपाध्याय-कार्य करने लगा। उस के तीन शिष्य हुए।[४] उन में से एक उत्तङ्क था। इस वेद ब्राह्मण को महाराज जनमेजय और राजा पौष्य ने अपना उपाध्याय वरा।[५] जब उत्तङ्क विद्या पढ़ चुका, तो गुरुभार्या ने पौष्य की स्त्री के कुण्डल लाने के लिए उसे कहा।[६] रानी ने कहा कि नागराज तक्षक भी इन्हें चाहता है।[७] जब उत्तङ्क कुण्डल ला रहा था तो तक्षक ने कुण्डल लेने का यत्न किया। परन्तु कुण्डल लेकर उत्तङ्क गुरुकुल में आ ही पहुँचा।

उत्तङ्क हस्तिनापुर आया—तक्षक के इस कर्म से उत्तङ्क क्रुद्ध हुआ। गुरुभार्या को कुण्डल देकर गुरु वेद की अनुमति से उत्तंक हस्तिनापुर आया।[८] जनमेजय तक्षशिला को विजय कर के वहां से लौट आया था।[९] सम्भव है उसे लौटे कई वर्ष हो गए हों।

उत्तंक ने मन्त्रि-मण्डल के सामने राजा को कहा—"आप तक्षक-नाग को दण्ड दें, उस ने आप के पिता को मारा था। वह मेरा भी अप्रिय करना चाहता था। आप उस के वध के लिए सर्प-सत्र करें।[१०]

तक्षशिला में सर्प-सत्र—महाराज ने उत्तंक की बात मान ली। तक्षशिला में सर्प-सत्र के करने का निश्चय हुआ। तक्षशिला इस कार्य के लिए उपयुक्त स्थान था।[११] सर्प-सत्र में नाना जनपदों के राजा आए थे।[१२] वे नागों के विरुद्ध किए गए युद्धों में जनमेजय के सहायक हुए होंगे। इस सर्प-सत्र के समय महाभारत की कथा सर्व-प्रथम सुनाई गई। भारत सुनाने की आज्ञा व्यास ने की और वैशम्पायन ने कथा सुनाई।[१३]

सर्प-सत्र का अन्त—आस्तीक ने यह नाग-यज्ञ समाप्त कराया।[१४] नाग-लोग इस संहार से भयभीत हो रहे थे। आस्तीक की माता नाग-कन्या थी। इस कारण आस्तीक ने अपने मातृ-

---

१. आदिपर्व ३।११–१६॥
२. आदिपर्व ३।१९॥
३. आदिपर्व ३।८१॥
४. आदिपर्व ३।८३
५. आदिपर्व ३।८५॥
६. आदिपर्व ३।१००॥
७. आदिपर्व ३।११६॥
८. आदिपर्व ३।१७७॥
९. आदिपर्व ३।१७९॥
१०. आदिपर्व ३।१८९–१९५॥
११. स्वर्गारोहणपर्व ५।३३॥
१२. आदिपर्व ५४।६॥
१३. आदिपर्व, अध्याय ५४।
१४. आदिपर्व, अध्याय ४९।

कुल का कल्याण किया। नागराज वासुकि का कुल ही उस का मातृकुल था। वहां से राजा हस्तिनापुर को आ गआ।[1]

सर्प-सत्र का काल—यह यज्ञ जनमेजय के विवाह के लगभग १६,१७ वर्ष पश्चात् हुआ होगा। आदिपर्व ४०।१ अन्तर्गत—एतस्मिन्नेव काले—का यही अर्थ है कि आस्तीक-पिता जरत्कारु ने जनमेजय के विवाह के पश्चात् विवाह किया। सर्प-सत्र के समय आस्तीक बाल था।[2] उस की आयु तब १५,१६ वर्ष की होगी।

सर्प-सत्र के ऋत्विज और सदस्य—उस यज्ञ में होता का काम चण्डभार्गव ने किया। वह वेद जानने वालों में श्रेष्ठ था। सामग उद्गाता वृद्ध जैमिनि था। अध्वर्यु बोधि-पिङ्गल था। शार्ङ्गरव ब्रह्मा था। व्यास भी अपने पुत्र शुक के साथ वहीं विराजमान था।[3]

चण्ड-भार्गव और अविमारक—जिस चण्ड-भार्गव ने जनमेजय के सर्प-सत्र में होता का काम किया, वही चण्ड-भार्गव अविमारक-नाटक में सौवीर-राज को शाप देने वाला प्रतीत होता है। इस बात का संकेत हम पृ० १५४ पर कर चुके हैं।

शौनक का बारह वर्ष का सत्र—सर्प-पत्र के समय नैमिषारण्य में भार्गवकुल का शौनक एक दीर्घ-सत्र कर रहा था। यह बारह वर्ष का सत्र था।[4] लोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवा सूत सर्प-सत्र के समाप्त होने के पश्चात् इस यज्ञ में आया।[5] वह कुलपति शौनक और दूसरे ऋषियों से मिला। यहां पर उस ने महाभारत-कथा सुनाई।

दो अश्वमेध-यज्ञ—पुराणों में लिखा है कि महाराज जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञ किए।[6] महाभारत और हरिवंश में एक अश्वमेध का कथन है। प्रतीत होता है महाभारत और हरिवंश बनने के पश्चात् दूसरा अश्वमेध हुआ। परन्तु हरिवंश में दूसरे अश्वमेध की कथा का आभास मिलता है।

त्रिखर्वी जनमेजय—वायु-पुराण में लिखा है कि जनमेजय त्रिखर्वी था।[7] एक खर्व अश्मकमुख्यों का, एक खर्व अङ्ग-निवासियों का और एक खर्व मध्य देश वालों का था। क्या इस का यह अभिप्राय है कि जनमेजय की वार्षिक आय तीन खर्व थी?

युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भी एक त्रिखर्व-राजा उपस्थित था।[8] सभापर्व के एक दूसरे स्थान से निश्चित होता है त्रिखर्व एक मान है। यह त्रिखर्व शब्द वहां बलि का विशेषण है।[9] वेद की एक त्रिखर्व शाखा ताण्ड्य-ब्राह्मण में वर्णित है।[10]

सन्तान—महाभारत के अनुसार जनमेजय के दो पुत्र थे, शतानीक और शङ्कु अथवा शङ्कुकर्ण।[11] हरिवंश में जनमेजय के पुत्रों के नाम चन्द्रापीड नृपति और सूर्यापीड-मोक्षवित्

---

१. हरिवंश, भविष्यपर्व ५।९॥ २. आदिपर्व ४४।४६॥
३. आदिपर्व ४८।५–७॥ ४. आदिपर्व १।१॥४।१॥ ५. आदिपर्व १।२॥
६. द्विरश्वमेधमाहृत्य—वायु ९९।२५४॥ मत्स्य ५०।६३॥ ७. ९९।२५५॥
८. सभापर्व ७८।७॥ ९. सभापर्व ७६।३४॥ १०. ताण्ड्य २।८।३॥
११. आदिपर्व ९०।९४॥

लिखे हैं।[1] और यदि कथासरित्सागर की एक कथा में अणुमात्र भी सत्य है तो जनमेजय की परपुष्टा नाम की एक कन्या भी थी।[2] उस का विवाह मद्रान्तर्गत शाकल-राजधानी में रहने वाले सूर्य-प्रभ से हुआ था।

ब्राह्मणों से कलह—प्रतीत होता है कृष्ण-यजुर्वेदीय ब्राह्मणों से राजा की कलह हो गई। जनमेजय ने पहली बार वाजसनेय ब्राह्मणों को अपना पुरोहित बनाया। इस पर कृष्ण-यजुर्वेदीय वैशंपायन से उस का वैमनस्य हो गया। कौटल्य ने भी इस घटना का संकेत किया है।[3]

मृत्यु—वायुपुराण के अनुसार इस कलह के फलस्वरूप राजा क्षय को प्राप्त हुआ।[4] मत्स्य में लिखा है कि राजा वन को चला गया।[5] प्रतीत होता है ये दोनों ही वर्णन ठीक हैं। यज्ञ के पश्चात् खिन्न-मना राजा वन को गया और वहां पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। गार्गी-संहिता में भी हरिवंश-प्रदर्शित घटना का और राजा के खिन्न होकर मरने का उल्लेख है।[6] हरिवंश भविष्यपर्व षष्ठ अध्याय के अनुसार वह सुख-पूर्वक प्रजा का पालन करता रहा। इस से भी ज्ञात होता है कि हरिवंश में एक अश्वमेध का मूल में उल्लेख था। दूसरे अश्वमेध की घटनाओं का आभास पीछे से मिला है।

जनमेजय के ताम्रपत्र—मैसूर रियासत में से महाराज जनमेजय के तीन ताम्रपत्र मिले थे। उनकी भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है। बी० लीविस राईस के अनुसार ये ताम्रपत्र ग्यारहवीं शताब्दी ईसा के हैं। ताम्रपत्रों में लिखा है कि ये पत्र पाण्डव-कुल और सोमवंशीय महाराज परिक्षित्-पुत्र जनमेजय के हैं। एक ताम्रपत्र ८९ युधिष्ठिर शक का है। इन ताम्रपत्रों के सम्बन्ध में देर तक विवाद होता रहा। कई लेखकों का मत है कि ये ताम्रपत्र कल्पित हैं।[7]

ये पत्र मूल ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि हैं—यह हम भी नहीं मानते कि ये ताम्रपत्र महाराज जनमेजय के उत्कीर्ण कराए हुए हैं, परन्तु यह संभव है कि ये पत्र मूल ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि हों।[8]

---

१. भविष्यपर्व १।३॥ २. ८।१॥ पृ० २०४,२०६॥
३. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ६। ४. वायु ९९।२५५॥ ५. मत्स्य ५०।६४॥
६०. क्षरविप्रकृतामर्षः कालस्य वशमागताः।७। गार्गीसंहिता, बिहार उड़ीसा रीसर्च जर्नल, सन् १९२८, पृ० ४००।
७. Mysore, A Gazeteer compiled for Government, By B. Lewis Rice, Vol. 1. सन् १८९७। देखो पृ० २८५, २८६।
८. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग प्रथम, पृ० ६७ पर एक पुरातन ईरानी लेख का वर्णन है। यूनानी भाषा में उस की एक उत्तरकालीन प्रतिलिपिमात्र अब मिलती है। उस लेख की सत्यता में अध्यापक इ. जे. रैपसन को कोई सन्देह नहीं हुआ। फिर भारतीय इतिहास में ठीक वैसी बातों के सम्बन्ध में सन्देह किए जाएं, यह दुराग्रहमात्र है।

यदि ऐसी बात हो तो कहना पड़ेगा कि या तो दान-प्रतिग्रहीता जनमेजय के यज्ञों में गए होंगे, अथवा यह दान उन्हें अश्मकों द्वारा पहुँचा होगा। अश्मकों का जनमेजय के साथ सम्बन्ध था, यह पहले पृ० २२३ पर लिखा जा चुका है।

आयु—सत्यार्थप्रकाश की वंशावली के अनुसार जनमेजय की आयु ८४ वर्ष ७ मास और २३ दिन थी। हमारे बनारस वाले पत्रे के अनुसार वह ८४ वर्ष ३ मास और १३ दिन का था। सुजानराय ने ४४ वर्ष लिखे हैं। यह राज्यकाल हो सकता है।

४. शतानीक प्रथम

राज्य-प्राप्ति—जनमेजय ने देर तक राज्य किया। उस का राज्यकाल ६५-७० वर्ष के मध्य में होगा। इस से ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक के समय शतानीक बड़ी आयु का होगा। जनमेजय के तक्षशिला-वास और भारत-श्रवण के समय शतानीक ७, ८ वर्ष का होगा। वह कहता है—"पिता की गोद में बैठ कर मैंने भारत सुना था।"[1] अनुमान किया जा सकता है कि वह अभिषेक के समय लगलग ५५ वर्ष का होगा।

शिक्षा—विष्णुपुराण में लिखा है कि शतानीक ने कृपाचार्य से अस्त्रविद्या सीखी और याज्ञवल्क्य से वेद पढ़ा।[2] ये दोनों मुनि तब जीते होंगे। जनमेजय के प्रकरण में हम लिख चुके हैं कि जनमेजय ने कृष्ण-यजुर्वेदीय ब्राह्मणों से कलह कर लिया। अतः शुक्ल-यजुर्वेदीय याज्ञवल्क्य का उस के पुत्र को पढ़ाना असंगत नहीं है। शतानीक ने शौनक से आत्मोपदेश लिया था।[3] शौनक ने ही उसे ययातिचरित सुनाया था।[4] यह चरित सुन कर शतानीक ने उसे विपुल धन दिया।[5] शतानीक अत्यन्त पवित्र चरित्र का व्यक्ति था।

विवाह—महाभारत के अनुसार शतानीक का विवाह एक वैदेही से हुआ।[6] भास के स्वप्नवासवदत्ता नाटक में शतानीक द्वितीय की पत्नी को भी वैदेही लिखा है। यह बात कुछ खटकती है।

सत्यार्थप्रकाश आदि की सब वंशावलियों में शतानीक नाम नहीं है।

५. सहस्रानीक

सहस्रानीक को थोड़े ही दिन राज्य करने का अवसर मिला होगा। इसलिए भागवत के अतिरिक्त दूसरे पुराणों में उस का नाम नहीं मिलता। कथासरित्सागर में सहस्रानीक का नाम मिलता है।

६. अश्वमेधदत्त

यह नाम वास्तविक नाम हो सकता है और नहीं भी। जनमेजय के प्रथम या द्वितीय अश्वमेध-यज्ञ के कुछ दिन पश्चात् इस का जन्म हुआ होगा। इस कारण इस का नाम

---

१. भारतं तु श्रुतं विप्र तातस्याङ्कगतेन तु। भविष्यपुराण १।१।६७॥

२. विष्णु ४।२१।४॥ ३. विष्णु ४।२१।४॥ ४. मत्स्य २५।४,५॥

५. मत्स्य ४३।१,२॥ ६. आदिपर्व ९०।९५॥

या अपरनाम अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेध का राज्य लम्बा हुआ होगा। सत्यार्थप्रकाश में इस के ८२ वर्ष ८ मास और २२ दिन लिखे हैं। सुजानराय ने ८८ वर्ष और २ मास लिखे हैं। इन दोनों का भेद मूल के २ और ८ के अंकों के उलटा पढ़े जाने के कारण हुआ है।

७. अधिसीमकृष्ण

अभिषेक—अश्वमेधदत्त ने लम्बा राज्य किया। उस के पश्चात् अधिसीमकृष्ण राजा हुआ।

नैमिषारण्य वालों का दीर्घ-सत्र—इस के राज्य-काल में नैमिषारण्य-वासी ऋषियों ने एक दीर्घ-सत्र आरम्भ किया।[1] यह यज्ञ कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर हुआ।[1] उस यज्ञ में राजा भी सम्मिलित थे।[2] अनेक ब्रह्मवादी भी वहां थे।[3] इस के पश्चात् शनैः शनैः ऋषियों का अभाव हो गया।

गृहपति शौनक—इस यज्ञ में गृहपति शौनक उपस्थित था। वह सर्वशास्त्र विशारद था।[4]

ऋक्-प्रातिशाख्य-निर्माण—गृहपति शौनक एक दीर्घ-जीवी ऋषि था। वह शतानीक का गुरु था। जनमेजय-काल में भी वह जीवित था। इस सत्र के समय उस की आयु लगभग २०० वर्ष होगी। बहुत संभव है उस सर्वशास्त्र-विशारद शौनक ने इसी काल में ऋक्प्रातिशाख्य का उपदेश किया हो। विष्णुमित्र अपनी वृत्ति में परम्परागत एक पुरातन श्लोक उद्धृत करता है—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः। दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके॥

अर्थात् ऋक् पार्षद का यही शास्त्रावतार है।[5] उन्हीं दिनों इस गृहपति शौनक ने बृहद्देवता आदि ग्रन्थ लिखे और लिखवाए होंगे। यास्क भी तब अपना निरुक्त रच चुका था। शौनक अपने प्रातिशाख्य में उस का स्मरण करता है।[6]

पुराण-संकलन—अधिसीमकृष्ण के राज्य में पुराण-संकलन हुआ। वृद्ध सूत लोमहर्षण कुरुक्षेत्र में पहुँचा। तब उसने ऋषियों को वंश सुनाए। वे वंश पीछे पुराणरूप में संकलित हुए। दीर्घ-सत्र के पांचवें वर्ष में मत्स्य सुनाया जा रहा था।[7]

कृष्ण द्वैपायन व्यास तब यह नश्वर शरीर त्याग चुका था। इस दीर्घसत्र के समय भगवान् व्यास इस लोक में नहीं था। ऋषि सूत को कहते हैं कि "हे सूत आप ने व्यास को प्रत्यक्ष देखा है।"[8] इस से ज्ञात होता है कि उन से पहले ही व्यास जी देह त्याग चुके थे। प्रतीत होता है जनमेजय के काल की समाप्ति पर व्यास जी ने देह त्यागी होगी।

चरित्र—अधिसीमकृष्ण महायशा, विक्रान्त, अनुपम शरीर वाला और धर्म-पूर्वक प्रजापालक था।[9]

---

१. वायु १।१३—१५॥ २. ब्रह्माण्ड १।१।२०॥

३. वायु १।२७॥ ४. वायु १।२३॥

५. विष्णुमित्र की वृत्ति, ऋग्वेद प्रातिशाख्य, डा० मंगलदेव का संस्करण, पृ० २।

६. ऋक्प्रा० १७।४२॥ ७. मत्स्य ५०।६६,६७॥

८. वायु ४।१॥ ब्रह्माण्ड १।१।३३॥ ९. मत्स्य ५०।६६॥ वायु १।१२॥

तीसवां अध्याय

इक्ष्वाकु-वंश

चौबीस इक्ष्वाकु-राजा[1]

१. बृहत्क्षत्र = बृहत्क्षय—कोसल-राज बृहद्बल भारत-युद्ध में मारा गया। उस का एक पुत्र सुक्षत्र भी भारत-युद्ध में लड़ा था।[2] भारत-युद्ध के पश्चात् बृहत्क्षत्र या बृहत्क्षय अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठा। पार्जिटर के एकत्र किए पाठान्तरों में विष्णु का एक पाठ बृहत्क्षेत्र है। उस से हम ने बृहत्क्षत्र पाठ का अनुमान किया है। सुक्षत्र नाम भी इस पाठ का संकेत करता है।

२. उरुक्षय—उरुक्षय बृहत्क्षय का पुत्र था।

३. वत्सव्यूह—उरुक्षय-पुत्र वत्सव्यूह था।

४. प्रतिव्योम—वत्सव्यूह के पश्चात् प्रतिव्योम राजा हुआ।

५. दिवाकर—प्रतिव्योम का पुत्र दिवाकर था।

अयोध्या-राजधानी—दिवाकर के विषय में पुराणों में लिखा है कि वह मध्यदेशान्तर्गत अयोध्या नगरी में रहता था।[3]

श्रावस्ती और अयोध्या की समस्या—गौतम-बुद्ध का समकालीन इक्ष्वाकु राजा प्रसेनजित् था। बौद्ध-ग्रन्थों में और कथासरित्सागर में उसे श्रावस्ती-राजधानी में रहने वाला लिखा है। प्रसेनजित् दिवाकर के कुल में था। दिवाकर के कुल वालों ने कब अपनी राजधानी बदली, यह जानने योग्य है।

अधिसीमकृष्ण और दिवाकर—दिवाकर अधिसीमकृष्ण का समकालीन था। दिवाकर के काल में शौनक आदि का द्वितीय दीर्घ-सत्र हो रहा था। भारत-युद्ध के पश्चात् दिवाकर पांचवां राजा लिखा गया है। हमारा अनुमान है इस वर्णन की एक पंक्ति संभवतः नष्ट हो चुकी है। टी० एस० नारायण शास्त्री भी लिखता है कि बृहद्बल से दिवाकर आठवां राजा था।[4] इस से ज्ञात होता है कि उन के मत्स्य अथवा कलियुगराजवृत्तान्त में ऐसा कथन होगा।

मगध का बृहद्रथ-वंश

१. सोमाधि[5]—५८ वर्ष

सहदेव-वंशज सोमाधि—जरासन्ध का पुत्र सहदेव भारत-युद्ध में मारा गया। वह गिरिव्रज का राजा था। सहदेव के पश्चात् सोमाधि अथवा सोमापि गिरिव्रज के राजसिंहासन पर

---

१. वायु ९९।२२३॥   २. द्रोणपर्व २४।५८॥   ३. वायु ९९।२८२॥

४. Age of Sankara The Kings of Magadha, पृ० १०।

५. अवन्तिसुन्दरीकथासार के तृतीय परिच्छेद में श्लोक २४ से २७ तक सोमापि से रिपुञ्जय तक का वंश लिखा है।

अभिषिक्त हुआ। मत्स्य में सोमाधि को सहदेव का दायाद लिखा है।[1] वायु में उसे सहदेव का पुत्र लिखा है।[2] वायु के कुछ हस्तलेखों में उसे राजर्षि लिखा है।

प्रधान राजाओं का उल्लेख—वायु में स्पष्ट लिखा है कि इस वंश के राजा प्राधान्य-रूप से लिखे गए हैं।[3] मत्स्य में यह पंक्ति टूट गई है। इस का यह अर्थ प्रतीत होता है कि बहुत थोड़ा काल अर्थात् कुछ मास आदि राज्य करने वाले राजा नहीं लिखे गए।

२. श्रुतश्रवा—सोमाधि का पुत्र श्रुतश्रवा था। उसका राज्यकाल ६४ वर्ष था।

३. अयुतायु—इसके नाम का एक पाठान्तर अप्रतीपी भी है। इसने २६ या कदाचित् ३६ वर्ष राज्य किया। यह नाम अवन्तिसुन्दरी कथासार में नहीं है।

४. निरमित्र—इसने ४० वर्ष मगधों का पालन किया।

५. सुक्षत्र—इसका राज्य ५६ या ५८ वर्ष तक रहा। इसके नाम के अनेक पाठान्तर हैं।

६. बृहत्कर्मा—इसने केवल २३ वर्ष राज्य किया।

७. सेनाजित्—नैमिष-ऋषियों के कुरुक्षेत्र वाले दीर्घसत्र के समय जब पुराण सुने जा रहे थे, इसे राज्य करते २३ वर्ष हो चुके थे।[4]

इस प्रकार भारतीय इतिहास का यह अन्तिम आर्ष-काल समाप्ति पर आया। भारत-युद्ध से इस समय तक कम से कम २९० वर्ष अवश्य व्यतीत हो चुके थे।

पौरव अधिसीमकृष्ण, कौसल्य दिवाकर और मागध सेनाजित् समकालीन थे।

मत्स्य के अनुसार सेनाजित् ने इसके पश्चात् भी २७ वर्ष तक राज्य किया। उसका शासन काल ५० वर्ष था।[5]

---

१. मत्स्य २७१।१९॥ २. वायु ९९।२९६॥ ३. वायु ९९।२९५॥
४. वायु ९९।३००॥ ५. मत्स्य २३१।२३॥

इकतीसवां अध्याय

द्वितीय दीर्घ-सत्र से गोतम बुद्ध तक

समय लगभग ९५० वर्ष

पौरव निचक्षु से उदयन पर्यन्त

८. निचक्षु—इस राजा के काल में हस्तिनापुर राजधानी गङ्गा से बहाई गई। तब निचक्षु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया।[1] उसके महाबल-पराक्रम आठ पुत्र थे। भूरि या उष्ण उन सब में ज्येष्ठ था।

९. भूरि = उष्ण—इसका नाममात्र अवशिष्ट है।

१०. चित्ररथ—उष्ण के पश्चात् चित्ररथ राजा हुआ।

११. शुचिद्रथ—चित्ररथ के पश्चात् शुचिद्रथ राजा बना।

१२. वृष्णिमान्—इस को सत्यार्थप्रकाशादि की वंशावलियों में उग्रसेन लिखा है।

१३. सुषेण—यह राजा महावीर्य और महायशा था।[2] यह बड़ा पवित्र था।[3] इन विशेषणों से प्रतीत होता है कभी इसकी बड़ी ख्याति रही होगी।

१४. सुनीथ—वायु में प्रायः सुतीर्थ पाठ है।

१५. रुच—सुनीथ के पश्चात् रुच हुआ।

१६. नृचक्षु—मत्स्य में इसे सुमहायशा लिखा है।[4]

१७. सुखिबल—नृचक्षु का दायाद सुखिबल था।

१८. परिप्लव—यह सुखिबल-पुत्र था।

१९. सुनय—सुनय परिप्लव का पुत्र था।

२०. मेधावी—सुनय-दायाद मेधावी था।

२१. नृपञ्जय—इसके पाठान्तर पुरंजय और रिपुञ्जय हैं।

२२. दुर्व—दुर्व, उर्व या मृदु नृपञ्जय का उत्तरवर्ती था।

२३. तिग्मात्मा—दुर्वात्मज तिग्मात्मा था।

२४. बृहद्रथ—तिग्म-पुत्र बृहद्रथ था।

२५. वसुदान—बृहद्रथ के पश्चात् वसुदान राजा बना। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के अनुसार इसका नाम सहस्रानीक था।

२६. शतानीक द्वितीय—वसुदान का पुत्र शतानीक द्वितीय था। यह शतानीक गौतम बुद्ध का समकालीन था।

---

१. गङ्गयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये। त्यक्त्वा निचक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति॥ वायु ९९।२७१॥

२. वायु ९९।२७३॥ ३. मत्स्य ५०।८१॥ ४. मत्स्य ५०।८२॥

कोसल का इक्ष्वाकु-वंश

६. सहदेव—अयोध्या राजधानी में राज करने वाले दिवाकर के पश्चात् महायशा सहदेव राजा हुआ। पुराणों के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दिवाकर अयोध्या-नगरी में रहता था। हम पहले पृ० १११, ११८ और १२३ पर लिख चुके हैं कि कोसल-राज्य राम के पश्चात् न्यून से न्यून दो भागों में बंट गया था। एक भाग की राजधानी अयोध्या थी और दूसरे भाग की राजधानी थी श्रावस्ती।

कोसल-वंशावली में भेद—पुराणों की वंशावलियों में गौतम बुद्ध के काल में कोसल-राज प्रसेनजित् था। वह था श्रावस्ती राजधानी में रहनेवाला। दिवाकर और प्रसेनजित् के मध्य में लगभग ९५० वर्ष का अन्तर है। इस काल में कोसल में एक ही वंश रहा या दो, और अयोध्या से श्रावस्ती में राजधानी-परिवर्तन कैसे हुआ, यह हम नहीं जान सके। संभव है पुराणों की कोसल-वंशावली में भेद पड़ गया हो। उस भेद को मिटाने के लिए और कोसल-राजाओं की संख्या पूरी करने के लिए शाक्य,शुद्धोदन, सिद्धार्थ और राहुल नाम भी इस वंशावली में जोड़े गए हैं।

७ बृहदश्व
८. भानुरथ
९. प्रतीताश्व
१०. सुप्रतीक
११. मरुदेव
१२. सुनक्षत्र

कथासरित्सागर का १२वां लम्बक शशाङ्कवती-लम्बक नाम से प्रसिद्ध है। उसमें अयोध्यापति अमरदत्त और उसके पुत्र मृगाङ्कदत्त की कथा का वर्णन है। शशावङ्कती उज्जयिनी के राजा कर्मसेन की कन्या और सुषेण की भगिनी थी। क्या भविष्य की खोज अमरदत्त का सम्बन्ध मरुदेव से बता सकेगी? यदि मरुदेव अमरदत्त हो तो सुनक्षत्र मृगांक अथवा चन्द्र हो सकता है।

१३. किंनराश्व=परंतप=पुष्कर—सुनक्षत्र के पश्चात् किन्नराश्व राजा था।

कौटल्य और परंतप—अर्थशास्त्र में कणिक भारद्वाज का उल्लेख है। टीकाकार उसका सम्बन्ध कोसल परंतप से जोड़ते हैं—

कोसलेषु किल परंतपस्य राज्ञोऽनुजीवी कणिङ्को नामार्थशास्त्रविचक्षण आसीत्।[1]

यदि टीका का मत सत्य है तो कोसलराज परंतप यही किन्नराश्व होगा।

१४. अन्तरिक्ष—इस को महान् अथवा महामना लिखा है।

१५. सुषेण=सुपर्ण—अन्तरिक्ष के पश्चात् सुषेण या सुपर्ण राजा हुआ।

१६. अमित्रजित्—इस स्थान पर पुराण-पाठ अधिक बिगड़े हैं।

१७. बृहद्भ्राज=बृहद्राज
१८. धर्मी
१९. कृतञ्जय
२०. रणञ्जय

१. आदि से अध्याय ९५।

२१. सञ्जय—यह राजा वीर था।[1] बौद्ध ग्रन्थों का महाकोसल यही होगा।

सञ्जय से अगले शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ और राहुल इत्यादि चार नाम यहां प्रक्षिप्त ही हैं।

२२. प्रसेनजित्—सञ्जय-पुत्र ही प्रसेनजित् प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि संजय और प्रसेनजित् के मध्य के कई नाम लुप्त हो गए हों। प्रसेनजित् भगवान् बुद्ध का समकालीन और उन से उपदेश ग्रहण करनेवाला था। विनयपिटक में प्रसेनजित् के पिता का नाम ब्रह्मदत्त लिखा है।

मागध बृहद्रथ वंश

८. श्रुतञ्जय—महाबल, महाबाहु, महाबुद्धि-पराक्रम श्रुतञ्जय ४० वर्ष तक राज्य करता रहा।

९. विभु—इस ने ३५ या २८ वर्ष राज्य किया।

१०. शुचि—५८ वर्ष तक राजा रहा।

११. क्षेम—२८ वर्ष प्रजापालन करता रहा।

१२. सुव्रत—बली सुव्रत का शासन-काल ६४ वर्ष था।

१३. धर्मनेत्र=सुनेत्र—इस का राज्य ३५ वर्ष रहा।

१४. निर्वृति=शम—इस का राज्य-काल ५८ वर्ष था।

१५. त्रिनेत्र=सुश्रवा=सुश्रम=सुव्रत[2]—३८ वर्ष तक राज्य करता रहा।

१६. दृढसेन=महासेन=द्युमत्सेन—इस का राज्य ५८ वर्ष रहा।

१७. महिनेत्र=सुमति—इस का शासन-काल ३३ वर्ष था।

१८. सुचल=सुबल—यह राजा २२, ३२ या ४० वर्ष प्रजा-पालक रहा। इस का शासन-काल ३२ वर्ष अधिक ठीक प्रतीत होता है।

१९. सुनेत्र-सुनीथ—इस का राज्य-काल ४० वर्ष था।

२०. सत्यजित्—इस का राज्य-काल ८३ वर्ष लिखा है। किसी बड़े युद्ध में इस का पिता छोटी आयु में ही मर गया होगा। संभवतः उस का राज्य-काल लिखा नहीं गया। उस समय सत्यजित् चार, पांच वर्ष का होगा। तब मन्त्रि-मण्डल ने उस का राज्य चलाया होगा। इस कारण सत्यजित् का राज्य दीर्घ-काल तक रहा।

२१. वीरजित्=विश्वजित्—इस का राज्य ३५ या २५ वर्ष तक रहा।

२२. रिपुञ्जय=अरिञ्जय—इस का राज्य-काल ५० वर्ष था। यह रिपुञ्जय अपने सचिव पुलिक या सुनिक से मारा गया।

बाईस बार्हद्रथ राजा—सहदेव भारत युद्ध में मारा गया। उस के पुत्र सोमाधि से लेकर रिपुञ्जय तक सारे बाईस राजा हुए। सातवां राजा सेनजित् शौनक के द्वितीय दीर्घ-सत्र के समय जीवित था। वह पुराण-श्रवण के पश्चात् भी जीवित रहा। उस से गिनकर रिपुञ्जय

---

१. मत्स्य २७१।११॥ २. अवन्तिसु० सुश्रुत।

तक कुल १६ राजा हुए। पुराण-श्रवण के पश्चात् से गिन कर इन १६ राजाओं का काल लगभग ७०० वर्ष का था। इस की गणना निम्नलिखित प्रकार से हो सकती है—

७.	२७	१५.	३८
८.	४०	१६.	५८
९.	३५	१७.	३३
१०.	५८	१८.	३२
११.	२८	१९.	४०
१२.	६४	२०.	८३
१३.	३५	२१.	२५
१४.	५८	२२.	५०
		योग	७०४ वर्ष

भारत-युद्ध से लेकर पुराण-श्रवण तक लगभग ३०० वर्ष बीते थे। अतः भारत-युद्ध से बृहद्रथ वंश के अन्त तक लगभग १००० वर्ष हुए। यह बात सब पुराणों में लिखी है।

एक ऐतिहासिक घटना—जिस समय बृहद्रथ वंश का अन्त हुआ, उस समय हैहय-वंश के वीतिहोत्र और अवन्ति-कुल का भी अन्त हुआ।[1]

मगध का बालक-प्रद्योत-वंश

समय १३८ वर्ष

अमात्य पुलिक—पुलिक या पुलक अथवा सुनिक या शुनक ने अपने राजा रिपुञ्जय को मार दिया। उसका पुत्र बालक था। इस बालक का दूसरा नाम प्रद्योत था। पुलक ने बालक को मगध-राज बना दिया।

१. बालक प्रद्योत—बालक ने २३ वर्ष राज्य किया। इस के प्रद्योत नाम के कारण यह वंश प्रद्योत-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बालक अवन्ति के चण्ड प्रद्योत अथवा महासेन के पुत्र पालक से सर्वथा भिन्न है।

आधुनिक ऐतिहासिकों की भूल—अनेक आधुनिक ऐतिहासिक मगध के इस प्रद्योत वंश का अस्तित्व नहीं मानते। वे इसे अवन्ति का प्रद्योतवंश समझते हैं। केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया में अध्यापक रैपसन लिखता है—पुराणों का (मागध) प्रद्योत और उज्जैन का प्रद्योत एक थे, इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता।[2]

यह पक्ष सर्वथा मिथ्या है। इस के खण्डन में अगले ६ प्रमाण हैं—

(क) कौटल्य और बालक—विष्णुगुप्त अपने अर्थशास्त्र के समयाचारिक प्रकरण में लिखता है—तृणमिति दीर्घश्चारायणः।[3] इस पर टीकाकार ने लिखा है कि मगध में पहले बाल

१. वायु ९९।३०९॥ मत्स्य २७२।१॥ २. भाग प्रथम, पृ० ३१०, ३११।

३. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ९५।

नाम का एक राजा था। उस का आचार्य दीर्घचारायण था। हमारा विचार है कि यह मागध बाल प्रद्योत वंश का चलाने वाला बालक था। इस दीर्घचारायण का प्रसेनजित् कोसल-राज के मन्त्री दीर्घकारायण से भेद ध्यान में रखना चाहिए।[1] दीर्घचारायण महाराज बालक के पिता का प्रिय मित्र था। संभव है चारायण ने राज्य हस्तगत करने में पुलक की सहायता की हो। बालक ने अपने आचार्य को अपमानित करने का विचार किया। विद्वान् दीर्घ राजमाता का संकेत पाकर मगध छोड़ गया। बालक की ऐसी निकृष्ट बातों के कारण पुराणों में उसे नयवर्जित कहा है।[2]

(ख) अवन्ति का कोई प्रद्योत-वंश नहीं था। भारतीय राजवंश कुल के प्रारम्भकर्ता के नाम पर चलते रहे हैं। यथा—इक्ष्वाकु वंश, ऐल वंश, पौरव वंश, बृहद्रथवंश, मौर्य-वंश, गुप्त-वंश इत्यादि। अवन्ति का चण्ड-प्रद्योत अपने कुल में पहला राजा अथवा वंशकर नहीं था। वह तो किसी कुल के मध्य में था। उसके कारण अवन्ति का कोई प्रद्योत-वंश नहीं हुआ। इसका विस्तार उज्जयन के अध्याय में आगे किया जाएगा।

(ग) मगध के प्रद्योतवंश में पांच राजा थे। अवन्ति में प्रद्योत-पुत्र पालक के पश्चात् राज्य ध्वंस हो गया था। तिलोय पण्णत्ति आदि पुरातन जैन ग्रन्थों के अनुसार पालक के पश्चात् विजयवंश का राज्य हो गया। अतः अवन्ति के पालक का मगध के पालक अथवा बालक से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(घ) इस समय पुराणों में मागध राजाओं का ही राज्य-वर्षमान मिलता है। बालक वंश के राजाओं का वर्षमान स्पष्ट लिखा गया है। अतः ये सब मगध के राजा थे।

(ङ) बालक-प्रद्योत के पिता का नाम पुलिक, पुलक, सुनिक अथवा शुनक था। वह राजा नहीं था। अवन्ति के महासेन चण्ड प्रद्योत का पिता अनन्तनेमि था। वह राजा था। अतः दोनों विभिन्न व्यक्ति हैं।

(च) जैन ग्रन्थों के अनुसार आवन्त्य पालक का राज्य ६० वर्ष तक रहा। पौराणिक पालक का राज्य २४ वर्ष का था। अतः दोनों भिन्न २ हैं।

इन हेतुओं से निश्चित होता है कि रैपसन और उस के अनुगामियों का पक्ष कल्पित, व्यर्थ और निस्सार है।

२. पालक=बलाक—यह राजा बालक का पुत्र था। इसने २४ वर्ष राज्य किया। इसके नाम के अनेक पाठान्तर हैं।

३. विशाखयूप—उस के पश्चात् ५० वर्ष तक विशाखयूप ने राज्य किया।

४. सूर्यक=अजक=जनक=राजक—इसका शासन-काल २१ वर्ष था।

५. नन्दिवर्धन—इसका राज्य काल २० वर्ष था।

इन पांच प्रद्योत राजाओं ने १३८ वर्ष राज्य किया।

---

१. मज्झिम निकाय २।४.९॥ हिन्दी अनुवाद, पृ० ३६४।

२. स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः। पुराणपाठ में अर्थशास्त्रस्थ घटना का संकेत है।

शैशुनाग-वंश—३६० वर्ष

दश शैशुनाग राजा[1]

१. शिशुनाग—शिशुनाग के कारण पुराणों में इसके वंश को शैशुनाग वंश लिखा है। समस्त पुराण इस वंश को शैशुनाग-वंश कहते हैं। इस लिए यही निश्चित होता है कि इस वंश का प्रारम्भकर्ता शिशुनाग था।

क्या शिशुनाग काशी का राजा था—पुराणों में लिखा है कि वाराणसी में अपने पुत्र को स्थापित करके वह गिरिव्रज को गया। इससे ज्ञात होता है कि संभवतः वह पहले वाराणसी का राजा था। उसने किसी प्रकार मगध को विजय किया हो और वहीं गिरिव्रज में रहने लगा हो। ऐसा भी संभव हो सकता है कि वह प्रद्योतों का ही कोई वंशज हो और उसने अपने कुल के अधिकारी लोगों को पराजित कर के राज्य संभाला हो।

बौद्ध ग्रन्थों की भूल—बौद्ध-ग्रन्थों में इस वंश के क्रम का सर्वथा नाश कर दिया गया है। उन के आधार पर अनेक लेखक शिशुनाग को अजातशत्रु और उदायी आदि का उत्तरवर्ती मानते हैं।[2] यह ठीक नहीं है। उदायी के समय से मगध की राजधानी गिरिव्रज से हट चुकी थी। उदायी ने ही कुसुमपुर बनवाया था। परन्तु पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि शिशुनाग गिरिव्रज में रहने लगा। अतः बौद्ध-ग्रन्थों का इस विषय का राज-क्रम विश्वसनीय नहीं है।

राज्यकाल—शिशुनाग का राज्य-काल ४० वर्ष था। इस राजा के विषय में काव्यमीमांसा में राजशेखर लिखता है—

श्रूयते हि मगधेषु शिशुनागो नाम राजा तेन दुरुच्चारानष्टौ वर्णानपास्य स्वान्तपुर एव प्रवर्तितो नियमः।

२. काकवर्ण=काककर्ण=काष्णिवर्म=शकवर्ण—शिशुनाग का पुत्र या पौत्र काकवर्ण था। इसका राज्य-काल २६ या ३६ वर्ष था।

काकवर्ण की मृत्यु का उल्लेख भट्ट बाण ने हर्षचरित में किया है—

काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचिकृते निस्त्रिंशेन।[3]

इसका अर्थ यह है कि शिशुनाग-पुत्र काकवर्ण नगर के समीप कण्ठ में खड्ग-प्रहार से मारा गया।

३. क्षेमवर्मा=क्षेमधर्मा—काकवर्ण-पुत्र क्षेमवर्मा था। क्षेमधर्मा के स्थान में उसका क्षेमवर्मा नाम अधिक ठीक प्रतीत होता है। शैशुनाग कुल के कई राजा वर्मान्त नाम वाले थे।

राज्यकाल—इसका राज्य २०, २६ या ३६ वर्ष तक रहा।

कौमुदीमहोत्सव ? नाटक का कल्याणवर्मा—सन् १९२९ में दक्षिणभारतीग्रन्थमाला में एक नाटक छपा था। उसके सम्पादक मा० रामकृष्ण कवि ने उसका नाम

---

१. शैशुनागा नृपा दश।

२. पो. हि. ए. इ. सन् १९३८, पृ० १७७, १७८। महावंसो ४।६॥ सुसुनाग।

३. हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९३।

कौमुदीमहोत्सव अनुमान से लिखा है। उस नाटक में पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर के राजा कल्याणवर्मा का उल्लेख है। कई लेखक इस नाटक में गुप्तों के पूर्ववर्ती मौखरियों का संकेत समझते हैं।[1] हमारा अनुमान है शैशुनाग क्षेमवर्मा ही इस नाटक का कल्याणवर्मा अथवा कल्याणश्री है। क्षेम और कल्याण शब्द पर्यायवाची हैं। यदि यह बात सत्य सिद्ध हो जाए, तो मानना पड़ेगा कि सुन्दरवर्मा ही काकवर्ण था। काकवर्ण नाम का एक पाठान्तर काष्णिवर्म है। इससे पता लगता है कि काकवर्ण नाम के किसी पर्याय के साथ वर्मा पद अन्त में जुड़ा था। सुन्दरवर्मा काकवर्ण का मूल नाम होगा। परन्तु किसी हीनकर्म के कारण उसका नाम काकवर्ण हो सकता है।

कौमुदीमहोत्सव का कल्याणवर्म बहुत प्राचीन काल का था। उसके समय में अभी मथुरा या शूरसेनों में वृष्णि कुल का राज्य था। उस काल के वृष्णि-कुल के राजा कीर्तिषेण के पास दायाद-रूप में अर्जुन का प्रसिद्ध हार था।[2] कीर्तिषेण मध्यम-लोकपालों का अर्थात् मध्य-भारत का राजा था।[3] गुप्तों से पहले मथुरा में कुषाणों का राज्य था। उन में कीर्तिषेण नाम का राजा हमें दिखाई नहीं दिया। कुषाण लोग काश्मीर तक राज्य करते थे। वे केवल मध्य-लोकपाल नहीं थे। कीर्तिषेण यदुनाथ था[4] कुषाण नहीं।

यह नाटक गुप्तकाल से कुछ पहले लिखा गया प्रतीत होता है। यदि हमारी कल्पना सत्य सिद्ध हो, तो कहना पड़ेगा कि नाटककार ने दो भूलें की हैं। उदयन[5] पाटलीपुत्र[6], पुष्पपुर[7] अथवा कुसुमपुर[8] का उल्लेख इस में न होना चाहिए था। सम्भव है, लेखक को इन ऐतिहासिक तथ्यों का पूर्ण ज्ञान न हो।

एक और बात भी स्मरण रखनी चाहिए। इस नाटक में कुलपति जाबालि के आश्रम का उल्लेख है।[9] ऐसे कुलपति बहुत प्राचीन काल में ही हुए हैं।

हम पहले बाण भट्ट के प्रमाण से लिख चुके हैं कि काकवर्ण अपने नगर के बाहर ही मारा गया। सुन्दरवर्मा भी क्रोध में नगर के बाहर निकला[10] और वहीं मारा गया।[11] बाण के काकवर्ण सम्बन्धी वर्णन में कुछ शब्द टूट गए प्रतीत होते हैं। बाण उस प्रकरण में राजाओं के मरने का कारण भी बताता है, परन्तु काकवर्ण के सम्बन्ध में कोई ऐसे शब्द मुद्रित संस्करणों में नहीं मिलते। यदि हर्षचरित के किसी पाठ में वस्तुतः कोई ऐसे शब्द मिल जाएं, तो कौमुदीमहोत्सव में उल्लिखित घटना की उनसे तुलना हो सकेगी।

४. क्षत्रौजा

इस को क्षेमजित् या हेमजित् भी कहा है। इस का राज्य-काल ४० या २४ वर्ष था। गिलगित से मिले हुए विनय-पिटक के हस्तलेख में लिखा है—बोधिसत्त्वस्य जन्मकालसमये

१. दि मौखरीस, एडवर्ड ए. प्राईस रचित, १९३४ सन्, पृ० २५–३५।
२. कौ० म० ५। १९,२०॥ ३. पृ० ८॥ ४. पृ० ८। ५. १।११॥
६. १।१॥ ५।१३॥ ७. २।१३॥ ८. पृ० ३३। ९. १।६।—॥ १०. १।१०॥ ११. ४।७॥

चतुर्महानगरेषु चत्वारो महाराजा अभूवन्। तद्यथा राजगृहे महापद्मस्य पुत्रः । श्रावस्त्यां ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः । उज्जयिन्यां राज्ञोऽनन्तनेमेः पुत्रः। कौशाम्ब्यां राज्ञः शतानीकस्य पुत्रः।[1]

इस से ज्ञात होता है कि क्षत्रौजा का दूसरा नाम महापद्म था। वह मगध का महापद्म प्रथम था। विनयपिटक में इस से कुछ पंक्ति आगे लिखा है कि महापद्म की स्त्री का नाम बिम्बा था। इस कारण उस के पुत्र का नाम बिम्बिसार हुआ।

राय चौधरी का मत—राय चौधरी का मत है कि बिम्बिसार दक्षिण-बिहार के किसी छोटे से राजा का पुत्र था।[2] यह बात सत्य नहीं। विनयपिटक के पूर्वोक्त प्रमाण से यह खण्डित हो जाती है। पुराणों की वंशावली को असत्य मान कर राय चौधरी ने यह असङ्गत कल्पना की है।

अङ्गराज राजाधिराज—इसी पुस्तक में महापद्म के समकालीन अङ्गराज राजाधिराज का भी उल्लेख है।[3]

मगधाक्रमण—अङ्गराज ने मगध पर आक्रमण किया था। कुमार बिम्बिसार ने उससे युद्ध किया। अङ्गराज वहीं रणक्षेत्र में मारा गया। तब बिम्बिसार अङ्गों की राजधानी चम्पा में राज करने लगा।

—महापद्म=क्षत्रौजा की मृत्यु राजगृह में हुई। तब बिंबिसार का महाभिषेक हुआ। वह अङ्ग और मगध का राजा बना।

८. बिम्बिसार=श्रेण्य=श्रेणिक

बिम्बिसार एक प्रतापी राजा था। पुराणों में इस नाम के अनेक पाठान्तर हैं। उन में से विन्ध्यसेन और सुविन्दु ध्यान रखने योग्य हैं।

राज्यकाल—इस का राज २८ या ३८ वर्ष तक रहा।

हर्यङ्ककुल—अश्वघोषकृत बुद्धचरित ११।२ के अनुसार बिम्बिसार हर्यङ्ककुल का था।

श्रेण्य—बौद्ध ग्रन्थकार भदन्त अश्वघोष इसे श्रेण्य नाम से भी स्मरण करता है।[4] मज्झिम निकाय में श्रेणिक बिंबसार नाम मिलता है।[5] जैन ग्रन्थों में श्रेण्य नाम बहुत अधिक मिलता है।[6]

---

१. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, जून १९३८, पृ० ४१३, पंक्ति १—३।
यह बात तिब्बत के ग्रन्थों में भी लिखी है। Essays on Gunadhya, पृ० १७३।

२. Son of a petty Raja of South Bihar, P. H. A. I. 1938, Pag १५७।

३. पृ० ४११, अन्तिम दो पंक्तियां।

४. बुद्धचरित १०।१६॥ संस्कृत विनयपिटक में श्रेण्य और श्रेणिक दोनों नाम हैं। इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली जून १९३८, पृ० ४१५।

५. हिन्दी अनुवाद, पृ० ६०, ३५४।

६. यत्र श्रीमान् जरासन्धः श्रेणिकः कूणिकोऽभयः। मेघ-हल्ल-विहल्लाः श्रीनन्दिषेणोऽपि चाभवन्॥
विविधतीर्थान्तर्गत वैभारगिरिकल्प, पृ २२। श्रेणिकस्तु भम्भासारः। अभिधानचिन्तामणि, पृ० २८५।

मृत्यु—बिंबिसार की मृत्यु के सम्बन्ध में पुरातन लेखकों में मतभेद रहा है। कई लेखकों का कथन है कि कुणिक-अजातशत्रु ने अपने पिता को मार दिया।[1] पाली विनय पिटक में लिखा है कि अजातशत्रु ने देवदत्त के कहने पर बिंबिसार को मारने का प्रयत्न किया, परन्तु पकड़ा गया। इस पर श्रेणिक बिंबिसार ने उसे स्वयं राज्य दे दिया।[2]

६. अजातशत्रु=कुणिक=अशोकचन्द्र=देवानांप्रिय

जैन ग्रन्थकार अजातशत्रु को कुणिक नाम से बहुधा स्मरण करते हैं। औपपत्तिक सूत्र में उसे भिंभसार-पुत्र और देवाणुप्पिय लिखा है।[3] इस का बहुवचन संस्कृत में देवानांप्रिय है। कथा-कोश और विविधतीर्थकल्प में उस के लिए अशोकचन्द्र नाम भी वर्ता गया है।[4] नहीं कह सकते यह नाम ठीक अजातशत्रु का था या देवानांप्रिय विशेषण के कारण उत्तरकालीन जैन-ग्रन्थकारों ने उस के साथ जोड़ दिया।

देश-विस्तार—अजातशत्रु का राज्य बहुत विस्तृत हो गया। मञ्जुश्री मूलकल्प में लिखा है कि—अङ्ग, मगध और वाराणसी तक तथा उत्तर में वैशाली तक अजातशत्रु का राज्य था।[5] वैशाली और वाराणसी के साथ अजात के युद्धों का वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है।[6]

बौद्ध-शास्त्र लिपिबद्ध हुआ—अजातशत्रु के काल में बौद्ध-शास्त्र प्रथम वार लिपिबद्ध हुआ।[7]

राज्य-काल—पुराणों के अनुसार अजातशत्रु ने २५ या २७ वर्ष राज्य किया। मञ्जुश्रीमूल-कल्प के अनुसार वह २० वर्ष राजा और ३० वर्ष पिता के साथ रहा।[8] परन्तु यह अर्थ वहां स्पष्ट नहीं है।

अजात के भाई—वैशाली के राजा चेटक की कन्या चेल्लण से भी बिंबिसार ने विवाह किया था। उससे उसके दो पुत्र थे, हल्ल और वेहल्ल। अजात का एक भाई अभय था।

मृत्यु—मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार २६ दिन तक गोत्रज रोग से दुःखार्त रह कर अजातशत्रु अर्धरात्रि के समय मरा।[9] इस के विपरीत लंका के महावंसो में लिखा है कि अजातशत्रु केपुत्र उदायिभद्र ने अपने पिता का वध किया।[10] मञ्जुश्रीमूलकल्प का मत हमें अधिक सत्य प्रतीत होता है। महावंसो का इस प्रसंग का सारा वर्णन विकृत किया विदित होता है।

---

१. मञ्जुश्रीमूलकल्प, श्लोक २८५। अवदानशतक भाग प्रथम, पृ० ८३ पर लिखा है—यदा राज्ञा अजातशत्रुणा देवदत्तविग्राहितेन पिता धार्मिको धर्मराजो जीवितादू व्यपरोपितः। संस्कृत विनयवस्तु में जीवक वैद्य अजातशत्रु को सम्बोधन कर के कहता है—त्वया पिता धार्मिको धर्मराजो जीवितादू व्यपरोपितः। चीवर-वस्तु, पृ० ४३। २. विनयपिटक, चुल्लवग, हिन्दी अनुवाद, पृ० ४८४।

३. इ. विण्डिश का संस्करण, लाईपज़िग, सन् १८८१, प्रकरण १८, १९॥

४. विविधतीर्थकल्प पृ० २२, ६५। ५. मूलकल्प, श्लोक ३२२।

६. तेन खलु समयेन राजा प्रसेनजित्कौशलो राजा चाजातशत्रुरुभावप्येतौ परस्परं विरुद्धौ बभूवतुः। अवदानशतक, भाग १, पृ० ५४। ७. मंजुश्रीमूलकल्प श्लोक ३२५। ८. श्लोक ३२६।

९. श्लोक ३२७, ३२८। १०. चतुर्थ परिच्छेद, श्लोक १।

बत्तीसवां अध्याय

गौतम बुद्ध और महावीर-स्वामी भारतयुद्ध से १३०० वर्ष पश्चात्

बुद्ध का काल— पुराण गणना के अनुसार मागध राज्य में सोमापि से लेकर रिपुञ्जय तक २२ बाईस राजा थे। उन का काल १००० वर्ष था। पुराणपाठ है—

द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः। पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥

अर्थात्—कलि में होने वाले २२ बृहद्रथ राजा हैं। उन का काल १००० वर्ष होगा। पार्जिटर ने इस पंक्ति का पाठ बहुत विकृत कर दिया है। पूर्व पृष्ठ २३२ के देखने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। इन के पश्चात् ५ प्रद्योत हुए। उन का काल १३८ वर्ष था। तत्पश्चात् शिशुनाग ने ४० वर्ष, काकवर्ण ने ३६ वर्ष, क्षेमधर्मा ने २६ वर्ष, क्षत्रौजा ने ४० वर्ष, और बिम्बिसार ने २८ वर्ष राज्य किया। सब मिला कर १३०८ वर्ष बने। बिम्बिसार के काल में गौतम बुद्ध प्रचार कर रहा था। अतः भारतयुद्ध से १३०० पश्चात् बुद्ध काल है।

योरुप के लोगों का मत—कतिपय जर्मन और अंग्रेज़ लेखकों ने बुद्ध का काल ईसा से लगभग ५०० वर्ष पहले का माना है। उन का प्रयत्न रहा है कि भारतीय इतिहास को बहुत पुराना सिद्ध न होने दिया जाए। योरुपियन लोगों का लिखा भ्रान्त विचार इस देश के अनेक लोगों ने अपनाया है। उन्हों ने योरुपियन विचार की सत्यता की परीक्षा का यत्न नहीं किया।

अलबेरूनी का लेख—अपनी पुस्तक के आरम्भ में अलबेरूनी लिखता है—

"पुराने काल में खुरासां, पर्सिस, इराक, मोसुल, सीरिया की सीमा तक का देश बौद्ध-मतावलम्बी था। तब आधरबैजान से जरथुश्तर आगे बढ़ा। उस ने बलख में मग (अर्थात् पारसी) मत का प्रचार किया। उस का सिद्धान्त गुशतास्प को रुचिकर लगा। उस के पुत्र इस्फेन्दियाद ने नए धर्म को पूर्व और पश्चिम में बल और सन्धियों द्वारा फैलाया।"[1]

अलबेरूनी आगे अध्याय आठ में लिखता है—ज़ोरास्ट्र ने श्रमणों को अपना शत्रु बना लिया।[2] जरथुश्तर या ज़ोरास्ट्र गुशतास्प और इस्फेन्दियाद का काल ५०० ईसा पूर्व से पहले का था। उस समय बौद्ध मत इतनी दूर तक फैल गया था। अतः बुद्ध का काल उस समय से बहुत पहले था। यह बाहर का साक्ष्य भारतीय मत को सत्य सिद्ध करता है।

अलबेरूनी के विषय में राय चौधरी की धारणा—कलकत्ता के अध्यापक राय चौधरी को यह बात अच्छी नहीं लगी।[3] उन की वृत्ति योरुपियन विचारों के अनुकरण की है।[4]

महावीर का काल—जैन और बौद्ध ग्रन्थ गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी की समकालिकता में सहमत हैं। दिगम्बर जैन ग्रन्थ तिलोय पण्णति में महावीर निर्वाण और गुप्त-

१. अंग्रेजी अनुवाद, भाग १ पृ० २१।
२. पृ० ६१।
३. पो० हि० ए० इ० पृ० ५२०।
४. बुद्ध निर्वाण के विषय पर पूर्व पृ० २७ देखें।

राज्य के आरम्भ में ७२७ वर्ष का अन्तर माना है। इस ग्रन्थ में वीर-निर्वाण और कल्की का अन्तर १००० वर्ष का माना है। श्वेताम्बर ग्रन्थ तित्थोगाली में यह अन्तर १९२८ वर्ष का है। तित्थोगाली के लेखक के पास कोई अधिक पुरानी परम्परा थी। जैन यतियों को जैसे जैसे पुरातन इतिहास विस्मृत हुआ उन का वीरनिर्वाण और कल्की के काल का अन्तर न्यून होता गया। पुरातन काल में उन की तिथि गणना पुराण-सदृश ही थी। वर्तमान इतिहास लेखक गुप्त राज्य का आरम्भ बहुत उत्तर काल में मानते हैं। उन का मत कल्पित है। गुप्तकाल का आरम्भ विक्रम संवत् के आरम्भ के समीप था। अतः तिलोयपण्णत्ति के अनुसार महावीर का निर्वाण-काल विक्रम संवत् से लगभग ७०० वर्ष पूर्व अवश्य था। अधिक सामग्री मिलने पर यह काल भी भारत युद्ध से १३०० वर्ष पश्चात् का सिद्ध होगा।

प्राचीन बौद्धमत में किसी नए सिद्धान्त का अभाव—बुद्ध एक सन्त था। वह सनत्कुमार, सनन्दन, कपिलादि सन्तों के समान विद्वान् नहीं था। पर वह तपस्वी अवश्य था। उस के काल के भारतीय विद्वानों ने उस का विरोधविशेष नहीं किया। कुछ साधारण तपस्वी उस का खण्डन करते थे। कालान्तर में बौद्ध मत में अनेक दार्शनिक सम्मिलित हुए। उन्हों ने प्राचीन सांख्य सिद्धान्त का कलेवर बौद्ध मत के अर्पण किया। पुराना बौद्ध सिद्धान्त पञ्चशिख आदि सांख्य मत के आचार्यों के सिद्धान्तों का रूपान्तर था।[1] इस के बहुत काल उपरान्त बौद्ध मत में नास्तिकता का अधिक प्रवेश हुआ। तब भारतीय विद्वानों ने इस को परास्त कर के भारत से बाहर कर दिया। योरुपीय लेखकों ने बौद्धमत का इतिहास अति कलुषित कर दिया है।

१. देखो, पं० ईश्वरचन्द्र कृत "वेदार्थ और आयुर्वेदादि के द्रष्टा और प्रवक्ताओं का अभेद।"

तेतीसवां अध्याय

अवन्ति का राजवंश

प्रारम्भिक—सहस्रबाहु अर्जुन के कुल में अवन्ति और वीतिहोत्र राज्य देर तक रहे। भगवान् बुद्ध से लगभग ३०० वर्ष पहले मगध में बृहद्रथ-वंश का अन्त हुआ। उसी समय अवन्ति के पुरातन-वंश की भी समाप्ति हुई।

कुछ पुरातन राजा—यदि कथासरित्सागर की कथाएं निरी कल्पना नहीं हैं तो उनमें वर्णित उज्जयन के कुछ राजाओं का इतिहास में कभी थोड़ा बहुत पता लगेगा ही। वे राजा थे—आदित्यसेन[१], विक्रमसेन[२], पुण्यसेन[३], धर्मध्वज[४], वीरदेव[५], और कर्मसेन[६] तथा उसका पुत्र सुषेण[७]।

इनमें से बहुत से राजा सेन नामान्त वाले हैं। आगे भी जयसेन और महासेन सेनान्त नाम वाले ही हैं।

राजधानी—अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी थी। पद्मावती, भोगवती और हिरण्यवती इसी के पुरातन नाम थे।[८] राजशेखर की काव्यमीमांसा और हेमचन्द्र की अभिधान चिन्तामणि में इस का विशाला नाम मिलता है।[९] भोजकृत उणादिसूत्र की दण्डनाथ वृत्ति में एकानासि भी इसका नाम लिखा है।[१०] प्राचीन कोशकार व्याडि के अनुसार उज्जयिनी में एक पुष्पकरण्डक उद्यान था।[११]

चण्ड प्रद्योत=महासेन के पूर्वज

भगवान् बुद्ध के काल में अवन्ति का राजा प्रसिद्ध महासेन था। उसके पूर्वजों का वर्णन कथासरित्सागर में मिलता है।[१२] उसमें सन्देह करने का स्थान नहीं। कथासरित्सागर की वंशावलियां सत्य प्रमाणित हो रही हैं।

१. महेन्द्रवर्म—कथासरित्सागर में इससे वंशारम्भ किया गया है।

२. जयसेन—यह महेन्द्रवर्म का पुत्र था। जैन ग्रन्थकार मल्लिषेण ने नागकुमार चरित नामक एक काव्य ग्रन्थ लिखा था। उसमें लिखा है कि अवन्तिदेशान्तर्गत उज्जयिनी में एक जयसेन नाम का राजा था। उसकी स्त्री जयश्री थी। उनकी अप्रतिमरूपा कन्या मेनकी थी।[१३] क्या दोनों जयसेन एक ही थे? जैन आचार्य हरिषेण ने बृहत्कथाकोश में चण्डप्रद्योत का पिता धृतिषेण लिखा है। (कथा २२)।

---

१. ३।४।६९—१०६॥ २. ६।४।७२॥ ३. ३।१।६७॥१२।१२।५॥ ४. १२।१८।३॥
५. १२।१६।७॥ ६. १२।३५।१०॥ ७. १२।३६।१४५॥
८. कथासरित्सागर १२।१६।६॥ ९. ४।४२॥ १०. २।१।२३९॥
११. हेमकृत अभिधानचिन्तामणि की टीका पृ० ३९० पर उद्धृत॥ १२. २।३।३३—॥
१३. के० बी० पाठक कमैमोरेशन वाल्यूम, पृ० ११९॥

संस्कृत विनयपिक के अनुसार जयसेन का दूसरा नाम अनन्तनेमि हो सकता है। वहां अनन्तनेमि ही महासेन का पिता कहा गया है।

३. चण्ड महासेन=प्रद्योत

यह बड़ा उग्रकर्मा राजा था। इसकी प्रधान महिषी अङ्गारवती थी। इन दोनों के दो पुत्र और एक कन्या थी। वे थे गोपालक, पालक और वासवदत्ता।

वीणावासवदत्ता और महासेन के समकालीन

वत्सराजचरित अपरनाम वीणावासवदत्ता (?) नामक नाटक में लिखा है कि महाराज महासेन अपने मन्त्री-वर भरतरोहक[1] से वासवदत्ता के विवाह-विषय में वार्तालाप करता है। उस समय कई राजाओं के नाम वर-निमित्त स्मरण किए जाते हैं। संभव है वे सब या उनमें से कई ऐतिहासिक नाम हों। वे नाम आगे लिखे जाते हैं—

१. अश्मकराज-सूनु	सञ्जय[2]
२. माथुर-राज	जयवर्मा
३. काशीपति	विष्णुसेन
४. मागध	दर्शक
५. अङ्गेश्वर	जवरथ
६. मत्स्याधिपति	शतमन्यु
७. सिन्धुराज	सुबाहु
८. पाञ्चाल-राज	आरुणि
९. वत्सराज	उदयन। इससे वासवदत्ता व्याही गई।

इनमें से आरुणि, दर्शक और उदयन निश्चय से ऐतिहासिक व्यक्ति थे। शेष के विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

४. पालक—६० वर्ष

बड़ा भाई गोपालक प्रायः उदयन के पास रहा करता था।[3] अतः चण्ड-महासेन की मृत्यु पर पालक राजा बना।[3] त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति पांचवीं शताब्दी ईसा के अन्तिम भाग का ग्रन्थ कहा गया है। इससे पश्चात् का नहीं है।[4] उसमें लिखा है कि वीर-निर्वाण के समय पालक राजा बना—

जं काले वीरजिणो णिस्सेयस संपदं समावण्णो। तक्काले अभिसित्तो पालय णामो अवंतिसुदो॥९५॥

---

१. कथासरित्सागर में भी मन्त्री भरतरोहतक का नाम मिलता है। १६।२।२३॥

२. वासवदत्ता च पित्रा संजयाय राज्ञे दत्तमात्मानम् उदयनाय प्रायच्छत्-मालतीमाधव २।७ के पश्चात्। वत्सराजचरितगत लेख की सत्यता में भवभूति का यह प्रमाण है। अश्मकराजपुत्र संजय ऐतिहासिक व्यक्ति था।

३. कथासरित्सागर १६।२।१३॥

४. कैटेलाग आफ संस्कृत मैनूस्क्रिप्ट्स, हीरालालकृत, सन् १९२६, पृ० १६ भूमिका।

यह बात इसके पश्चात् के अनेक जैन ग्रन्थों में लिखी है।[1]

आचार्य पिशुन—कौटल्यार्थशास्त्र की टीकाओं से ज्ञात होता है कि पालक का नीति-गुरु पिशुन नाम का आचार्य था। विष्णुगुप्त उस पिशुन सम्बन्धी एक घटना का उल्लेख करता है।[2] इस से आगे वह पिशुन-पुत्र का स्मरण करता है।

८. अवन्तिवर्धन=कुमार

पालक का पुत्र कुमार अवन्तिवर्धन था। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में इसे गोपालक का पुत्र लिखा है। हर्षचरित में लिखा है—

महाकालमहे च महामांसविक्रयवादवातूलं वेतालः तालजङ्घो जघान जघन्यजं प्रद्योतस्य पौणकिं कुमारं कुमारसेनम्।[3]

यह कुमारसेन पालक का कोई जघन्यज भाई होगा।

राज्य—बहुत संभव है पालक और कुमार दोनों का राज्यकाल ६० वर्ष हो। जैन-ग्रन्थों के पाठ से प्रतीत होता है कि पालक के ६० वर्ष के राज्य के पश्चात् यह वंश समाप्त हो गया।[4] इन ६० वर्षों में कुमार का काल भी गिना गया होगा।

मृच्छकटिक नाटक का पालक—संस्कृत साहित्य में शूद्रक-रचित मृच्छकटिक नाटक बहुत प्रसिद्ध है। कीथ आदि पाश्चात्य लेखकों का मत है कि यद्यपि इस नाटक का काल निश्चित नहीं हो सकता, तथापि संभवतः यह कालिदास से पूर्व का है।[5] हमारा विचार है कि यह नाटक संवत्-प्रवर्तक विक्रम से बहुत पहले लिखा गया था। मृच्छकटिक चारुदत्त नाटक का रूपान्तर है। चारुदत्त आदि नाटक किसी राजसिंह राजा के काल में लिखे गए थे। संभव है, वह राजसिंह नन्दों में से कोई हो। चारुदत्त के कई अंक अभी तक अप्राप्य हैं। मृच्छ-कटिक में वे अंक मिलते हैं। उन अंकों में पालक नाम के एक राजा का बहुधा उल्लेख मिलता है।[6] वहां पालक को दुराचार[7] कुनृप[8] और बलमन्त्रिहीन[9] आदि लिखा है।[10]

मृच्छकटिक नाटक में वर्णित पालक दूसरा पालक होगा। मृच्छकटिक के अनुसार उसके पश्चात् आर्यक राजा हुआ। यह आर्यक शूद्रक प्रतीत होता है। संभव है जैन ग्रन्थों में दो पालकों के मध्य के राजा छूट गए हों, और पालक एक रह गया हो। यह भी सम्भव है कि आर्यक विजया-कुल का पहला राजा हो।

---

१. इससे पहली टिप्पणी का स्थान देखो। २. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ६५॥
३. षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९४। ४. तत्थ सट्ठी वरीसाणं पालगस्य रज्जं। विविधतीर्थकल्प, पृ० ३८॥
५. संस्कृत ड्रामा, आर्थर बैरिडेल कीथकृत, सन् १९२४, पृ० १३१।
६. ४।२४॥ के पश्चात्, ६।१॥ के पश्चात्, ६।१६॥ के पश्चात्, ६।५॥ के पश्चात्।
७. १०।१६॥ के पश्चात्। ८. १०।४७॥ ९. १०।४८॥
१०. देखो १०।५१,५२॥

विजया कुल

त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति के अनुसार पालक के पश्चात् विजया कुल के राजाओं ने १५५ वर्ष तक राज्य किया ।[1]

विविधतीर्थकल्प आदि दूसरे जैन ग्रन्थों में नन्दों का राज्य १५५ वर्ष का लिखा है ।[2] सम्भव है ये नन्द उज्जयिनी के नन्द हों और इन का कुल विजया कुल कहाता हो ।

अंशुमान्—अर्थशास्त्र और उस की टीकाओं में अवन्तियों के राजा अंशुमान् और उस के अनुजीवी घोटमुख आचार्य का उल्लेख है । हम नहीं जानते कि यह अंशुमान् चण्ड-प्रद्योत से पहले हुआ अथवा पश्चात् ।[3]

---

१. पणवण्ण विजवंस भावा । गाथा ९६॥

२. पणपण्णं सयं नंदाणं । विविधतीर्थकल्प, पृ० ३८॥

३. अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय ८५ ॥

चौतीसवां अध्याय

२७. वत्सराज उदयन=नादसमुद्र[1]

प्रसिद्धि—उदयन संस्कृत साहित्य का एक विख्यात व्यक्ति है। बाण[2] और कालिदास, गुणाढ्य और भास तथा विष्णु-गुप्त कौटल्य और श्रीहर्ष ने इस की कीर्ति गाई है।

मातृकुल—स्वप्न-नाटक में उदयन को वैदेही-पुत्र लिखा है।[3] इस विषय में निम्नलिखित बात विचारणीय है। पुराणों की राज-वंशावलियों के अनुसार उदयन के पिता का नाम शतानीक था।[4] मञ्जुश्रीमूलकल्प का भी यही मत है।[5] प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में भी ऐसा ही उल्लेख है।[6] उदयन-पिता शतानीक भारत-युद्ध के पश्चात् पौरव-कुल का शतानीक द्वितीय था। महाभारत आदिपर्व ९०।९५ के अनुसार शतानीक प्रथम ने एक वैदेही से विवाह किया था। शतानीक द्वितीय का भी किसी वैदेही से विवाह होना एक विलक्षण समता है। संभव है इतिहासानभिज्ञ किसी साधारण पण्डित ने महाभारत के लेख के कारण, शतानीक प्रथम और द्वितीय का भेद जाने विना स्वप्ननाटक की किसी मूल-प्रतिलिपि में कभी ऐसा पाठ कर दिया हो। स्वप्न-नाटक का मूल-पाठ वस्तुतः कुछ अन्य हो। इस अवस्था में उदयन का मातृ-कुल कुछ अनिश्चित सा है।

परन्तु प्रबन्धकोश के कर्ता का मत है कि शतानीक की पत्नी चेटकराज की कन्या मृगावती थी। उस का पुत्र उदयन था।[7] एक चेटक वैशाली का राजा था। वह तीर्थंकर महावीर का उत्कृष्ट श्रमणोपासक था।[8] वैशाली प्रदेश विदेहों में भी गिना जाता रहा है। इस प्रकार शतानीक द्वितीय का विवाह भी वैदेही-कन्या से हुआ मानना पड़ेगा।

कथासरित्सागर आदि में भूल—कथासरित्सागर[9] और बृहत्कथा-मञ्जरी[10] में उदयन को सहस्रानीक का पुत्र और शतानीक का पौत्र लिखा है। इन ग्रन्थों के अनुसार सहस्रानीक का विवाह अयोध्या-नरेश कृतवर्मा की कन्या मृगावती से हुआ था। यह बात सत्य हो सकती

---

१. प्रबन्धकोश, पृ० ८६। विश्वप्रकाशकोश न-वर्ग, १७५ में लिखा है—सुयामनो वत्सराजे।

२. उदयनमिवानन्दितवत्सकुलम्। कादम्बरी पूर्वार्द्ध।

३. सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। गणपति शास्त्री का संस्करण, सन् १९२४, पृ० १२९।

४. ततोऽपरश्शतानीकः। तस्माच्चोदयनः। विष्णु ४।२१।१४,१५॥

५. श्लोक ३४६।

६. उदयनः······शतानीकस्य पुत्रः।······सहस्रानीकस्य नप्ता। गणपति शास्त्री का संस्करण, सन् १९२०, पृ० ५६।

७. प्रबन्ध १९वां, पृ० ८६।

८. आचार्य हिमवान् की थेरावली, ना०प्र० प०, भाग ११, अंक १, पृ० ८६।

९. २।१।११,२९॥

१०. २।१।१८॥

ह कि मृगावती उदयन की माता हो। अभी प्रबन्धकोश के आधार पर लिखा गया है कि चेटकराज की कन्या मृगावती शतानीक द्वितीय की पत्नी थी। परन्तु यह मृगावती अयोध्या-पति कृतवर्मा की कन्या नहीं हो सकती। कृतवर्मा की कन्या शतानीक-प्रथम-पुत्र सहस्रानीक की पत्नी होगी।

इस भूल का कारण—बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में उदयन के पिता का नाम शतानीक लिखा है।[1] कथासरित्सागर का वृत्तान्त बहुत खण्डित प्रतीत होता है। उस वृत्तान्त में शतानीक प्रथम और द्वितीय का भेद न रहने से सब गड़बड़ हुई है। सोमदेव और क्षेमेन्द्र ने दोनों शतानीकों को एक कर दिया है। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उदयन के पिता की मृत्यु पर पाञ्चाल-राज आरुणि ने उदयन का बहुत सा राज्य हस्तगत किया। इस के विपरीत कथासरित्सागर के अनुसार सहस्रानीक सस्त्रीक हिमगिरि को चला गया।[2] प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के अनुसार उदयन की माता घर पर रही थी। अतः यह निश्चित है कि दोनों शतानीकों का एक मानना इस भ्रम का कारण हुआ है।

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण का मत मान कर कहना पड़ेगा कि पुराणों का वसुदान संभवतः प्रतिज्ञा का सहस्रानीक था।

भ्राता—महाराज उदयन के तीन भाई थे।[3]

मत्स्य की भविष्य वाणी—उदयन और उस के प्रतापी पुत्र के विषय में मत्स्यपुराण में लिखा है कि वे दोनों भरतवंश के अन्त में होंगे।[4] यह लेख एक ऐसे स्थान में है जहां इस के होने की अत्यल्प संभावना है। इस लिए यह वृत्तान्त सत्य है।

राज्याभिषेक—आरुणि के आक्रमण के पश्चात् उदयन अभिषिक्त हुआ होगा। तब उस की आयु २०-२४ वर्ष के अन्दर होगी। उस समय वह अविवाहित होगा।

एक समस्या—बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु के राज्य के आठवें वर्ष में गौतम बुद्ध का महा-निर्वाण हुआ। अजातशत्रु का राज्यकाल लगभग २८ वर्ष था। तत्पश्चात् दर्शक राजा हुआ। दर्शक के राज्य-काल में पद्मावती का विवाह उदयन से हुआ। उधर बौद्ध-ग्रन्थों में उदयन को तथागत-बुद्ध का समकालीन लिखा है। ह्यूनसांग भी लिखता है कि कौशाम्बी के राजा उदयन ने भगवान् बुद्ध की एक मूर्ति बनवाई थी।[5] ह्यूनसांग के लेख से स्पष्ट होता है कि बुद्ध की मृत्यु से बहुत पहले वह मूर्ति स्थापित कराई गई थी।

मज्झिम-निकाय के अनुसार जब कोसल-राज प्रसेनजित् की आयु ८० वर्ष की थी, तब भगवान् बुद्ध की आयु ८० वर्ष की थी।[6] उन्हीं दिनों भगवान् बुद्ध का महानिर्वाण हुआ।

---

१. ५।८९,९१॥ २. २।२।१७॥

३. सन्ति तस्य त्रयो भ्रातरः। वीणावासवदत्ता, पृ० ४६।

४. ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः ४।१९॥

५. हिन्दी अनुवाद, कौशाम्बी-वर्णन, पृ० २५५। ६. २।४।९॥ पृ० ३६६।

कथासरित्सागर में लिखा है कि जिस समय प्रसेनजित् जरा से पाण्डु था,[1] उस समय उदयन का वासवदत्ता और पद्मावती से विवाह हो चुका था।[2] यही नहीं अपितु उदयन-पुत्र नरवाहन दत्त भी जन्म चुका था।[2] तब दर्शक मगध का राजा नहीं हो सकता। क्योंकि बुद्ध-महानिर्वाण के २० वर्ष पश्चात् दर्शक राजा हुआ। तभी पद्मावती का उदयन से विवाह हुआ।

स्वप्न-नाटक से प्रतीत होता है कि वासवदत्ता के विवाह के तीन, चार वर्ष पश्चात् उदयन का पद्मावती से विवाह हुआ होगा। ऐसी स्थिति में संस्कृत-ग्रन्थों का बौद्ध ग्रन्थों से भारी विरोध पड़ता है। हम अभी नहीं कह सकते कि किन ग्रन्थों का साक्ष्य अधिक महत्त्व का है।

आरुणि का आक्रमण—उदयन के राज्य संभालते ही वत्स एक छोटा सा राज्य रह गया था।[3] उस के समीप पाञ्चाल राज्य था। वहां का राजा आरुणि था।[4] वह उदयन का कोई सम्बन्धी था।[5] राजा शतानीक की मृत्यु होते ही उस ने उदयन पर आक्रमण किया। वत्स का मन्त्रिमण्डल और महामात्रवर्ग दिवंगत महाराज की और्ध्वदेहिक-क्रिया में संलग्न था। सब लोग शोकग्रस्त थे। वे राज्य की रक्षा से कुछ असावधान थे।[6] आरुणि ने वत्सों का कुछ प्रदेश हस्तगत कर लिया।

मन्त्रि-मण्डल—उदयन का मन्त्रि-मण्डल बड़ा प्रबल था। राज्य का सारा काम मन्त्रि-मण्डल की देख रेख में होता था। राज्य के गम्भीरतम विषयों में इस की योजनाएं अव्याहत थीं। यौगन्धरायण महामात्य था। हर्षरक्षित[7] अथवा वर्षरक्षित[8] भी एक मन्त्री था। ऋषभ एक और मन्त्री था।[9] प्रसिद्ध रुमण्वान् था सेनापति।[10] राजसखा तथा पुरोहित वसन्तक था।

यौगन्धरायण का चरित्र—प्रधानामात्य यौगन्धरायण सच्चरित्र, नीति-निपुण, शास्त्रवित् और शूरवीर था। उसकी गति अन्तःपुर तक थी। राज्यहित के लिए वह महाराणी तक को अपनी नीति पर चलाता था।

इन सब के अतिरिक्त छोटा सेनापति कात्यायन था।[11] हंसक उदयन का उपाध्याय था।[12] हरिवर्मा कौशाम्बी का नगराध्यक्ष था।[13]

---

१. ६।५।४०॥ पृ० १३८। २. ६।५।६४–६६, पृ० १३९। ३. मनाग्जनपद। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ४।१५॥
४. स दुरात्मा पाञ्चालहतकः···आरुणिः। तापसवत्सराज, अङ्क ६, पृ० ७४। स्वप्ननाटक ५।११ के पश्चात्।
५. समानवंश्या ननु राज्ञो रिपवः। वीणावासवदत्ता पृ० ४६।
६. श्रुतमेवार्यपुत्रेण प्रोषिते जगतीपतौ। विज्ञाय नगरीं शून्यां यत्तदारुणिना कृतम्। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ७।६८॥ ७. अभिनवगुप्त, क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, एम. कृष्णमाचारियरकृत, सन् १९३७, पृ० ५५० पर उद्धृत। ८. तापसवत्सराज, पृ० ४।
९. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ४।२०॥ १०. क० स० सा० १।२।४३,४४, पृ० २५।
११. कौमुदी महोत्सव पृ० ४। वीणा० पृ० २२।
१२. वीणा० पृ० ४४। प्रतिज्ञा के प्रथमाङ्क में हंसक नाम मिलता है, पर उस के साथ उपाध्याय विशेषण नहीं है। १३. वीणा० पृ० ४५।

नागवनयात्रा—राजा उदयन गजविद्या में अति निपुण था। उसे हाथी पकड़ने का व्यसनसा था। वह अपनी घोषवती वीणा बजाकर उनकी उद्दण्डता दूरकर के उन्हें पकड़ लेता था। राज्याभिषेक के कुछ काल पश्चात् वह एकबार यमुनातीरवर्ती नागवन में गया। वन-प्रवेश के समय वह सुन्दरपाटल[1] नामक घोड़े पर आरुढ़ था। उसके साथ उसका सेनापति कात्यायन था। थोड़े से सैनिक भी उसके साथ थे।

चण्ड महासेन का षड्यन्त्र—महासेन उस समय उज्जयन का महाबलशाली महाराज था। उसका प्रधानामात्य भरतरोहक था। भरतरोहक ने अपने सखा मन्त्री शालङ्कायन को नागवन में भेजकर छल से वत्सराज को बन्दी कर लिया।[2] वत्सराज की इस आपत्ति का उल्लेख आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने अर्थशास्त्र में किया है।[3]

वासवदत्ता से विवाह—बन्दी उदयन उज्जैन लाया गया। महासेन की महाराणी अङ्गारवती थी।[4] महासेन और अङ्गारवती की एक कन्या वासवदत्ता थी।

उदयन वासवदत्ता का वीणा-शिक्षक बनाया गया। उदयन और वासवदत्ता में प्रेम-प्रणय हो गया। यौगन्धरायण की बुद्धि के कारण महाराज उदयन वासवदत्ता को ले भागा।[5] यौगन्धरायण अपने स्वामी और वासवदत्ता के सहित अपनी राजधानी में सकुशल पहुंच गया।[6] कौशाम्बी में ही उदयन और वासवदत्ता का विवाह-संस्कार हुआ। महाराज चण्ड प्रद्योत ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र गोपालक को अनेक उपहारों के सहित इस विवाहोत्सव में भाग लेने को भेज दिया।

राजमाता—उस समय तक राजमाता अभी जीवित थीं।[7]

पद्मावती से विवाह--वासवदत्ता से विवाह हो जाने पर उदयन का पक्ष राजनीतिक दृष्टि से प्रबल होने लगा। अब चण्ड महासेन उसका पक्षपाती बन गया। यौगन्धरायण इस प्रबलता में अन्य सहयोग भी चाहता था। उसने महाराणी वासवदत्ता को एक अश्रुतपूर्व त्याग करने

---

१. कौ० म० पृ० ४। वीणा० पृ० २१।
२. नागवनविहारशीलञ्च मायामातङ्गात् निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः। हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास पृ० ६९१॥
३. दृष्टा हि जीवता पुनरापत्तिर्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम्। आदि से अध्याय १२८।
४. स्वप्न पृ० १२। क० स० सा० पृ० २३। धम्मपद श्लोक २१—२३ की एक टीका में लिखा है कि—वासुता राजा पजोद की भगिनी थी। उसने कोसाम्बी के राजा उदेन को विवाहा। बौद्ध ग्रन्थों ने इतिहास को कितना नष्ट किया है, यह उसका एक उदाहरण है।
५. प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्ने। कालिदास मेघदूत।
६. उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः॥ मृच्छकटिक ४।२६॥
कान्तां हरति करेण्वा वासवदत्तामिवोदयनः॥ आर्य श्यामिलककृत पादताडितक भाण, १०७, पृ०४०।
७. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ५।८६,८९। प्रतिज्ञा पृ० ३८॥

के लिए उद्यत कर लिया। भला कौन साधारण स्त्री भी सपत्नी लाना चाहेगी। वासवदत्ता ने अपने राज्यविस्तार के लिए यह स्वीकार किया।

उन दिनों मगध का शासन महाराज दर्शक के हाथ में था। उसकी एक अत्यन्त रूपवती भगिनी थी। नाम था उसका पद्मावती।[1] यौगन्धरायण की नीति के कारण पद्मावती का विवाह उदयन से हो गया।

आरुणि पर आक्रमण—उदयन अपने राज्य का ध्यान न्यून करता था। पाञ्चाल-राज आरुणि वत्सों का बहुत भाग हथिया चुका था।[2] मन्त्रिमण्डल आरुणि से बदला लेना चाहता था। चण्ड प्रद्योत और दर्शक उदयन के सम्बन्धी बन चुके थे। मन्त्रिमण्डल के अनुरोध से उन दोनों ने सेनाएं भेजीं।[3] पाञ्चाल पर आक्रमण कर दिया गया। आरुणि बन्दी हुआ। वत्सों का खोया हुआ प्रदेश ही नहीं प्रत्युत नया प्रदेश भी उनके राज्य में मिलाया गया।

आनन्द का उदयन को उपदेश—पाली विनयपिटक में लिखा है कि आनन्द का उदयन से वार्तालाप हुआ था।[4] उदयन की रानियों ने भी आनन्द से भेंट की थी। यह घटना इस पाञ्चाल आक्रमण के शीघ्र पश्चात् हुई होगी। तब उदयन की दोनों रानियां विद्यमान होंगी और भगवान् बुद्ध के महा-निर्वाण को कई वर्ष हो चुके होंगे।

उदयन-पुत्र वहीनर—उदयन का पुत्र वहीनर था। उसका वर्णन आगे होगा।

एक भ्रष्ट वंशावली—चालुक्य वंशीय राजराज अपरनाम विष्णुवर्धन का एक ताम्रपत्र मिलता है।[5] इस राजा का अभिषेक वर्ष ९४४ था। उस ताम्रपत्र पर लिखा है—

ततो जनमेजयः ततः क्षेमुकः ततो नरवाहनः ततः शतानीकः तस्माद् उदयनः।

इस से ज्ञात होता है कि कई दानपत्रों के लिखने वाले कितने असावधान थे।

---

१. स्वप्न पृ० १४, ११६। तापसवत्सराज अङ्क ३, पृ० ३९॥

२. तापसवत्सराज १।२॥ ३. स्वप्न पृ० ११६॥ ४. हिन्दी अनुवाद, पृ० ५४६।

५. Indian Antiquary, Vol. XIV, Pages 50-55.

पैंतीसवां अध्याय

भगवान् बुद्ध से सम्राट् नन्द पर्यन्त

उदयन-पुत्र वहीनर

२८. वहीनर—पुराणों में इसे वीर राजा कहा है। कथासरित्सागर आदि में इसकी वीरता की अनेक कथाएं लिखी हैं। नहीं कह सकते उनमें से कितनी ऐतिहासिक होंगी। व्याकरण महाभाष्य और काशिकावृत्ति में एक वार्तिक पढ़ा है।[1] उसके अनुसार वहीनर का पुत्र वैहीनरि था।[2] कई वैयाकरण इस विषय में कहते हैं कि विहीनर का पुत्र वैहीनरि था। क्या इस वार्तिक में उदयन-पुत्र वहीनर का संकेत हो सकता है।

इस वहीनर को कथासरित्सागर में नरवाहन नाम से स्मरण किया है। वहां नरवाहन के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के नाम भी लिखे हैं।[3] भामह भी नरवाहन नाम स्मरण करता है।[4] सागरनन्दी नाटकलक्षणरत्नकोश में लिखता है—वत्सराजसुतो नरवाहनः प्रभावतीविषमास्थाय प्राप्तो मदनमञ्जुकाम्।[5]

२९. दण्डपाणि—इसका नाममात्र अवशिष्ट है।

३०. निरामित्र—दण्डपाणि के पश्चात् निरामित्र राजा हुआ।

३१. क्षेमक—अर्जुन और अभिमन्यु के वंश में यह अन्तिम राजा था। पुराणों से ऐसा ज्ञात होता है कि इसका अन्त सम्राट् नन्द द्वारा हुआ होगा। सत्यार्थप्रकाश के अनुसार क्षेमक का अन्त उसके प्रधान विश्रवा द्वारा हुआ।

कोसल-वंश

२३. क्षुद्रक—बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि प्रसेनजित् का एक पुत्र विडूडभ था। सेनापति दीर्घ चारायण की सहायता से उसने राज्य हस्तगत कर लिया। प्रसेनजित् अजातशत्रु से सहायता लेने गया और राजगृह के बाहर ही परलोक सिधारा। सम्भव है विडूडभ के हीन-कर्म के कारण पुराणों में उसे क्षुद्रक लिखा गया हो।

२४. कुलक—क्षुद्रक के पश्चात् कुलक राजा बना।

२५. सुरथ—इसका नाममात्र मिलता है।

---

१. वहीनरस्येद्वचनम् ।७।३।१॥

२. मत्स्यपुराण १९५।१९ में भृगुगोत्र में एक वैहीनरि अपरनाम विरूपाक्ष वर्णित है।

३. कथासरित्सागर ४।३।५५–५७॥६।८।११४–११६॥ ४. त्वमेव नरवाहनः ।५।५६॥

५. पंक्ति १३४०,१३४१।

२६. सुमित्र—भारत-युद्ध में अभिमन्यु से मारे जाने वाले बृहद्बल के वंश में सुमित्र अन्तिम राजा था। सुमित्र पर इक्ष्वाकु-वंश इस कलि-युग में समाप्त हुआ। राजसमुद्र महाकाव्य में भागवत स्कन्ध ९ के आधार पर मनु से सुमित्र तक १२२ राजा लिखे हैं।

मागध-वंश

७. दर्शक=सिंहवर्मा—२५ वर्ष

दर्शक नाम पुराणों और स्वप्न नाटक आदि में मिलता है। महावंसो में नागदसक है। सिंहवर्मा नाम कथासरित्सागर में है।[1] कथासरित्सागर में अन्य दो स्थानों पर इस सिंहवर्मा और पद्मावती के पिता का नाम प्रद्योत लिखा है।[2] संभव है, कभी यहां प्राद्योत पाठ हो। यदि यह बात सत्य है, तो बिम्बिसार या अजातशत्रु का नाम प्रद्योत भी होगा। दर्शक अजातशत्रु का पुत्र या भाई ही था।[3]

८. उदयी=उदायी=उदायिभद्र—३३ वर्ष

कुसुमपुर अथवा पाटलिपुत्र नगर का निर्माण—पुराणों में लिखा है कि उदयी ने अपने राज्य के चतुर्थ वर्ष में गङ्गा के दक्षिण-कूल पर कुसुम नाम का एक श्रेष्ठ पुर बनवाया। महाभाष्य २।१।१६ में इसे अनुशोणं पाटलिपुत्रम् लिखा है। यह कुसुमपुर पाटलिपुत्र के नाम से भी विख्यात हुआ। इस पाटलिपुत्र के नाश की एक कहानी गणरत्नमहोदधि में मिलती है। वहां लिखा है कि पुरगा नाम की किसी राक्षसी ने इस पुर को खा लिया था। इस कहानी का मूल खोजना चाहिए।[4] पाणिनीयसूत्र ६।३।११७ के अनुसार पुरगावणम् पाठ बनता है।

९. नन्दिवर्धन—४० वर्ष

दो साधारण राजा—महावंसो में उदायिभद्दक के पश्चात् अनुरुद्धक और मुण्ड नामक दो राजाओं का उल्लेख है।[5] दिव्यावदान में मुण्ड नाम ही है।[6] इन दोनों का राज्यकाल वहां आठ वर्ष लिखा है। बहुत संभव है नन्दिवर्धन के चालीस वर्षों में ये आठ वर्ष सम्मिलित हों। पुराणों में प्रधान राजाओं का ही वर्णन है, अतः इनका उल्लेख छोड़ दिया गया होगा। अंगुत्तर में भी पाटलिपुत्र के मुण्ड राजा की एक कथा लिखी है। उस की स्त्री भद्दा थी।[7]

नन्दिवर्धन=अशोक[8] अथवा अशोकमुख्य[9]—बुद्ध-परिनिर्वाण के पश्चात् १७ वर्ष तक

---

१. ३।५।५८॥ पृ० ७२।
२. ३।१।१९, २०॥ पृ० ४८। तथा ६।५।६६॥ पृ० १३९।
३. एक अन्य परम्परा के अनुसार दर्शकपुत्र सुबाहु ने ७ वर्ष, उस के पुत्र सुधनु ने २३ वर्ष, उस के पुत्र महेन्द्र ने ९ वर्ष, और उस के पुत्र चमश ने २२ वर्ष राज्य किया। जर्नल आफ बिहार ओड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग २६, अंक ४, पृ० ३५५।
४. पुरगा नाम काचिद् राक्षसी तया भक्षितं पाटलि-पुत्रं तस्याः निवासः पौरगीयमित्यन्यः। गणरत्नमहोदधि, पृ० १७६।
५. महावंसो ४।३॥
६. पृ० ३६९।
७. अंगुत्तर ३।५७–६२॥
८. मंजुश्रीमूलकल्प श्लोक ३५५।
९. मंजुश्री ४१३।

अजातशत्रु ने राज्य किया। तदनन्तर दर्शक ने २५ वर्ष और उदायी ने ३३ वर्ष राज्य किया। इन सब के मिला कर ७५ वर्ष बीते। तब संभवतः दो अप्रसिद्ध राजा हुए। उन का राज्य ८ वर्ष का था। उन के पश्चात् नन्दिवर्धन राजा हुआ। मञ्जुश्रीमूलकल्प का मत है कि बुद्ध परिनिर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् कुसुमपुर में अशोक नाम का राजा था।[1] अतः पुराणों का नन्दिवर्धन मूलकल्प का अशोक है।

तिब्बतीय भद्रकल्पद्रुम का लेख—मालव पण्डित भटभद्र के आश्रय पर लिखने वाला तिब्बती लेखक कुलाचार्य ज्ञानश्री अपने भद्रकल्पद्रुम में लिखता है—बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् १००वें वर्ष में कुसुम नगर में अशोक राजा होगा। वह १५०वें वर्ष तक जीवित रहेगा। अर्थात् उस का राज्य ५० वर्ष का होगा।[2] अशोक के विषय में ह्यूनसांग का भी यही मत है।[3]

कालाशोक—महावंसो में इसे कालाशोक नाम से स्मरण किया है। वहां यह भी लिखा है कि कालाशोक राजा के दश वर्ष व्यतीत होने पर बुद्ध-परिनिर्वाण को सौ वर्ष हुआ था।[4] कालाशोक के दशवें वर्ष के अन्त से गिनी गई बौद्ध वर्ष-गणना चाहे ठीक न हो, पर इतना प्रतीत होता है कि नन्दिवर्धन ही बौद्ध-ग्रन्थों का कालाशोक था। दिव्यावदान का काकवर्णि यही है।

द्वितीय बौद्ध-सभा—नन्दिवर्धन या अशोक के काल में ही दूसरी बौद्ध-सभा वैशाली में लगी।

१०. महानन्दी—४३ वर्ष

शैशुनाग-वंश का यह अन्तिम राजा था। यदि मञ्जुश्रीमूलकल्प के वृत्तान्त को सत्य माना जाए तो महानन्दी विशोक होगा।[5] परन्तु यह वृत्तान्त पूरा ठीक नहीं कहा जा सकता। मञ्जुश्री के अनुसार ७६ वर्ष की आयु में विशोक ज्वर से मरा।[6] तारानाथ के अनुसार इस का नाम वीतशोक था। अवन्तिसुन्दरीकथासार के परिच्छेद ४ के दो श्लोक देखने योग्य हैं—

अथ खल्वनीभर्ता तपस्यति रिपुञ्जयः। तस्मिन्काले विशालायां वीतिहोत्रादनन्तरम्। १७॥
प्रद्योतादिष्वतीतेषु क्रमेण नृपतिष्वभूत्। महानन्दीति तद्राज्ये महानृत्तमवर्तत ॥१८॥

इन श्लोकों में कई श्लोक त्रुटित दिखाई देते हैं। इस परिच्छेद का अगला वर्णन मगध का है।

महानन्दी-पुत्र महापद्म—महानन्दी की एक शूद्रा स्त्री थी।[7] उस से इस का महापद्म नामक एक पुत्र हुआ। महापद्म सर्वक्षत्रान्तकृत् था। उस का वर्णन अगले अध्याय के पश्चात् होगा।

बुद्ध-निर्वाण से महानन्दी के अन्त तक—पुराणों की काल गणना के अनुसार १७+२५+३३+४०+४३=१५८ वर्ष बीते थे।

---

१. मंजुश्रीमूलकल्प ३५३—३५५। २. ज० बि० ओडीसा रि० सो० भाग २६, पृ०३५०,३५१। ३. जीवनवृत्त, पृ० १०१। वाटर्स, भाग २, पृ० ८८। ४. महावंसो ४।८॥ ५. श्लोक ४१३। ६. श्लोक ४१६। ७. मत्स्य २७०।१८॥वायु ९९।३२६॥

छत्तीसवां अध्याय

अन्य प्रसिद्ध राजवंश

प्रारम्भिक वक्तव्य—सम्राट् नन्द के पूर्ववर्ती और भारत-युद्ध के परवर्ती पौरव, ऐक्ष्वाक और मागध-वंशों का वर्णन हो चुका। पुराणों में इस काल के दूसरे प्रसिद्ध राजवंशों के राजाओं की गणना भी लिखी है। वह अत्यन्त उपयोगी है। उसका वर्णन निम्नलिखित है—

१. पाञ्चाल	२७ राजा	५. अश्मक	२५ राजा
२. काशेय	२४ राजा	६. मैथिल	२८ राजा
३. हैहय	२८ राजा	७. शूरसेन	२३ राजा
४. कालिङ्ग	३२ राजा	८. वीतिहोत्र	२० राजा

इन का अब क्रमशः वर्णन किया जाता है।

१. पाञ्चाल

पाञ्चाल धृष्टकेतु का वर्णन पृ० १७२ पर हो चुका ह। संभवतः भारत-युद्ध के पश्चात् वही पाञ्चालों का राजा था। पाञ्चालों का अगला इतिहास अभी तक अन्धकार में है। वत्स-राज उदयन के काल में आरुणि पाञ्चाल-राज था। पाञ्चालों का अधिक वर्णन अभी तक हमें नहीं मिला।

२. चौबीस काशेय राजा

१. सुवर्णवर्मा—इस की कन्या वपुष्टमा पौरव जनमेजय तृतीय की धर्मपत्नी थी।[1]

२. जयवर्मा—इस का उल्लेख अविमारक नाटक में है।[2] वह संभवतः वपुष्टमा का भाई होगा। अविमारक नाटक की घटना के समय उसका पिता यज्ञ व्यापार में तत्पर था।[3] जय-वर्मा की माता का नाम सुदर्शना था।[4]

३. अश्वसेन—यह राजा तीर्थंकर पार्श्वनाथ का पिता था।[5] इसका काल भगवान् बुद्ध से बहुत पहले था। आधुनिक पाश्चात्य ऐतिहासिक बुद्ध से २५० वर्ष पहले इसे मानते ही हैं। पार्श्वनाथ का समकालीन कलिङ्गराज करकण्डु था।[6]

४. विष्णुसेन—यदि वीणावासवदत्ता का कथन सत्य माना जाय तो यह राजा उदयन का समकालीन था।[7]

---

१. देखो पूर्व पृ० २२१। २. तीसरा तथा छठा अंक। ३. अविमारक नाटक छठा अंक। ४. अविमारक नाटक, छठा अंक आरंभ तथा ६।१३ के पश्चात्। ५. विविधतीर्थकल्प, पृ० ७२। ६. विविधतीर्थकल्प, पृ० ६५। ७. देखो पूर्व पृ० २४१।

५. महासेन—इसका उल्लेख कौटल्य अर्थशास्त्र,[1] कामन्दक नीतिशास्त्र[2] और हर्षचरित[3] में मिलता है।

६. जयसेन—इसका स्मरण वात्स्यायन कामसूत्र में किया गया है।[4] यह अपने अश्वाध्यक्ष से मारा गया था।[4]

वर्तमान भविष्य पुराण में दो काशी-राजाओं की ओर संकेत किया गया है। ये दोनों आनन्दापुर की किसी स्त्री से मारे गए थे।[5] संभव है यह संकेत महासेन और जयसेन की ओर हो। जयसेन जिस अश्वाध्यक्ष से मारा गया था, वह इस स्त्री से मिला हो सकता है।

पूर्वोक्त राजाओं में वर्मा और सेनान्त वाले नाम हैं। सुवर्णवर्मा नाम महाभारत में हैं, अतः उस के साथ जयवर्मा के मानने में कोई आपत्ति नहीं। अश्वसेन महासेन और जयसेन नाम भी प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर लिखे गए हैं। इन नामों के सादृश्य से वीणा-वासवदत्ता का विष्णुसेन भी ठीक हो सकता है।

३. हैहयों के अठाईस राजाओं में से अभी हम किसी एक का नाम भी नहीं जान सके।

४. कलिङ्गों के बत्तीस राजा

भारत-युद्ध-कालीन कालिङ्ग राजाओं का वर्णन पृ० १९९ और २०० पर हो चुका है। उन के उत्तरवर्ती निम्नलिखित राजाओं का वृत्त ज्ञात हो सका है—

१. भद्रसेन—यह अपने भाई वीरसेन से मारा गया। इस का उल्लेख विष्णुगुप्त और बाण आदि ने किया है।[6]

२. वीरसेन—भद्रसेन को मार कर वीरसेन राजा हो गया होगा।

---

१. लाजान् मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम्। आदि से अध्याय २०।

२. लाजान् विषेण संयोज्य मधुनेति विलोभ्य तम्।
देवी तु काशिराजेन्द्रं निजघान रहोगतम् ॥७।५२॥

३. मधुमोदितं मधुरकसंलिप्तैः लाजैः सुप्रभा पुत्रराज्यार्थं महासेनं काशिराजं जघान। षष्ठ उच्छ्वास पृ० ६९७।

४. काशिराजं जयसेनम् अश्वाध्यक्षः जघान इति। कामसूत्र अध्याय २७।

५. द्वौ काशिराजौ वै वन्द्यौ चानन्दापुरयोषिता।
विषं प्रयुज्य पंचत्वमानीतौ पूजितात्मकौ ॥ भविष्यपुराण ८।५९॥ तुलना करो बृहत्संहिता ७०।१॥

६. (क) देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान। अर्थशास्त्र, आदि से अध्याय २०। इस पर टीका में लिखा है— कलिङ्गेश्वरस्य भद्रसेनस्य सोदर्यः वीरसेनः।

(ख) कामन्दक नीतिशास्त्र ७।५१॥ इस पर टीका भी देखिए।

(ग) स्त्रीविश्वासिनश्च महादेवीगृहगूढभित्तिभाक् भ्राता भद्रसेनस्य अभवन् मृत्यवे कालिङ्गस्य वीरसेनः। हर्षचरित, पृ० ६९५।

(घ) भ्रात्रा देवीप्रयुक्तेन भद्रसेनो निपातितः। भविष्यपुराण ८।५८॥

३. अनङ्ग—यह राजा अपने सामन्तों के बालकों को संताप देता था। इस पर कुपित प्रजाओं ने इसे मार दिया। इस का उल्लेख सोमदेव ने अपने यशास्तिलक में किया है।[1]

४. दधिवाहन—महिषी पद्मावती। जैन तीर्थंकर महावीर का समकालीन था।[2] इस की कन्या चन्दनबाला थी। चन्दनबाला महावीर जी की उपासिका थी।

५. करकण्डु—दधिवाहन का पुत्र था।

जैन आचार्य हिमवान् के नाम से छापी गई थेरावली में कलिङ्ग के कई राजाओं का उल्लेख है।[3] यथा—सुलोचन, शोभनराय आदि।[3] सुलोचन महावीर स्वामी का समकालीन था।[3] दधिवाहन भी महावीर स्वामी के काल में था। परन्तु करकण्डु को अन्यत्र पार्श्वनाथ का समकालिक लिखा है। इन दोनों में सत्य-पक्ष का निर्णय अभी नहीं हो सकता।

५. पच्चीस अश्मक राजा

१. अश्मकसूनु सञ्जय—वीणावासवदत्ता के अनुसार वह वत्सराज उदयन का समकालीन था।[4]

२. शरभ—इस के मारे जाने की वार्ता हर्षचरित में वर्णित है।[5]

६. अठाईस मैथिल राजा

१. गणपति—यह कोई विदेहराज था। इस के पुत्र को शत्रुओं ने यक्ष्म-रोगपीड़ित कर दिया था।[6]

७. तेईस शूरसेन राजा

१. कीर्तिषेण—इस का वर्णन कौमुदी-महोत्सव नाटक में मिलता है।[7] इसकी महिषी राजन्वती थी। इस राजा की ऐतिहासिक सत्यता की जांच अभी अपेक्षित है।

२. जयवर्मा—इस का उल्लेख वीणावासवदत्ता में है।[8] इस की ऐतिहासिक तथ्यता अभी जांच योग्य है।

३. कुविन्द—काव्यमीमांसा में राजशेखर लिखता है—

श्रूयते च शूरसेनेषु कुविन्दो नाम राजा, तेन परुषसंयोगाक्षरवर्जमन्तः पुर एव प्रवर्तितो नियमः।[9]

उसके घर की भाषा संस्कृत थी। वह बुद्ध से पूर्वकाल का हो सकता है।

इस से आगे पुराणों में बीस वीतिहोत्र लिखे हैं। उन के सम्बन्ध में भी हम कुछ नहीं जान सके।

---

१. कलिङ्गेषु अनङ्गो नाम नृपतिः दिवाकीर्तिसेनाधिपत्येन सामन्तसन्तानं संतापयन् संभूय प्रकुपिताभ्यः प्रकृतिभ्यः किलैकलोष्टानुरोधं वधमवाप। यशस्तिलक- आश्वास ३, पृ० ४३१।

२. विविधतीर्थकल्प, चम्पापुरीकल्प, पृ० ६५।

३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अंक १, पृ० ८६।

४. वीणा० पृ० ६।

५. षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९२।

६. हर्षचरित, पृ० ६६५।

७. कौ० म० पृ० ८।

८. देखो पूर्व पृ० २४१।

९. पृ० ५०।

सैंतीसवां अध्याय

नन्द राज्य—१०० वर्ष

सम्राट् महापद्म=महानन्द=नन्द[1]

महापद्म=उग्रसेन—अन्तिम शैशुनाग-राज महानन्दी की एक शूद्रा स्त्री थी। उस स्त्री से महानन्दी का एक पुत्र हुआ। पुराणों में उसका नाम महापद्म प्रसिद्ध है। महापद्म का अर्थ है—अत्यन्त धनशाली। यह सत्य है कि उसके पास अगाध धन-राशि एकत्र हो गई। इस लिए भागवत में उसे महापद्मपति भी लिखा है।[2] विष्णु और भागवत में उसे नन्द भी कहा है। कलियुगराजवृत्तान्त में उसे धननन्द लिखा है। संभवतः बहुत धनी होने से वह धननन्द कहाया। महाबोधिवंश में अन्तिम नन्द धन नाम वाला था।

उग्रसेन भी महापद्म का एक नाम था।[3] मञ्जुश्रीमूलकल्प में महानन्दी अथवा विशोक के पश्चात् शूरसेन और नन्द दो राजाओं के नाम हैं।[4] भटभद्र तथा लामा तारानाथ के लेख में भी शूरसेन और नन्द पृथक् पृथक् हैं। बहुत संभव है मञ्जुश्री का शूरसेन ही उग्रसेन या महापद्म और नन्द अन्तिम नन्द हो। महापद्म का उग्रसेन नाम युक्त है। एक तो उसकी सेना उग्र होगी। दूसरे, उग्र कहते हैं—क्षत्रिय द्वारा शूद्रा-पुत्र को।[5] पुराणों के अनुसार महापद्म शूद्रापुत्र था ही। यवन ग्रन्थों में नन्द को नापित का पुत्र लिखा है। जैन विविधतीर्थकल्प में नापितगणिकासुत नन्द लिखा है।[6] परन्तु वह वीरमोक्ष से ६० वर्ष पश्चात् था। इस लेख के अनुसार वह पुराणों का नन्दिवर्धन होगा। जैन लेखों में उसे ही वीरनिर्वाण के ६० वर्ष पश्चात् लिखा है।

महानन्दी और महापद्म—महानन्दी का पुत्र महापद्म नन्द था। यह पुराणों का मत है। आज से लगभग १३०० वर्ष पूर्व का आचार्य दण्डी भी यही मानता था। उसका समग्र ग्रन्थ अवन्तिसुन्दरी कथा अभी नहीं मिला। उस ग्रन्थ के सार का प्रारंभिक भाग अब भी प्राप्त है। उस में लिखा है महानन्दी का पुत्र महापद्म हुआ।[7] यह बात दण्डी से बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुकी होगी। अतः इस की ऐतिहासिक तथ्यता मान्य है।

---

१. महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः। मत्स्य २७३।५०॥
महानन्दाभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः। ब्रह्माण्ड ३।७४।२४२॥
यावत्परिक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्। विष्णु ४।२४।४१॥

२. स्कन्द १२।२।९॥ ३. महाबोधिवंश॥ ४. मूलकल्प श्लोक ४१७, ४२२॥

५. उग्रः शूद्रासुते क्षत्रात्। शाश्वतकोश, श्लोक १८४, विश्वप्रकाश कोश, पृ० १२१।

६. पृ० ६८। ७. अवन्तिसुन्दरीकथासार ४।१७–२०॥

नन्दों का विपुल धन—नन्दों की प्रचुर धनराशि का वर्णन कई ग्रन्थों में मिलता है। मुद्राराक्षस नाटक में नन्दों को—नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वर लिखा है।[१] कथासरित्सागर में भी नन्द को ९९ कोटि का अधीश्वर लिखा है।[२] मुद्राराक्षस और क० स० सा० के अंकों से ज्ञात होता है कि नन्द के सम्बन्ध में कभी ये अङ्क अति प्रसिद्ध रहे होंगे।

कामन्दकीय नीतिसार का एक पुरातन टीकाकार भी जो अपने को कामन्दक का सहपाठी और आचार्य विष्णुगुप्त का शिष्य लिखता है, यही मत प्रकाशित करता है—नन्द इति नवनवतिकोटीश्वरः।[३]

अपने विपुल धन के कारण नन्द सर्वार्थसिद्धि भी कहाया।[४]

सर्वक्षत्रान्तकृत्

पुराणों में महापद्म को दूसरा भार्गव परशुराम लिखा है। जिस प्रकार परशुराम ने क्षत्रिय-नाश किया था, उस प्रकार महापद्म ने पाञ्चाल, शूरसेन, कलिङ्ग आदि राजाओं का नाश किया। वह एकच्छत्र, अतिबल, अनुल्लङ्घित-शासन सम्राट् था।

वर्तमान भारतीय मानों का आरम्भ—अनेक वर्तमान भारतीय मान नन्द के काल में पुनः निर्णीत हुए थे। काशिका-वृत्ति में इस बात का संकेत मिलता है।[५] आयुर्वेद के ग्रन्थों में मागध और कालिङ्ग नाम के दो मान अति प्रसिद्ध हैं।[६] वायुपुराण १००। २२० में मागध मान उल्लिखित है। बहुत संभव है आयुर्वेद का मागध मान नन्द-काल में पुनः निर्णीत हुआ हो।

Agrammes=Xandrames—यूनानी लेखकों के अनुसार सिकन्दर के काल में मगध का सम्राट् अग्रम्मीस अथवा क्सन्द्रमीस था। अध्यापक राय चौधरी के अनुसार पहला रूप औग्रसैन्य का एक संभव रूपान्तर हो सकता है।[७] यूनानी लेखक जस्टिन के अनुसार सिकन्दर के काल में एक राजा नन्द्रुम या नन्द्रुस था।[८] अब विचारना चाहिए कि क्या यह समता सत्य है। उसके लिए निम्नलिखित नामों पर दृष्टि डालनी चाहिए—

Taxila तक्षशिला। Oxydrakai क्षुद्रक। Xathroi क्षत्रि।

---

१. मुद्राराक्षस ३।२७॥

२. नवाधिकाया नवतेः कोटीनामधिपो हि सः॥ १।४।९५॥

३. केटेलाग आफ अलवर मैनुस्क्रिप्ट्स, पृ० ११०।

४. मुद्राराक्षस नाटक की ढुण्ढिराजीय टीका का उपोद्घात, श्लोक २४।

५. नन्दोपक्रमाणि मानानि। २।४।२१॥ नन्देन किल प्रथमं मानानि कृतानि। वामनीय लिङ्गानुशासन कारिका ७।

६. दृढबलमानं मागधं सुश्रुतमानं कालिङ्गमिति। चरक पर चक्रपाणि की टीका, कल्पस्थान १२।९७॥

७. पो० हि० ए० इ० चतुर्थ संस्करण पृ० १९०।

८. अशोक के शिलालेख, सम्पादक इ० हुल्ट्ज्श, सन् १९२५, भूमिका पृ० ३३। यहां जस्टिन का मूल-लेख अनुवाद सहित उद्धृत है।

इन तीनों नामों में यूनानी X देवनागरी का क्ष है। अतः Xandrames क्षत्रमित के समीप पहुँचता है। इसी प्रकार Agrammes अग्रमित से मिलता है। इन दोनों नामों को उग्रसेन महापद्मनन्द से मिलाना भूल है। अब रहा नन्द्रुम या नन्द्रुस। जस्टिन ने उस के स्थान का निर्देश नहीं किया। नहीं कह सकते वह कहां का राजा था।

नव-नन्द प्रयोग की प्राचीनता—भागवत और विष्णु में नव-नन्द शब्द प्रयुक्त हुआ है। मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड में महापद्म और उस के आठ पुत्रों का उल्लेख है। महावंसो में नवनन्द अथवा नव भातर प्रयोग मिलता है।[1] इन प्रयोगों से जाना जाता है कि नन्द नौ ही होंगे।

नन्द पद का अर्थ नौ हो गया—नन्दों के नौ होने का साक्ष्य ज्यौतिष ग्रन्थों में भी मिलता है। उन ग्रन्थों में नन्द का अर्थ ही नौ बन गया है। सातवीं शताब्दी (५५० शक)[2] अथवा उस से पहले होने वाला ब्रह्मगुप्त अपने खण्डखाद्यक में नन्द पद से नव-संख्या का ग्रहण करता है।[3] मुद्राराक्षस १।१३ में नन्दा नव प्रयोग है। अतः जायसवाल आदि लेखक "नव" शब्द से जो "नया" अर्थ कल्पित करते हैं, वह युक्तिसंगत नहीं है। केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया में लिखे रैपसनमत[4] का भी इससे खण्डन जानना चाहिए।

क्या भास नन्दकालीन था—महाकवि भास उदयन का उत्तरवर्ती था। भास का स्वप्न नाटक उदयन-सम्बन्धी है। वह उदयन की कई घटनाओं के पश्चात् लिखा गया होगा। भास शूद्रक का पूर्ववर्त्ती है। यह सर्वसम्मत है कि शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त का रूपान्तर है। शूद्रक विक्रमसंवत् से बहुत पहले आन्ध्रकाल में था। भास विष्णुगुप्त-कौटल्य का भी पूर्ववर्ती प्रतीत होता है।[5] कौटल्य अपने अर्थशास्त्र में दो श्लोक उद्धृत करता है।[6] इन में से दूसरा श्लोक भास-कृत प्रतिज्ञा यौगन्धरायण-नाटक की उपलब्ध प्रतियों में मिलता है।[7] बहुत संभव है पहला श्लोक इस नाटक की संपूर्ण प्रतियों में कभी विद्यमान रहा हो। अतः अपने वर्तमान ज्ञान से हम कह सकते हैं कि भास कौटल्य का पूर्ववर्ती था।

भास अपने नाटकों के कई भरत-वाक्यों में लिखता है कि हिमालय और विन्ध्य के मध्य की सागरपर्यन्ता एकातपत्रांका भूमि को हमारा राजसिंह शासित करे।[8] उदयन के पश्चात् कौटल्य से पहले इतनी भूमि को शासित करने वाला राजा नन्द ही हुआ है। स्मरण

---

१. ५।१५॥ २. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त २४।७॥

३. षडगनन्दैः। खण्डखाद्यक अधिकार प्रथम, श्लोक ४। इस का अर्थ है—५७६।

४. भाग १, पृ० ३१३।

५. काणे संस्मृति ग्रन्थ में वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितर का लेख।

६. अर्थशास्त्र अधिकरण १०, अध्याय ३।

७. प्रतिज्ञा यौ० ४।२॥ टीकाकार माधवयज्व लिखता है—मनुनीतावपीति मनुगीततया पुराणेऽपीत्यर्थः।

८. दूत-वाक्य। स्वप्ननाटक। बालचरित। लगभग ऐसा भरतवाक्य मुनि वररुचि का है।

रखना चाहिए कि भास के अनुसार राजसिंह एकातपत्राङ्का मही का सम्राट् था। पुराणों के अनुसार महापद्मपति नन्द ही एकच्छत्रा पृथिवी का अनुल्लंघित शासक था।[1] वही एकच्छत्र सम्राट् था।[2] भास ने ठीक पुराण-सदृश प्रयोग वर्ता है। यह समानता बताती है कि भास नन्द-कालीन था।

वररुचि और नन्द—उभयाभिसारिका नामक भाण वररुचिमुनि कृत है। उस में कुसुमपुर और पाटलिपुत्र नाम स्मरण किए गए हैं। उस का भरतवाक्य किसी विशाल राज्य का वर्णन करता है। यह भाण नन्दकाल का प्रतीत होता है।

नन्दों का राज्य-काल—पुराणों के अनुसार महापद्म नन्द और उस के पुत्र १०० वर्ष तक पृथ्वी को भोगते रहे। महापद्म ८८ वर्ष तक पृथ्वी पर रहा और उस के आठ पुत्र १२ वर्ष तक। यदि यह बात सत्य मान ली जाए तो कहना पड़ेगा कि नन्द ने बड़ी छोटी आयु में राज्य संभाला होगा, अथवा महापद्म से पहले कुछ और अल्पकालीन राजा हुए होंगे। पुराणों में उन का वर्णन नहीं किया गया। संभव है महापद्म की सम्पूर्ण आयु ८८ वर्ष की हो। महावंसो में नन्दों की राज्यावधि २२ वर्ष की मानी गई है। महावंसों का लेख ठीक प्रतीत नहीं होता। मञ्जुश्री में शूरसेन का राज्य १७ वर्ष[3] और नन्द की आयु ६६ वर्ष[4] की लिखी है।

इस सम्बन्ध में खारवेल का शिलालेख—खारवेल के शिलालेख में लिखा है कि नन्द के ३०० या १०३ वर्ष पश्चात् खारवेल के राज्य का पांचवां वर्ष था।[5] खारवेल ने अपने राज्य के १२वें वर्ष में मगधराज बृहस्पतिमित्र को नीचा दिखाया।[6] अर्थात् नन्द के ३०७ या ११० वर्ष पश्चात् मगध का राजा बृहस्पतिमित्र था। हम आगे चल कर मौर्य-प्रकरण में बताएंगे कि नन्दों का २२ वर्ष का राज्य मानने से ३०० या १०३ के दोनों अंक अशुद्ध हो जाते हैं। अतः यह निश्चित है कि नन्द-राज्य २२ से बहुत अधिक वर्ष तक रहा।

महापद्म की सन्तति—पुराणों में नन्द के एक ही पुत्र का नाम लिखा गया है। वह पुत्र था सुमाल्य या सुकल्प। शेष सात पुत्रों के नाम पुराणों में नहीं हैं। महाबोधिवंश में नन्द के आठों पुत्रों के नाम दिए हैं। वे नाम हैं—पण्डुक, पण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविशांक, दश-सिद्धक, कैवर्त और धन। इन में से राष्ट्रपाल नाम बौद्ध साहित्य में बड़ा प्रसिद्ध है।[7] किसी राष्ट्रपाल पर अश्वघोष ने एक नाटक लिखा था।[8] नहीं कह सकते राष्ट्रपाल कितने थे। अनन्त रचित मुद्राराक्षसपूर्वसंकथा में नौ पुत्रों के नाम लिखे हैं। उन की ऐतिहासिक सत्यता अन्वेषणीय है।[9]

---

१. विष्णु ४।२।४२२॥ और भागवत १२।२।६—१२॥
२. मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड।
३. श्लोक ४२१।
४. श्लोक ४३६।
५. इ. हि. क्वा. सितम्बर १९३८, पृ० ४७६।
६. पूर्व-निर्दिष्ट स्थान, पृ० ४७९।
७. अश्वघोष का सौन्दरनन्द १६।८९॥
८. वादन्याय पृ० ६७।
९. बीकानेर संस्करण, पृ० २।

मन्त्री शकटाल—जैन अनुश्रुति के अनुसार अन्तिम या नवम नन्द का मन्त्री शकटाल था। उस के स्थूलभद्र और श्रियक दो पुत्र थे। उस की यक्षा आदि सात कन्याएँ थीं।[1]

राजा नन्द के मारने में शकटाल का कितना भाग था इस विषय में आवश्यकसूत्रवृत्ति पृ० ६९४ पर वररुचि की एक प्राकृत गाथा है। उस का संस्कृत रूपान्तर निम्नलिखित है—

वररुचिः डिम्भरूपेभ्यो मोदकान् दत्त्वेदं पाठयति—

राजा नन्दो नैव जानाति यत् शकटालः करिष्यति। राजानं नन्दं मारयित्वा श्रीयकं राज्ये स्थापयिष्यति ॥[2]

बालकों के लिए अनेक सरल ग्रन्थ लिखने वाला यह वररुचि संवत्-प्रवर्तक विक्रमार्क का पुरोहित है।

राक्षस और वक्रनास—मुद्राराक्षस और ढुण्ढिराज के अनुसार ये भी सर्वार्थसिद्धि नन्द के कुलामात्य थे।

योगनन्द चरित—भरतनाट्य शास्त्र की अभिनवगुप्त कृत टीका में योगानन्द चरित के अध्यारोप का कथन है।[3]

धनिक अपने दशरूपक में लिखता है—बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्—

चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रहः। कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः ॥
योगानन्दयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः । चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा ॥ (पृ० ३४)

यह वचन पैशाची बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर है। इस विषय में पूर्वनन्द नाम ध्यान देने योग्य है। कथासरित्सागर में भी ऐसा प्रयोग है—पूर्वनन्दसुतं कुर्याच् चन्द्रगुप्तं हि भूमिपम्।[4] कथासरित्सागर और दशरूपक में उद्धृत बृहत्कथा के लेख से शासक नन्द दो प्रतीत होते हैं। एक पूर्वनन्द दूसरा योगनन्द। शेष सात उन के पुत्र होंगे।

नन्दों का नाश—नन्दों का नाशक ब्राह्मण कौटल्य अथवा चाणक्य था। चाणक्य ने किसी उपाय से महापद्म को मारा। अलङ्कार-लेखक भामह लिखता है कि चाणक्य एक रात्रि नन्द-क्रीड़ागृह में प्रविष्ट हुआ।[5] संभव है वह उसे मारने के अभिप्राय से ही वहां गया हो। इसका संकेत अर्थशास्त्र में भी मिलता है।[6] हितोपदेश के अनुसार चाणक्य ने दूतप्रयोग से नन्द को मारा—नन्दं जघान चाणक्यस्तीक्ष्णदूतप्रयोगतः। विग्रह।

मुद्रित मत्स्यपुराण के पाठ से ज्ञात होता है कि नन्दों के उन्मूलन में कौटल्य को बारह वर्ष लगे।[7] वायुपुराण में १६ वर्ष लिखे हैं।[8]

---

१. विविधतीर्थकल्प, पृ० ६९। २. अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका, पृ० १०४।
३. बड़ोदा संस्करण, भाग, २, पृ० ४१३। ४. १।४।११६॥
५. चाणक्यो नक्तमुपयान्नन्दक्रीडागृहं यथा। ३।१३॥
६. येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः। अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ अन्त में।
७. उद्धरिष्यति कौटिल्यः समैर्द्वादशभिः सुतान् ॥ २७२।२२॥
८. उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः। ९९।३३०॥

भारत-युद्ध से १६०० वर्ष—पुराणों के अनुसार परिक्षित् के जन्म से महापद्म के अभिषेक तक १५०० वर्ष बीते। १०० वर्ष नन्दों का राज्य रहा। इस प्रकार भारत-युद्ध से नन्दों की समाप्ति तक सम्पूर्ण १६०० वर्ष बीते।

तीन प्राचीन लेख—सम्राट् अशोक से पूर्वकाल के तीन स्पष्ट पढ़े गए लेख इस समय तक मिल चुके हैं। वे हैं, महास्थान (वंगदेश) का शिलालेख,[1] सोहगौरा (जिला गोरखपुर) का ताम्रपत्र[2] और काङ्गड़ा अन्तर्गत बनेर नाले के ऊपर कन्हयारा से नौ मील दक्षिण तथा दाध से एक मील दूर स्थान का शिलालेख।[3] पहले दो लेख अशोक से पूर्वकाल के हैं। कई लोग उन्हें चन्द्रगुप्त के शासन कहते हैं। तीसरे के अक्षर अशोक काल के अक्षरों से मिलते हैं। इन पर अभी अधिक विचार की आवश्यकता है।

१. ऐ. इ. भाग २१, पृ० ८३—।
२. ऐ. इ. भाग २२, पृ० १—३। तथा जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, १९४१।
३. ऐ. इ. भाग ७, पृ० ११६—।

अठतीसवां अध्याय

मौर्य राज्य

मौर्य-शासन का काल-परिमाण—**मत्स्य**[१], **वायु**[२], **और विष्णु**[३], **आदि पुराणों में मौर्यों का राज्य-काल १३७ वर्ष लिखा है। यह संख्या बहुत संदिग्ध है। यदि वायु और मत्स्य में दी गई प्रत्येक मौर्य-राजा की राज्य वर्ष-संख्या जोड़ी जाए तो वह १३७ से कहीं अधिक बनती है। अंतः पहले इन दोनों पुराणों के अनुसार प्रत्येक मौर्य राजा का राज्य-काल-मान नीचे दिया जाता है। साथ ही साथ कलियुगराजवृत्तान्त की गणना भी दी जाती है—**

मुद्रित वायु	पा० का इ वायु	पा० मत्स्य	मत्स्य	कलि-राजवृत्तान्त
चन्द्रगुप्त २४	चन्द्रगुप्त २४	…………	चन्द्रगुप्त ३४	चन्द्रगुप्त ३४
भद्रसार २५	नन्दसार २५	…………	भद्रसार २८	बिन्दुसार २८
अशोक ३६	अशोक ३६	अशोक ३६	अशोक ३६	अशोकवर्धन ३६
कुनाल . ८	कुनाल ८	…………	कुनाल ८	सुपार्श्व ८
बन्धुपालित ८	बन्धुपालित ८	…………	दशरथ ८	बन्धुपालित ८
इन्द्रपालित १०	नप्ता ?	नप्ता १०	इन्द्रपालित १७	इन्द्रपालित ७०
…………	दशरथ ८	दशरथ ८	हर्षवर्धन ८	…………
…………	सम्प्रति ९	सम्प्रति ९	सम्प्रति ९	सङ्गत ९
…………	शालिशूक १३	…………	शालिशूक १३	शालिशूक १३
देववर्मा ७	देवधर्मा ७	…………	सोमशर्मा ७	देववर्मा ७
शतधर ८	शतंधनु ८	शतधन्वा ६	शतधन्वा ९	शतधनु ८
बृहदश्व ७	बृहद्रथ ८७	बृहद्रथ ७०	बृहद्रथ ७०	बृहद्रथ ८८
१३३	२३१	१३९	२४७	३०९

पूर्व-लिखित गणनाओं पर विचार—**मुद्रित वायु के पाठ में तीन नाम निश्चित ही रह गए हैं। हम भिन्न भिन्न प्रमाणों से जानते हैं कि दशरथ सम्प्रति और शालिशूक मगध के सम्राट् थे। अतः मुद्रित-वायु का निम्नलिखित पाठ बहुत भ्रष्ट हो चुका है—**

इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुंधराम्। सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति॥

प्रतीत होता है कभी वायु में भी १२ ही राजा गिनाए गए थे और उनका राज्य-काल अधिक लिखा था। इन्द्रपालित का राज्य-काल जिन शब्दों में इस पुराण में मिलता है, वे

---

१. २७२।२६॥ २. ६६।३३६॥ ३. ४।२४।३२॥

शब्द बहुत भ्रष्ट होगए हैं। पार्जिटर का इ. वायु का पाठ ठीक इन्द्रपालित के पर्याय नाम पर टूटा है। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मुद्रित पाठ विश्वसनीय नहीं। बृहद्रथ का राज्य-काल ७ नहीं ७० वर्ष होगा। उसकी पूरी आयु ८७ वर्ष की होगी। इ. वायु में संभवतः उसका आयु-मान दिया गया है। इस प्रकार इ. वायु के अनुसार भी मौर्यों का राज्य-काल २०० वर्ष से अधिक था। पार्जिटर के मत्स्य के पाठ बहुत टूटे हुए हैं। वहां सारे ६ राजाओं के नाम और राज्य-वर्ष मिलते हैं। उनका योग १३९ वर्ष है। अतः मौर्य-कुल के सारे राजाओं का जोड़ इस से कहीं अधिक होगा। नारायण-शास्त्री के मत्स्य[1] का पाठ अधिक युक्त प्रतीत होता है। कलियुगराजवृत्तान्त[2] में दशरथ नाम छूट गया है और सम्प्रति के स्थान में सङ्गत एक भूल हुई है। कलि० में भी इन्द्रपालित के वर्षों की गणना संदिग्ध है। परन्तु इ. वायु का पाठ दशोनः सप्त वर्षाणि इसी संख्या का संकेत है। अस्तु, हम कह सकते हैं कि मौर्यों का राज्यकाल १३७ से बहुत अधिक वर्ष तक रहा। वर्तमान ऐतिहासिकों ने मौर्य-काल का वर्ष-मान लिखने में कुछ भूल की है।

इस विषय में कई लेखक यह कहते हैं कि पुराणों के सारे मौर्य राजा पाटलिपुत्र के राज-सिंहासन पर नहीं बैठे। अतः उनका काल मौर्य-साम्राज्य काल में नहीं गिनना चाहिए। पुराणों में उन के शासन-काल को निकाल कर १३७ वर्षसंख्या की गई है। यह बात भी ठीक नहीं। आगे चल कर यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि ये सब राजा पाटलिपुत्र के राजा थे। अतः पुराणों की १३७ संख्या भूल-मात्र है।

नारायण शास्त्री के पाठ—कई लेखक नारायण शास्त्री के पाठों पर सन्देह करते हैं। हमारा ऐसा विश्वास नहीं है। इन पाठों पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं। इ. वायु के पाठ नारायण शास्त्री के पाठों का समर्थन करते हैं। अतः इन पाठों पर पूरा विचार करना चाहिए।

१. सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—२४ वर्ष

नाम—मुद्राराक्षस में चन्द्रश्री नाम मिलता है। इस नाम का प्राकृत रूप चन्दसिरि[3] वहां है। इस नाटक में चाणक्य उसे वृषल विरुद् से पुकारता है।[4] चन्द्रगुप्त का प्राकृत रूपान्तर चन्दउत्त भी मुद्राराक्षस में प्रयुक्त हुआ है।[5] आवश्यकसूत्रवृत्ति में प्राकृतरूप सिरिय मिलता है।[6] अन्य जैन ग्रन्थों में सिरियउ रूप है। इस का संस्कृत रूप श्रीयक है। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को प्रियदर्शी लिखा है।

---

१. दि किंग्स आफ मगध, पृ० ५६, ५७।
२. दि किंग्स आफ मगध, पृ० ५७।
३. १।१९ के पश्चात् दो बार। तथा १।२० के पश्चात्।
४. १।१९ के पश्चात्। देखो विश्वप्रकाश कोश—वृषलः कथितः शूद्रे चन्द्रगुप्ते च वाजिनि (राजनि)। पृ० १५६, श्लोक ६०। चन्द्रगुप्तः शूद्रः प्रक्रियासर्वस्व, पृ० १८। ५. षष्ठाङ्क। ६. पूर्वपृष्ठ २५९।

कुल—चन्द्रगुप्त से आरम्भ होने वाला कुल भारतीय इतिहास में मौर्य-कुल नाम से प्रसिद्ध है। मुद्राराक्षस का कर्ता विशाखदत्त मानता है कि चन्द्रगुप्त नन्द-कुलान्तर्गत था।[1] इस से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त नन्द की किसी पत्नी के वंश-क्रम में होगा। मुद्राराक्षस का टीकाकार ढुण्ढिराज लिखता है कि नन्द की मुरा नाम की एक पत्नी थी। वह वृषलात्मजा थी।[2] चन्द्रगुप्त का पिता मौर्य था। उसे वृषल कहते होंगे। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को मौर्यपुत्र लिखा है।[3] इस प्रकार ढुण्ढिराज और विशाखदत्त के अनुसार चन्द्रगुप्त महापद्म का पौत्र था। विष्णुपुराण का टीकाकार रत्नगर्भ लिखता है कि नन्द की मुरा नामक पत्नी का पुत्र चन्द्रगुप्त था।[4] इस मुरा के कारण चन्द्रगुप्त का कुल मौर्य कुल कहाया।

महाभाष्य में एक उदाहरण है—जेयो वृषलः १।१।५०। अर्थात् वृषल यद्यपि जीता नहीं जा सकता पर उसे जीतना चाहिए। यह उदाहरण विचारणीय है।

बृहत्कथा के अनुसार चन्द्रगुप्त पूर्वनन्द का पुत्र था।[5]

मौर्य नाम की एक हीनकर्मा जाति भी थी। उस जाति के लोग मूर्तियां दिखा कर धन एकत्र किया करते थे। पातञ्जल महाभाष्य में उन का उल्लेख है।[6] संभव है वह जाति शूद्र और क्षत्रियों के मेल का परिणाम हो। मुरा उसी जाति की हो और इस कारण उस का ऐसा नाम भी हो। कामन्दकीय नीतिसार की टीका में चन्द्रगुप्त को मौर्यकुलप्रसूत लिखा है।[7] प्रक्रियासर्वस्व के अनुसार मुर के गोत्र में होने वाला मौर्य है। बौद्ध-ग्रंथों में इस मौर्य या मोर्य कुल का वर्णन है।

Sandrocottus=Sandrokottos—यह नाम यूनानी ग्रन्थों में मिलता है। इस नाम का राजा पलिबोथर अथवा पाटलिपुत्र में राज्य करता था। वह प्रस्सी=प्राच्य-राज था। इस में कोई सन्देह नहीं कि सन्द्रोकोट्टुस नाम चन्द्रगुप्त का रूपान्तर है। पंजाब की सुप्रसिद्ध नदी चन्द्रभागा के नाम के कई पाठान्तर यूनानी ग्रन्थों में मिलते हैं, यथा—Sandabal, Andro-phagos, Chantabra, Cantaba.[8] तथा चन्द्रावती नदी को भी यूनानी Sandravatis अथवा Andomatis लिखते थे। अतः इस बात के मानने में कोई विवाद नहीं कि सन्द्रोकोट्टुस चन्द्रगुप्त का योन-रूपान्तर होगा। सन्द्रोकोट्टुस का एक रूपान्तर अन्द्रोकोट्टुस भी कहा

---

१. नन्दान्वय एवायमिति। ४।७ के पश्चात्। नन्दान्वयालम्बिना........मौर्येण ५।५॥ मुद्राराक्षस में मलयकेतु अमात्य राक्षस से कहता है—मौर्योऽसौ स्वामिपुत्रः।५।१६॥ अर्थात् मौर्य चन्द्रगुप्त आप के स्वामी नन्द का पुत्र है—चन्द्रगुप्तोऽपि पितृपर्यायागत एवायमिति (राक्षसः) ४।७ के पश्चात्।

२. उपोद्घात श्लोक २७।

३. २।६॥

४. नन्दस्यैव पत्न्यन्तरस्य मुरासंज्ञस्य पुत्रं मौर्याणां प्रथमम्। ४।२४।२८॥

५. पूर्व पृ० २५९।

६. मौर्यैः हिरण्यार्थिभि अर्चाः प्रकल्पिताः। ५।३।९९॥

७. कैटेलाग आफ अलवर मैनुस्क्रिप्ट्स, पृ० ११०।

८. टाल्मी का भारत, पृ० ८९, ९०।

जाता है। यह भी चन्द्रगुप्त का अपभ्रंश ज्ञात पड़ता है। परन्तु अन्ड्रोकोट्टुस सिन्धु नद के समीप रहता था।[1] वर्तमान ऐतिहासिकों का मत है कि यह अन्ड्रोकोट्टुस पीछे से पाटलिपुत्र का महाराज बना।

Amitrochades = Allitrochades—यूनानी लेखकों के अनुसार इस नाम का राजा सन्ड्रोकोट्टुस का पुत्र था। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य का इस नाम का कोई पुत्र नहीं था। एक और भी सन्देह-जनक बात है। मैगस्थनीज़ के अनुसार सन्ड्रोकोटोस से अधिक बल-शाली राजा पोरोस था।[2] यह वचन सन्दिग्ध और भाव-शून्य है। न जाने यह पोरोस कौन था।

ऐसी अवस्था में वर्तमान ऐतिहासिकों का समस्त लेख पढ़ कर भी हम यह निश्चय नहीं कर सके कि यूनानी लेखकों का सन्ड्रोकोट्टुस ही भारतीय इतिहास का चन्द्रगुप्त मौर्य था। इस विषय पर अधिक विचार की आवश्यकता है। यह विचित्र बात है कि चन्द्रगुप्त के नाम के साथ विष्णुगुप्त, कौटल्य या चाणक्य का नाम यूनानी साहित्य में अभी तक कहीं नहीं मिला। विष्णुगुप्त के बिना चन्द्रगुप्त का उल्लेख बहुत ही अधूरा है।

महापद्म के पुत्रों के मरण और चन्द्रगुप्त के राज्य-लाभ का वृत्तान्त अवन्तिसुन्दरीकथा-सार के चतुर्थ परिच्छेद में भी है। यदि महाकवि भीम का प्रतिभा चाणक्य अथवा प्रतिज्ञा चाणक्य उपलब्ध हो जाए तो चन्द्रगुप्त के विषय पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है।[3]

राज्याभिषेक के समय चन्द्रगुप्त की आयु—मुद्राराक्षस ७।१२ के अनुसार चन्द्रगुप्त छोटी आयु में ही राजा बना। संभवतः वह बीस वर्ष का होगा—बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावितमहोदयः।

विष्णुगुप्त=चाणक्य—कामन्दकीय नीतिसार के प्रारंभिक श्लोकों से विदित होता है कि विष्णुगुप्त ने विशाल वंश्यों के वंश में जन्म लिया था। वह बड़ा विश्रुत, तेजस्वी, चतुर्वेदवित् और अर्थशास्त्र का अपार पण्डित था। मुद्राराक्षस के टीकाकार दुण्ढिराज का मत है कि द्विजोत्तम चाणक्य नीतिशास्त्र-प्रणेता चणक का पुत्र था।[4] वह औशनसी नीति और ज्योतिः शास्त्र का पारग था। प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर विष्णुगुप्त को एक ज्योतिष-लेखक के रूप में स्मरण करता है।[5] वराहमिहिर का व्याख्याकार उत्पल बृहज्जातक की टीका

---

१. इन्सक्रिप्शंस आफ अशोक, हुल्टश, सन् १९२५, भूमिका, पृ० ३४।

२. Megasthenes says that he often visited Sandrokottos, the greatest king of the Indians, and Poros, still greater than he. Ancient India, McCrin le, 1926, पृ० १२, १३।

३. नाट्यशास्त्र की अभिनवगुप्तकृत टीका में उद्धृत, बड़ोदा संस्करण, भाग २, पृ० १६१।

४. उपोद्घात श्लोक ४७, ४८। बहुत संभव है चाणक्य-नीति का मूल-प्रणेता चणक हो। यह ग्रन्थ अर्थशास्त्र से सर्वथा भिन्न है।

५. आयुर्दायं विष्णुगुप्तोऽपि चैवं देवस्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे। बृहज्जातक ७।७॥ तथा देखो बृहज्जातक २१।३॥

में विष्णुगुप्त के अनेक श्लोक उद्धृत करता है ।[1] विष्णुगुप्त-चाणक्य के ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी जो श्लोक उत्पल ने उद्धृत किए हैं, उनमें विष्णुगुप्त यवनों के ज्योतिष का वर्णन करता है । ये यवन भारतीय-सीमा पर रहने वाले यवन होंगे ।

कौटल्य—कामन्दकीय नीतिसार की एक पुरानी टीका का उल्लेख पृ० २५६ पर हो चुका है । उसमें लिखा है—कुटिर्घट उच्यते तं धान्यभृतं लांति.........इति कुटिलाः कुंभीधान्याः......... कुटिलानामपत्यं.........कौटिल्य इत्युक्तः । अर्थात् कुंभीधान्य ब्राह्मणों का पुत्र कौटिल्य था । जैन आचार्य हेमचन्द्र सूरि भी अभिधान चिन्तामणि की अपनी टीका में कौटल्य शब्द की ऐसी ही व्युत्पत्ति दिखलाता है—कुटो घटस्तं लान्ति कुटिलाः कुंभीधान्याः तेषामपत्यं कौटिल्यः ।[2] प्रतीत होता है कामन्दकीय नीतिसार की टीका को देखकर हेमचन्द्र ने अपनी व्युत्पत्ति लिखी । इन दोनों व्युत्पत्तियों से ज्ञात होता है कि कौटिल्य और कौटल्य दोनों ठीक नाम हैं । हेमचन्द्र का मुद्रित-पाठ अशुद्ध है । मुद्राराक्षस नाटक से हम जानते हैं कि कौटिल्य स्वयं अत्यन्त सरलता का जीवन व्यतीत करता था ।

विष्णुगुप्त के नाम-पर्याय—यादवप्रकाश, पुरुषोत्तम और हेमचन्द्र अपने अपने कोशों में क्रमशः लिखते हैं—

विष्णुगुप्तस्तु कौटिल्यश्चाणक्यो द्रामिणोऽङ्गुलः । वात्स्यायनो मल्लनागः पक्षिलस्वामिनावपि ॥२।७।२३॥

वात्स्यायनस्तु कौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः । द्राविलः पक्षिलस्वामी मल्लनागोऽगुलोऽपि च ॥१५९॥[3]

वात्स्यायने मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः । द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः ॥[4]

यहां तीनों कोशकारों के मुद्रित पाठ कुछ कुछ अशुद्ध हुए हैं । इन से ज्ञात होता है कि विष्णुगुप्त, कौटल्य और चाणक्य तो एक व्यक्ति के नाम अवश्य थे । इस में अन्य प्रमाण भी हैं । वात्स्यायन और मल्लनाग भी एक ही व्यक्ति के नाम थे । सुबन्धु की वासवदत्ता से यह स्पष्ट प्रतीत होता है—कामसूत्रविन्यास इव मल्लनागघटित कान्तारसामोदः ।[5] अब रही बात विष्णुगुप्त और मल्लनाग की समानता की ।[6] इस सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है । कामन्दकीय का पुराना टीकाकार लिखता है कि विष्णुगुप्त न्याय-कौटिल्य-वात्स्यायन और गौतमीय स्मृति भाष्य, इन चार ग्रन्थों के कारण बहुत प्रसिद्ध था । यदि यह बात सत्य सिद्ध हो जाए, तो मानना पड़ेगा कि विष्णुगुप्त और वात्स्यायन मल्लनाग एक ही व्यक्ति के नाम थे ।

न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य में जिस प्रकार आन्वीक्षिकी का लक्षण लिखा है, उस से भासता है कि अर्थशास्त्रकार संभवतः वात्स्यायन गोत्र-नाम का न्यायभाष्यकार था ।[7] उस ने अर्थशास्त्र पहले लिखा और न्याय-भाष्य पीछे रचा ।

---

१. बृहज्जातक २१।३ की टीका ।

२ तुलना करो, कुटः घटः हलाग्रं च । हर्षवर्धनकृत लिङ्गानुशासन कारिका १५ की पृथ्वीश्वरकृत टीका ।

३. भूमिकाण्ड, ब्राह्मणाध्याय । ४. मर्त्यकाण्ड ५१७ । ५. कृष्णमाचार्य का संस्करण, पृ० १०२ ।

६. मल्लो नवनन्दोच्छेदने स चासौ नागश्च मल्लनागः । हेमचन्द्र की अभिधानचिन्तामणि, मर्त्यकाण्ड, श्लोक ५१७ । ७. देखो पूर्व पृ० २० ।

इस बात को पाश्चात्य लेखक न मानेंगे। यदि यह सिद्धान्त निर्णीत हो जाए, तो वर्तमान पाश्चात्य लेखकों और उन का अनुकरण करने वाले एतद्देशीय लोगों के अनेक सिद्धान्त जर्जरित हो जाएंगे। परन्तु इस बात के बाधक प्रमाणों का हम कोई गुरुत्व नहीं मानते।

क्या विष्णुगुप्त असहाय था—गौतमीय धर्मसूत्र का एक पुराना भाष्यकार असहाय हो चुका है। उस ने मानव और नारद स्मृतियों पर भी अपने भाष्य रचे थे। कामन्दकीय नीतिसार का पुरातन टीकाकार लिखता है कि विष्णुगुप्त ने गौतमीय स्मृति-भाष्य रचा। क्या असहाय विष्णुगुप्त ही था? विष्णुगुप्त को कामन्दकीय में एकाकी[1] लिखा है। एकाकी और असहाय पर्याय शब्द हैं। व्याकरण भाष्यकार पतञ्जलि लिखता है—एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितमिति। असहायैरित्यर्थः।[2] अतः संभव है कौटल्य का एक नाम असहाय भी रहा हो। पूर्वोद्धृत कोशस्थ श्लोकों के कुछ पद अति संदिग्ध हैं। क्या वहां असहाय पाठ भी जुड़ सकेगा? यदि ये जटिल समस्याएं सुलझ गईं, तो भारतीय इतिहास का कलेवर परिवर्तित हो जायगा।

पुरुषोत्तम की भाषावृत्ति में लिखा है—चणकोऽभिजनो यस्य सः चाणक्यः।[3] अर्थात् चणक ग्राम में जन्म लेने से वह चाणक्य हुआ। हेमचन्द्र ने परिशिष्ट पर्व में लिखा है कि चणक उस का अभिजन था। उस का पिता चणि और माता चणेश्वरी थी।[4] बौद्ध ग्रन्थकार पुरुषोत्तम हेमचन्द्र का पूर्ववर्ती है। प्रतीत होता है जैन और बौद्ध सम्प्रदाय में यह अवश्य प्रसिद्ध रहा होगा कि चाणक्य का सम्बन्ध चणक ग्राम से भी था।

शूद्रक का पूर्ववर्ती चाणक्य—संवत् प्रवर्तक विक्रम का बहुत पूर्ववर्ती सम्राट् शूद्रक था। वह अपने मृच्छकटिक में चाणक्य का स्मरण करता है। अर्थशास्त्र और चारुदत्त नाटक में खरपट आचार्य का नाम है। मृच्छकटिक में चौर आचार्य कनक शक्ति का। खरपट कनक शक्ति का पूर्ववर्ती प्रतीत होता है।

सहाध्यायी—मुद्राराक्षस (प्रथमांक) के अनुसार कौटल्य का सहपाठी कोई इन्दुशर्मा था। इस नाम का एक पाठान्तर विष्णुशर्मा है। वह नीतिशास्त्रवित् था।

दीर्घजीवी कौटल्य—मञ्जुश्रीमूलकल्प में लिखा है कि चाणक्य दीर्घजीवी था। वह तीन राज्य पर्यन्त जीता रहा।[5]

सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ—कौटल्य स्वयं लिखता है कि उसने राजनीति का साक्षात् अनुभव किया था—

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च। कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥[6]

राजनीति-प्रयोग का उसे पूरा अवसर मिला था।

राजर्षि चाणक्य—मत्स्यपुराण में किसी राजर्षि चाणक्य का स्मरण किया गया है।[7]

---

१. १।५॥ २. महाभाष्य १।१।२४॥५।३।५२॥ ३. सूत्र ४।३।९२॥ ४. ८।१४॥
५. श्लोक ४५४–४५६। ६. आदि से अध्याय ३१। ७. १९२।१४॥

वह नर्मदा-तटस्थ शुक्लतीर्थ पर रहता हुआ सिद्धि को प्राप्त हुआ था। राजर्षि चाणक्य विष्णुगुप्त चाणक्य से अन्य प्रतीत होता है।

परिशिष्टपर्व आदि जैन ग्रन्थों के अनुसार दीर्घ आयु भोग कर बिन्दुसार के राज्य के प्रारंभ में चाणक्य का देहान्त हो गया। उसे सुबन्धु ने उसी की कुटिया में जला दिया।

चन्द्रगुप्त की मृत्यु—मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार चन्द्रगुप्त का अन्त विषस्फोट से हुआ। उस ने अर्धरात्रि के समय बालक बिन्दुसार को अपना उत्तराधिकारी बना दिया।[1] कतिपय जैन ग्रन्थों के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त आचार्य भद्रबाहु के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए चला गया। उस समय एक बड़ा-दुर्भिक्ष हुआ। चन्द्रगुप्त ने तपस्या करते वर्तमान मैसूर अन्तर्गत श्रवण बेलगोल में अपने प्राण त्यागे। इन दोनों मतों में से कौन सा सत्य है, यह अभी नहीं कहा जा सकता। जैन आचार्य हरिषेण के आराधनाकथाकोश के अनुसार भद्रबाहु के साथ जाने वाला चन्द्रगुप्त उज्जयिनी का राजा था। अतः वह मौर्य सम्राट् न होगा।

२. सम्राट् बिन्दुसार—२५ वर्ष[2]

बालक बिन्दुसार सम्राट् बना—मूलकल्प के अनुसार राज्य प्राप्त करते समय बिन्दुसार अभी बाल ही था। जैन ग्रन्थों का भी यही मत है।

नाम—महाशय शाह ने लिखा है कि देवचन्द्र की राजावलिकथा में सिंहसेन और श्वेताम्बर जैनों के आम्नाय ग्रन्थ में अमित्रकेतु भी इसी बिन्दुसार के नाम मिलते हैं।[3] हमें ये दोनों जैन ग्रन्थ नहीं मिल सके, अतः इस लेख की सत्यता हम नहीं जांच सके।

राज्य—बिन्दुसार के राज्य-काल की राजनीतिक घटनाएं हमें संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलीं। बिन्दुसार विषयक कोई नाटक ग्रन्थ कभी प्रसिद्ध था।[4]

मन्त्री सुबन्धु—हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्व से ज्ञात होता है कि बिन्दुसार का एक मन्त्री सुबन्धु था। दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा से पता चलता है कि सुबन्धु को बिन्दुसार ने बन्दी किया था—सुबन्धुः किल निष्क्रान्तो बिन्दुसारस्य बन्धनात्।[5] मञ्जुश्री में दुष्टमन्त्री पद से इस का संकेत किया गया है।[6]

जैन आचार्य हरिषेण के बृहत्कथाकोश (विक्रम संवत् ९८९) के निम्नलिखित दो श्लोक द्रष्टव्य हैं—

पुरेऽस्ति पाटलीपुत्रे नन्दो नाम महीपतिः। सुव्रता तन्महादेवी विषाणदललोचना ॥१॥
कविः सुबन्धुनामा च शकटाख्यस्त्रयोऽप्यमी। समस्तलोकविख्याता भूपतेरस्य मन्त्रिणः ॥२॥ कथानक १४३

---

१. श्लोक ४४१, ४४२।
२. तिब्बत के ग्रन्थों के अनुसार ३५ वर्ष। बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल भाग २७, पृ० २२१।
३. एन्शिएण्ट इण्डिया, टि० एल० शाहकृत। भाग २, पृ० २०४, बड़ोदा, सन् १९३९।
४. भरतनाट्यशास्त्र, बड़ोदा संस्करण, भाग २, पृ० ४१४।
५. आरम्भ श्लोक ६।
६. बिन्दुसारसमाख्यातं बालं दुष्टमन्त्रिणम्।४४२। बाल एव ततो राजा प्राप्तः सौख्यमनल्पकम् ४४८॥

इन के अनुसार नन्द के तीन मन्त्री थे। कवि, सुबन्धु और शकट अथवा शकटाल। यह सुबन्ध कौन था ?

अभिनवगुप्त अपनी अभिनवभारती टीका अध्याय २२ में लिखता है—

नाट्यायितस्योदाहरणं महाकविसुबन्धुनिबद्धो वासवदत्तानाट्यधाराख्यः समस्त एव प्रयोगः।

तत्र हि बिन्दुसारः प्रयोज्यवस्तुक उदयनचरिते सामाजिकी कृतः।

अर्थात्-महाकवि सुबन्धु ने उदयनचरित नाटक रचा था। ध्वन्यालोक की लोचनटीका में अभिनवगुप्त किसी वत्सराजचरित नाटक का नाम लिखता है।[1] क्या ये दोनों नाम एक ग्रन्थ के हैं ?

महाराज समुद्रगुप्त-कृत कृष्ण-चरित में सुबन्धु के वत्सराजचरित का उल्लेख है।

सुबन्धु और चन्द्रप्रकाश—काव्यालङ्कारसूत्र की वृत्ति में भट्ट वामन किसी पुरातन श्लोक को उद्धृत करता है कि चन्द्रगुप्त का पुत्र युवा चन्द्रप्रकाश विद्वानों का आश्रयदाता राजा था।[2] इस पर वह अपनी वृत्ति में लिखता है कि श्लोककार सुबन्धु के मन्त्री बनाए जाने पर प्रकाश डालता है। कुछ हस्तलेखों में सुबंधु के स्थान पर वसुबन्धु है। यदि सुबन्धु पाठ ठीक हो, तो कहना पड़ेगा कि बिन्दुसार का नाम चन्द्रप्रकाश था। इसके विपरीत यदि वसुबन्धु पाठ ठीक सिद्ध हुआ, तो मानना पड़ेगा कि वामन-निर्दिष्ट श्लोक गुप्त-वंश के किसी चन्द्रगुप्त का निर्देश करता है।

आचार्य मातृचेत—तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ के अनुसार बौद्ध-आचार्य मातृचेत बिन्दुसार के काल में था।[3] मञ्जुश्री से ज्ञात होता है कि मातृचीन राजवृत्ति यति था।[4] मूलकल्प से यह भी पता चलता है कि वह चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार आदि का समकालीन था।[5]

बिन्दुसार की मृत्यु—मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार बिन्दुसार ७० वर्ष तक राज्य करता रहा।[6] बहुत संभव है बिन्दुसार की आयु ७० वर्ष की हो। यह मत पुरातन ऐतिहासिक भट्ट भद्र का है।[7]

३. अशोक=अशोकवर्धन[8]—३६ वर्ष

नाम—विविधतीर्थकल्प में अशोकश्री नाम मिलता है।[9] कलियुगराजवृत्तान्त और विष्णुपुराण में अशोकवर्धन नाम है। वायु, मत्स्य और दिव्यावदान में अशोक नाम ही है।

---

१. काशी संस्करण, पृ० ३६३।

२. सोऽयं संप्रति चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्रप्रकाशो युवा। जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्ट्या कृतार्थश्रमः।
आश्रयः कृतधियाम् इत्यस्य सुबन्धुसाचिव्योपक्षेपपरत्वात्।

३. इण्डियन अण्टिक्वरी सितम्बर १९०३, पृ० ३४५। ४. श्लोक ९३५, ९३६।

५. श्लोक ४७९, ४८०। ६. कुर्याद् वर्षाणि सप्तति ॥४४१॥

७. बिहार ओडीसा रिसर्च सोसायटी का जर्नल, भाग २६, पृ० ३५१।

८. विष्णु ४।२४।३०॥ ९. पाटलिपुत्रनगरकल्प, पृ० ६९।

अशोक का राज्याभिषेक—महावंसो के अनुसार अशोक का अभिषेक-काल बुद्ध-निर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ—

बिन्दुसारसुता आसुं सतं एको च विस्सुता। असोको आसि तेसुं तु पुञ्ञतेजो बलिद्धिको॥ १९॥[1]
जिननिब्बाणतो पच्छा पुरे तस्साभिसेकतो। साट्ठारसं वस्ससतद्वयमेव विजानिय॥२१॥

पांचवी छठी शताब्दी के बौद्ध लेखकों में यही गणना प्रसिद्ध रही होगी। बोधगया में बर्मी संवत् ६५७ (सन् १२९५) का एक लेख है। उस लेख का अनुवाद है—जब भगवान् बुद्ध के धर्मसंवत् के २१८ वर्ष गए, तब जम्बूदीप के राजा सिरिधम्मासोक ने ८४००० चैत्य बनवाए।[2] वस्तुतः यह गणना ठीक नहीं है। बुद्ध का परिनिर्वाण अजातशत्रु के आठवें वर्ष में हुआ था। उस काल से लेकर अशोक के राज्यारम्भ तक ३०७ वर्ष बीते थे। पुराणों का यही मत है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में यद्यपि कोई निश्चित वर्ष-संख्या नहीं दी गई, पर कई संख्याओं के जोड़ने से संपूर्ण वर्षसंख्या २१८ से अधिक प्रतीत होती है।

खारवेल का शिलालेख—बुद्ध-निर्वाण से अशोक के राज्याभिषेक तक २१८ वर्ष हुए, इस मत का खण्डन खारवेल के शिलालेख से होता है। जायसवाल आदि ऐतिहासिक खारवेल को पुष्यमित्र का समकालीन मानते हैं। हमारा विचार है कि खारवेल शालिशूक=बृहस्पति का समकालिक था। २१८ वर्ष का मत इन दोनों विचारों के विपरीत पड़ता है। इसलिए जो वर्ष-गणना हम ऊपर देते आये हैं, वही युक्तियुक्त प्रतीत होती है।

राय चौधरी की भूल—चौधरी महाशय ने बुद्ध-परिनिर्वाण ४८६ पूर्व ईसा में माना है[3] तथा बिन्दुसार का राज्यान्त २७३ पूर्व ईसा में। इस प्रकार बुद्ध-परिनिर्वाण से बिन्दुसार के अन्त तक उन्होंने २१३ वर्ष माने हैं। अशोक का अभिषेक ४ वर्ष पश्चात् हुआ। इससे ज्ञात होता है कि चौधरी जी ने महावंसो की गणना सत्य समझी है। है यह गणना खारवेल के प्रामाणिक शिलालेख के विरुद्ध। अतः चौधरी महाशय का प्रयास सफल नहीं हुआ।

येर्रगुडी का शिलालेख—यह अशोक का एक छोटा शिलालेख है। इस में २०० ५० ६ अर्थात् २५६ संख्या लिखी हुई है। इसका अभिप्राय जानना चाहिए।[4]

प्रियदर्शी राजा—अशोक एक सम्राट् था। वह राजा नहीं, प्रत्युत महाराजाधिराज था। आश्चर्य है कि प्रियदर्शी के शिलालेखों में वह अपने आप को सर्वत्र राजा कहता है। डा० भण्डारकर का मत है कि उस समय तक बड़ी उपाधियाँ प्रयोग में नहीं आती थीं।[5] खारवेल के शिलालेख में महाराजेन प्रयोग विद्यमान है।[6] स्मरण रखना चाहिए कि भण्डाकर और जायसवाल आदि लेखकों के अनुसार खारवेल और अशोक का अन्तर लगभग ५० वर्ष का

---

१. महावंसो पञ्चम परिच्छेद।
२. ऐ० इ० भा० ११, पृ० ११९।
३. पो० हि० ए० इ चतुर्थ संस्करण, पृ० १८६।
४. हरप्रसाद शास्त्री मैमोरियल वाल्यूम, पृ० ११६।
५. अशोक, पृ० ६।
६. इ० हि० क्वा०, सितम्बर १९३८, पृ० ४६१।

था। प्रियदर्शी और अशोक नाम की एकता मस्की से प्राप्त एक छोटे शिलालेख से सर्वथा प्रमाणित हो चुकी है।[१]

प्रियदर्शी की धर्मलिपियां एक ही काल में लिखी गईं—प्रियदर्शी अशोक की धर्मलिपियां एक ही काल में लिखी गईं। चौदह धर्मलिपियों का क्रम आज्ञाओं की घोषणा के क्रम के अनुकूल नहीं है। शिलालेखों पर उत्तर-कालीन घोषणा पहले उत्कीर्ण की गई है और पहली घोषणा बहुत पीछे। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये धर्मलिपियां एक ही काल में खुदाई गईं। हो सकता है प्रियदर्शी अशोक के पीछे या उस के अन्तिम दिनों में उत्कीर्ण हुई हों।

यवनराज तुषास्फ—महाक्षत्रप रूद्रदामा के प्रथम शक ७२ के जूनागढ के शिलालेख में लिखा है—मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराज तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतं। अर्थात् सुदर्शन तडाक मौर्यचन्द्रगुप्त के राष्ट्रिय पुष्यगुप्त ने बनवाया और अशोक की आज्ञा से यवनराज तुषास्फ ने नालियों से अलंकृत कराया।[२] अशोक की सेवा में यवनराज रहते थे।

चार यवन राजा—अशोक के दूसरे शासन में लिखा है—प्रियदर्शी के जो अन्त (वाले) अर्थात् चोड, पाण्ड्य सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी अंतियोक नाम योनराज (यवनराज) और जो उस अंतियोक के सामन्त राजा।[३] फिर तेरहवें शासन में लिखा है—और अन्त (वाले) छः सौ योजन तक में जहां अंतियोक नाम योनराज, उस से परे चार राजा तुरमय, अंतिकिन, मग और अलिकसुदर और नीचे चोड, पाण्ड्य, ताम्रपर्णी वाले, इस प्रकार इधर राज्य में व्रजि, यवनकंबोज, नाभक में। कई लेखकों ने इन में से तुरमय को मिस्र का राजा माना है। यह बात अधिक सत्यता से जानी जा सकती है यदि अशोक के योजन का ठीक परिमाण जान लिया जाए। सम्भवतः ये बहुत दूर के राजा न हों। इन राजाओं के काल से अशोक का काल निश्चत नहीं हो सकता। वर्तमान पाश्चात्य रीति के इतिहास में इन का काल भी कल्पित है। यह धर्मलिपि अशोक राज्य के आठवें वर्ष के कुछ पश्चात् की है।

सम्राट् अशोक—दिव्यावदान में लिखा है—जब मैंने शत्रुओं का नाश कर के शैलों समेत यह पृथिवी प्राप्त की, जिस के समुद्र ही आवरण हैं और जिस के ऊपर शासन करने वाला अन्य कोई नहीं।[४] अशोक के सम्राट् होने का यह ज्वलन्त प्रमाण है।

राज्य-काल—पुराणों के अनुसार अशोक का राज्य ३६ वर्ष तक रहा।

सुमनोत्तरा—इस नाम की एक आख्यायिका महाभाष्य ४।२।६०, ४।३।८७ पर वर्णित है। क्या यह अशोक के भ्राता सुमन और उस की किसी प्रेयसी उत्तरा से सम्बन्ध रख सकती है।

---

१. देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर कृत अशोक (अंग्रेज़ी) सन् १९३२, पृ० ५।

२. सत्यश्रवा कृत शकास इन इण्डिया, पृ० १०८।

३. अशोक की धर्मलिपियां, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा संपादित, पृ० ९,१०।

४. मौर्य साम्राज्य का इतिहास, ले० सत्यकेतु, पृ० ५०१। देखो दिव्यावदान पृ० ३८६।

४. कुणाल—८ वर्ष

नाम—विष्णु के अनुसार कुणाल ही सुयशा प्रतीत होता है। धर्म-बुद्धि होने से कुणाल सुयशा नाम से पुकारा जाने लगा होगा। कलियुगराजवृत्तान्त का सुपार्श्व इस सुयशा का विकृत रूप प्रतीत होता है।

सम्राट् कुणाल—पुराणों और बौद्धग्रन्थों में कुणाल को अशोक का उत्तराधिकारी माना है। कातन्त्र-उणादि का वृत्तिकार दुर्गसिंह लिखता है—कुणालः नगररक्षकः मगधरक्षकश्च।[1] अतः कुणाल को मौर्य साम्राज्य का एक सम्राट् न मानना उचित नहीं।

नेत्रहीन कुणाल—बौद्ध और जैन कथाओं के अनुसार अशोक के राज्यकाल में ही कुणाल अन्धा कर दिया गया था।

कुणाल आठ वर्ष राजा रहा। नेत्रहीन होने के कारण संभवतः कुणाल ने राज्य त्याग दिया।

५. दशरथ=बन्धुपालित—८ वर्ष

दशरथ कुणाल का पुत्र होगा। पुराणों की तुलना से पता लगता है कि वह बन्धुपालित नाम से प्रख्यात हुआ। अपने सम्प्रति आदि भाइयों की रक्षा करने के कारण वह बन्धुपालित हुआ।

दशरथ के शिलालेख—गया के पास एक नागार्जुनी पहाड़ी है। उस पहाड़ी पर कुछ गुफाएं हैं। उन में से तीन पर दशरथ के छोटे छोटे दानसूचक लेख हैं। एक पर उत्कीर्ण है—दशलथेन देवानांपियेन। वह देवानांप्रिय था।

६. इन्द्रपालित—१० या १७ वर्ष

इन्द्रपालित नाम पर पुराण-पाठ अत्यधिक भ्रष्ट हुए हैं। न इस का राज्यकाल और न अन्य कोई बात निश्चित हो सकी है। जयचन्द्र जी ने इन्द्रपालित को सम्प्रति माना है। यह बात हमें नहीं जंची।

७. सम्प्रति—९ वर्ष

सम्प्रति महाराज कुणाल का सब से छोटा पुत्र होगा।[2] जब दशरथ और इन्द्रपालित राज्य कर चुके तो सम्प्रति की बारी आई। अवदानकल्पलता पल्लव ७४ में क्षेमेन्द्र संपदि को अशोक का पौत्र लिखता है।

जैन सम्राट्—जैन ग्रन्थों में सम्प्रति की बड़ी महिमा गाई गई है। वह शत्रुञ्जय-तीर्थ का एक प्रधान उद्धारकर्ता था।[3] वह त्रिखण्ड भरताधिप और अनार्य देशों में भी श्रमण-

---

१. उणादि १।४४॥

२. कुनालस्य सम्पदि नाम पुत्रो युवराज्ये प्रवर्तते। दिव्यावदान, पृ० ४३०।

३. सम्प्रतिर्विक्रमादित्यः सातवाहनवाग्भटौ। पादलिप्ताम्रदत्ताश्च तस्योद्धारकृताः स्मृताः ॥३५॥ विविधतीर्थकल्प पृ० २।

विहारों का प्रवर्तक एक महाराज था।[१] उस के आदेश से जैन साधु अनार्य देशों में गए।[२]

आर्य सुहस्ती—हिमवान् की थेरावली में लिखा है कि सम्प्रति को जैनधर्म की दीक्षा देने वाला आर्य सुहस्ती था।[३] यह दीक्षा अशोक के सामने दी गई।[४]

सम्प्रति के उत्तरवर्ती सम्राट्

दिव्यावदान और पुराणों की तुलना—मौर्य-वंशीय राजाओं की पुराणस्थ सूची पहले पृ० २६१ पर दी गई है। दिव्यावदान में भी सम्पदि-संप्रति और उस के उत्तरवर्ती राजाओं की सूची उपलब्ध होती है। नीचे इन दोनों सूचियों की तुलना की जाती है —

पुराण	दिव्यावदान[५]
संप्रति	संपदि
शालिशूक	बृहस्पति
देवधर्मा	वृषसेन
शतधन्वा	पुष्यधर्मा
बृहद्रथ	पुष्यमित्र

इन सूचियों में दिव्यावदान का पुष्यमित्र मौर्य-कुल का अन्तिम राजा था। दिव्यावदान में स्पष्ट लिखा है कि पुष्यमित्र के मारे जाने पर मौर्यवंश का उच्छेद हुआ—

पुष्यमित्रो राजा प्रघातितस्तदा मौर्यवंशस्समुच्छिन्नः।[६]

अतः हम कह सकते हैं कि पुष्यमित्र और बृहद्रथ एक थे। दिव्यावदान के नाम बहुत भ्रष्ट हुए प्रतीत होते हैं। दिव्यावदान में अन्यत्र भी नाम भ्रष्ट हुए हैं।[७] दिव्यावदान की बृहद्रथ और पुष्यमित्र की समता को न समझ कर राय चौधरी ने लिखा है—Pushyamitra was lineally descended from the Mauryas.[८]

८. शालिशूक=बृहस्पति—१३ वर्ष

गार्गी-संहिता में शालिशूक—गार्गी-संहिता नाम का ज्योतिःशास्त्र का एक पुरातन ग्रन्थ है। वह अभी अमुद्रित है। उस में युगपुराण नाम का एक अध्याय है। वर्तमान काल में वह अध्याय बहुत विकृत हो चुका है। तथापि उसमें दी हुई ऐतिहासिक घटनाएं समझ में आ

---

१. कुणालस्तत्सूनुस् त्रिखण्डभरताधिपः परमार्हतोऽनार्यदेशेष्वपि प्रवर्तितश्रमणविहारः सम्प्रतिमहाराजश्चाभवत्। विविधतीर्थकल्प, पृ० ६९।

२. आचार्य हेमचन्द्र का परिशिष्टपर्व ११।६१॥

३. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अङ्क १, पृ० ८४। ४. ना० प्र० पत्रिका, भाग १०, अङ्क ४।

५. दिव्यावदान पृ० ४३३। ६. दिव्यावदान पृ० ४३४।

७. देखो हमारा वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७९।

८. पो. हि. ए. इ. चतुर्थ सं० पृ० ३०७।

जाती हैं। उस में लिखा है कि शालिशूक के काल में यवनों ने शाकल, पञ्चाल और मथुरा को जीत कर मगध पर आक्रमण किया।[1] पातञ्जल व्याकरण महाभाष्य में इस का साक्ष्य है—

अरुणद् यवनः साकेतं। अरुणद् यवनः माध्यमिकाम्।

धर्ममीत यवन—गार्गीसंहिता के अनुसार मथुरा और मगध आदि पर आक्रमण करने वाले यवन-राज का नाम धर्ममीत था। हम विद्वानों के इस विचार से सहमत हैं कि वह डेमेट्रिअस होगा। पर वह कौन सा डेमेट्रिअस था, इस पर अधिक विचार अपेक्षित है।

कलिंग-राज खारवेल—आठवें वर्ष में खारवेल ने राजगृह पर सेना-भार डाला। उस के फल-स्वरूप यवनराज मथुरा को लौट गया।[2]

बहुत संभव है शालिशूक-बृहस्पति ने खारवेल को अपनी सहायता के लिये बुलाया हो। गार्गीसंहिता में लिखा है कि अपने घर में युद्ध हो जाने के कारण यवन राज मगध से लौट गया। उस के लौटने के समय खारवेल वहां पहुँचा हो।

बृहस्पतिमित्र और खारवेल—अपने बारहवें वर्ष में खारवेल ने मगधराज बृहस्पतिमित्र को अपने पैरों पर झुकाया।

खारवेल ने बृहस्पति की सहायता की। बृहस्पतिमित्र ने चार वर्ष तक चुप्पी साधी होगी। उस ने सहायता के उपलक्ष्य में कर नहीं दिया होगा। चार वर्ष पश्चात् खारवेल ने उस पर चढ़ाई की और उसे अपमानित किया।

खारवेल का बृहस्पतिमित्र कौन था—खारवेल के पांचवें वर्ष में नन्दराज की नहर को बने ३०० वर्ष बीत चुके थे। खारवेल का बृहस्पतिमित्र या तो शालिशूक-बृहस्पति है, अथवा पुष्यमित्र-बृहद्रथ। कलिंग की उस नहर के बनने से इन दोनों में से किसी के काल तक ३०० वर्ष बीते होंगे। यदि शालिशूक बृहस्पतिमित्र है, तो इन्द्रपालित के राज्य का एक लम्बा काल मानना पड़ेगा। यह बात अभी समझ में नहीं आती। यह भी संभव है कि खारवेल का नन्द-राज नन्दिवर्धन या महानन्दी में से कोई एक हो। नन्दराज से खारवेल तक का काल १०३ वर्ष समझना नितान्त भूल है।

पश्चिम का शातकर्णि—खारवेल के शिलालेख में कलिङ्ग की पश्चिम दिशा में राज्य करने वाले शातकर्णि का उल्लेख है। उस का प्रधान नगर असिक ? कृष्णवेणा नदी पर था। खारवेल ने असिक पर आक्रमण किया था।

शालिशूक का चरित्र—गार्गी-संहिता में शालिशूक का चरित्र निम्नलिखित शब्दों में दिया गया है—

ऋतुक्षा कर्मसुतः शालिशूको भविष्यति। स राजा कर्मसूतो दुष्टात्मा प्रियविग्रहः। स्वराष्ट्रमर्दने घोरं धर्मवादी अधार्मिकः॥ स ज्येष्ठभ्रातरं साधुं केतति प्रथितं गुणैः। स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम्॥

---

१. ज. बि. ओ. रिस. सितम्बर, सन् १९२८ पृ० ४०२।

२. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरलि, सितम्बर १९३८, पृ० ४६५।

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि शालिशूक बड़ा दुष्ट, धर्मध्वजी और अधार्मिक था। वह अपने प्रिय-मन्त्रिमण्डल आदि से भी कलह करता रहता था। उस ने अपने ज्येष्ठ भ्राता विजय को मारा ?

९. देववर्मा=देवधर्मा=सोमशर्मा=वृषसेन—७ वर्ष

इस का राज्य भी स्थिर नहीं होगा। शालिशूक के काल में ही मौर्य-साम्राज्य बहुत खण्ड खण्ड हो चुका था। देववर्मा के काल में राज्य संभला प्रतीत नहीं होता।

१०. शतधन्वा=पुष्यधर्मा—८ वर्ष

यह राज्य भी पूर्व राज्य के समान अस्थिर रहा होगा। तिब्बती ग्रन्थ में इसका नाम जयचन्द्र है।[1]

११. बृहद्रथ=पुष्यमित्र ?—७० वर्ष

बृहद्रथ के राज्यकाल तक मौर्य शक्तिपर्याप्त क्षीण हो चुकी थी। बृहद्रथ का राज्य छोटा सा रह गया होगा। उसे किसी ने तंग नहीं किया। तिब्बत के ग्रन्थकार के अनुसार उसका नाम नेमचन्द्र था।[1] पतञ्जलि महाभाष्य ६।३।६१ में उदाहरण लिखता है—काण्डीभूतं वृषलकुलम्। कुंडचीभूतं वृषलकुलम्। अर्थात् वृषल कुल अति छोटा हो गया।

बृहद्रथ बहुत वृद्ध हुआ—पार्जिटर के ई-वायु हस्तलेख के अनुसार बृहद्रथ का राज्यकाल ८७ वर्ष का था। मत्स्य आदि के अनुसार वह ७० वर्ष तक राज्य करता रहा। संभव है बृहद्रथ की पूरी आयु ८७ वर्ष की हो। कलियुगराजवृत्तान्त में लिखा है कि पुष्यमित्र ने अतीव वृद्ध बृहद्रथ को मारा—

पुष्यमित्रस्य सेनानीर्महाबलपराक्रमः। अतीव वृद्धं राजानं समुत्कृत्य बृहद्रथम्॥[2]

यहां यदि पुष्यमित्रस्य पाठ ठीक माना जाए तो कहना पड़ेगा कि दिव्यावदान का पुष्यमित्र पाठ भी ठीक है। पर यदि पुष्यमित्रस्तु पाठ हो तो पहली पंक्ति शुङ्ग पुष्यमित्र की ओर लगेगी और पुष्यमित्र का विशेषण सेनानी होगा।

शुङ्ग पुष्यमित्र सेनानी ने बृहद्रथ को मारा—भट्ट बाण लिखता है कि सेनापति पुष्यमित्र ने सेना-दर्शन के व्याज से बृहद्रथ स्वामी को मार दिया।[3] पुराणों में भी यही लिखा है कि सेनानी ने बृहद्रथ को मार दिया।[4]

---

१. ज० बि० ओ० रि० भाग २७, पृ० २२५। २. दि किंग्स आफ मगध, पृ० ७७।

३. प्रज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीः अनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम्। षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६६२।

४. वायु ९९।३३७॥

उनतालीसवां अध्याय

शुङ्ग साम्राज्य

वैदिक-संस्कृति का पुनरुद्धार

कालावधि—राय चौधरी का मत है कि पुष्यमित्र लगभग १८७ ईसापूर्व में मगध-सम्राट् बना।[1] उसका कुल लगभग ७५ ईसापूर्व तक राज्य करता रहा।[2] अर्थात् शुङ्गों का राज्य ११२ वर्ष तक रहा। यही मत स्मिथ आदि लेखकों का भी है। इस मत का आधार पार्जिटर की पुराणस्थ शुङ्ग-राज्य-काल गणना है। यह सत्य है कि वायु[3] ब्रह्माण्ड[4] और विष्णु[5] में शुंगों की सम्पूर्ण राज्य-वर्षसंख्या ११२ ही है, परन्तु मत्स्य में यह संख्या ३०० दी गई है। पार्जिटर का मत है कि मत्स्य का—शतं पूर्णं शते द्वे च भ्रष्ट पाठ है। इस के स्थान में वायु का शतं पूर्णं दश द्वे च पाठ ठीक है। भाग्यवश वायु ब्रह्माण्ड और मत्स्य में प्रत्येक शुङ्ग राजा का राज्य-मान दिया गया है। उस के अनुसार शुङ्ग राज्यकाल का विस्तार निम्नलिखित प्रकार से है—

वायु		ब्रह्माण्ड		मत्स्य	
पुष्यमित्र	६०	पुष्यमित्र	६०	पुष्यमित्र	३६
अग्निमित्र	८	पुष्यमित्र सुत	८	... ...	
तज्ज्येष्ठ	७	सुज्येष्ठ	७	वसुज्येष्ठ	७
वसुमित्र	१०	वसुमित्र	१०	वसुमित्र	१०
अन्ध्रक	२	भद्र	२	अन्तक	२
पुलिन्दक	३	पुलिन्दक	३	पुलिन्दक	३
घोषसुत	३	घोष	३	... ...	
विक्रमित्र	?	वज्रमित्र	७	वज्रमित्र	
भागवत	३२	भागवत	३२	भागवत	३२
क्षेमभूमि	१०	देवभूमि	१०	देवभूमि	१०
	१३५		१४२		१००

१. Pushyamitra died in or about 151 B. C., probably after a reign of 36 years. P. H. A. I. पृ० ३२६।

२. पो. हि. ए. इ. पृ० ३३२। ३. ९९।३४३॥ ४. ३।७४।१५६॥

५. ४।२४।३७॥

इन गणनाओं में से ब्रह्माण्ड की गणना अधिक पूर्ण है। वायु में आठवें राजा का राज्यकाल नहीं है। मत्स्य में दो राजाओं के नाम और उन का राज्यकाल तथा आठवें राजा का राज्यकाल नहीं है। अतः कुछ पुराणों ने जो ११२ का जोड़ दिया है, वह संदिग्ध है। नारायण शास्त्री ने मत्स्य और कलियुगराजवृत्तान्त से प्रत्येक शुङ्ग-राजा का जो राज्यकाल दिया है उस का योग ३०० वर्ष ही बनता है। ऐसी अवस्था में हम इतना कह सकते हैं कि शुङ्गों का राज्यकाल ११२ वर्ष नहीं, प्रत्युत इस से अधिक था।

१. पुष्यमित्र—राज्य ६० वर्ष

कुल—पुराणों में पुष्यमित्र को शुङ्ग लिखा है। मत्स्यपुराण के एक पाठ से ज्ञात होता है कि शुङ्ग पूर्व-भारत का कोई जनपद था।[1] संभव हो सकता है पुष्यमित्र वहीं का रहने वाला हो। पाणिनि लिखता है कि कभी शुङ्ग नाम के दो ऋषि थे। उनमें से भारद्वाज शुङ्ग की सन्तति शौङ्ग कहाई और दूसरे की सन्तति शौङ्गि।[2] बृहदारण्यक उपनिषद् और वंश ब्राह्मण आदि में शौङ्गि-पुत्र[3] और शौङ्गायनि आदि दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। मत्स्य-पुराण में शौंग आदि लोग द्व्यामुष्यायण अर्थात् दो गोत्र वाले कहे गए हैं।[4]

पुष्यमित्र का इन से सम्बन्ध नहीं था—यदि पुष्यमित्र का इन दोनों में से किसी से भी कोई सम्बन्ध होता तो वह शौङ्ग या शौङ्गि कहाता। परन्तु कहाया वह शुङ्ग ही। वह शुङ्ग जनपद का भी हो सकता है। राय चौधरी आदि लेखकों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। पार्जिटर ने शौङ्ग भी एक पुराण-पाठ माना है।[5] उस के पाठान्तरों में बहुधा शुङ्ग पाठ भी मिलता है। अतः उस का शौङ्ग पाठ ठीक नहीं।

पुष्यमित्र काश्यप था—हरिवंश में निम्नलिखित दो श्लोक हैं—

औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानीः काश्यपो द्विजः। अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति ॥४०॥
तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम्। आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः ॥४१॥[6]

पहले श्लोक का सेनानी पुष्यमित्र प्रतीत होता है। वह काश्यप द्विज था। उस ने चिरकाल से बन्द हुए अश्वमेध को पुनः किया। उस के कुल में किसी ने राजसूय यज्ञ भी किया।

बैम्बिक अग्निमित्र—मालविकाग्निमित्र नाटक में अग्निमित्र अपने आप को बैम्बिक कुल का कहता है।[7] संभव है उस की माता का नाम बिम्बा हो। पातञ्जल महाभाष्य में बैम्बकि प्रयोग मिलता है। यह प्रयोग कात्यायन के वार्तिक के अनुसार है—सुधातृ-व्यास...... बिम्बानाम् इति वक्तव्यम्।......बैम्बकिः।[8] कात्यायन पुष्यमित्र से पहले हो चुका। अतः उस

---

१. मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च॥ सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः। ११३।६६,६७॥ २. अष्टाध्यायी ४।१।११६॥
३. बृ० उ० ६।४।३१॥ शौङ्गि प्रयोग के लिए अष्टाध्यायी ४।२।१३९ का गण देखो।
४. १९६।५२॥ ५. डाइनैस्टीज़ आफ दि कलि एज, पृ० ३४।
६. हरिवंश पर्व ३, अध्याय २॥ ७. ४।१४॥ ८. ४।१।९७॥

के ध्यान में बिम्ब का कुछ अन्य अर्थ था। बैम्बकि और बैम्बिक प्रयोग भी भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। बिम्बिका एक नदी थी। बर्हुत शिलालेखों में बिम्बिकानदीकट नाम का एक नगर वर्णित है।[१]

अश्वमेध—अभी लिखा गया है कि सेनानी काश्यप ने अश्वमेध यज्ञ का कलि में उद्धार किया। पुष्यमित्र के किसी सम्बन्धी के शिलालेख में लिखा है—

कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण......।[२]

अर्थात् पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किए।

सेनापति पुष्यमित्र के यज्ञ का घोड़ा वसुमित्र की रक्षा में विचर रहा था। वसुमित्र के साथ शतराजपुत्र थे। वसुमित्र श्रेष्ठ धन्वी था। सिन्धु के दक्षिण-रोध पर यवनों ने यज्ञ-अश्व को रोका। दोनों सेनाओं का महान् संमर्द हुआ। वसुमित्र विजयी हुआ। यह वर्णन मालाविकाग्निमित्र नाटक के पांचवें अंक में है। महाभाष्य में एक प्रयोग है—अभ्यवहारयति सैन्धवान्।[३] अर्थात् सैन्धवों को नष्ट करता है। क्या यह वसुमित्र की सैन्धव-विजय का संकेत है?

इस यज्ञ के समय यदि वसुमित्र २० वर्ष का हो, तो अग्निमित्र लगभग ४० वर्ष का होगा और पुष्यमित्र लगभग ६० वर्ष का होगा। कालिदास के अनुसार अश्वमेध के समय अग्निमित्र वैदिशस्थ था।[४] अश्वमेधयज्ञ में उस का निरन्तर राजधानी में उपस्थित न होना बताता है कि पुष्यमित्र को नव-प्राप्त राज्य की रक्षा के लिए अत्यन्त सावधान रहना पड़ता था।

मंजुश्री का गोमिमुख्य—मञ्जुश्री में लिखा है कि उस युगाधम काल में राजा गोमिमुख्य होगा। वह कश्मीरद्वार तक विहारों को नष्ट करेगा और शीलसम्पन्न भिक्षुओं को मार देगा। उस की मृत्यु उत्तर दिशा में होगी।[५] तिब्बत के ऐतिहासिक तारानाथ ने भी लिखा है कि पुष्यमित्र ने मध्यदेश से लेकर जालन्धर की सीमा तक के सब बौद्ध मठ नष्ट कर दिए। अतः मूलकल्प का गोमिमुख्य और तारानाथ का पुष्यमित्र एक व्यक्ति थे। गोमिन् शब्द पूज्यार्थ में मिलता है।[६] पुष्यमित्र ब्राह्मण था। अतः वह गोमिमुख्य था। मूलकल्प में किसी अन्तिम नन्द को नीचमुख्य लिखा है।[७] वह निस्सन्देह शूद्र होगा। तिब्बती ग्रन्थों के अनुसार भटभद्र पुष्ययोगी नाम लिखता है।

बृहद्रथ-पुत्र पणिचन्द्र—तिब्बती ग्रन्थकार लिखता है—बृहद्रथ अपरनाम नेमिचन्द्र का पुत्र पणिचन्द्र मगध में राज्य करता था।[८] उस समय पश्चिम में म्लेच्छों का राज्य हो गया था। और भारत के मध्यदेश का पहला आक्रमण तब हुआ।[९] पुष्यमित्र सेनानी रहा होगा और उसे नाममात्र का राजा रहने दिया होगा।

---

१. बर्हुत इन्स्क्रिप्शन्स, बरुआ, सिन्हाकृत, पृ० ८। २. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वैशाख संवत् १९८१।
३. १।१।४४॥ ४. ५।१४॥ के पश्चात्। ५. मूलकल्प श्लोक ५३०—५३३।
६. चान्द्रव्याकरण—गोमिन् पूज्ये ।४।२।१४४॥ ७. श्लोक ४२४।
८. ज० बि० ओ० रि० सो० भाग २७, पृ० २२३।

राज्य-विस्तार—पुष्यमित्र का राज्य मगध से कश्मीरद्वार तक अवश्य था।

राज्य-काल—पुराणों में पुष्यमित्र का राज्यकाल ६० या ३६ वर्ष लिखा है। त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति नामक पुरातन जैन ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र ने ३० वर्ष तक अवन्ति में राज्य किया।[1] विविधतीर्थकल्प में भी ऐसा लेख है।[2] संभव है पुष्यमित्र ने अवन्ति-प्रदेश पीछे से हस्तगत किया हो।

व्याकरण महाभाष्य में पुष्यमित्र का उल्लेख—महाभाष्य के पुष्यमित्र सम्बन्धी वचन नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

१. राजसभा।........। पुष्यमित्रसभा चन्द्रगुप्तसभा। १।१।६८॥

२. पुष्यमित्रो यजते याजका याजयन्तीति। तत्र भवितव्यं पुष्यमित्रो याजयते याजका यजन्तीति। ३।१।२६॥

३. इह पुष्यमित्रं याजयामः।३।२।१२३॥

४. महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुष्यमाणवाः। एष प्रयोग उपपन्नो भवति। ७।२।२३॥

इन में से पहला वचन पुष्यमित्र की राजसभा का स्मरण कराता है। दूसरे में पुष्यमित्र के किसी यज्ञ का वर्णन है। तीसरे में पतञ्जलि कहता है कि हम पुष्यमित्र का यज्ञ करा रहे हैं। चौथे में पुष्यमित्र के कुटुम्ब का एक दृश्य है। चौथा वचन पतञ्जलि का स्वनिर्मित प्रतीत होता है।

वैदिक संस्कृति का पुनर्जीवन—शुङ्ग-राजा ब्राह्मण थे। उन का वैदिक-जीवन में विश्वास था। उन के काल में संस्कृत पुनः देश-भाषा बनी। तब संस्कृत कवियों का बड़ा आदर हुआ होगा। पतञ्जलि ऐसा महान् व्यक्ति शुङ्ग-राज के आश्रय के कारण ही इतना अनुपम ग्रन्थ लिख सका।

२. अग्निमित्र—८ वर्ष ?

क्या अग्निमित्र शूद्रक था—क्षीरस्वामी किसी पुरातन कोश के कई श्लोक उद्धृत करता है।[3] उन में से एक श्लोक का प्रथम पाद है—शूद्रकस् त्वग्निमित्राख्यः। अर्थात् शूद्रक अग्निमित्र का नाम है। अब इस कथा की सत्यता देखनी चाहिए।

मृच्छकटिक प्रकरण और पद्मप्राभृतक भाण कवि शूद्रक विरचित हैं। इन दोनों ग्रन्थों से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

१. शूद्रक शैव था।

२. वह द्विजमुख्यतम था।

३. वह अगाध-बल था। वह समर-व्यसनी था।

४. वह ऋग्वेद, सामवेद, गणित, वैशिकी कला और हस्तिशिक्षा में निपुण था।

---

१. तीसं वंसासु पुस्समित्तम्मि ॥९६॥ २. तीसं पूसमित्तस्स। पृ० ३८। ३. अमरकोश टीका २।८।२॥

५. उस ने परम समुदय से अश्वमेध यज्ञ किया।
६. उस की आयु १०० वर्ष और १० दिन थी।
७. वह क्षितिपाल था।
८. वह अपने पुत्र को राजा बना कर स्वयं अग्नि में प्रविष्ट हुआ।
९. उस के काल में कातन्त्र व्याकरण का प्रचार हो रहा था।[१]
१०. उस के समय कोई मौर्य-कुमार जीवित था।[२]
११. वह चाणक्य के पश्चात् हुआ।[३]
१२. वह मूलदेव की शठता को जानता था।[४]

इन में से कई बातें अग्निमित्र शुंग में घटती हैं। वह द्विजमुख्यतम क्षितिपाल था। उस ने अपने पिता के समान अश्वमेध-यज्ञ किया होगा। हां, उस के दिनों में कातन्त्र के प्रचार की बात खटकती है। परन्तु जब तक आन्ध्र-इतिहास की सारी समस्या सुलझ न जाए, तब तक इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। एक शातकर्णि शालिशूक का समकालिक लिखा जा चुका है। संभव है, वह एक आन्ध्रराज हो। विविधतीर्थकल्प से ज्ञात होता है कि सकल-कला-कलापज्ञ मूलदेव मौर्यों का अचिर-उत्तरवर्ती व्यक्ति था। संभव है वह शुंगों के प्रारंभिक दिनों में हुआ हो। इन सब बातों से शूद्रक और अग्निमित्र के एक होने की संभावना है।

बाण और शूद्रक—नहीं कह सकते कि बाण से स्मरण किया गया शूद्रक शुंग अग्निमित्र था, या कोई अन्य शूद्रक।[५] संभवतः वह अन्य अग्निमित्र था।

शूद्रक-वध का शूद्रक—अमरकोश १।६।६ के टीकासर्वस्व में शूद्रक-वध नामक किसी ग्रन्थ का प्रमाण दिया गया है। शूद्रक-वध वाला शूद्रक अग्निमित्र नहीं हो सकता। वह कथा अधिकतर काल्पनिक थी।

एक बड़ा बलशाली शूद्रक राजतरंगिणी में उल्लिखित है।[६]

राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा में—वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक और साहसाङ्क को राजा और कवि दोनों मानता है। ये राजा कवि-समाज अर्थात् ब्रह्मसभा के विधाता थे।[७]

दण्डिकृत अवन्तिसुन्दरी कथा में एक पाठ है—(तं) पुनः समुद्धृत्य पुष्यमित्रो नाम शुङ्गस्तस्यैव सेनापतिर्ब्राह्मणायनो..................ज्वलितमौर्यवंशं च मूलदेवं युधि निहत्य षट्त्रिंशत् समाः स्थास्यति।[८] अर्थात् पुष्यमित्र ने मूलदेव को युद्ध में मारा। परन्तु मूलदेव देर तक शूद्रक का मित्र था। अतः यह मूलदेव कोई पहला मूलदेव था और अग्निमित्र शूद्रक नहीं था।

---

१. प० प्रा० पृ० ८। २. प० प्रा० १८। मौर्यकुमार से तुलना करो मौर्यसचिव की। मालविकाग्निमित्र १।७॥ ३. मृच्छकटिक १।३६॥ ४. प० प्रा० पृ० ७।
५. उत्सारिकरुचिश्च रहसि ससचिवमेव दूरीचकार चकोरनाथं शूद्रकदूतः चन्द्रकेतुं जीवितात्। षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९५।
६. ३।३४३॥ ७. काव्यमीमांसा १।१०॥ ८. आशुतोष मैमोरियल वाल्यूम, पृ० २२५।

राजधानी विदिशा—शुङ्गों ने पाटलिपुत्र के साथ साथ विदिशा को भी अपनी एक राजधानी बना लिया था। मालविकाग्निमित्र नाटक से पता लगता है कि अग्निमित्र कभी विदिशा में भी रहा करता था।

शुङ्गों के अन्त तक विदिशा उन के अधिकार में रही। उन के अन्त पर विदिशा का राजा शिशुनन्दी था। यह बात पुराणों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखी है।[1]

महाराणी—कालिदास के लेख के अनुसार अग्निमित्र की प्रधान-स्त्री धारिणी थी।

राज्यकाल—पुराणों में अग्निमित्र का राज्यकाल ८ वर्ष का लिखा है। त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति के अनुसार वसुमित्र और अग्निमित्र का राज्य ६० वर्ष का था।[2] विविधतीर्थकल्प के अनुसार बलमित्र और भानुमित्र का काल ६० वर्ष का था।[3] ये दोनों नाम वसुमित्र और अग्निमित्र के स्थान पर हैं। अतः ज्ञात होता है कि जैन पद्धति के अनुसार इन तीन राजाओं का काल ९० वर्ष का था। पुराणों में इन का काल ३६+८+७+१०=६१ वर्ष अथवा ६०+८+७+१०=८५ वर्ष है। संभव है जैन अनुश्रुति के राजा शुङ्ग न हों।

३. वसुज्येष्ठ—७ वर्ष

संभव है वसुज्येष्ठ वसुमित्र का बड़ा भाई हो। इस का वृत्तान्त अज्ञात है। जेठमित्र नामांकित कुछ मुद्राएं अब भी प्राप्त हैं।[4]

४. वसुमित्र—१० वर्ष

वसुमित्र का थोड़ा सा उल्लेख पहले हो चुका है। हर्षचरित में उस की अथवा उस के किसी भाई सुमित्र की मृत्यु का वर्णन है—

अतिदयितलास्यस्य च शैलूषमध्यमध्यास्य मूर्द्धानम् असिलतया मृणालमिव अलुनात् अग्निमित्रात्मजस्य सुमित्रस्य मित्रदेवः।[5]

अर्थात् मित्रदेव ने अतिनृत्यप्रिय अग्निमित्रपुत्र सुमित्र का सिर खड्ग से काट दिया। बाण का पाठ यदि सुमित्र था, तो वह वसुमित्र का कोई छोटा भाई होगा।

५. अन्ध्रक=भद्रक=अन्तक—२ वर्ष

विष्णुपुराण में इसे आर्द्रक या उदङ्क लिखा है।[6] भागवत का पाठ भद्रक है। इन में से कोई एक नाम ठीक होगा अथवा सारे नाम किसी एक मूल का पाठान्तर हो सकते हैं। इस का नाममात्र अवशिष्ट है। किसी भद्रघोष की मुद्राएं मिलती हैं।[7]

---

१. डाइनैस्टीज़ आफ दि कलि एज, पृ० ४९। २. वसुमित्त अग्गिमित्ता सट्ठी।९७॥

३. पृ० ३९। ४. काएन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, ऐलनकृत, पृ० ७४।

५. षष्ठ उच्छ्वास पृ० ६६१। त्रिवन्दरम के एक हस्तलेख का पाठ द्रष्टव्य है—अग्निमित्राग्रजस्य सुमित्रस्य मूलदेवः। राजप्रासादहस्तलिखित ग्रन्थ पुस्तकालय। खारपट और मूलदेव पर लेख, सर आशुतोष मैमोरियल वाल्यूम, सन् १९२६-१९२८, भाग १, पृ० २२५।

६. ४।२४।३५॥ ७. ज. ए. सो. ब. सन् १८८०, पृ० २३।

६. पुलिन्दक—३ वर्ष

पुलिन्दक से भागवत तक के विषय में हम अधिक नहीं जान सके। कुछ शिलालेख भागवत आदि के सम्बन्ध के कहे जाते हैं, पर उन के विषय में निश्चित ज्ञान अभी तक नहीं हो सका।

७. घोष, घोषसुत अथवा योमेघ—३ वर्ष

८. वज्रमित्र—७ या ८ वर्ष

९. भागवत—३२ वर्ष

१०. देवभूमि—१० वर्ष

वायु में इसे क्षेमभूमि और विष्णु में देवभूति लिखा है। वह एक व्यसनी राजा था।[१] देवभूति नाम का समर्थन भट्ट बाण भी करता है—

अतिस्त्रीसङ्गरतम् अनङ्गपरवशं शुङ्गम् अमात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितम् अकारयत।[२]

बाण के लेख से भी ज्ञात होता है कि देवभूति एक व्यसनी राजा था। कलियुगराज-वृत्तान्त में देवभूति के मारे जाने की घटना का विस्तृत वर्णन है।

अमात्य वसुदेव—देवभूति विदिशा में ही रहने लग पड़ा था। उसने राज्यभार काण्व-शाखीय अमात्य वसुदेव पर छोड़ दिया था। व्यसनी होने के कारण देवभूति ने वसुदेव की कन्या पर ही बलात्कार करना चाहा। वह सती मर गई। इस घटना को सुन कर वसुदेव बड़ा दुखी हुआ। उस ने देवभूति को उसकी दासी कन्या द्वारा मरवा दिया।

वसुदेव ने शुङ्ग-कुल का सर्वथा नाश नहीं किया। शुङ्ग-कुल का सर्वनाश आन्ध्र सीमुक ने काण्व-वंश के नाश के साथ किया।

शुङ्गों के अन्त पर वैदिश राजा—कभी विदिशा पर शुङ्गों का राज्य था। उन से पहले और अनेक राजा थे। उन का वर्णन पुराणों में है। शुङ्गों के अन्त में जो राजा विदिशा में था उस के विषय में पुराणों में लिखा है—

शुङ्गानां तु कुलस्यान्ते शिशुनन्दिर्भविष्यति। तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशाः किल।

अर्थात् विदिशा में शिशुनन्दि राजा था। उस का भ्राता नन्दियशा था।

---

१. शुंगराजनं व्यसनिनं। विष्णु ४।२४।३९॥ २. षष्ठ उच्छ्वास, पृ० १९३॥

चालीसवां अध्याय

यवन-समस्या

हम पहले पृ० १५१ पर यवनों के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त लेख लिख चुके हैं। उस से उत्तर-काल की भारतीय-इतिहास की यवन-समस्या कुछ अल्प जटिल नहीं। इस लिए इस विषय पर पाश्चात्य और भारतीय-पौराणिक-मत का उल्लेख नीचे किया जाता है।

पाश्चात्य मत—स्मिथ और रैपसन आदि पाश्चात्य ऐतिहासिकों का मत है कि पंजाब के पश्चिमोत्तर के सब यवन-राज्य सिकन्दर के पंजाब आक्रमण के पश्चात् बने। सिकन्दर मौर्य चन्द्रगुप्त के मगध-सम्राट् बनने से चार या पांच वर्ष पहले पंजाब में आया। उस के पश्चात् जो यवन-राज्य पंजाब की सीमा पर स्थापित हुए, उन्हें चन्द्रगुप्त ने नष्ट कर दिया। तदनन्तर मौर्य-साम्राज्य के क्षीण होने पर और शुङ्गों के काल में पंजाब और उस के सीमा-प्रदेशों में पुनः यवन-सत्ता प्रबल हुई। उस समय मनेन्द्र आदि प्रसिद्ध राजा हुए। मनेन्द्र ने शाकल अर्थात् स्यालकोट में अपनी राजधानी स्थापित की।

भारतीय-मत का सार—आचार्य पाणिनि नन्दकाल अथवा उस से पहले हुआ। उस के ग्रन्थ पर वार्तिक लिखने वाला कात्यायन संभवतः नन्दकाल में हुआ। संस्कृत ग्रन्थों में नन्दकाल का एक मुनि वररुचि बहुत प्रसिद्ध है। नहीं कह सकते वह वररुचि दाक्षिणात्य-कात्यायन था अथवा उस से विभिन्न कोई व्यक्ति।[1] अस्तु, पाणिनि यवनों से परिचित था। पाश्चात्य लेखक इस कारण से पाणिनि का काल सिकन्दर के पश्चात् रखना चाहते हैं। यह उन की सर्वथा भूल है। कात्यायन स्पष्ट करता है कि पाणिनि के सूत्र का अभिप्राय यवनों की लिपि से है।[2]

अब आई मौर्य-काल की बात। महामन्त्री विष्णुगुप्त अपने एक ज्योतिषग्रंथ में यवनों के मत का निर्देश करता है।[3] अशोक के तेरहवें शिलालेख में यवन-राजाओं के नाम उपलब्ध हैं। अशोक मौर्य का एक सामन्त यवनराज तुषास्फ था।[4] शालिशूक मौर्य के काल में यवनराज धर्ममीत ने मगध पर आक्रमण किया।[5] इस के पश्चात् पुष्यमित्र के समय में उस के पौत्र वसुमित्र ने सिन्धु-तीर पर यवनों को परास्त किया। पुष्यमित्र का याज्ञिक पतञ्जलि मध्यमिका और साकेत पर किसी यवन-आक्रमण का पता देता है।[6]

---

१. यदि कथासरित्सागर, अवन्तिसुन्दरीकथासार और मंजुश्रीमूलकल्प का वररुचि दाक्षिणात्य सिद्ध हुआ, तो कहना पड़ेगा कि उस के कात्यायन होने का एक प्रमाण दृढ़ हुआ।

२. अष्टाध्यायी ४।१।४९॥ इस पर वार्तिक उदाहरण—यवनानी लिपिः।

३. उत्पल की बृहज्जातक-टीका २१।३॥

४. देखो गिरिनार का रुद्रदामा का शिलालेख।

५. देखो, पूर्व पृ० २७२।

६. अरुणद्यवनः साकेतम्। अरुणद्यवनो मध्यमिकाम्। महाभाष्य ३।२।१११॥

पुराणों में पञ्जाब के यवन राजाओं की संख्या आठ लिखी है। ये सब राजा गुप्तकाल से पहले और आन्ध्र-काल के अन्तिम दिनों में हुए। पुराणों के लेखानुसार वे शुङ्ग-काल के बहुत उत्तरवर्ती थे। इन आठ यवन-राजाओं का शालिशूक आदि के काल के यवन-राजाओं से कोई शृंखलाबद्ध सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। पुराणों के अनुसार सिकन्दर का आक्रमण यदि वह ३२६ ईसा पूर्व के समीप है तो आन्ध्रकाल में रखना पड़ेगा। परन्तु सिकन्दर की तिथि अभी अनिश्चित है।

इन दोनों मतों का सार—पाश्चात्य लेखकों का कहना है कि पुराणों में शुङ्गकाल के परवर्ती राजाओं का वर्णन ठीक नहीं हुआ। बस इतना लिख कर पाश्चात्यों ने भारतीय इतिहास की एक कल्पित रूपरेखा बना ली है। हम ने इन सब मतों का अध्ययन किया है, परन्तु हम अभी तक किसी स्थिर निर्णय पर नहीं पहुँच पाए। पाश्चात्यों ने शृंखला जोड़ने का यत्न किया है, पर उस में त्रुटियां बहुत रही हैं। वह मत सन्तोष-प्रद नहीं है। पुराणों के विश्वसनीय संस्करण अभी अनुपलब्ध हैं। यह त्रुटि बहुत अखरती है। परन्तु पुराणमत सहसा परे नहीं फेंका जा सकता। यदि आन्ध्र-वंश का काल गुप्त-वंश से पहले जोड़ना पड़ा, जैसा अत्यन्त संभव दिखाई देता है, तो सब पाश्चात्य-विचार त्याज्य हो जायेंगे। अतः हम सामग्री की खोज में लगे हैं और बृहद् भारत इतिहास में अपना निश्चित मत प्रकाशित करेंगे।

इकतालीसवां अध्याय

शुङ्ग-भृत्य अथवा काण्व साम्राज्य

बहु-भ्रष्ट पुराण-पाठ—काण्व-वंशीय राजाओं के वर्णन का पुराण-पाठ अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है। काण्व राजा संख्या में चार थे। पार्जिटर के पुराण-पाठ के अनुसार उन का राज्यकाल ४५ वर्ष का था। नारायण शास्त्री के अनुसार उन्होंने ८५ वर्ष राज्य किया। हमें इन दोनों पाठों में दोष दिखाई देते हैं। परन्तु अन्तिम निर्णय के लिए अभी सामग्री का अभाव है।

पुराणों के अनुसार काण्व राजा धार्मिक और प्रणत-सामन्त थे।

१. वसुदेव—९ वर्ष ?

अन्तिम शुङ्ग-राज देवभूमि का प्रधानामात्य वसुदेव था। वह काण्व-शाखीय ब्राह्मण था। इस कारण उस का काण्व-वंश कहाया। देवभूमि का उत्पाटन करने के पश्चात् वह पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर बैठा। उस के काल में भी वैदिकसंस्कृति का प्रसार रहा होगा। संस्कृत ही राज-भाषा होगी।

२. भूमिमित्र—१४ अथवा २४ वर्ष

वायु और ब्रह्माण्ड में इस का राज्यकाल २४ वर्ष का लिखा है। अन्यत्र मत्स्य आदि में इस का राज्यकाल १४ वर्ष का है।

३. नारायण—१२ वर्ष

इस का राज्य सर्वत्र १२ वर्ष का लिखा है।

४. सुशर्मा—१० वर्ष

सुशर्मा अन्तिम काण्व राजा था। यह राजा अपने भृत्य आन्ध्रजातीय सिमुक से मारा गया।

बयालीसवां अध्याय

आन्ध्र-साम्राज्य—४६० वर्ष

इनके पूर्ववर्ती आन्ध्र—आन्ध्र एक अति प्राचीन जाति थी। अन्ध्रों का नाम ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है।[1] भारतयुद्ध के काल में यादव कृष्ण आन्ध्रों का वर्णन करता है।[2] प्रियदर्शी के तेरहवें शिलालेख में अन्ध्र देश का नाम मिलता है। खारवेल-कालिङ्ग के प्रसिद्ध शिलालेख में असिक-नगर के किसी बलशाली राजा सातकर्णि अथवा शातकर्णि का वर्णन है। अपने राज्य के दूसरे वर्ष में खारवेल ने उस पर चढ़ाई की।[3] शातकर्णि आन्ध्रों की एक उपाधिमात्र थी। खारवेल का समकालीन शातकर्णि काण्व-साम्राज्य के विध्वंस से पहले हो चुका था। यद्यपि हम ने मौर्य और शुङ्ग-राज्य का काल स्मिथ और राय चौधरी आदि के स्वीकृत-काल से अधिक लम्बा माना है, तथापि उन के माने हुए कालक्रम के अनुसार भी खारवेल आन्ध्र-राज्य-संस्थापक सिमुक से पहले हो चुका था। राय चौधरी आदि के अनुसार इन वंशों के राज्य-काल का जोड़ निम्नलिखित है—

मौर्य राज्य	१३६ वर्ष
शुङ्ग राज्य	११२ ,,
काण्व राज्य	४५ ,,
पूर्ण जोड़	२९३ वर्ष

इस प्रकार इन लेखकों के अनुसार काण्व-राज्य का ध्वंस नन्दराज्य की समाप्ति के २९३ वर्ष पश्चात् हुआ। अब यदि नन्दों के राज्य के सात वर्ष रहने पर किसी नन्द ने कालिङ्ग-विजय की हो तो काण्व-राज्य के अन्त तक उस घटना को ३०० वर्ष होंगे। खारवेल नन्द के कलिङ्ग-विजय के ३०० या १०३ वर्ष पश्चात् हुआ था। परन्तु तब मगध पर बृहस्पतिमित्र नाम का कोई राजा नहीं था। अतः राय चौधरी आदि की सारी कल्पनाएँ असत्य हैं।

हमारा मत है कि खारवेल का शातकर्णि इस आन्ध्र-राज्य से बहुत पहले का शातकर्णि था।

मल्लनाग और शातकर्णि—वात्स्यायन के कामसूत्र में लिखा है—

कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शातवाहनो महादेवीं मलयवतीं (जघान)।[4]

---

१. ऐ० ब्रा० ७।१८॥ २. उद्योगपर्व १३८।२५॥

३. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरलि, सितम्बर सन् १९३८, पृ० ४६३।

४. दूसरा अधिकरण, सातवां अध्याय।

कामसूत्र के कर्तृत्व के विषय में अभी अनेक बातें विवादास्पद हैं। यदि मल्लनाग वात्स्यायन विष्णुगुप्त नहीं, तो यह कुंतल शातकर्णि आन्ध्र होगा, अन्यथा यह शातकर्णि मौर्य-राज्य से पहले का कोई शातकर्णि होगा।[1] कामसूत्र के टीकाकार का मत है कि—कुन्तलविषये जातत्वात् तत्समाख्यः। अर्थात् कुन्तल देश में उत्पन्न होने से वह कुन्तल कहाया। इस मत को मान कर यह कहा जा सकता है कि कामसूत्र का शातकर्णि संभवतः आन्ध्र-वंशीय न हो। ये सब समस्याएं लुप्त संस्कृत-वाङ्मय के अधिक मिलने पर समाहित होंगी।

कथासरित्सागर और सातवाहन-वंश—कथासरित्सागर में दीपकर्णि का पुत्र सातवाहन लिखा गया है।[2] सातवाहन नाम की व्युत्पत्ति पर वहां एक कथा भी लिखी है। वह काल्पनिक कथा है। संभव है यह सातवाहन इस आन्ध्र-वंश के आरम्भ से पहले का हो।

आन्ध्र-वंश के विषय में पुराण-मत—पार्जिटर लिखता है [3]—

वायु, ब्रह्माण्ड, भागवत और विष्णु सब तीस (आंध्र) राजा कहते हैं, परन्तु वे तीस के नाम नहीं लिखते। वायु के हस्तलेखों में १७, १८ और १९ नाम हैं। इ-वायु, जो सब से पूर्ण है, २५ नाम लिखता है। ब्रह्माण्ड में १७ ही नाम हैं। भागवत में २३ और विष्णु में २४, अथवा दो हस्तलेखों में २२ और २३ नाम हैं। मत्स्य कहता है कि १९ राजा थे, परन्तु इस के तीन हस्तलेख (डी. जी. एल.) वस्तुतः ३० नाम लिखते हैं, और दूसरों में संख्या २८ से २१ तक है।...तीस निस्सन्देह ठीक संख्या है।

राय चौधरी आदि की भूल—भ्रष्ट-पुराण-पाठों को न समझ कर राय चौधरी ने लिखा है—the Andhra Simuka will assail the Kanvayanas and Susarman and destroy...[4] काण्वायन और सुशर्मा दो नहीं थे। यहां पुराण-पाठ भ्रष्ट हुआ है। यह भूल पार्जिटर की भी थी। राय चौधरी ने पार्जिटर का अनुकरण किया है। पुनः रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का अनुकरण करते हुए राय चौधरी इस आन्ध्र-वंश को अन्ध्र-भृत्य-वंश लिखता है।[5] इन ऐतिहासिकों को ज्ञात नहीं कि गुप्त आदि वंश आन्ध्र-भृत्य-वंश थे। यह वंश अन्ध्र-भृत्य वंश नहीं था। विष्णु का पाठ थोड़ा सा टूटा है, अतः भ्रांतिकारक है।[6]

मगध राज्य और आन्ध्र—पुराणों के अनुसार आन्ध्र-वंश का आरम्भ मगध राज्य से हुआ। अनेक लोगों को इस में सन्देह है। उन्हें निम्नलिखित तीन प्रमाण ध्यान से देखने चाहिएं—

१. तामिल के सिलप्पाधिकार (पृ० ५४०, ५४१) में सातकर्णियों का सम्बन्ध गङ्गा के प्रदेश से है। वे वहां के राजा रहे होंगे।[7]

२. आन्ध्रराज आपीलक की मुद्रा छत्तीसगढ़ परगना से मिली है। इस लिए आन्ध्र राज्य के मगध तक फैलने की संभावना है।

---

१. देखो पूर्व पृष्ठ २६२।

२. लम्बक १, तरंग ६।

३. डायनैस्टीज़ आफ दि कलि एज पृ० ३६।

४. पो०हि०ए०इ० चतुर्थ संस्करण, पृ० ३३६।

५. पो०हि०ए०इ० चतुर्थ संस्करण पृ० ३३६।

६. ४।२४।५०॥

७. बुद्धिस्ट रीमेन्स इन आन्ध्र, पृ० ७।

३. आन्ध्र राज्य के मध्य काल में मगध पर एक मुरुण्ड राजा राज्य करता था। क्षत्रप शकों ने आन्ध्रों को दक्षिण सौराष्ट्र से निकाला था। उन के साथी मुरुण्डों ने उन्हें मगध से निकाला होगा।

१. शिशुक—२३ वर्ष

सातकर्णि नाम की प्राचीनता—सातवाहन राजाओं की एक उपाधि सातकर्णि या स्वातिकर्ण थी। सातवाहन और सातकर्णि शब्दों में पहला पद समान है। स्वाति एक मुनि था। वह नाट्यशास्त्र रचयिता भरतमुनि से पहले अर्थात् भारतयुद्ध से बहुत पहले हो चुका था। भरत नाट्यशास्त्र १।५१ में वह स्मरण किया गया है। किसी शातकर्णि का सूत्रधार का लक्षण सागरनन्दि के नाटकलक्षणरत्नकोश पृ० ४७ पर उद्धृत है। वह स्वाति मुनि हो सकता है। इस स्वाति से आन्ध्रों का सम्बन्ध जानना चाहिए।

नाम-भेद—शिशुक[1], सिन्धुक[2], बलिपुच्छक[3] और सिंहकस्वातिकर्ण शिमुक[4] आदि पाठान्तर इस नाम के मिलते हैं। इस सम्बन्ध में कलियुगराजवृत्तान्त के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

सेनाध्यक्षस्तु काण्वानां शातवाहनवंशजः। सिंहकस्वातिकर्णाख्यः शिशुको वृषलो बली॥
समानीतैः प्रतिष्ठानादन्ध्रवंश्यैः स्वसैनिकैः। काण्वायनं सुशर्माणं निहत्य स्वामिनं निजम्॥
शुङ्गानां चैव यच्छेषं क्षपयित्वा तदप्यसौ। आन्ध्रवंशप्रतिष्ठाता भविष्यति ततो नृपः॥

इन श्लोकों से स्पष्ट होता है कि सिमुक—

(१) शातवाहन वंश का था।
(२) वह सुशर्मा का सेनाध्यक्ष था।
(३) वह वृषल और बली था।

भागवत में भी लिखा है कि सिमुक सुशर्मा का भृत्य तथा वृषल बली था। विष्णु का बलिपुच्छक पाठ इस बली शब्द से कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता है।

इस सिमुक ने अपने सजातीयों की सहायता से अपने स्वामी काण्व-सुशर्मा को मार कर राज्य हस्तगत कर लिया। सिमुक ने शुंगों के बचे हुए राजवंश भी विजय किए।

२. कृष्ण—१८ वर्ष

सिमुक के पश्चात् उसका छोटा भाई कृष्ण या कण्ह राजा बना। कलियुगराजवृत्तान्त में उसे कृष्ण श्रीशातकर्णि कहा है। नासिक की पांडु-लेणा गुफाओं के एक शिलालेख में लिखा है कि उस लेख वाली गुफा सातवाहन कुल के राजा कण्ह के समय में बनी—

सादवाहनकुले कण्हे राजिनि नासिककेन समणेन महामातेण लेण कारित।[5]

---

१. मत्स्य २७३।२॥
२. वायु ९९।३४८,३४९। ब्रह्माण्ड ३।७४।६१॥
३. विष्णु ४।२४।४३॥
४. कलियुगराजवृत्तान्त।
५. ऐ० इ० भाग ८, पृ० ९३।

३. श्रीमल्लकर्णि=श्रीमल्लशातकर्णि—१० वर्ष

वायु में इस के साथ महान् का विशेषण है।[1] संभव है वह भारी विजेता हो। राज्यारोहण के समय वह पर्याप्त आयु का होगा।

पुराणों से प्रतीत होता है कि यह शातकर्णि कण्ह का पुत्र था। वर्तमान ऐतिहासिक नानाघाट के शिलालेख के आधार पर इसे सिमुक का पुत्र मानते हैं। जब तक पौराणिक शिशुक और नानाघाट के सिमुक की एकता प्रमाणित न हो जाए, तब तक इस विषय में कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता।

४. पूर्णोत्सङ्ग—१८ वर्ष

महान् शातकर्णि के पश्चात् पूर्णोत्सङ्ग राजा बना।

५. स्कन्धस्तम्भी—१८ वर्ष

६. शातकर्णि —५६ वर्ष

७. लम्बोदर —१८ वर्ष। संख्या ६ का पुत्र।

८. आपीलक —१२ वर्ष

यह राजा लम्बोदर का पुत्र था। इसकी एक मुद्रा मिल गई है। वह मुद्रा परगना छत्तीसगढ़ के विलासपुर जिला के बलपुर ग्राम से मिली है। बलपुर ग्राम चन्द्रपुर के समीप है।[2] यह मुद्रा छत्तीसगढ़ परगने से प्राप्त हुई है, अतः बहुत संभव है कि न्यून से न्यून आपीलक के काल तक मगध का साम्राज्य आंध्रों के आधिपत्य में रहा हो।

९. मेघस्वाति—१८ वर्ष

स्वाति नाम वाले अथवा स्वाति-अन्त नाम वाले अनेक राजा हुए होंगे। इस प्रकार के तीन और राजा आन्ध्र वंश में गिने गए हैं। स्वातिनाम का एक राजकुमार अश्मकों में था। वह इन्द्राणिगुप्त-शूद्रक का समकालिक था।[3] कई लेखक इस स्वाति को आन्ध्र स्वातियों में से एक समझते हैं।

१०. स्वाति—१८ वर्ष

११. स्कन्दस्वाति—७ वर्ष

१२. मृगेन्द्रस्वातिकर्ण—३ वर्ष

१. ९९।३५०॥

२. न्यूमिस्मेटिक सप्पलिमैण्ट, जे. आर. ए. एस. आफ बंगाल, भाग ३, १९३७-३८, प्रकाशित सन् १९३९।

३. अवन्तिसुन्दरीकथासार ४।१७५—।

१३. कुन्तल स्वातिकर्ण—८ वर्ष

कलियुगराजवृत्तान्त में इस का नाम कुन्तल शातकर्णि लिखा है। नहीं कह सकते कि कामसूत्र में वर्णित कुन्तल शातकर्णि यही व्यक्ति था, अथवा कोई अन्य।[1] राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा में किसी कुन्तल-राज सातवाहन का स्मरण करता है।[2] संभवतः इसी सातवाहन की ब्रह्मसभा का उल्लेख राजशेखर ने किया है।[3]

नारायण शास्त्री लिखता है कि कलि-राज-वृ० में कुन्तल के पश्चात् एक सौम्य शातकर्णि लिखा है, तथा मत्स्य के कुछ पाठों में उसे पुष्पसेन लिखा है। शास्त्री महोदय के अनुसार उसने १२ वर्ष राज्य किया। पार्जिटर के पाठ में यह नाम नहीं है।

१४. स्वातिकर्ण—१ वर्ष

१५. पुलोमावि—३६ वर्ष

वायु के अनुसार इस का राज्यकाल २४ वर्ष का था।

१६. अरिष्टकर्ण—२५ वर्ष

इस के नाम के अरिष्ट शातकर्णि, नेमिकृष्ण आदि अन्य अनेक पाठान्तर भी हैं।

१७. हाल=हालेय—५ वर्ष

संस्कृत कोश-ग्रन्थों में हाल के सम्बन्ध में निम्नलिखित वचन मिलते हैं—

शालो हालनृपे।[4] हालः स्यात् सालवाहनः।[5] हालः स्यात् सातवाहनः। सालवाहनोऽपि।[6]

इन वचनों से ज्ञात होता है कि कोई हाल राजा सातवाहन भी कहाता था। भट्ट बाण गाथासप्तशती के कर्ता सातवाहन कवि की कीर्ति गाता है—

अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः। विशुद्धजातिभिः कोषं रत्नैरिव सुभाषितैः॥१४॥[7]

हाल की गाथा-सप्तशती प्राकृत-साहित्य में सुप्रसिद्ध है। भट्ट बाण का उपर्युक्त श्लोक इस हाल-सातवाहन के विषय में है। राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली ४।५३ में इस हाल-सातवाहन की कीर्ति गाई है—

जगत्यां प्रथिता गाथाः शातवाहनभूभुजा। व्यधुर्धृतेस्तु विस्तारमहो चित्रपरम्परा॥

क्या हाल दो थे—आन्ध्र-हाल पांच वर्ष राजा रहा। वायु और ब्रह्माण्ड के अनुसार वह संवत्सर पूर्ण अर्थात् एक वर्ष राजा रहा। जो हाल ग्रन्थकार था, वह अधिक कालतक राज्य

---

१. देखो, पूर्व पृ० २८५, २८६।
२. श्रूयते च कुन्तलेषु सातवाहनो नाम राजा। तेन प्राकृतभाषात्मकमन्तःपुर एव प्रवर्तितो नियमः। अध्याय १०।
३. अध्याय १०।
४. विश्वप्रकाश कोष, पृ० १५०।
५. क्षीरकृत अमरकोषटीका २।८।१ में उद्धृत।
६. अभिधानचिन्तामणि ३।३७६॥
७. हर्षचरित-भूमिका, प्रथम उच्छ्वास।

करता रहा होगा। उस का काल दानी साहसाङ्क-विक्रम के पश्चात् का है। अतः कोशकारों का हाल यदि उत्तरवर्ती सातवाहन था, तो हाल नाम के न्यून से न्यून दो राजा मानने पड़ेंगे।

जैन-ग्रन्थों का सातवाहन—प्रबन्धकोश में दक्षिण दिशा के प्रतिष्ठानपुर के राजा सातवाहन का उल्लेख है। वह जैनाचार्य पादलिप्तक का समकालीन था। उस के समय में पाटलीपुत्र का राजा मुरुंड था। संभव है उस का नाम दाहड हो।[1] यह सातवाहन आवन्तिक विक्रमादित्य का पूर्ववर्ती था। विक्रमादित्य के समकालिक स्कन्दिलाचार्य और सिद्धसेन-दिवाकर थे। स्कन्दिल पादलिप्त की सन्तान में था।[2]

इसी सातवाहन का समकालिक प्रसिद्ध सम्राट् द्विज शूद्रक था।[3]

एक हाल राजा अपने कवियों को बड़ा दान देता था। उस की राजसभा की शोभा को कविवृष श्रीपालित बढ़ाता था। ये बातें नवम शताब्दी के लेखक अभिनन्द के रामचरित में मिलती हैं।[4] वह संभवतः यही हाल था। सातवाहन सभा प्रसिद्ध हो चुकी थी।[5]

१८. मन्तलक=पत्तलक—९ वर्ष

इस नाम के अनेक पाठान्तर पाए जाते हैं। यथा—मन्दुलक, मेनुलक, मण्डलक, मण्डक, कुण्डलक, पन्तलक, पित्तलक, पुत्तलक, पक्षलक सत्ताक आदि।

चीनी लेखक—ह्यूनत्सांग की जीवनी में लिखा है—नागार्जुन के समय में देश का राजा सो-तो-पो-हो था।[6] यह सातवाहन शब्द का चीनी रूपान्तर है। जीवनी के अनुवादक ने चीनी ग्रन्थों के आधार पर इस राजा का नाम शि-यन-तो-किया लिखा है। इत्सिंग इस राजा का नाम जि-इन-त-क लिखता है। इन चीनी रूपान्तरों से मूल नाम चिन्तक अथवा सन्तक प्रतीत होता है। है यह नाम इसी राजा का। इस के और इस के पूर्ववर्ती राजा के काल में पादलिप्तक, नागार्जुन और सम्राट् शूद्रक हुए।

---

१. देखो प्रभावकचरित ५।१८४॥ २. प्रबन्ध कोष पृ० ११-१६। देखो, पुरातनप्रबन्धसंग्रह, श्रीपादलिप्तसूरिप्रबन्ध पृ० ९२,९३। ३. विविधतीर्थकल्प, पृ० ६१।

४. नमः श्रीहारवर्षाय येन हालादनन्तरम्। स्वकोशः कविकोशनामाविर्भावाय संभृतः॥ पंचमसर्ग, आरम्भ। हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः"'। तेईस सर्ग का आरम्भ।

५. जैनेन्द्र व्याकरण, पृ० २०४॥ ६. पृ० १३५।

तेतालीसवां अध्याय

सम्राट् शूद्रक

अपरनाम अग्निमित्र-इन्द्राणिगुप्त-विक्रमादित्य प्रथम

कीथ आदि पाश्चात्य लेखकों की भूल—अध्यापक आर्थर बैरिडेल कीथ का मत है कि शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था। उसकी सत्ता मनघड़न्त है।[1] अमेरिका अन्तर्गत संयुक्त-राष्ट्र-वासी मृच्छकटिक के नूतन अनुवादक रेविलो पैण्डलेटन आलिवरकी भी यही सम्मति है।[2]

इस भूल का खण्डन—इन लेखकों का मत उपहासास्पद है। मृच्छकटिक प्रकरण और पद्मप्राभृतक भाण इस समय भी उपलब्ध हैं। गत अनेक शताब्दियोंके भारतीय ग्रन्थकार इन दोनों ग्रन्थों को शूद्रक-कृत मानते आए हैं। उनके लेखों का सार निम्नलिखित है—

१. सौराष्ट्रिक गुणचन्द्र रामचन्द्र ने अपने नाट्यदर्पण में लिखा है—श्रीशूद्रकविरचितायां मृच्छकटिकायां—।[3]

२. इसी प्रकार वंगीय श्रीधरदास शक ११२७ में रचे अपने सदुक्तिकर्णामृत में मृच्छकटिक के ४।१५श्लोक को शूद्रक के नाम से उद्धृत करता है।[4]

३. शक १०८१ में लिखने वाला सर्वानन्द अमरसिंहकृत नामलिङ्गानुशासन की टीका २।४।१७ में लिखता है—वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीया- इति शूद्रकोऽपि। यह वचन मृच्छकटिक ४।१४ है॥

४. सर्वानन्द का पूर्ववर्ती वामन काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति ३।२।४ में लिखता है—शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेष्वस्य भूयान् प्रपञ्चो दृश्यते।

५. इन ग्रन्थों से बहुत पूर्व रची आचार्य दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा के आरम्भ में पुरातन कवियों की स्तुति गाई गई है। उस स्तुति का अधोलिखित श्लोक देखने योग्य है—

शूद्रकेणासकृज्जित्वा स्वच्छया खड्गधारया। जगद् भूयोऽप्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया॥

इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यह है कि विजेता शूद्रक ने अपना चरित वर्णन करने वाली रचनाओं से जगत् को दोबारा चकित किया।

---

१. Cudraka was a merely legendry person. The Sanskrit Drama, Oxford, 1924. पृष्ठ १२९।

२. Mricchakatika is a literary forgery, and the name of the selfeffacing poet who composed it seems lost beyond all recall. P. 17. Renouncing, therefore, all hope of ascertaining the name of the poet who masquaraded as Sudraka ...., P. 19. The little Clay Cart, by Revilo Pandleton Oliver. The University of Illinois Press. Urbana, 1938.

३. बड़ोदा संस्करण, पृ० ४८।

४. सदुक्तिकर्णामृत २।१७।५॥

६. हर्षचरित में शूद्रक वर्णित है। कादम्बरीकथा की भूमिका में शूद्रक का वृत्तान्त है। ये दोनों ग्रन्थ एक ही कवि बाण के हैं। उस की दृष्टि में शूद्रक एक है। उस के जीवन की दो घटनाएं उस ने दो स्थानों में लिखी हैं। यदि उस की दृष्टि में शूद्रक दो होते, तो वह कोई विशेषण देकर उन का पार्थक्य स्पष्ट कर देता।

७. महाराजाधिराज विक्रमांक समुद्रगुप्तने स्वरचित कृष्णचरित के कविकीर्तन नामक कथा-प्रस्तावना प्रकरण में लिखा है—

भूयः स मृच्छकटिकं नवांकं नाटकं व्यधात्। व्यधात्तस्मिन् स्वचरितं विद्यानयबलोर्जितम् ॥१२॥
तदार्यकजयं नाम्ना ख्यातिं विद्वत्स्वविन्दत।

अर्थात्—शूद्रक ने आत्मचरित वर्णन करने वाला नवाङ्क मृच्छकटिक नाटक बनाया।

इसी प्रकार पद्मप्राभृतक भाण के सम्बन्ध में भी लिखा जा सकता है। अब विचारने का स्थान है कि ये विद्वान् मूर्ख नहीं थे जो एक कल्पित व्यक्ति को इन ग्रन्थों का रचयिता मान लेते। आर्य विद्वानों का लेख अपनी परम्परा के अनुकूल और प्रमाण-सिद्ध है। अतः कीथ आदि का मत निस्सार और त्याज्य है।

कीथ और आलिवर के विपरीत योरुपान्तर्गत नारवे प्रदेश के अध्यापक स्टेन कोनो शूद्रक को ऐतिहासिक तो मानते हैं, पर आभीरराज शिवदत्त से उसका ऐक्य सिद्ध करने का यत्न करते हैं।[1] हम आगे लिखेंगे कि शूद्रक ब्राह्मण था, अतः स्टेन कोनो का मत भी पूरा ठीक नहीं है।।

राजधानी—विदिशा अथवा वर्तमान भिलसा इस प्रतापी सम्राट् की राजधानी थी। ग्वालियर राज्य में शूद्रक सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री मिलने की सब प्रकार से संभावना है।

शूद्रक के विभिन्न नाम

१. अवन्तिसुन्दरीकथासार के अनुसार शूद्रक का जन्म-नाम इन्द्राणिगुप्त था। वह अश्मक जनपद निवासी था।[2] यह इन्द्राणिगुप्त शूद्रक प्रसिद्ध सम्राट् शूद्रक हुआ। इस शूद्रक के कृत्यों पर विनयवतीशूद्रकम् कथा बनी। ध्यान रहे विनयवती का उल्लेख अवन्तिसुन्दरीकथासार के प्रस्तुत प्रसंग में भी मिलता है। कादम्बरी कथा में बाण भी शूद्रक की एक स्त्री का नाम व्यञ्जना से विनयवती लिखता है ......सत्यपि ...विनयवत्यन्वन्यवति हृदयहारिणि चावरोधजने।

२. शूद्रक का एक नाम अग्निमित्र था। नामलिङ्गानुशासन उपनाम अमरकोश का टीकाकार क्षीर-स्वामी अपनी टीका में किसी पुरातन कोश के कुछ श्लोक उद्धृत करता है। उन में से एक श्लोक नीचे लिखा जाता है—

द्रौपदी, विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः। शूद्रकस्त्वग्निमित्राख्यो हालः स्यात् सालवाहनः ॥[3]

---

१. Aufsatzezur kultur-und Sprachgeschichte Ernst Kuhn gewindmet. Breslau 1916. P. 107.........

२. आयुषोऽन्ते स एवासावश्मकेषु द्विजोत्तमः। इन्द्राणिगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः ॥ अवन्तिसुन्दरी-कथासार ४।१७५॥

३. त्रिवन्द्रम संस्करण २।८।१॥

इस श्लोक के अनुसार शूद्रक का नाम अग्निमित्र था। भारतीय इतिहास का प्रथम अग्निमित्र शुङ्ग कुल का था। शूद्रक उससे भिन्न दूसरा अग्निमित्र हुआ। शूद्रक-अग्निमित्र एक विख्यात कवि था। अतः गोडवहो नामक प्राकृत काव्य में यह दूसरा अग्निमित्र कवि जलणमित्त नाम से स्मरण किया गया प्रतीत होता है।[1]

शूद्रकका राजकवि श्री कालिदास अग्निमित्र प्रथम विषयक मालविकाग्निमित्र नाटक लिख कर उसके भरत-वाक्य—संपद्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे द्वारा अपने आश्रयदाता शूद्रक-अग्निमित्रका संकेत करता है।

विक्रमाङ्क समुद्रगुप्त रचित कृष्णचरित में शूद्रकके पुत्र का नाम देवमित्र लिखा है।[2] अतः पिता शूद्रक का अग्निमित्र नाम धारण करना सत्य हो सकता है। अपने इस नाम के अनुकरण पर उसने पुत्र का नाम भी मित्रान्त रखा होगा।

३. शूद्रक का एक और नाम विक्रम अथवा विक्रमादित्य भी था। समुद्रगुप्त ने स्पष्ट लिखा है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥११॥

अर्थात् शूद्रकने शकों को जीतकर अपना वैक्रम संवत् चलाया। यह वैक्रम अर्थात् विक्रम का संवत् प्रचलित विक्रम संवत् से सर्वथा भिन्न था। इसका स्पष्टीकरण संवत् शीर्षक के नीचे किया जायगा।

शूद्रक और विक्रम की समता के भाव से शार्ङ्गधर ने अपनी पद्धतिमें मृच्छकटिकके एक श्लोक को विक्रमादित्य और मेण्ठ का कहा है। हम आगे लिखेंगे कि कवि मेण्ठ महाराज शूद्रक का अनुजीवी था। अतः मेण्ठ और शूद्रककी सहरचना असम्भव नहीं। शार्ङ्गधर अथवा उसके पूर्ववर्ती लेखक शूद्रक का विक्रमादित्य नाम धारण करना जानते थे। फलतः शूद्रक-मेण्ठ न लिख कर उन्होंने विक्रमादित्य-मेण्ठ लिख दिया। मृच्छकटिक के प्रस्तुत श्लोक में मेण्ठ का भी भाग रहा होगा।

४. शूद्रक का एक अन्य नाम विषमशील भी रहा होगा। कथासरित् सागर का विषमशील लम्बक इस शूद्रक-विक्रमादित्य के विषय में है। हां, वहां की एक बात अवश्य खटकती है। शूद्रक-विक्रम का पिता राजा नहीं था। इसके विपरीत कथासरित्सागर में विक्रमादित्य का पिता उज्जयिनीका राजा महेंद्रादित्य लिखा गया है।[3] हम समझते हैं यहां पर सोमदेव अथवा उसके पूर्वजोंने वैसी भूल की है, जैसी कल्हण ने मातृगुप्त के सम्बन्ध में की। सोमदेव आदि ने शूद्रक-विक्रम की कथा उसके उत्तरवर्ती विक्रम की कथा से थोड़ी सी मिला दी है। मूल बृहत्कथा में यह सम्मिश्रण नहीं होगा। बृहत्कथा सुबन्धु-कृत वासवदत्ता में उद्धृत की गई

---

१. भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेव······॥८००॥

२. उपवेश्य निजं पुत्रं देवमित्रं निजासने ॥२४॥ ३. १८।१।११॥

है।[1] यह वासवदत्ता महेन्द्रादित्य के पुत्र स्कन्दगुप्त-विक्रम से पहले रची गई थी। इस का लेखक सुबन्धु साहसाङ्क-विक्रम के पुरोहित वररुचि का भागिनेय था।[2]

कथासरित् सागर की इस भ्रान्ति के कारण मुम्बई के अध्यापक शाम्बेवनकरने इस विषमशील-विक्रम का संबंध वर्तमान-संवत् प्रवर्तक विक्रम से जोड़ा है।[3] कथासरित् सागरकी यह थोड़ीसी भ्रान्ति हमारी अगली पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगी।

हमारे अनुमान का समर्थन कथासरित् सागर में मिल जाता है। शूद्रक-विक्रम का एक मित्र धूर्तराज मूलदेव था।[4] वह पहले पाटलिपुत्र का वासी था।[5] फिर वह उज्जयिनी में रहने लगा। वह धूर्त मूलदेव कथासरित् सागर के इस विषमशील लम्बक में महाराज विक्रम से एक स्वानुभूत कथा कहता है।[6] इस कथा में पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध गणिका देवदत्ता भी वर्णित है।[7] मूलदेव विषयक कई अन्य ग्रन्थों में भी इस देवदत्ता का उल्लेख मिलता है।[8] यह देवदत्ता कामसूत्र की जयमंगला टीका में भी स्मरण की गई है।[9] मूलदेव श्रावित कथा के अथवा कथासरित् सागर के अन्त में लिखा है—

इत्येतां मूलदेवस्य निशम्य वदनात् कथाम्। विक्रमादित्यनृपतिस्तुतोष सह मन्त्रिभिः॥[10]

अतः बहुत संभव है विषमशील शूद्रक-विक्रम हो।

इस विचार की पुष्टि श्री शूद्रक-रचित मृच्छकटिक प्रकरण से भी होती है। महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के कृष्णचरितके अनुसार इस प्रकरण में शूद्रक का नामान्तर आर्यक है। यह आर्यक एक विचित्र प्रकार से अपने नामका परिचय दे रहा है—भवेद्गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतं।[11]

अर्थात्—शूद्रक स्वयं अपने विषम-शील का चिन्तन करता है।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र (सन् १५३४-१५८६) रचित गुरुरत्नमालिका नामक शाङ्कर सम्प्रदायके एक ग्रन्थ में निम्नलिखित श्लोक मिलता है—

अपि यः श्रित-मातृगुप्त-विद्या-धिप-सेतु-प्रवरादि सूरिहृद्यम्।
सुषमामथिताहिमाद्रिभूमौ विषमादित्य-नुतो ऽवतात् स चामुम्॥५०॥

इस पर सन् १७२० में टीका करने वाला आत्मबोध लिखता है—

विषमादित्येन हर्षापरपर्यायेण तदभिधान-उज्जयिनीश्वरेण शकारिणा विक्रमादित्येने—

१. श्री रङ्गनगर वाणीविलास का संस्करण, पृ० १२३, १२४, १८१, १८२।
२. फिट्ज़ एडवर्ड हाल के एक हस्तलेख के अन्त में ऐसा लेख था।
३. दि डेट आफ कालिदास, जर्नल यूनिवर्सिटी मुम्बई, मई १९३३।
४. देखो आगे, शूद्रक के समकालीन।
५. मूलदेवः सकलकलाकलापज्ञः·······देवदत्ता च गाणिक्यमाणिक्यं तत्रैव प्रागवसत्। विविधतीर्थकल्प, पृ० ६९।
६. १८।५।१२९—२३९॥
७. १८।५।१७६॥
८. पुष्पदूषितक, पद्मप्राभृतक।
९. १।३।२१॥
१०. १८।५।२३९॥
११. ६।४॥

अब यदि यह ग्रन्थ और उसकी 'आत्मबोधकृत' टीका गत सौ वर्ष में किसी शांकर मतानुयायीने कल्पित नहीं की, तो कथासरित् सागरमें आए हुए विषमशील नामकी पुष्टि विषमादित्य[1] नाम से होती है।

कथासरित्सागर की भ्रान्ति के कारण कल्पद्रुकोश के कर्ता केशव ने भी भूल की है—

विक्रमादित्यपर्यायो महेन्द्रादित्य संभवः ॥६२॥ असौ विषमशीलोऽपि साहसाङ्कः शकोत्तरः ॥६३॥

५. उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि इस शकारि विक्रम का नाम हर्ष भी था। यह बात एक प्रमाणान्तरसे भी स्थिर होती है। सम्राट् शूद्रकका सभ्य और प्रसिद्ध कवि रामिल था। उसके रचे हुए मणिप्रभा नाटकका एक लम्बा उद्धरण आत्म-बोधकी पूर्वोक्त टीकामें उपलब्ध होता है। यदि यह उद्धरण कल्पित नहीं, तो इसमें आया हुआ निम्नलिखित श्लोक बड़ा उपयोगी है—

आचार्यैशद्विजन्मार्थ्यतिथिषु विनतो वैनतेयदशाकाहे:
कश्मीरानेव काव्यं किमपि कवयितुर्दत्तवानप्रमत्तम् ॥
रक्षादत्तप्रहर्षप्रकृति कृतिशताध्मातहर्षः स हर्षः
कर्णाभ्यर्णवितीर्णः कथमथतदनो विक्रमी विक्रमार्कः ॥

इस श्लोक में हर्ष और विक्रमी विक्रमार्क एक ही व्यक्ति कहे गये हैं।

सागरनन्दिकृत (संवत् ११०० के समीप)[2] नाटकलक्षणरत्नकोश के अन्त में लिखा है—

श्रीहर्षविक्रम-नराधिप-मातृगुप्त-गर्गाश्मकुट्ट-नखकुट्टक-बादराणाम्।
एषां मतेन भरतस्य मतं विगाह्य घुष्टं मया समनुगच्छत रत्नकोषम् ॥

अर्थात् श्री हर्ष-विक्रम नराधिप तथा मातृगुप्त आदि भरत नाट्यशास्त्र के टीकाकार अथवा सहायक ग्रन्थकार थे। यह सुप्रसिद्ध है कि श्रीहर्ष ने भरत नाट्यशास्त्र पर एक बृहत् वार्तिक लिखा था। मातृगुप्त ने भी भरत पर कोई ग्रन्थ लिखा था। दोनों ग्रन्थों के उद्धरण पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। यही हर्ष-विक्रम था जिसने मातृगुप्त को काश्मीर राज्य प्रदान किया था। मेण्ठ और मातृगुप्त की मित्रता भी प्रसिद्ध है।

इस सम्बन्ध में कल्हण की एक भूल ध्यान देने योग्य है। उसकी राजतरङ्गिणी के निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य हैं—

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात्। विक्रमादित्य-भूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥
शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः। अन्यैरत्रान्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् ॥६॥
इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम्। कञ्चित् कालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम् ॥७॥

---

१. किसी विषमादित्य कविकी सूक्तियां सूक्ति ग्रन्थों में मिलती हैं। सुभाषितावलि में संख्या १७१८ का श्लोक विषमादित्य का है। शार्ङ्गधरपद्धति में यही श्लोक मेण्ठ का है। मेण्ठ और विषमादित्य अथवा शूद्रक एक साथ थे, यह पहले लिखा जा चुका है।

२. ए वाल्यूम आफ इण्डियन एण्ड ईरानियन स्टडीज़, सन् १९३९, अध्यापक रामकृष्ण कवि का लेख, पृ० १९८—२०५।

इन श्लोकों में कल्हण अपने पूर्ववर्त्ती इतिहासकारों पर एक दोषारोपण करता है। वह कहता है कि प्रतापादित्य का सम्बन्धी विक्रमादित्य शकारि-विक्रम नहीं था। उससे पूर्व के ऐतिहासिकों ने इस विषय में भूल की है। यह विक्रम हर्ष विक्रम था, परन्तु शकारि नहीं था। ऐसा मत कल्हण का है।

कल्हण ने इस प्रतापादित्य के लगभग २९० वर्ष पश्चात् मातृगुप्त का काल रखा है। परन्तु उसके अनुसार मातृगुप्त उज्जयिनी के हर्ष विक्रम का अनुजीवी था—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः। एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत ॥१२५॥

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः। शकान् विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः ॥१२८॥

नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम्। तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत् ॥१२९॥

यह स्पष्ट कहा गया है कि मातृगुप्त शकारि हर्ष-विक्रम का समकालिक था। यह हर्ष-विक्रम प्रतापादित्य का सम्बन्धी हर्ष-विक्रम था। कल्हण से पूर्व के ऐतिहासिक सच्चे थे। कल्हणने उनका मत त्याग कर मातृगुप्त का काल भी उलट छोड़ा है। समुद्रगुप्त विक्रमाङ्क, चन्द्रगुप्त-विक्रम अथवा स्कन्दगुप्त-विक्रम हर्षापर नाम वाले नहीं थे। अतः उनके साथ मातृगुप्त का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। मातृगुप्त का स्मरण महाराज समुद्रगुप्त विक्रमांक ने स्वयं किया है—

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्। काश्मीरराजो ऽप्यभवत् सरस्वत्याः प्रसादतः ॥२१॥

अतः मातृगुप्त समुद्रगुप्त का पूर्ववर्ती है। वह हर्षविक्रम अथवा शूद्रक-विक्रम का समकालीन था। इस प्रकार पूर्वलेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि इन्द्राणिगुप्त, अग्निमित्र, विक्रमादित्य, विषमशील और हर्षविक्रम महाराज शूद्रक के नाम थे।

भट्ट बाण ने कादम्बरी कथा के आरम्भ में इस शूद्रक का दिव्यचरित्र वर्णन किया है। उस समय शूद्रक विदिशा में रहता था। कथासरित्सागर अन्तर्गत चतुर्थ वेताल कथा में शूद्रक का वास शोभावती नगरी में लिखा गया है।[1] हो सकता है विदिशा का दूसरा नाम शोभावती हो। अथवा वेताल-कथा के समय शूद्रक शोभावती नगरी में रहता हो।

विविधतीर्थकल्प[2] आदि जैन ग्रन्थों में जैनेतर स्रोत से जो शूद्रककी कथा लिखी गई है, उसका आधार कथा-सरितसागर का चतुर्थ वेताल कथानक है।

प्राचीन शासनों में शूद्रक का उल्लेख

१. संवत् ११०८ के एक लेख में लिखा है—शूद्रक इव निशितासिधारादारितारिवर्गः।[3]

२. शक ९११ के लेख में शूद्रक नाम है।[4]

३. शक ८७२ के कृष्ण तृतीय तथा बूतुग द्वितीय के आतकूर के लेख में लिखा है—कदनैकशूद्रकम्।[5]

---

१. १२।११५॥ २. पृ० ६१—६४। ३. ऐ० इ० भाग २०, पृ० १२७। ४. ऐ० इ० भाग ३, पृ० २३२। ५. ए० इ० भाग ६, पृ० ५४।

शूद्रक-विक्रम और प्रसिद्ध संवत्-प्रवर्तक विक्रम दो विभिन्न-व्यक्ति

(क) स्कन्दपुराण के चतुर्युगव्यवस्था नामक चालीसवें अध्याय में लिखा है—

त्रिषु वर्षसहस्रेषु कलेर्यातिषु पार्थिवः । त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥४२९॥[१]
शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र सः ।

ततस्त्रिषु सहस्रेषु दशाधिकशतत्रये । भविष्यं नन्दराज्यं च चाणक्यो यान् हनिष्यति ॥२७१॥
ततस्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्या चाधिकेषु च ॥२५२॥ भविष्यं विक्रमादित्यराज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते ।

अर्थात् कलि के ३२९० वर्ष जाने पर शूद्रक होगा । कलि के ३३१० वर्ष बीतने पर नन्दराज्य का अन्त होगा । तथा ३०२० वर्ष पर विक्रमादित्य राज्य होगा । इस से आगे लिखा है कि कलि के ३६०० वर्ष बीतने पर बुद्ध का अवतार होगा । यहां पर पुराण-पाठ अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है । तथापि हमारा इन श्लोकों के यहां उद्धृत करने का यह अभिप्राय है कि शूद्रक और विक्रम दो भिन्न व्यक्ति हो चुके हैं । अतएव महाराजाधिराज समुद्रगुप्त-निर्दिष्ट शूद्रक का वैक्रम संवत् वर्तमान कलि में प्रचलित विक्रम-संवत् से भिन्न था ।

(ख) शूद्रक-संवत् के प्रचलित रहने का साक्ष्य सुमतितंत्र के प्रमाण से पहले पृ० २०६ पर दिया जा चुका है । उस में लिखा है कि—युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्द राज्याब्द ८००, चन्द्रगुप्त राज्याब्द १३२, शूद्रकदेव राज्याब्द २४७…… ।

इस से ज्ञात होता है कि सन् ५७६ के समीप, जब सुमति-तंत्र लिखा गया, तब शूद्रक-संवत् का अस्तित्व माना जाता था ।

(ग) शूद्रकाब्द और विक्रमाब्द का उल्लेख पूर्व पृ० २३ पर हो चुका है । तदनुसार शूद्रकाब्द और विक्रमाब्द का अन्तर ६९८ वर्ष का था । शूद्रक विक्रम से पहले था ।

(घ) राजतरंगिणी में लिखा है—संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् ।३।३४३॥

अतः कल्हण के विचार में प्रसिद्ध विक्रमादित्य और शूद्रक दो पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे । कल्हण ने हर्ष-विक्रम के सम्बन्ध में जो भूल की है, उसका उल्लेख हम कर चुके हैं ।

(ङ) महाकवि राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा १।१० में लिखता है—

वासुदेव-सातवाहन-शूद्रक-साहसाङ्क…।

इस से भी स्पष्ट होता है कि शूद्रक और साहसांक अथवा प्रचलित विक्रम संवत्-प्रवर्तक साहसांक दो विभिन्न व्यक्ति थे । साहसांक प्रचलित विक्रम-संवत् का प्रवर्तक था, यह आगे लिखा जाएगा । अतः शूद्रक-विक्रम संवत् उस से पहले चला ।

(च) जैन परम्परा के अनुसार कुछ जैन आचार्यों की उत्तरोत्तर कालीनता निम्नलिखित है—

---

१. कैपटन बिल्फर्ड के पास इस पुराण की संवत् १६३० की एक प्रति थी । उस में यही पाठ था । देखो ऐस्सेज़ आफ विक्रम एण्ड शालिवाहन, ऐशियाटिक रिसर्चिज़, भाग ९, सन् १८०९, पृ० १४४ ।

समकालीन एक सातवाहन राजा[1]—श्री कालिकाचार्य[2]—गर्दभिल्लके दण्डनार्थ शक-राजका निमंत्रयिता
|
आर्य नागहस्ती[2]
|
शकारि-शूद्रक-विक्रम, सातवाहन[3]—[4]पादलिप्तक[2]—नागार्जुन[3]। पाटलिपुत्र में मुरुण्ड
|
स्कन्दिलाचार्य[4]
|
मुकुन्द वृद्धवादी[4]
|
सिद्धसेन दिवाकर[5]-संवत्-प्रवर्तक विक्रम[6]-साहसांकका समकालिक

जैन नन्दी सूत्र में पादलिप्त और मुरुण्ड की समकालिकता मानी है।[7]

जैन परम्परा के अनुसार सिद्धसेन दिवाकर और पादलिप्तकमें कालकी दृष्टिसे पर्याप्त अन्तर था। सिद्धसेन दिवाकर संवत्-प्रवर्तक विक्रमका समकालिक था। जैन परम्परामें इस विक्रम को साहसांक भी कहा गया है।[8] शूद्रक-विक्रम इस साहसांक से पहले हो चुका था। अतः इस परम्परा के अनुसार भी दोनों व्यक्ति सर्वथा भिन्न थे। जैन ग्रन्थों में स्कन्दिल और मुकुन्द का अन्तर बहुत थोड़ा है।[9] सिद्धसेन दिवाकर और विक्रम की समकालिकता भद्रेश्वर सूरि (बारहवीं शताब्दी विक्रम) की प्राकृत गद्य में रची कथावली में मानी गई है। इस का कारण है वीरमोक्ष से विक्रम संवत् के आरम्भ तक ४७० वर्ष का अन्तर मानना। जब यह अन्तर माना गया, तो सब गणनाएं तदनुकूल की गईं।

इन दोनों विक्रमोंकी पृथक्ताको ध्यान में रखकर अनेक जैन लेखकोंने कई काल-गणनाओं में भारी भूल की है। इस कठिनाईको अनुभव करके प्रबन्धकोशका कर्ता राजशेखर सूरि सातवाहन प्रबन्ध के अन्त में लिखता है—

श्रीवीरे शिवं गते ४७० विक्रमार्को राजा तत्कालीनोऽयं सातवाहनस्तत्प्रतिपक्षत्वात्। यस्तु कालिकाचार्य

---

१. प्रभावकचरित, श्री कालकसूरिप्रबन्ध, श्लोक ११३-११६॥

२. प्रभावकचरित, श्री पादलिप्तप्रबन्ध, श्लोक १५। प्रबन्धकोष, पृ० १२। पुरातन प्रबन्धसंग्रह, पृ० ९२।

३. नागार्जुन सातवाहन का गुरु तथा पादलिप्तकका शिष्य। प्रबन्धकोश, पृ० ८४। प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ११९।

४. प्रभावकचरित, वृद्धवादीप्रबन्ध ९१, श्लोक ४, ५॥ प्रबन्धकोष, पृ० १५।

५. कालिकसूरिः प्रतिमां सुदर्शनाय व्यधापयद्यां प्राक्। साकाशे गंच्छन्ती निषेधिता सिद्धसेनेन॥ प्रभावक चरित, श्री विजयसिंहसूरि प्रबन्ध, श्लोक ७८॥ प्रबन्धकोश, पृ० १६।

६. श्री सिद्धसेनसूरेर्दिवाकराद् बोधमाप्य तीर्थेऽस्मिन्। उद्धारं ननु विदधे राजा श्रीविक्रमादित्यः॥ प्रभावक चरित, श्री वि० सिं० सूरि प्र० श्लोक ७७। विविधतीर्थकल्प, कुडुंगेश्वर युगादिदेवकल्प, पृ० ८८,८९।

७. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्लि, दिसंबर १९४३, पृ० ३७७।

८. प्रबन्धचिन्तामणि।

९. अपभ्रंश काव्यत्रयी, भूमिका, पृ० ७४।

पार्श्वात् पर्युषणामेकेनाह्ना अर्वागानाययत् सोऽन्यः सातवाहन इति सम्भाव्यते। अन्यथा—

नवसयतेण उ एहिं समइक्कंतेहिं वीरमुक्खाओ। पज्जोसवण चउत्थी कालसूरीहिं तो ठविआ ॥५॥

इति चिरन्तनगाथाविरोधप्रसङ्गात्। न च सातवाहनक्रमिकः सातवाहन इति विरुद्धम्। भोजपदे बहूनां भोजत्वेन जनकपदे बहूनां जनकत्वेन रूढत्वात्।[1]

राजशेखरसूरि ने पुरातन गाथा लिख कर इतिहास का महान् उपकार किया है। इस से ज्ञात होता है कि वीरमोक्ष विक्रम से बहुत पूर्व हुआ था।

जैन राजशेखरसूरि उद्धृत इस पुरातन गाथा में कालिकाचार्य और वीरमोक्षका अन्तर ९९३ वर्ष का माना गया है। यदि यह कालिकाचार्य आर्य नागहस्ती का पूर्वकालीन कालिकाचार्य है, तो परिणाम और होगा। वह कालिकाचार्य सातवाहन से पहले हो चुका था।

हमारा विचार है कि गत कई शताब्दियों के जैन लेखक साहसांक विक्रम को ही शूद्रक-विक्रम समझने लग पड़े थे। कुछ लेखकों के अनुसार वीर-मोक्ष से (शूद्रक-विक्रम) विक्रमका काल ४७० वर्ष पश्चात् था। साहसांक-विक्रम उससे बहुत पश्चात् हुआ था। इस भूल से जैन काल गणना में बड़ी गड़बड़ हो गई। उस गड़बड़ को सुलझाने के लिए आगे अनेक जैन ग्रन्थों की गणना की तुलना की जाती है—

	त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति[2]	जैन-हरिवंश पुराण[3]	तित्थोगाली पइन्नयं	विविधतीर्थ कल्प	मेरुतुङ्गसे पूर्वगाथाएं
१	पालक ६०	पालक ६०	पालक ६०	पालक ६०	पालक २०
२	विजयवंस १५५	विषयभूभुज १५५	नन्द १५५	नन्द १५५	नन्दराज्य १५८
३	मुरुदय ४०	मुरुढ ४०	मुरिया १६०	मोरियवंस १०८	मोरिय १०८
४	पुस्समित्त ३०	पुष्यमित्र ३०	पुष्यमित्र ३५	पूसमित्त ३०	पुष्यमित्र ३०
५	वसुमित्त } ६०	वसु } ६०	बलमित्र } ६०	बलमित्र } ६०	बलमित्र } ६०
६	अग्गिमित्त	अग्निमित्र	भानुमित्र	भानुमित्र	भानुमित्र
७	गंधव्वय १००	रासभराज १००	नभसेन ४०	नरवाहन ४०	दधिवाहन ४०
८	नरवाहन ४०	नरवाहन ४०	गद्दभ १००	गद्दभिल्ल १३	गर्दभिल्ल ४४
९	भच्छटण २४२	भटटुवाण २४२	शक	शक ४	शक ५०
१०	गुप्त २३१	गुप्त २३१	|	विक्रमादित्य	विक्रम ९७
११	इन्द्रसुत कल्की ४२	कल्की ४२	१३२३ वर्ष पश्चात्		
		अजितंजय	कल्की		

१. प्रबन्धकोश, पृ० ७४ ॥

२. कैटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनूस्क्रिपृटस इन दि सैण्ट्रल प्राविन्सिज़ एण्ड बरार, रायबहादुर हीरालाल बी० ए० कृत, नागपुर, सन् १९२६। भूमिका पृ० १६।

३. इण्डियन अण्टिक्वेरी, मई १८८६, पृ० १४२। जैन हरिवंश, अध्याय ६०, श्लोक ४८७, ४८८, ५५२ ॥—यह ग्रन्थ शक ७०५ में रचा गया।

४. ना० प्र० प० भाग १० अङ्क ४, संवत् १९८६, पृ० ६१४, ६१५।

उपरिलिखित तालिकाओं से ज्ञात होता है कि जैन हरिवंशकार ने त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिका उलथा मात्र किया है। शेष तीन ग्रन्थकार किसी स्रोत के भ्रष्ट हो जानेके कारण अथवा किसी कल्पना का अनुकरण करते हुए कुछ भिन्न मत लिखते हैं।

दो शक—शक वस्तुतः दो थे। एक मुरुदय-मुरुढ-मुरिया अथवा मुरुण्ड थे। उनका नाश अग्निमित्र-शूद्रक ने किया। शूद्रकका पूर्ववर्ती उज्जयिनीका स्वाति इस मुरुण्डका सहायक अथवा विषयपति होगा। उन दिनों एक मुरुण्ड पाटलिपुत्र में था ही। सम्भव है भारतका पश्चिम भाग भी उसके अथवा उसके सम्बन्धियों के राज्यान्तर्गत होगया हो। दूसरा शक चष्टणोंका शक था। उसका नाश समुद्रगुप्त-विक्रमाङ्क अथवा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया। जैन गणना उज्जयिनी के राज्य से की गई थी। यहां नन्द वंश का उल्लेख असंगत है। वहां विजयवंश का राज्य होगा। नन्दवंश का राज्य १५५ वर्ष का था भी नहीं। इस तालिका से अनेक ज्ञातव्य बातें जानी जा सकती हैं, परन्तु यहां उन के लिखने का अवसर नहीं है। यहां तो शूद्रक-विक्रम का संवत् प्रवर्तक विक्रम से भेद बताना ही अभीष्ट है।

कर्नल विलफर्ड ने अग्निपुराण के परिशिष्ट से एक वंशावलि छापी है। वैसी वंशावलि आईन अकबरी में भी है।[1] उन में चष्टनों को पुत्रराज लिखा है। उन के आगे आदित्य है। वह संभवतः शूद्रक है, पर उलट स्थान पर लिखा गया है। उस के चिरकाल पश्चात् संवत् प्रवर्तक विक्रम है।

शूद्रक के समकालीन कवि

१. रामिल सोमिल—ये दो कवि थे। कृष्णचरित के आरम्भ में श्रीसमुद्रगुप्त ने लिखा है—

तत्कथां कृतवन्तौ यौ कवी रामिलसोमिलौ। तस्य सदसि स्थित्वा तौ मानं बह्ववाप्नुताम् ॥१०॥

अर्थात् रामिल सोमिल शूद्रक के सभ्य थे।

जल्हण की सूक्तिमुक्तावलि में राजशेखर का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत है—

तौ शूद्रक-कथाकारौ वन्द्यौ रामिलसौमिलौ। ययोर्द्वयोः काव्यमासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि रामिल और सोमिल ने शूद्रककथा लिखी थी।

मणिप्रभानाटक के आरम्भ में रामिल लिखता है[2]—

सूत्रधारः। आर्ये अवधीयताम्—

भङ्गं चन्दनमर्दिनः प्रणतयः स्फूर्जद्रसां साहितीं
हर्षक्षोणिपतेश्च हर्षमतुलं दृष्ट्वैव ये तानिपुः।
धीरांस्तान् गुरुशङ्करेन्द्रयमिनश्चित्ते स्मरन् रामिलः
प्राणैषीत्स मणिप्रभां प्रथयितुं भक्तेर्गुरोर्गौरवम् ॥

---

५. ना० प्रा० प० पृ० ३८, ३९। ६. ना० प्र० प० पृ० ६१५।

७. तपागच्छ पट्टावलीके अनुसार—णहवाण पाठ है—नागपुर यूनि० जर्नल, दिसम्बर, १९४०, पृ० ५३।

८. नहसेन, कषायप्राभृत प्रस्तावना, पृ० ५१। यहां नखसेन पाठ हो सकता है।

१. एशियाटिक रिसर्चिज़, भाग ९, सन् १८०९, पृ० १६१। २. गुरुरत्नमाला,

अर्थात् रामिल का गुरु शङ्करेन्द्र महाराज हर्ष का समकालिक था।

२. मातृगुप्त—पहले लिखा जा चुका है कि मातृगुप्त हर्षविक्रम का अनुजीवी था। मातृगुप्त ने भरतनाट्यशास्त्र पर एक भाष्य रचा था। सम्भव है अपने आश्रयदाता हर्ष-विक्रम के भरत-वार्तिक के कारण इसने भरत-भाष्य रचा हो।

३. मेण्ठ—मेण्ठ, भर्तृमेण्ठ अथवा हस्तिपक मातृगुप्त का अनुजीवी था। इसका साक्ष्य राजतरंगिणी में विद्यमान है। मेण्ठ स्वयं भी अपने हयग्रीववध में लिखता है—

ख्यातश्रीशङ्करेन्द्र प्रचुरतरकृपालब्धसाहित्यविद्यः
सद्यस्साधूक्तिसंमोघपि परकवितामर्षिणो मातृगुप्तात्।

प्रौढा प्रौढोक्ति रूढेर्निबिडरसभरेर्गुम्भनैर्यत्र मेदु—
र्मेधुर्मोदादिनादीद् हयवदनवधं वाग्म्यकुण्ठस्स मेण्ठः॥[1]

मेण्ठ और विक्रमादित्य की सम्मिलित सूक्तियां सूक्तिसंग्रहों में उपलब्ध हैं। 'लिम्पतीव तमोंगानि' प्रतीक वाला प्रसिद्ध श्लोक जो शूद्रककृत मृच्छकटिक[2] आदि[3] में मिलता है, शार्ङ्गधर पद्धति में मेण्ठ और विक्रमादित्य के नाम से उद्धृत है। यह विक्रम मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक-विक्रम था।

४. कालिदास—महाराज समुद्रगुप्त रचित कृष्ण-चरित के अनुसार दुष्यन्तभूपतिकथा वाला शकुन्तला नाटक शूद्रक-सम्मानित इसी अप्रतिम-प्रभाव कालिदास का रचा हुआ था। शूद्रक और नाटककार कालिदास दोनों शैव थे। उन के ग्रन्थों के आरम्भ में शिव की स्तुति की गई है। चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य भागवत अर्थात् वैष्णव था।

५. मूलदेव—धूर्तराज मूलदेव का उल्लेख पहले भी हो चुका है। इसकी कीर्ति संस्कृत-वाङ्मय में बहुत्र गाई गई है। उसके लिए निम्नलिखित स्थान देखने योग्य हैं—

१, शुकसप्तति में मूलदेव का उल्लेख है।

२. क्षेमेन्द्र के कलाविलास का नायक मूलदेव है।

३. कामसूत्र की जयमङ्गला टीका में चौसठ कलाओं के व्याख्यान में कुटिल लिपि सम्बन्धी तीन श्लोक उद्धृत हैं। उन में से दूसरे श्लोक में मूलदेव-प्रदर्शित एक गूढ़-लिपि संकेत निर्दिष्ट है।[4]

४. मूलदेव का कामशास्त्र पर कोई ग्रन्थ था। उस में उत्कलस्त्री सम्बन्धी कोई विशिष्टता वर्णित थी। उसका उल्लेख रतिरहस्य ५।२२ में मिलता है। यह रतिरहस्य कामसूत्र की यशोधरकृत जयमंगला टीका में उद्धृत है।

५. विक्रम संवत् ८८७ में लिखी गई हरमेखला प्रयोगमाला में माहुक ने विअड्ढचूडामणी=

---

१. गुरुरत्नमालिका २. १।३४॥

३. चारुदत्त १।१९॥ बालचरित १।१५॥ इनके चतुर्थ चरण में विफलता के स्थान में निष्फलता पाठ है।

४. १।३।१६॥

विदग्धचूडामणि के नाम से एक प्रयोग लिखा है।[१] टीकाकार ने विदग्ध चूडामणि का अर्थ मूलदेव किया है।[२]

६. अवन्तिसुन्दरीकथासार में मूलदेव का दूसरा नाम कर्णीपुत्र भी मिलता है। इस पुस्तक में लिखा है कि नासिक क्षेत्रान्तर्गत अचलपुर नामक नगर मूलदेव ने बसाया था।[३]

दशकुमारचरित द्वितीय उच्छ्वास के अन्त में लिखा है—कथमसि कार्कश्येन कर्णीसुतमप्यतिक्रान्तः।

७. आचार्य दण्डी प्रणीत अवन्तिसुन्दरीकथा के प्रारम्भ के स्तुति श्लोकों में से एक त्रुटित श्लोक से थोड़ा सा आभास मिलता है कि कदाचित् उसने कोई काव्य भी लिखा था—

स नारायणदत्ताया देवदत्ताश्रया कृतिः। मूलदेवोदि————————॥८॥

८. आचार्य हरिभद्रसूरि के धूर्ताख्यान में मूलदेव आदिका वर्णन है।

९. भट्ट बाण कादम्बरी में लिखता है—कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च।[४] यह कर्णीसुत मूलदेव ही है। पुरुषोत्तम अपने त्रिकाण्डशेषकोश में लिखता है—

कर्णीसुतो मूलदेवो मूलभद्रः कुलाङ्करः ॥२।८।२३॥[५]

अतः यह निश्चित होता है कि बाण मूलदेव के कृत्यों से परिचित था।

१०. कथासरित्सागर के अन्तिम लम्बक में मूलदेव के वर्णन का उल्लेख पहले हो चुका है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के पंचदश वेताल में मूलदेव का नाम मिलता है।[६]

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में सागरदत्तकी कथाके प्रसंगमें मूलदेव नामका उल्लेख मिलता है।[७]

इन दोनों प्रमाणों से अनुमान होता है कि मूल बृहत्कथा में भी मूलदेव का उल्लेख रहा होगा। यह अनुमान निश्चय का रूप धारण कर लेता है जब हम रामचन्द्र-गुणचन्द्र के नाट्य-दर्पण में निम्नलिखित वचन देखते हैं—

तत्पूर्वर्षिप्रणीतशास्त्रव्यतिरिक्त-बृहत्कथाद्युपनिबद्धं मूलदेवतच्चरितादिवदुपादेयम्।[८]

११. मूलदेव का उल्लेख शूद्रक-रचित पद्मप्राभृतक भाण और सम्प्रति उद्धरणों में प्राप्त पुष्पदूषितक प्रकरण में भी मिलता है। पद्मप्राभृतक भाण के कुछ श्लोक जनाश्रयी छन्दोविचिति में मिलते हैं।[९] यह जनाश्रय माधववर्म प्रथम था।[१०] उस का काल संवत् ५९२-६४५ तक माना जाता है। महाशय लक्ष्मणरावने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा है। उस लेख में इस माधववर्म का अस्तित्व शक ११७ में बताया गया है। यह बात एक ताम्रपत्र के लेख से

१. ५।२५४॥ २. त्रिवन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, सन् १९३८, पृ० ७२।

३. नासिक्यभूमावौत्सुक्यान् मूलदेवनिवेशिताम्। प्राप्याचलपु (रं नाम पु) रीमधिवसत्यसौ ॥१।२१॥

४. कादम्बरी, पूर्वभाग, निर्णयसागर संस्करण सन् १९३२, पृ० ३९।

५. तथा देखो, पुरुषोत्तम कृत हारावलि ३२। ६. १२।२२।२१॥ ७. २२।१७७॥

८. पृ० ११९॥ ९. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, कृष्णमाचार्यकृत, पृ० ६०४।

१०. सकसैसर्ज़ आफ सातवाहनास, पृ० ३३६।

प्रकट होती है।[1] यदि यह प्रमाण सत्य सिद्ध हो जाए, तो माधववर्म=जनाश्रय का काल
संवत् २५२ होगा। उस से बहुत पहले शूद्रक अपना पद्मप्राभृतक भाण लिख चुका था।
६. पादलिप्त अथवा पालित—जैन परम्परा के अनुसार जैन आचार्य पादलिप्त नागार्जुन,
सातवाहन, मुरुण्ड और शूद्रक का समकालीन था। पादलिप्त की तरंगवतीकथा जो प्राकृत
की एक महती रचना थी अनुयोगद्वारसूत्र में स्मृत है।[2]

शूद्रक संवत्—विक्रमप्रथम-संवत्—कृत संवत्—श्रीहर्ष संवत्

शूद्रक संवत् के भारत में प्रचलित रहने का प्रमाण सुमतितन्त्र से पहले दिया जा चुका
है। शूद्रक के वैक्रम-संवत् का उल्लेख महाराज समुद्रगुप्त ने किया है। तीसरा प्रमाण यल्लार्य
के ग्रन्थ से पूर्व पृ० २३ पर दिया गया है। अतः शूद्रक संवत् अथवा शूद्रक-विक्रम संवत् के
अस्तित्व में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिए।

अध्यापक स्टेन कोनोने सिद्धसेन दिवाकर और आचार्य पादलिप्त के काल का भेद न
मान कर शूद्रक-विक्रम को ही विक्रम-संवत् का प्रवर्तक माना है। वस्तुतः इन दोनों आचार्यों
का पर्याप्त अन्तर है। यह हम पहले प्रदर्शित कर चुके हैं। अतः शूद्रक-विक्रम प्रचलित-विक्रम
संवत् के आरम्भ होने से बहुत पहले हो चुका था।

जैन लेखकों ने विक्रम को वीर-निर्वाण से ४७० वर्ष पश्चात् अथवा ६०५ वर्ष पश्चात्
रखा है। त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति में निम्नलिखित गाथाएं हैं—

वीरजिणे सिद्धिगदे चउसद इगिसट्ठिवासपरिमाणो। कालंमि अदिक्कंते उप्पण्णो एत्थ सग-राओ ॥८६॥
णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसु। पणमासेसु गदेसु संजादो सग-णियो अहवा ॥८९॥

अर्थात्—वीर-निर्वाण के ४६१ वर्ष अथवा ६०५ वर्ष पश्चात् शक-राज हुआ। विविध-
तीर्थकल्प[3] में पूरे ४७० वर्ष के पश्चात् विक्कमाइच्च=विक्रमादित्य माना गया है। विस्तर-भय से
हम ने दूसरे ग्रन्थों की गणनाएं नहीं दीं। परन्तु सब का सारांश यही है। इन से एक बात
स्पष्ट होती है। इन दोनों गणनाओं में ठीक १३५ वर्ष का अन्तर है। यही अन्तर विक्रम-संवत्
और शक संवत् का है। दोनों स्थानों में शकको मारनेवाला कोई विक्रमादित्य ही था।

अलबेरूनीका मत—विक्रम और शक-काल के सम्बन्ध में अलबेरूनी का भी यही मत है।[4]
वस्तुतः ये दोनों मत ठीक थे। नए जैन-ग्रन्थकार इस सत्य को भूल गए परन्तु दैव कृपा से
उन्होंने गणनाएं दोनों स्थिर रखीं।

कल्की का काल—त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति और जैन-हरिवंश पुराण के अनुसार कल्की का काल
गुप्त-काल के पश्चात् था। तब तक वीर निर्वाण से लेकर १००० वर्ष हुए थे। तित्थोगाली पइन्नय
में अन्तिम शक से १३२३ वर्ष पश्चात् कल्की का प्रादुर्भाव माना गया है, अथवा वीरनिर्वाण से

---

१. जर्नल आफ दि डिपार्टमेण्ट आफ लैटर्स, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, संख्या ११।
२. पादलिप्त का अधिक वृत्त देखो, निर्वाणकलिका की अंग्रेज़ी भूमिका में। ३. पृ० ३८, ३९।
४. भाग २।

१९१२ वर्ष पश्चात्। इस गणना के अनुसार १९१२--२४१=१६७१ वर्ष गुप्त-काल से पूर्व वीर-निर्वाण हुआ। यह गणना पुराण-गणना से लगभग मिल जायगी। इस जैन गणना के अनुसार त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति आदि में भी पालक के पश्चात् के कई राजवंशों के नाम भ्रष्ट हो चुके हैं। यदि यत्न किया जाय, तो जैन-गणना सर्वथा ठीक की जा सकती है, अथवा उस की त्रुटियों का पूरा ज्ञान हो सकता है।

वर्तमान काल में त्रुटित इस जैन-परम्परा के आश्रय पर स्थापित किया गया स्टेन कोनो का मत मान्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार परलोकगत अध्यापक पाठक का जैन-गणना का विवरण भी अधूरा ही है।

हर्ष-संवत् पर अलबेरूनी

अलबेरूनी लिखता है—हिन्दू विश्वास रखते हैं कि भूमि के गुप्त कोशों को ढूंढने के लिए श्रीहर्ष भूमि की परीक्षा किया करता था। उस ने वस्तुतः ऐसे कोश प्राप्त किए। फलतः उसने (कर द्वारा) प्रजापीड़न का आश्रय न लिया। उस का संवत् मथुरा और कनौज देश में प्रयुक्त होता है। श्रीहर्ष और विक्रमादित्य के मध्य में ४०० वर्ष का अन्तर है ऐसा इस प्रदेश के रहने वाले कतिपय लोगों ने हम से कहा। इति।

आईन-अकबरी में संवत् प्रवर्तक विक्रम और आदित्य पोंवार (विक्रमादित्य-शूद्रक) का अन्तर ४२२ वर्ष का है। कर्नल विलफर्ड की देखी हुई पुरातन वंशावली के अनुसार यह अन्तर ३४३ वर्ष का है।[1] इन ३४३ वर्षों में शूद्रक से विक्रम तक १५ राजा थे।[2] इन गणनाओं में भूल का कारण जाना जा सकता है।

हम पहले लिख चुके हैं कि शूद्रक-विक्रम अथवा हर्ष विक्रम एक ही व्यक्ति के नाम थे। अतः शूद्रक-संवत्=हर्ष-संवत् विक्रम-संवत् से ४०० वर्ष पहले चला। भारत में कभी शूद्रक संवत् भी था, इस का सप्रमाण उल्लेख पहले हो चुका है।

श्रीहर्ष-विक्रम मालवा, मथुरा, कन्नौज और काश्मीर आदि पर राज्य करता था। उस के ४०० वर्ष पश्चात् मालवा में दूसरा विक्रम-संवत् अधिक चल गया। परन्तु मथुरा और कन्नौज आदि में कहीं कहीं यह हर्ष-संवत् ही प्रचलित रहा। इसी लिए अलबेरूनी को इस का थोड़ा सा ज्ञान हो गया।

कृत-संवत्—कृतसंवत् पुराना मालव-गणाम्नात संवत् है। मन्दसोर के नरवर्मा के शिला-लेख में लिखा है—

श्रीर्म्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एकषष्ठ्याधिके प्राप्ते समा शतचतुष्टये॥

अर्थात्—मालवगणाम्नात संवत् कृत नामका संवत् था। फ्लीट, कीलहार्न, स्मिथ, रैपसन और जायसवाल आदि वर्तमान पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक प्रचलित विक्रम

---

१. एशियाटिक रिसर्चिज़, भाग ६, पृ० २०२। २. पृ० ।

संवत्को मालव संवत् अथवा कृत संवत् मानते हैं । है यह मत सर्वथा कल्पित और निरा-
धार। इस मतकी असत्यता वत्सभट्टिकृत प्रशस्ति वाले शिलालेख से स्पष्ट होती है । उसमें
लिखा है—

मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये । त्रिनवत्यधिकेऽब्दानाम् ऋतौ सेव्यधनस्वने ॥
सहस्य मास-शुक्लस्य प्रशस्तेऽहनि त्रयोदशे । मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः ॥
बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः । व्यशीर्यतैकदेशोस्य भवनस्य ततोधुना ॥
वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु । यातेषु-अभिरम्य तपस्य-मासशुक्ल-द्वितीयायाम् ॥

अर्थात्—मालव संवत् ४९३ में यह प्रासाद बना । [तब कुमारगुप्त के समकालीन दशपुर
के शासक विश्ववर्मन्का पुत्र बन्धुवर्मन् दशपुर पर शासन करता था ।] तब बहुत काल
व्यतीत होने पर और अन्य राजाओं के भी चले जाने पर इस भवनका एक देश खण्डित
हुआ ।.........अब ५२९ वर्ष बीतने पर इसका जीर्णोद्धार किया गया है ।

फ्लीट आदि लेखक मालवकृत संवत्को विक्रमसंवत् मान कर संवत् ४९३ में इस भवन
का निर्माण मानते हैं और संवत् ५२९ में इसका जीर्णोद्धार । क्या इस ३६ वर्ष के अन्तर-
को बहुत काल और बहुत राजाओं के हो जाने का काल कह सकते हैं ? नहीं, कदापि नहीं ।
फिर यदि मालव-कृत संवत् को विक्रमसंवत् मान कर ४९३ के साथ ५२९ का योग किया
जाय, तो संवत् १०२२ में इस भवनका जीर्णोद्धार मानना पड़ता है । संवत् १०२२ में इस
शिलालेखकी लिपिको अप्रचलित हुए बहुत काल हो चुका था । अतः यह कल्पना भी सत्य
सिद्ध नहीं होती । बात वस्तुतः यह है कि कृत-संवत् शूद्रक-विक्रम संवत् था । वह संवत्
विक्रमसंवत् से ४०० वर्ष पहले चल चुका था । तदनुसार इस भवनका निर्माण ९३ विक्रम
संवत्में हुआ था ।

विक्रम-संवत्का प्रारम्भकर्ता चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्क-साहसाङ्क अथवा समुद्रगुप्त-विक्रमांक
था । उससे ९३ वर्ष पश्चात् कुमारगुप्तके समकालिकका पुत्र राज्य कर रहा था । कुमार
गुप्तका राज्य उससे लगभग २० वर्ष पहले होगा । अर्थात् विक्रम संवत् ७३ में—उससे भी
५२९ वर्ष बीतने पर, अर्थात् ५२९+९३=संवत् ६२२ में इस भवनका जीर्णोद्धार हुआ । इस
संगतिके बिना इस शिलालेखका दूसरा अर्थ लग नहीं सकता । गत ५० वर्ष में इसका कोई
संगत अर्थ किया नहीं गया । अध्यापक धीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्यायने यह अर्थ किया है । परन्तु
शूद्रक-विक्रम कृत-संवत्का कर्ता था, यह उन्होंने भी नहीं लिखा ।

शूद्रक-विक्रम संवत् क्यों कृत-संवत् कहाया

महाराज समुद्रगुप्तने लिखा है—

पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित् । धनुर्वेदं चौरशास्त्रं रूपके द्वे तथाकरोत् ॥६॥
स विपक्षविजेताऽभूच्छास्त्रैः शस्त्रैश्च कीर्तये । बुद्धिवीर्ये नास्य परे सौगताश्च प्रसेहिरे ॥७॥
स तस्तारारिसैन्यस्य देहखण्डै रणे महीम् । धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन् ॥८॥
शस्त्रैर्जितमयं राज्यं प्रेम्णाकृतनिजं गृहम । एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्यं धर्मशासितम् ॥९॥

इनमेंसे आठवें और नवम श्लोक में यह लिखा है कि शूद्रक विक्रमादित्य धर्म के लिए राज्य करता था, अथवा उसके साम्राज्य में धर्म का शासन था। इस धर्मशासन के कारण शूद्रक विक्रम-संवत् कृत-संवत् कहलाया।

शक १०४२ के शिलालेख में शीलाहार गंडरादित्यदेव को कलियुग-विक्रमादित्य लिखा है।[१] इस से प्रतीत होता है कि कोई कृत-विक्रमादित्य भी था। वह कृत-विक्रमादित्य शूद्रक था। उसी ने सब से पहले शकों का नाश कर के धर्म का राज्य स्थापन किया।

शूद्रक का वृत्तान्त धर्मप्रधान था, इस का पता जैन आचार्य हेमचन्द्र के लेख से भी मिलता है—एकं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येण अनन्तवृत्तान्तवर्णनप्रधाना शूद्रकादिवत् परिकथा।[२]

विक्रम-संवत् के किसी एक भी शिलालेख या ताम्रपत्रलेख पर उसे कृतसंवत् नहीं कहा गया। कृतसंवत् वर्तमान विक्रम संवत् से एक सर्वथा पृथक् संवत् था।

शूद्रक विषयक ग्रन्थ—मृच्छकटिक के अतिरिक्त शूद्रक पर विनयवतीशूद्रकम्, विक्रान्त-शूद्रकम्, शूद्रकवध, शूद्रकजय, शूद्रककथा, तथा वीरचरित आदि ग्रन्थ लिखे गए थे।

गत पृष्ठों में शूद्रक विषयक बातें अति संक्षेप से लिखी गई हैं। शूद्रक का विस्तृत वर्णन हमारे बृहद् इतिहास में होगा।

---

१. ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग २३, पृ० ३१।   २. काव्यानुशासन मुम्बई संस्करण, पृ० ४६४।

चवालीसवां अध्याय

१९. पुरीन्द्रसेन=पुरिकषेण—२१ अथवा १२ वर्ष

मत्स्य का पाठ यहां टूटा हुआ प्रतीत होता है। पार्जिटर ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया।

२०. सुन्दर शातकर्णि—१ वर्ष

इस का राज्य अत्यल्प काल का था। संभव है वह किसी युद्ध या रोग के कारण शीघ्र मर गया हो।

२१. चकोर शातकर्णि—६ मास

यह भी अपने पिता के समान युद्ध आदि के कारण शीघ्र मर गया होगा। भट्ट बाण लिखता है कि एक शूद्रक ने अपने दूत द्वारा किसी चकोरनाथ चन्द्रकेतु का उस के सचिव सहित वध करा दिया।[1] क्या संभव हो सकता है कि चकोर शातकर्णि का चकोर देश से कोई सम्बन्ध हो। स्मरण रखना चाहिए कि एक कुन्तल शातकर्णि पहले लिखा गया है। कुन्तल भी एक देशविशेष था। इस नाम का वायु में एक पाठान्तर स्वातिकर्ण भी है। किसी स्वाति को एक शूद्रक ने जीते जी बन्दी कर लिया था।[2] संख्या ९ के स्वाति नाम के एक पूर्व-राजा के साथ भी हम इस घटना का उल्लेख कर चुके हैं। क्या वह घटना यहां अधिक संगत होगी? यदि यह प्रमाणित हो जाए, तो चकोर शातकर्णि के केवल ६ मास के राज्य-काल का एक यह भी कारण हो सकता है।

वाशिष्ठीपुत्र प्रथम—कलि० राज० वृ० के अनुसार यह वाशिष्ठीपुत्र (प्रथम) था। इसी की मुद्राओं को माढरिपुत्र और गौतमीपुत्र ने दोबारा छापा।

चकोरशातकर्णिश्च षण्मासान् भोक्ष्यते महीम्। वाशिष्ठीपुत्रनाम्ना यः प्रख्यातिं भुवि यास्यति॥

२२. शिवस्वाति—२८ वर्ष

कलियुगराजवृत्तान्त में इसे शकसेन और माढरीपुत्र भी लिखा है—

अष्टाविंशति वर्षाणि शकसेनो भविष्यति। यमाहुर्माढरीपुत्रं शिवस्वातिं महाजनाः॥

लूडर्स की सूची के शिलालेख १२०२—४ में एक माढरिपुत्र सिरिविर पुरिसदत उल्लिखित है। वह इस्वाकु कुल का था। उन दिनों में माढरि एक प्रचलित नाम था। माढरिपुत सिवलकुर की कुछ

---

१. ससचिवमेव दूरीचकार चकोरनाथं शूद्रकदूतः चन्द्रकेतुं जीवितात्। षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६६५।

२. अवन्तिसुन्दरीकथासार ४।२००॥

मुद्राएं भी उपलब्ध हैं। इस की कुछ मुद्राओं पर गौतमीपुत्र ने अपनी छाप भी दी है। इस से दोनों का क्रम निश्चित हो जाता है।

कलियुगराजवृत्तान्त की सत्यता—संवत् १९९६ में तर्हाड़ा (जिला अकोला) से १५२५ सातवाहन मुद्राओं का एक ढेर प्राप्त हुआ। उस ढेर की मुद्राओं का वर्णन नागपुर के अध्यापक वि. वि. मिराशी ने जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी आफ इण्डिया, भाग २, सन् १९४० में मुद्रित किया। पृ० ८५ पर उन का कथन है कि श्रीशक सातकर्णि का नाम इस ढेर के मिलने से पूर्व अज्ञात था। पृ० ९२ पर पुनः लिखा है कि शकसातकर्णि पुराणों में वर्णित नहीं। टि. एस. नारायण शास्त्री द्वारा मुद्रित कलियुगराजवृत्तान्त के पाठ में शकसेन नाम विद्यमान है। यह ग्रन्थ इस ढेर के मिलने से २५ वर्ष पूर्व मुद्रित हुआ था। उस में कोरी कल्पना नहीं थी। नारायणशास्त्री इस ग्रन्थ का कोई २ पाठ बदल सका होगा, पर उस ने सारा ग्रन्थ कल्पित नहीं किया। उस के पास प्राचीन लेख अवश्य था।

मुद्राएं—इस की मुद्राओं पर—सक (अथवा सकस) सातकणिस-लेख है। इन मुद्राओं का माढरिपुत सिवलकुर की मुद्राओं से संतोलन विवेचनीय है। शकसातकर्णि की मुद्राओं पर अन्य सातवाहन मुद्राओं के समान हस्ति का चित्र है।

२३. गौतमीपुत्र—२१ वर्ष

क० राज० वृ० में इसे श्री शातकर्णि भी लिखा है, और इस का राज्यकाल २५ वर्ष का दिया है। एक शिलालेख इस के शासन के २४वें वर्ष में लिखा गया।[1] इसलिए इस के राज्य की २१ वर्ष की अवधि ठीक नहीं।

शिलालेखों में गौतमीपुत्र—नासिक की पांडु-लेना गुफाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। उन गुफाओं पर कई शिलालेख उत्कीर्ण हैं। उन में से बलश्री गौतमी और जीवसूता के शिलालेखों में गौतमीपुत्र सम्बन्धी कई घटनाओं का पता लगता है।

गौतमीपुत्र की महत्ता—बलश्री के शिलालेख से ज्ञात होता है कि गौतमीपुत्र एक महान् योधा था। उसने शक, यवन, पल्लव और खखरातों=क्षहरातों को पराजित किया। वह राजरञ अर्थात् राजाधिराज था।

क्षहरात नहपान और शक उशवदात को इस ने मारा होगा। खखरात-वस-निखसेस-करस। इस ने चष्टन को अपना क्षत्रप बनाया होगा। नहपान की मुद्राओं पर गौतमीपुत्र ने अपनी छाप दी।

गौतमीपुत्र की महादेवी महारानी जीवसूता थी।

विष्णुपालित-सचिव—गौतमीपुत्र के एक शिलालेख के अनुसार उस का एक मन्त्री

---

१. ऐ. इ. भाग ७, पृ० ७३।

विष्णुपालित = विण्हुपालित था।[1] महाराज हाल का एक कविवृष श्रीपालित लिखा जा चुका है।[2] इन दोनों नामों के अन्तिम पद की समता एक वंश-विशेष की द्योतक हो सकती है।

२४. पुलोमावि——२८ वर्ष

पुराणों के अनुसार पुलोमा संख्या २३ वाले गौतमीपुत्र का सुत था। क० रा० वृ० के अनुसार इस को वाशिष्ठीपुत्र भी कहते थे—

पुलोमश्रीशातकर्णिर्द्वात्रिंशद्भविता समाः। वाशिष्ठीपुत्रनाम्ना तु शासनेषु य उच्यते॥

इस से ज्ञात होता है कि यह राजा वाशिष्ठीपुत्र द्वितीय था।

महाक्षत्रप का जामाता—कन्हेरी लेण के एक शिलालेख पर अंकित है—महाक्षत्रपरू (द्रदामा) कर्दम्मक राजाओं की पुत्री वाशिष्ठीपुत्र की देवी। वह वाशिष्ठीपुत्र यही था। इस से ज्ञात होता है कि नहपान के पश्चात् चष्टनों के राज्य का आरम्भ हुआ। इस दक्षिणापथपति की पराजय का और इस के साथ अपने सम्बन्ध का उल्लेख स्वयं महाक्षत्रप रुद्रदामा ने अपने गिरनार के प्रसिद्ध शिलालेख में किया है।

शिलालेखों पर वर्ष—इस के शिलालेखों पर उस के शासन के २, ६, ७, १०, २२ और २४[3] वर्ष अंकित हैं।

२५. शिवश्री पुलोमा शातकर्णि——७ वर्ष

पार्जिटर के पाठ में ई-वायु और मत्स्य के आधार पर एक पंक्ति दी गई है। वह पंक्ति पाठाधिकता की द्योतक है। वस्तुतः वह वहां अभीष्ट नहीं। कलि० राज वृत्तान्त में इस राजा के सम्बन्ध में बड़े महत्त्व का एक श्लोक है—

शिवश्रीशातकर्णिश्च तस्य भ्राता महामतिः। भविष्याति समा राजा सप्तैव हि कलौ युगे॥

अर्थात् पुलोमावि का भ्राता ही शिवश्री शातकर्णि था।

सौभाग्य से एक पुलुमावि की दो मुद्राएं मिली हैं। उन पर सियशिरी पुलुमविस और वासिष्ठीपुत्र सिवसिरी पुलुमविस लेख अंकित हैं।[4] संख्या २४ का पुलोमा और २५ का शिवश्री पुलोमा भाई थे। सम्भवतः वे एक ही माता के पुत्र थे। अतः २५ संख्या वाला शिवश्रीपुलोमा भी वासिष्ठीपुत्र था। ये दोनों मुद्राएं इसी की समझी जा सकती हैं। एक मुद्रा पर—रणा सिवसिरि पुलुमाविस लेख है।[5]

२६. शिवस्कन्ध शातकर्णि——३ वर्ष

इस का राज्यकाल ई-वायु और कलियुगराजवृत्तान्त में ही है। मत्स्य के मुद्रित संस्करण में इस का राज्यकाल नहीं है। वायु और ब्रह्माण्ड में यह नाम ही लुप्त है।

---

१. पांडु-लेना गुफा शिलालेख। २. पूर्व पृ० २९०। ३. ऐ० इ० भाग ७, पृ० ७१।

४. Journal and Proceedings of The A. S. of Bengal, Numismatic Supplement, No. 3.8, P. 61 N.

५. ज० न्यूमिस्मैटि सो० इ० भाग २, प० ८८।

२७. यज्ञश्रीशातकर्णि—२६ अथवा १६ वर्ष

कलि० रा० वृ० में इसे गौतमीपुत्र भी लिखा है। यह नाम शिलालेखों में भी है।

नानाघाट के शिलालेख—पूना के पश्चिम में कोंकन से जुनर को जाते हुए नानाघाट नाम का एक पार्वत्य-स्थान है। वहां एक बड़ी गुफा है। उस गुफा में कभी ९ मूर्तियां उत्कीर्ण थीं। वे अब नष्ट हो चुकी हैं। उन मूर्तियों पर कुछ लेख थे जो अभी तक विद्यमान हैं। इन के अतिरिक्त गुफा की दूसरी दीवारों पर भी लेख हैं। ये लेख महारानी नायनिका के खुदवाए हुए हैं। कई लेखकों का मत है कि यह नायनिका महाराज यज्ञश्री की धर्मपत्नी थी।

यज्ञश्री के शिलालेख नासिक और कन्हेरी आदि में मिले हैं। उस की मुद्राएँ काठियावाड़-गुजरात और मध्य-भारत तक में मिली हैं। उस का राज्य बड़ा विस्तृत था। उस की एक मुद्रा पर लिखा है—रण समस सरि यज्ञ सतकणस। इस मुद्रा पर जलपोत का चित्र है। सम्भवतः इस का राज्य दक्षिण के कुछ द्वीपों पर होगा।[1]

२८. विजय=विजयश्री शातकर्णि—६ वर्ष

२९. चण्डश्रीशातकर्णि—३ वर्ष

यह राजा विजयश्री का पुत्र था। वायु में इस का राज्य १० वर्ष का लिखा है। कलि० रा० वृ० के अनुसार यह भी वाशिष्ठीपुत्र नाम से प्रसिद्ध था। अतः इसे वाशिष्ठीपुत्र तृतीय कहना चाहिए।

वासिष्ठीपुत्र चद की मुद्राएँ प्राप्त हो गई हैं।[2]

३०. पुलोमावि द्वितीय—७ वर्ष

यह आन्ध्र-वंश का अंतिम राजा था। इस के पश्चात् भारत-साम्राज्य गुप्तों के पास चला गया।

---

१. जर्नल न्यूमिस्मैटिक सोसायटि, भाग ३, अंक १, पृ० ४३। अध्यापक वि० वि० भिराशी समस को सामिस अर्थात् स्वामी समझता है।

२. न्यूमिस्मैटिक जर्नल, भाग ५, अङ्क १, पृ० १०, सन् १९४३।

पैंतालीसवां अध्याय

एक सप्तर्षि चक्र पूरा हुआ

पुराणों का एक लेख बड़े महत्त्व का है। उससे भारतीय इतिहास की अनेक समस्याएं अनायास सुलझती हैं। वर्तमान ऐतिहासिकों ने उन श्लोकों पर पूरा ध्यान नहीं दिया। इस कारण उन्होंने निजी कल्पनाओं से भारतीय इतिहास की यथार्थ तिथियों को बहुधा दूषित कर दिया है। इस दोष के परिहारार्थ हम पुराणों के तद्विषयक श्लोकों को नीचे उद्धृत करते हैं।

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम्। सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणान्तेऽन्वयाः पुनः॥ वायु ९९।४१८॥
सप्तर्षयस्तदा प्रांशु-प्रदीप्तेनाग्निना समाः। सप्तविंशति-भाव्यानाम्-आन्ध्राणान्तेऽन्वगात् पुनः॥ मत्स्य २७३।३९॥
सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः पित्र्ये पारीक्षिते शतम्। सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणांतेन्वयाः पुनः॥ ब्रह्माण्ड ३।७४।२३०॥
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्। अंध्रांशे सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः॥[1]

इन में से पहले दो श्लोक पार्जिटर के पाठानुसार दिए गए हैं। तीसरा ब्रह्माण्ड के मुद्रित पाठानुसार है और चौथा वायु के मुद्रित संस्करण के अनुसार है। इन में अन्ध्राणान्ते और अंध्रांशे पाठ संदिग्ध हैं। इन संदिग्ध पाठों की उपस्थिति में भी इन श्लोकों का निम्न-लिखित अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है।

श्लोकों का अभिप्राय—महाराज प्रतीप के राज्य में सप्तर्षियों के सौ सौ का जो चक्र आरम्भ हुआ, वह आन्ध्रों के अन्त तक २७०० वर्ष पर पूर्ण हुआ। अथवा सप्तर्षि प्रदीप्ताग्नि-देवता वाले (कृत्तिका) नक्षत्र में थे। आन्ध्रों के अन्त तक उनका २७०० का चक्र पूरा हुआ। अथवा परिक्षित् के काल में सप्तर्षि पितृ-देवता वाले (मघा) नक्षत्र में थे। आन्ध्रों के अन्त तक उनका २७०० वर्ष का चक्र पूरा हुआ। अथवा परिक्षित् से आन्ध्रान्त तक २४०० वर्ष पूरा हुआ।

यह हुआ इन चारों श्लोकों का अभिप्राय। इससे एक बात सर्वथा निर्णीत हो जाती है। परिक्षित् से आन्ध्रान्त तक २४०० वर्ष और महाराज प्रतीप से परिक्षित् तक ३०० वर्ष हुआ था। पृ० १४० पर हम लिख चुके हैं कि शन्तनु से भारत-युद्ध तक लगभग १६३ वर्ष हो चुके थे। इससे आगे परिक्षित् तक ३६ वर्ष और हुए। इन्हें मिलाकर सम्पूर्ण २०० वर्ष हुए। शन्तनु से पहले प्रतीप राज्य करता था। उस से ले कर परिक्षित् तक का अन्तर लगभग ३०० वर्ष का ही होगा।

वराहमिहिर के कल्हण के अर्थ अनुसार भारतयुद्ध यदि कलि के ६५३ वर्ष पश्चात् माना जाए तो आन्ध्रों का अन्त ईसा-पूर्व पहली शताब्दी में कहीं हुआ होगा। यह बात है कुछ २ सत्य।

---

१. मत्स्य २७३।४४।४५॥ वायु ९९।४२३॥ ब्रह्माण्ड ३।७४।२३६॥

जायसवाल और राय चौधरी आदि वर्तमान इतिहास-लेखकों ने अपनी कल्पनाओं से आन्ध्र-काल ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त तक माना है। भावी खोज इन कल्पनाओं को निश्चित ही पूर्णतया असत्य ठहरा देगी। हम ने उस का मार्ग खोला है और संकेतमात्र किया है।

नारायण शास्त्री का मत—नारायण शास्त्री ने कलियुगराजवृत्तान्त के आधार पर भारतयुद्ध काल ईसा से लगभग ३१०० वर्ष पहले माना है। उनका किया पुराणपाठों का कुछ अन्य अर्थ हैं। उन के अर्थ की परीक्षा के लिए पुराणों के सुसम्पादन की महती आवश्यकता है।

हमारा मार्ग—हम ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया है। उस का व्योरा निम्नलिखित है—

परिक्षित् से नन्द तक	१५०० वर्ष
नन्दवंश राज्य	१०० ,,
मौर्य, शुङ्ग और काण्व राज्य	३४० ,,
आन्ध्र राज्य	४६० ,,
पूर्ण योग	२४०० वर्ष

यहां इतना स्मरण रखना चाहिए कि यदि मौर्य और शुङ्ग राज्य अधिक लम्बे हुए, तो नारायण शास्त्री के पाठ सत्य के अधिक निकट हो जाएंगे। अन्यथा वर्तमान पाठ ही ठीक रहेंगे। पर प्रत्येक अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि परिक्षित् से आन्ध्रान्त तक २४०० वर्ष हो चुके थे।

विष्णु और भागवत की समस्या—इन दोनों पुराणों में नन्द के काल में सप्तर्षियों का पूर्वाषाढा नक्षत्र में होना लिखा है। यह बात पुरातन पाठ रखने वाले पुराणों में नहीं है। इन पुराणों में पीछे से जोड़ी गई प्रतीत होती है।

गिरिन्द्रशेखर बोस का मत—अभी अभी हमें रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल का जर्नल मिला है। उस में बोस महाशय का आन्ध्रों पर एक विस्तृत लेख है।[१] उस में पहले श्लोक का निम्नलिखित अर्थ किया गया है[२]—

During the time of the Andhra's when counting bcakwards, a hundred kings will have passed away, the Saptarsi's you should know, will begin again for 27 centuries, so say the sages.

यह अनुवाद सर्वथा कल्पित है। प्रतीपे राशि का अनुवाद महाराज प्रतीप के राज्य में ही है। गिरिन्द्रशेखर ने परिक्षित् से नन्द तक १०५० वर्ष मानने की भूल की है। अतः उन का सारा लेख त्रुटि-पूर्ण रहा है।

---

१. Vol. V. 1939, No. 1. २. पृ० ६६।

आन्ध्र-काल काण्व-काल के पश्चात् जोड़ा जायगा—अनेक ऐतिहासिक आन्ध्र-काल को तोड़ ताड़ कर कई भागों में बांटते हैं। स्मिथ आदि का मत है कि यह आन्ध्रकाल काण्वों से बहुत पहले आरम्भ हो चुका था। यह बात प्रमाण-शून्य है। आन्ध्र शिशुक तो अन्तिम काण्व राजा को मार कर राजा बना था। अतः इस आन्ध्र-वंश का उपक्रम काण्वों के पश्चात् ही हुआ था।

आन्ध्रों ने अपनी राजधानी दक्षिण में रखी—प्रतीत होता है कुछ काल के पश्चात् आन्ध्रों ने अपनी राजधानी दक्षिण में बना ली। उन के सामन्त ही तब मगध का शासन करते होंगे। अन्त में आन्ध्र शक्ति दक्षिण में ही सीमित हो गई। तब मगध आदि कई प्रदेश स्वतन्त्र हो गए होंगे।

पुराणों में आन्ध्र-वंश के अन्तिम समय के समकालीन राज्यों का भी वर्णन है। उन का निरूपण अगले अध्याय में होगा।

छयालीसवां अध्याय

आन्ध्र-काल के अन्तिम दिनों के राजवंश

आन्ध्र-राज्य की समाप्ति हो गई। उसकी समाप्ति पर और उस से कुछ पूर्व कई अन्य राज्य भारत के पश्चिमोत्तर और पूर्व में स्थापित हुए। उनका उल्लेख पुराणस्थ-श्लोकों द्वारा नीचे किया जाता है—

आन्ध्राणां संस्थिते राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः। सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः॥ सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु। यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश। त्रयोदश मुरुण्डाश्च हूणा ह्येकोनविंशातिः॥

इस से आगे पुराणों में इन सब का राज्यकाल दिया गया है। पुराण-पाठों में कहीं कहीं थोड़ा सा अन्तर है। यह सारा विवरण नीचे स्पष्ट कर के लिखा जाता है—

		मत्स्य	वायु
१. सात	आन्ध्रभृत्य=श्रीपार्वतीय	५२ वर्ष ?	३०० वर्ष
२. दश	आभीर	६७ वर्ष	६७ वर्ष
३. सात	गर्दभिल=गर्दभिन		७२ वर्ष
४. अठारह	शक	३८० वर्ष	
५. आठ	यवन	८७ वर्ष	८२ वर्ष
६. चौदह	तुषार	७००० वर्ष	५०० वर्ष
७. तेरह	मुरुण्ड	२०० वर्ष	
८. एकादश	हूण=म्लेच्छ	३०० वर्ष	

१. इन में से आन्ध्रभृत्य अथवा श्रीपार्वतीय गुप्त थे। इस सम्बन्ध में एक और पुराणपाठ है—आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्वे पञ्चशतं समाः। अर्थात्-आन्ध्र (गौण आन्ध्र) तथा श्रीपार्वतीय वा गुप्त दोनों ५०० वर्ष तक राज्य करते रहे। इन में से २५० वर्ष राज्य गौण आन्ध्रों का और २५० वर्ष राज्य गुप्तों का होगा। उन का वर्णन आगे एक पृथक् अध्याय में होगा।

२. दश आभीर—६७ वर्ष

दश आभीर राजा नासिक के समीप राज्य करते रहे होंगे। नासिक की पाण्डु-लेणा गुफाओं पर आभीर शिवदत्त के पुत्र आभीर ईश्वरसेन के समय के लेख मिले हैं।[1] ईश्वरसेन कालीन लेख उस के नवम वर्ष का है।[2] उस में शक अग्निवर्मा की पुत्री शकनिका विष्णुदत्ता के दान का वर्णन है।

आर्य श्यामिलक रचित पादताडितक भाण में आभीरक कुमार मयूरदत्त का नाम मिलता

---

१. ऐ० इ० भाग ८, पृ० ८८, ८९।   २. वही।

है।[1] यह भाण गुप्तकाल के मध्य का प्रतीत होता है। अतः गुप्तकाल के मध्य तक आभीरक लोग माण्डलिक राजा रहे होंगे।

वात्स्यायन मुनि के कामसूत्र में लिखा है—

आभीरं हि कोट्टराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान।[2]

इस पर टीकाकार लिखता है—गूर्जरात में कोट्ट नामक स्थान है। अतः यह आभीर राज्य सुराष्ट्र में होगा।

शक-शिलालेखों में आभीर—हालार विषय के गुन्दा स्थान के क्षत्रप रुद्रसिंह के वर्ष १०३ के लेख में आभीर-सेनापति वापक-पुत्र रुद्रभूति का उल्लेख है।[3] इसी प्रकार वर्ष ३०० वा १०३ के मेवासा ग्राम के शिलालेख में आभीर वसुराक का उल्लेख है।[4]

कादम्ब मयूरशर्मा और आभीर—महाराज मयूरशर्मा के चन्द्रवल्ली के शिलालेख से ज्ञात होता है कि मयूरशर्मा ने पल्लव, पुनद, त्रैकूटक, आभीर, पारियात्रिक, शक और मौखरियों को पराजित किया।[5] इस से ज्ञात होता है कि आभीरों की सत्ता शकों के साथ साथ थी। शक सत्ता के किस समय में उन का अधिक उदय हुआ यह अभी नहीं कहा जा सकता। परन्तु वह समय अन्तिम-आन्ध्रों का होगा।

समुद्रगुप्त और आभीर—यद्यपि आभीरों की विशेष सत्ता अल्प काल के लिए ही रही, तथापि समुद्रगुप्त के काल तक उन की स्थिति कुछ कुछ बनी थी। हरिषेण के अनुसार मालव-आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक और आभीर आदि समुद्रगुप्त को कर देते थे।[6]

३. सात गर्दभिल राजा उज्जयिनी में थे। अन्तिम गर्दभिल को किसी शक-राज ने मार कर उज्जयिनी का राज्य हस्तगत कर लिया। गर्दभपाणीय एक नदी थी। उस का उल्लेख वाक्पति के ताम्रपत्र में है।[7] क्या गर्दभिल उस देश के थे।

४. अठारह शक—३८० वर्ष[8]

मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड में अठारह शक-राज लिखे हैं। विष्णु और भागवत में सोलह शक-भूपाल कहे गए हैं।[9] इस विषय में मञ्जुश्रीमूलकल्प का पाठ भी ध्यान देने योग्य है—

शकवंश तदा त्रिंशत् मनुजेशा निबोधता ॥६११॥ दशाष्ट भूपतयः ख्याता सार्धभूतिकमध्यमा। ६१२॥

---

१. पृ० ७।

२. अधिकरण ५, अध्याय ५, कं ३०। ३. ऐ०इ० भाग १६, पृ० २३३—२३६।

४. प्रोसीडिंग्स् पांचवीं इण्डियन ओरिअण्टल कान्फ्रेंस, भाग १, पृ० ५६५।

५. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ मैसूर, वार्षिक विवरण, १९२९, पृ ५०। ६. प्रयाग की प्रशस्ति।

७. इण्डियन अण्टिक्वेरी, भाग ६, पृ० ५१।

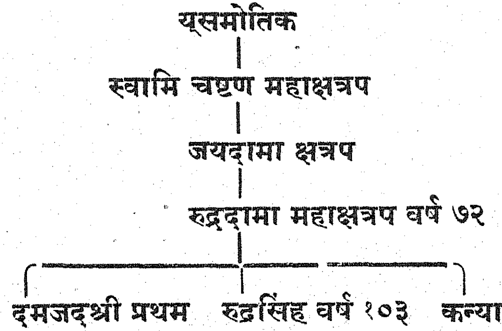
८. शकों पर विस्तृत पुस्तक—शकास इन इण्डिया, श्री सत्यश्रवा-कृत, देखो, लाहौर, सन् १९४७।

९. ततः षोडश शका भूपतयो भवितारः। विष्णु ४।२४।५२॥

ये श्लोक यद्यपि कोई निश्चित अर्थ नहीं बताते, तथापि अठारह शक-भूपति तो अनुमानित हो ही जाते हैं। अतः विष्णु और भागवत का पाठ भ्रष्ट ही माना जायगा।

भागवत के अनुसार शक-राजा अति-लोलुप थे।

उज्जयिनी के शकों के अनेक शिलालेख और सिक्के अब तक मिल चुके हैं। उन से उन का निम्नलिखित वंश-वृक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है—



इस वृक्ष के चष्टन और रुद्रदामा बहुत प्रसिद्ध हैं। त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति की नखवां विषयक निम्नलिखित गाथाएं विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

क्षहरात नखवां

णखाहणो यचालं तत्तो भच्छट्ठणा जादा ॥९७॥ भच्छट्ठणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति वादाला ॥९८॥

अर्थात्-नखाहण = नखवान् = नहपान राजा ने ४० वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् चष्टन हुआ। चष्टनों का राज्य २४२ वर्ष तक रहा। इन के पश्चात् गुप्त हुए। इस से पूर्व की एक गाथा में लिखा है—

णिव्वाणगदे वीरे चउसद इगिसट्ठि वासविच्छेदे। जादो च सग णरिंदो रज्जं वस्सस्स दुसय वादाला ॥९३॥

अर्थात्—वीरनिर्वाण के ४६१ वर्ष के पश्चात् राजा शक हुआ। उस का राज्य २४२ वर्ष तक रहा। गाथा ९४ के प्रारम्भ में लिखा है कि शकों के पश्चात् गुप्त हुए।

चष्टन ही शक थे—इन गाथाओं से ज्ञात होता है कि त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति के लिखे जाने के काल में अर्थात् ईसा की पांचवीं शताब्दी के अन्त में कुछ जैन ग्रन्थकार चष्टनों को ही शक समझते थे, और उन का राज्य काल २४२ वर्ष का मानते थे।

इन गाथाओं पर टिप्पणी लिखते हुए परलोकगत श्रीहीरालाल सूद ने भच्छट्ठणों का अर्थ "probably Bhrityandhras or Andhrabhrityas" किया था।[1] यह अर्थ युक्त नहीं।

---

1. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss, in The Central Provinces and Berar, by R. B. Hira Lal, B. A, Nagpur, 1926 p, XVII.

नखाहण = नखवां = नहपान—क्षहरात-कुल का था। उस का जामाता उशवदात अथवा उसभदात अपने को शक कहता है। परन्तु त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति-कार ने नखाहन के कुल को चष्टनों के शक-कुल से सर्वथा पृथक् कर दिया है और पहले रखा है। नहपान ने अपनी कन्या दक्षमित्रा का शकों से विवाह-सम्बन्ध जोड़ा था।

नहपान का वर्तमान शकाब्द से कोई सम्बन्ध न था

पांडुलेना अथवा त्रिरश्मिपर्वत नासिक आदि की गुफाओं के सात शिलालेखों में नहपान के जामाता उशवदात के दान-कृत्यों का उल्लेख है और आठवें में अमात्य अयम के दान का वर्णन है। इन शिलालेखों में से कुछ एक पर ४१, ४२, ४५, और ४६ वर्ष अंकित हैं। ये वर्ष शकाब्द या विक्रम-संवत् से पहले के हैं। इन्हें शकाब्द अथवा विक्रम के वर्ष समझना बहुत भूल है।

नहपान गौतमीपुत्र शातकर्णि का समकालिक—नहपान एक क्षहरात था। नासिक के एक शिलालेख में गौतमीपुत्र को "क्षहरातों का विध्वंसक" लिखा है। इस से निश्चय होता है कि गौतमीपुत्र ने नहपान को हराया और उसे मार दिया। गौतमीपुत्र ने ही सम्भवतः चष्टन को अपना क्षत्रप बना दिया होगा। चष्टन के बहुत पश्चात् रुद्रदामा ने अपनी शक्ति परिवर्द्धित की होगी और फिर गौतमीपुत्र के कुल के किसी शातकर्णि को परास्त किया होगा।

अठारह शकों का काल—पुराणों में शकों का राज्य-काल ३८० वर्ष का लिखा है। पार्जिटर ने इस लेख का अनुवाद १८३ वर्ष किया है। यह अनुवाद असंगत है। शक शिलालेखों और मुद्राओं से शकों का राज्य ३०० वर्षों से अधिक का प्रमाणित होता है। त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति में शक-राज्य की अवधि २४२ वर्ष दी है। ये अंक लगभग ठीक हो सकते हैं। २४२ के पश्चात् गुप्त प्रबल हो गए होंगे।

एक पुरातन शक संवत्—भारत में एक प्रसिद्ध शकाब्द इस समय भी प्रचलित है। भारतीय ज्योतिषी चिरकाल से इस का प्रयोग करते आए हैं। इस शकाब्द से पहले भी एक शक संवत् भारत में चलता था। उस का उल्लेख यवन-राज स्फुजिध्वज करता है। शक संवत् ८८७ में अपनी विवृति लिखने वाला भट्ट उत्पल लिखता है—

यवनेश्वरेण स्फुजिध्वजेनान्यच्छास्त्रं कृतम्। तथा च स्फुजिध्वजः—

गतेन साभ्यर्धशतेन युक्ताऽप्यंकेन केषां न गताब्दसंख्या।

कालः शकानां (१०४४) स विशोध्य तस्मादतीतवर्षाद्युगवर्षजातम्।

एवं स्फुजिध्वजकृतं शककालस्यावाग्ज्ञायते।

इस शककाल के शकाब्द ८८७ से बहुत पहले भी १०४४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। यह शककाल गणना चष्टन से भी पहले चली होगी। यह सत्य है कि चष्टन का काल ही विक्रम से बहुत पहले का था।

आठ यवन—८७ या ८२ वर्ष

सिकन्दर का पंजाब-आक्रमण

प्रसिद्ध यात्री अलबेरूनी लिखता है—

Between the time of Yudhishthira and the present year, i.e., the year 1340 of Alexander (or the 952nd year of the Sakakala), there is an interval of 3479 years.[१]

अर्थात्-शक काल से ३८८ वर्ष पहले अथवा ईसा से ३१० वर्ष पहले सिकन्दर का काल था।

भारतीय इतिहास के वर्तमान लेखक ईसापूर्व ३२७ में सिकन्दर का पञ्जाब पर आक्रमण करना लिखते हैं। अस्तु, हम कह सकते हैं कि अलबेरूनी के काल में ईसा से लगभग ३०० वर्ष पहले सिकन्दर का होना माना जाता था।

सिकन्दर के काल का Nysa जनपद—इस जनपद में पुरातन योन लोग रहते थे। वे सिकन्दर से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी वहीं रहते थे। महाभारत आदि ग्रन्थों में यवन शब्द से संभवतः इन्हीं का उल्लेख मिलता है। अरायन लिखता है कि "ये भारतीय नहीं थे, प्रत्युत दियोनिसस के साथ भारत आए थे।"[२] सिकन्दर से पहले कभी यह जनपद अधिक विस्तृत और विद्या-बुद्धि का केन्द्र रहा होगा।

पतञ्जलि का नैश जनपद—पाणिनि ४।१।१७० के भाष्य में पतञ्जलि लिखता है—नैशो नाम जनपदः। क्या यह नैश यूनानी लेखकों का न्यस हो सकता है? मैगस्थनीज़ के अनुसार यह न्यस पाण्डयिक राज्य या स्त्रीराज्य में था।[3]

वराहमिहिर के अनुसार एक स्त्रीराज्य पश्चिमोत्तर में था।[४] यहीं से पाटलिपुत्र तक न्यस्सियन राजमार्ग जाता था।[५]

सिकन्दर के सम्बन्ध में अनेक यूनानी ऐतिहासिकों की अत्युक्तियां—सिकन्दर एक बड़ा विजेता था। उस ने फारस आदि अनेक देश विजय किए थे। विजय के भाव से ही उस ने पंजाब पर आक्रमण किया। उस के युद्धों का वर्णन कई यवन लेखकों ने किया है। हमें प्रतीत होता है कि इस वर्णन में अनेक यूनानी लेखकों ने बड़ी अत्युक्तियां की हैं। एक युद्ध के सम्बन्ध में लिखा है कि "ईरानियों के २०,००० प्यादा, २५०० सवार काम आए। सिकन्दर के कुल ४३ आदमी कम हुए। नौ प्यादा थे, शेष सवार।[६] इसी प्रकार पुरु के युद्ध के सम्बंध में लिखा है कि "भारतीय १२००० मरे और यूनानी २५०।" पुरु के इसी युद्ध के सम्बंध में

१. अलबेरूनी का भारत, अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० ३६१।

२. दि अनैबेसिस आफ एलकजैण्डर, खण्ड ५, अध्याय १। ३. पृ० १६१।

४. भाग १, पृ० २९२। ५. एशियाटिक रिसर्चिज़, भाग ९, पृ० ४८।

६. प्लूटार्क, उर्दू अनुवाद, पृ० ११३।

सिकन्दर के ही प्रमाण से प्लूटार्क लिखता है कि—"वह युद्ध हाथों-हाथ हुआ। दिन का तब आठवां घंटा था, जब वे सर्वथा पराजित हुए।[१] अब अनुमान करने का स्थान है कि इतने घंटों के युद्ध में क्या भारतीय सैनिक केवल २५० यूनानी ही मार सके। यह कोरा असत्य है। डायोडोरस लिखता है कि "भारतीय १२००० से अधिक मरे। सिकन्दर के २८० अश्वारोही मरे और ७०० से अधिक पदाति।"[२]

अरायन लिखता है कि "भारतीयों के २०,००० से कुछ कम पदाति और ३००० अश्वारोही मरे। तथा सिकन्दर के ८० पदाति, १० अश्वारोही धनुर्धारी, २० संरक्षक अश्वारोही और लगभग २०० दूसरे अश्वारोही गिरे।"[३] ये लेख परस्पर बहुत विरोधी और मिथ्यात्व से रंगे प्रतीत होते हैं। अरायन के लेख से यह भी प्रतीत होता है कि इस युद्ध में पूर्ण जय किसी की भी नहीं हुई। सिकन्दर थक कर विश्राम करने चला गया। उस ने पोरस को बुलाने के लिए अनेक आदमी भेजे। अन्त को पोरस सिकन्दर से उस के स्थान पर मिला। यह है अरायन के लेख का भाव।[४] यूनानी लेखकों ने निश्चय ही अत्युक्ति की हैं। अतएव भारतीय विद्वानों को सिकन्दर का उतना महत्त्व नहीं समझना चाहिए, जितना वर्तमान पाश्चात्य लेखक बताते हैं। सिकन्दर को स्वयं भी अत्युक्ति करने का स्वभाव था। प्लूटार्क लिखता है—to exaggerate his glory with posterity.[५]

देशभक्त ब्राह्मण—सिकन्दर के समय ब्राह्मणों ने वीर क्षत्रियों को युद्ध के लिए सर्वत्र उत्साहित किया। तब भारतीय लोगों में देशहित अत्यधिक था। वे स्थान स्थान पर घूम कर लोगों को लड़ने के लिए उत्तेजित करते थे। प्लूटार्क लिखता है—

'सिकन्दर ने ऐसे दार्शनिकों को बंदी कराया और उन्हें फांसी दी।'[६] भाग्यवान् होंगे वे ब्राह्मण जो देशहित के लिए अत्याचारी सिकन्दर द्वारा फांसी चढ़ाए गए।

सिकन्दर लौट गया—पञ्जाबी वीरों के अदम्य उत्साह-पूर्ण युद्धों से भयभीत हुई सेना वाला सिकन्दर पञ्जाब से आगे नहीं बढ़ सका। गंगा के तट पर Gandaritan और Praesian जातियों के दो राजा ८०,००० अश्वारोही, २००,००० पदाति, २००० सशस्त्र रथ और ६००० लड़ने वाले हाथियों के साथ खड़े थे।[७] सिकन्दर की सेना उन से युद्ध करने में अशक्त थी। बहुत संभव है सिकन्दर स्वयं भी भयभीत हो गया हो। इसी भय को छिपाने के लिए उस ने और उस के ऐतिहासिकों ने लौटने का सारा भार सैनिकों पर ही डाल दिया हो। अस्तु,

---

१. प्लूटार्कस लाइव्स, जान ड्राइडन का अनुवाद, दि माडर्न लाएब्रेरि सीरिज़ पृ० ८४४। इन पंक्तियों का अनुवाद हमने किया है।

२. १७।८६॥

३. दि अनैबेसिस आफ, एलकजैण्डर, खण्ड ५, अध्याय १८।

४. दि अनैबेसिस आफ एलकजैंडर, खण्ड ५, अध्याय १८।

५. फ्लूटार्कस लाइवस, पृ० ८४५।

६. फ्लूटार्कस लाइवस, पृ० ८४४।

७. फ्लूटार्कस लाइवस, पृ० ८४५।

सिकन्दर के पंजाब-आक्रमण का भारतीय-संस्कृति और सभ्यता पर कोई प्रभाव पड़ा नहीं दिखता।

अण्ड्रोकोट्टुस—सिकन्दर के कुछ वर्ष पश्चात् सेलूकस के काल में अण्ड्रोकोट्टुस नाम का राजा था। यह नाम चन्द्रगुप्त से बहुत मिलता है। परन्तु अण्ड्रो नाम आंध्र से भी मेल खाता है। संभव है यह किसी आन्ध्र राजा का नाम हो जो आन्ध्र-युग में मगध पर राज करता हो।

पलिबोथ्र नगर—हम पहले पृ० २६३ पर लिख चुके हैं कि पलिबोथर नगर पाटलिपुत्र था। यह मत आजकल स्वीकृत है। इस मत का विशेष पर्यालोचन अभीष्ट है। मैगस्थनीज़ लिखता है—

१. यमुना नदी पलिबोथ्री (प्रदेश) से बहती हुई मथुरा और करिसोबोर के नगरों के मध्य में गङ्गा में मिलती है।[1]

२. सिन्धुतट प्रस्सी की सीमाओं पर है।[2] इन दोनों बातों से प्रस्सी और पलिबोथ्र के पाटलिपुत्र होने में सन्देह होता है।

आठ यवन-राजा

पुराणों में लिखे हुए आठ यवन-राजाओं में से शाकल राजधानी रखने वाला मिनेन्डर=मिनेन्द्र निश्चय ही एक था। इस के मिलिन्दपन्ह से इस का अधिक वृत्त ज्ञात नहीं होता। ये सब राजा ८७ वर्ष से अधिक तक अपना अधिकार नहीं रख सके। टार्न महाशय ने दि ग्रीक्स इन बैकट्रिया एण्ड इण्डिया[3] नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है। परन्तु हमने यवन राजाओं के ताम्रपत्र और सिक्के अभी स्वतन्त्र रूप से नहीं पढ़े। हमारे पास वे सब ग्रन्थ नहीं हैं। इस लिए इस विषय पर हम अधिक नहीं लिख पाए। समस्त सामग्री के देखे बिना रैपसन या टार्न आदि के कथन को हम सत्य स्वीकार नहीं कर सकते।

भट्टबाण का लेख—हर्षचरित में लिखा है—चूडामणिलग्नलेखप्रतिबिम्बवाचिताक्षरा व चारुचामीकरचामरग्राहिणी यमतां ययौ यवनेश्वरस्य।[4] यह घटना किस यवनेश्वर की है। इस के साथ पृ० १५१ पर लिखी गई अज राज की घटना भी किसी यवनराज विषयक है।

१. डेमिट्रियस

इस की अनेक मुद्राएं मिल चुकी हैं।

२. मिनेन्द्र

सौभाग्यवश इस का एक लेख बजौर से मिला है। वह खरोष्ठी अक्षरों में एक मञ्जूषा पर है। उस पर लिखा है—मिनेद्रस महरजस कटिस दिवस १४......शकमुनिस।[5]

---

१. यात्रा, कलकत्ता, सन् १९२६, पृ० १४२। २. वही, पृ० १४३।

३. केम्ब्रिज, सन् १९३८। ४. जीवानन्द संस्करण, पृ० ६९०।

५. न्यू इण्डियन अण्टिक्वेरी, भाग २, संख्या १०, जनवरी १९४०, पृ० ६४७।

अर्थात्—महाराज मिनेन्द्र ने कार्तिक १४ को......शाक्यमुनि।

यह लेख बड़े महत्त्व का है। यवन राजाओं का यह पहला लम्बा लेख मिला है। इस राजा की मुद्राओं पर महारजस त्रातारस मेनंद्रस लेख है।

चौदह तुषार—५०० वर्ष

नामभेद—तुषार, तुखार, तुरुष्क और देवपुत्र इन चार नामों से इस जाति के राजा प्रसिद्ध रहे हैं। तुरुष्क नाम पुराणों के पाठान्तरों में मिलता है और देवपुत्र नाम कुशन राजाओं के लेखों, समुद्रगुप्त के शिलालेख और मञ्जुश्रीमूलकल्प में हमने देखा है। पुरातन लेखों में गुशन, खुशन, खुशाण और कुशान आदि नाम भी पाए जाते हैं। ये कुशान आदि नाम चीनी-भाषा के द्वारा आए हुए प्रतीत होते हैं। चीनी-वर्णन के अनुसार यूए-ची जाति का एक भाग कुए-शुअङ्ग प्रदेश पर राज्य करता था।

देवपुत्र शब्द राजपुत्र के समान है। देव सन्तान देवपुत्र कहाती थी। देखो आरण्यक-पर्व भिषजौ देवपुत्राणां। १२४।९॥ तुषारों का मूल स्थान देवस्थान के समीप था अतः तुषारों ने अपने लिए देवपुत्र शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया।

१. कुजुल कडफिसस (प्रथम)

इस राजा की अनेक ताम्र-मुद्राएं प्राप्त हो चुकी हैं। उन पर उसे यवुग, महाराज और राजातिराज लिखा है।

२. विम—वेम कडफिसस (द्वितीय)

इस राजा की सुवर्ण-मुद्राएं भी प्राप्त हैं। उन पर महाराज, राजातिराज और महीश्वर पद अंकित हैं। इस राजा का खलतसी का एक ताम्रलेख है। उस पर १८४ या १८७ संवत् है। वहां नाम है—उविम कवूथिस।[1]

मञ्जुश्रीमूलकल्प का यक्ष-कुल—मूलकल्प में (महाराज[2]) बुद्धपक्ष और गम्भीरपक्ष नाम के दो राजा वर्णित हैं। वे यक्ष-कुल के थे। उन्होंने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था। वे कई विहारों के निर्माता थे। परलोकगत जायसवाल का मत है कि बुद्धपक्ष और गम्भीरपक्ष कडफिसस प्रथम और कडफिसस द्वितीय थे।

तिब्बत के ऐतिहासिकों के अनुसार भारतीय भटभद्र बुद्धपक्ष और गम्भीरपक्ष को पांचाल के राजा मानता है।[3]

बुद्धपक्ष और अश्वघोष—मूलकल्प में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

बुद्धपक्षस्य नृपतौ शास्तुशासनदीपकः ॥९३९॥

अकाराख्यो यतिः ख्यातो द्विजः प्रव्रजितस्तथा। साकेतपुरवास्तव्यः आयुषाशीतिकस्तथा ॥९४०॥

---

१. खरोष्ठी लेख, स्टेन कोनो, पृ० ८१। २. मूलकल्प ५४१।

३. ज. बि. ओ. रि. सो. भाग २६, पृ० ३५१।

अर्थात्—बुद्धपक्ष के काल में (अश्वघोष) नाम का ब्राह्मण था। वह प्रव्रजित हो गया था। उस का स्थान साकेत था और वह ८० वर्ष तक जीवित रहा।

मूलकल्प के वर्णन की सत्यता सौन्दरनन्द महाकाव्य के समाप्तिवाक्य से प्रतीत होती है—

आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यभदन्तअश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियं॥

अश्वघोष वस्तुतः साकेतक था।

अश्वघोष की कृतियां—अश्वघोष रचित बुद्धचरित और सौन्दरनन्द तो प्रसिद्ध ही हैं। उस का राष्ट्रपाल नाटक भी कभी अत्यंत प्रसिद्ध था। धर्मकीर्ति अपने वादन्याय में लिखता है—

को बुद्धो भगवान्। यस्य शासने भदन्ताश्वघोषः प्रव्रजितः। कः पुनर्भदन्ताश्वघोषः। यस्य राष्ट्रपालं नाम नाटकं। कीदृशं राष्ट्रपालं नाम नाटकमिति। प्रसंगं कृत्वा नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार इति।[1]

१. कनिष्क

कनिष्क और कडफिसस का सम्बन्ध निश्चित करने वाली सामग्री अभी अप्राप्त ह। उत्तरापथ के इतिहास में कनिष्क एक अति प्रसिद्ध राजा हो चुका है। मूलकल्प से ज्ञात होता है कि कनिष्क से पहले भी कोई देवपुत्र राजा हो चुका था। वे श्लोक नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

तुरुष्कनामा वै राजा उत्तरापथमाशृत॥५६९॥

महासैन्यो महावीर्यः तस्मिं स्थाने भविष्यति। कश्मीरद्वारपर्यन्तं वष्कोद्यानं[2] सकापिशम्[2] ॥५७०॥

योजनशतसप्तं तु राजा भुंक्तेऽथ भूतलम् ॥५७१॥ तस्यान्तरे क्षितिपतेः महातुरुष्को नाम नामतः॥५८६॥

महायक्षा महासैन्यः महेशाक्षोऽथ भूपतिः॥५७८॥ सम्मतो देवपुत्राणां बोधिसत्त्वो महर्द्धिकः॥५८१॥

यहां तुरुष्क और महातुरुष्क नाम के दो राजा लिखे गए हैं। देवपुत्रों में कनिष्क ही सब से बड़ा महाराजा था। अतः वही महातुरुष्क हो सकता है। इस अवस्था में तुरुष्क की खोज करनी पड़ेगी। कनिष्क का राज्य कश्मीर पर भी था। मूलकल्प में तुरुष्क का राज्य कश्मीर-द्वार तक ही लिखा है। इस लिए महा तुरुष्क ही कनिष्क होगा और तुरुष्क उस का कोई पूर्ववर्ती राजा होगा। मूलकल्प में महातुरुष्क को महेशाक्ष अथवा महेश लिखा है। यह शिव का विशेषण है। आश्चर्य से कहना पड़ता है कि कडफिसस द्वितीय और वासुदेव दोनों शैव थे। वासुदेव कनिष्क का प्रपौत्र होगा। उसकी मुद्राओं पर शिव और नन्दी की मूर्ति है। क्या मूलकल्प का अभिप्राय वासुदेव से होसकता है? जायसवाल के अनुसार तुरुष्क ही कनिष्क था और महातुरुष्क हुविष्क था।[3]

---

१. पृ० ६७। २. मुद्रित पाठ—वष्कोद्यं सकाविशम्। इसे हम ने शोधा है।
३. इम्पीरियल हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० २४।

कल्हण और तुरुष्क राजा—राजतरंगिणी में इन तुरुष्क राजाओं के विषय में पण्डित कल्हण लिखता है—

"तब अपने नामों से तीन पुरों के बसाने वाले राजा हुए। नाम थे उन के हुष्क, जुष्क और कनिष्क। जुष्क जुष्कपुर और विहार का निर्माता था। उस ने जयस्वामिपुर भी बसाया। वे राजा पुण्याश्रय और तुरुष्कान्वय थे। उन्हों ने शुष्कलेत्रादि देशों में मठ और चैत्यादि बनवाए। उन के राज्यकाल में कश्मीरमण्डल बौद्धों का भोज्य हो गया था। उस समय भगवान् शाक्यसिंह के परिनिर्वाण को इस लोक में १५० (७५० ?) वर्ष हो गए थे। उस समय नागार्जुन हुआ। उनके पश्चात् महाराज अभिमन्यु हुआ।"[1]

कनिष्क का काल—चीनी ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध-निर्वाण के ७०० वर्ष पश्चात् कनिष्क हुआ।[2] अध्यापक प्रबोधचन्द्र बागची ने चीनी ग्रन्थों के आधार पर बताया है कि आचार्य संघरक्ष भी बुद्ध-निर्वाण के ७०० वर्ष पश्चात् हुआ था। संघरक्ष के मार्गभूमिसूत्र का अनुवाद भिक्षु न्गन-शे काओ ने सन् १४८-१७० में कभी किया।[3] अनेक चीनी ग्रन्थकार बुद्ध-निर्वाण को ईसा से ९००-१००० वर्ष पहले मानते हैं। उस गणना के अनुसार कनिष्क ईसा से लगभग २००-१५० वर्ष पहले हुआ होगा। यह बात सत्य प्रतीत होती है। पाश्चात्य मत स्वीकार करने वालों ने कनिष्क की जितनी भी तिथियां निर्धारित की हैं, वे सब काल्पनिक हैं। न्यून से न्यून गणना करते हुए कनिष्क ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व अवश्य था।

कनिष्क-काल के सम्बन्ध में ह्यूनसांग—चीनी यात्री (सन् ६२९) में लिखता है कि "बुद्ध की मृत्यु के ठीक ४०० वर्ष पश्चात् कनिष्क सारे जम्बूद्वीप का सम्राट् बना।"[4] इस लेख से भी यही निश्चित होता है कि कनिष्क ईसा से न्यून से न्यून १०० वर्ष पहले हुआ था। परन्तु इस बात को लिखते समय बुद्ध-मृत्यु की कौन सी तिथि ह्यूनसांग के ध्यान में थी, यह हम नहीं जानते। तथापि हमारा निकाला परिणाम इसके विपरीत नहीं है।

कनिष्क राजस्तूप—ह्यूनत्सांग की जीवनी में गान्धार में इस स्तूप का अस्तित्व लिखा है।[5] यह स्तूप अलबेरूनी के काल में भी था।

अलबेरुनी का कनिक—अलबेरुनी के अनुसार शाही-कुल का एक राजा कनिक था। वह बड़ा शक्तिशाली था। उसने पुरुषावर का विहार बनाया। इसे कनिक चैत्य कहते हैं।[6]

---

१. राजतरंगिणी, प्रथम तरंग, श्लोक १६८—१७४। पूर्वोक्त भावानुवाद हम ने स्वयं किया है।

२. S. Levi, Notes sur les Indo-Scythes, J. As. 1896, p. 463. तथा पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम, सन् १९३४, पृ० ९९।

३. पाठक वाल्यूम, पृ० ९४-९९।

४. वाटर्स का अनुवाद, पृ० २०३, २७०।   ५. पुस्तक २, पृ० ६३।   ६. अध्याय ४९।

समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में दैवपुत्र-शाही-शाहानुशाहि-शक-मुरुण्ड आदि शब्द साथ ही साथ आते हैं। अतः सम्भव है कि अलबेरुनी का शाही-कनिक देवपुत्र कनिष्क ही हो।

कुल—कनिष्क के कुल का वृत्तान्त अनेक लेखों और मुद्राओं से ज्ञात होता है। उस के कुल के लेख एक क्रम से बढ़ने वाले संवत् में है। वह क्रम निम्नलिखित है—

१. कनिष्क	१—२३
२. वासिष्क	२४—२८
३. हुविष्क	२८—६०
४. वासुदेव	६७[१]—९८

चौदह तुषारों में से ये चार अति प्रसिद्ध हैं। दो कडफिसस थे। शेष आठ वासुदेव के पश्चात् हुए होंगे। उन में से कोई एक समुद्रगुप्त का समकालीन होगा।

राज्य विस्तार—कश्मीर, पेशावर, तक्षशिला, सारा पञ्जाब, और मथुरा तक का प्रदेश इन कुशनों के आधिपत्य में होगा। पञ्जाब के लुधियाना नगर के समीप के कुनेत के भग्नावशेष से कुशनों की अनेक मुद्राएं प्राप्त होती हैं। हमारे संग्रह में भी उन में से कई एक हैं। मथुरा से कुशन-राज्य सम्बन्धी अत्यधिक सामग्री मिल चुकी है। कनिष्क की प्रस्तर-मूर्ति भी वहाँ से मिली है। वासुदेव कदाचित् वहीं राजधानी बना कर रहने लगा था।

मातृचेट और कनिष्क—मातृचेट एक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थकार था। कनिष्क के काल में वह वृद्ध था। कनिष्क ने उसे अपनी सभा में बुलाया। मातृचेट आने में असमर्थ था। उस ने कनिष्क को उत्तर लिखा। वह उत्तर महाराज कनिक-लेख नाम से तिब्बतीय भाषा में अब भी मिलता है। मूलकल्प (४७९–४९० तथा ९३५–९३७) के अनुसार मातृचीन नाग (अर्जुन) का समीपकालीन और बुद्ध के ४०० वर्ष पश्चात् था।

कुशनों के इतिहास की पुरातन सामग्री पर्याप्त विद्यमान हो चुकी है, पर स्थानाभाव से हम उसका अधिक वर्णन यहां नहीं कर सके।

तेरह मुरुण्ड—२०० वर्ष

स्टेन कोनो के अनुसार मुरुण्ड शब्द शकों से सम्बन्ध रखता है। ये लोग शकों की किसी अवान्तर शाखा में थे। जैन-लेख के अनुसार किसी सातवाहन और पादलिप्त के काल में पाटलिपुत्र का राजा कोई मुरुण्ड था।[2] यादवप्रकाश मुरुण्डों को लम्पाक लिखता है।

एकादश हूण—३०० वर्ष

कवि श्यामिलक अपने भाण पादताडितक में लिखता है—अयम् अहूणो हूणमण्डनमण्डितः आर्यघोटकः[3] उस के काल में हूण भारत में विद्यमान थे।

---

१. वासुदेवस सं ६७ वर्षा मासे। मथुरा की बुद्धमूर्ति। ट्रांज़ैकशंस, इ० हि० कांग्रेस, वर्ष ५, पृ० १६३, १६४। २. प्रबन्धकोश, पृ० १२। पुरातन प्रबन्धसंग्रह, पृ० ९२। ३. पृ० १५।

हूण-विजेता जर्त—चान्द्र व्याकरण में एक उदाहरण है—अजयत् जर्तो हूणान्। अर्थात् जर्त ने हूणों को जीता। जर्तों के विषय में वर्तमान लेखक अनेक कल्पनाएं करते हैं। जर्त एक जाति थी। विक्रम संवत् ११९७ में गणरत्नमहोदधि लिखने वाला जैन विद्वान् वर्धमान कारिका २०१ के अन्तर्गत शक, खस, जर्त नाम पढ़ता है। इन जर्तों के किसी प्रधान पुरुष ने हूणों को जीता। आचार्य गोपीक किसी हूण-नाशक राजा की स्तुति करता है।[1]

जर्त का अर्थ—हेमचन्द्र उणादिवृत्ति २०० में जर्त का अर्थ राजा करता है। उणादिसूत्र ५।५२ की टीका में श्वेतवनवासी जर्त का अर्थ रोम करता है। दुर्गसिंह (सातवीं शती) उणादि २।६८ में जर्तः दीर्घरोमा लिखता है। महाभारत सभापर्व ४७।२६ में लोमशाः शृङ्गिणो नराः है। संभवत ये लोमों वाले लोग जर्त थे।

रमेशचन्द्र मजुम्दार की भूल—चान्द्र व्याकरण के उदाहरण को ठीक प्रकार से न समझ कर मजुम्दार जी ने पाठ बदला है—अजयद् गुप्तो हूणान्।[2] यह कल्पना ठीक नहीं बैठी।

हूण लोग गुप्तों के समकालीन भी थे। गुप्तों के वर्णन में प्रसंग-वश इन का उल्लेख भी कर दिया जायगा। यहां दो राजाओं का संकेतमात्र किया जाता है।

तोरोमाण और मिहिरकुल

ह्यूनसांग लिखता है कि "मिहिरकुल उससे कई शताब्दी पहले हुआ था।"[3] ह्यूनसांग के ग्रन्थ के अंग्रेज़ी अनुवादक वाटर्स का भी यही मत है। वाटर्स का कथन है कि पद्ममुखसूत्र के अनुसार मिहिरकुल के पश्चात् ७ देवपुत्र राजा कश्मीर में हुए।[4] वर्तमान लेखक मिहिरकुल के शिलालेख को सन् ५१५ का मानते हैं। राजतरंगिणी में भी एक तोरमाण का उल्लेख है।[5] उसने अपना दीनार चलाया था। यदि यह तोरमाण मिहिरकुल का पिता था तो वह अवश्य शकारि-विक्रमादित्य-चन्द्रगुप्त से पहले था। महाराज यशोधर्मा की प्रशस्ति में भी हूणाधिपों का वर्णन है।[6] तोरमाण और मिहिरकुल हूण ही थे। इन के पश्चात् हूण-शक्ति क्षीण हो गई होगी। तत्पश्चात् गुप्तों के अन्त में फिर उसने सिर उभारा होगा।

मुद्राएं—तोरमाण और मिहिरकुल की मुद्राओं पर अग्निकुण्ड बने हैं।

---

१. सदुक्तिकर्णामृत, लाहौर संस्करण, पृ० २०२। देखो पृ० १९५ और २०८ भी।

२. ए न्यू हि० आफ दि० इ० पी० भाग ६, पृ० १९७।

३. वाटर्स का अनुवाद, पृ० २८८।

४. वाटर्स का अनुवाद, पृ० ९९।

५. ३।१०२, १०३॥

६. प्राचीन लेखमाला, प्रथम भाग, पृ० ११।

संतालीसवां अध्याय

गुप्तकाल का आरम्भ कब हुआ

आन्ध्र-वंश के पश्चात् तथा शक, यवन और कुशन आदि वंशों के क्षीण होने पर गुप्त शक्ति का उदय हुआ। हम ने गुप्तकाल से पूर्व के इतिहास की तिथियां नहीं दी हैं। वे तिथियां गुप्तकाल के निर्णय पर आश्रित हैं। अतः इस अध्याय में गुप्तकाल का निर्णय करने वाली मौलिक सामग्री का एक संग्रह-विशेष प्रस्तुत किया जायगा। उसकी सहायता से सब विद्वान् किसी सत्य परिणाम पर पहुँच सकते हैं।

साहसांक विक्रम और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की एकता

१. दशम शताब्दी विक्रम अथवा उस से पहले के किसी कोशकार का एक प्रमाण है। वह कोशकार अमर-टीकाकार क्षीरस्वामी द्वारा उद्धृत किया गया है। क्षीर को संवत् ११५० के समीप का आचार्य हेमचन्द्र अपनी अभिधान-चिंतामणि में बहुधा उद्धृत करता है। अतः क्षीर संवत् ११५० के पश्चात् का नहीं है। क्षीर-उद्धृत कोशकार लिखता है—

विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः ।२।८।२॥

अर्थात् विक्रमादित्य, साहसांक और शकांतक एक ही थे।

२. सुप्रसिद्ध महाराज भोजराज ने अपने सरस्वतीकंठाभरण नामक अलंकार-ग्रंथ में लिखा है—

केऽभूवन्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः। काले श्रीसाहसाङ्कस्य के न संस्कृतवादिनः ॥२ १५॥

इस पर टीकाकार रत्नेश्वरमिश्र लिखता है—आढ्यराजः शालिवाहनः साहसांको विक्रमादित्यः।[1]

३—हाल अथवा सातवाहन प्रणीत गाथा-सप्तशती-कोश का टीकाकार हारिताम्र पीतांबर,गाथा ४३६ की टीका में गाथांतर्गत विक्रमादित्यस्य पद का अर्थ साहसांकस्य करता है।[2] इस टीकाकार की दृष्टि में यह विक्रमादित्य साहसांक ही था।

४—विक्रमादित्य और आचार्य वररुचि समकालिक थे।[3] वह आचार्य वररुचि—

---

१. भैरवशर्मा द्वारा मुद्रित, काशी, वैशाख सुदि ८, भौमे १९४३ वत्सरे।

२. पं० जगदीश शास्त्री, एम० ए० का संस्करण, लाहौर।

३. इस वररुचि से बहुत पहले अष्टाध्यायी का वार्तिककार और सुप्रसिद्ध काव्यकार मुनि वररुचि हो चुका था।

(क) अपनी पत्रकौमुदी में लिखता है—

विक्रमादित्यभूपस्य कीर्तिसिद्धेर्निदेशतः। श्रीमान् वररुचिर्धीमांस्तनोति पत्रकौमुदीम् ॥

अर्थात् श्रीमान् वररुचि ने विक्रमादित्य भूप की आज्ञा से पत्रकौमुदी रची।

(ख) अपने आर्या-छंदोबद्ध लिंगानुशासन संबंधी एक ग्रंथ के अंत में लिखता है—

इति श्रीमदखिल-वाग्विलासमंडित-सरस्वतीकंठाभरण-अनेक-विशरण-श्रीनरपति-विक्रमादित्यकिरीटकोटिनिघृष्ट-चरणारविंद-आचार्य-वररुचि-विरचितो लिंगविशेषविधिः समाप्तः।

अर्थात् महाप्रतापी विक्रमादित्य के पुरोहित अथवा गुरु आचार्य वररुचि ने लिंगविशेषविधि ग्रंथ समाप्त किया।

(ग) अपने एक काव्यग्रंथ के अंत में लिखता है—

इति समस्तमहीमण्डलाधिपमहाराज-विक्रमादित्य-निदेशलब्ध-श्रीमन्महापण्डित-वररुचिविरचितं विद्यासुन्दरप्रसंगकाव्यं समाप्तम्।

इस ग्रन्थ विद्यासुन्दर के आरंभ में लिखा है—

'महाराज साहसांक की सभा में विद्वद्गोष्ठी हो रही थी। महाराज ने अपने पंडितों से कहा कि कवि चौर और विदुषी विद्या की कथा लिखनी चाहिए। इस पर वररुचि ने कथा लिखनी आरंभ की।'...'विद्यासुंदर में कवि कालिदास और शंकर शिव का उल्लेख है।'[1]

अध्यापक शैलेन्द्रनाथमित्र-लिखित पूर्वोद्धृत विवरण से यह बात सर्वथा स्पष्ट होती है कि वररुचि-वर्णित विक्रमादित्य का एक नाम साहसांक भी था।

यह समकालिक साक्ष्य बड़े महत्त्व का है। इसका बल न्यून नहीं किया जा सकता।

विद्यासुंदर काव्य के कुछ मूल श्लोक भी देखने योग्य हैं—

साहसाङ्कस्य भूपस्य सभायां काव्यकोविदः। आलाप..................मनोहर्षविवर्धनः ॥ ७ ॥
वररुचिनामा स कविः श्रुत्वा वाक्यं नृपेन्द्रस्य। विद्यासुन्दरचरितं श्लोकसमूहैस्तदारेभे ॥ ८ ॥[2]

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि वररुचि ने महाराज साहसांक की आज्ञा से विद्यासुंदर काव्य की रचना की। यही साहसांक विद्यासुंदर की प्रशस्ति में लिखा गया विक्रमादित्य है।

५—संवत् १३६१ में लिखी गई प्रबंध-चिंतामणि के प्रथम प्रबंध के आरंभ में ही मेरुतुंगाचार्य ने लिखा है—

---

१. द्वितीय अखिलभारतवर्षीय प्राच्यसभा का विवरण। लेखक—अध्यापक शैलेन्द्रनाथ मित्र, पृ० २१६-२१८।

२. लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास के महोपाध्याय श्री चरणदास चट्टोपाध्याय की कृपा से हमें ये श्लोक देवनागरी लिपि में मिले हैं।

अन्योऽप्यात्र: समजनि गुणैरेक एवावनीशः शौर्योदार्यप्रभृतिभिरिहोर्वीतले-विक्रमार्कः।

तथा इस प्रबंध के अंत में लिखा है—

इत्थं तेन पराक्रमाक्रान्तदिग्वलयेन षण्णवति प्रतिनृपमण्डलानि स्वभोगमानिन्ये।
वन्यो हस्ती स्फटिकघटिते भित्तिभागे स्वबिम्बं दृष्ट्वा दूरात् प्रतिगज इति त्वद्द्विषां मन्दिरेषु।
हत्वा कोपाद् गलितरदनस्तं पुनर्वीक्ष्यमाणो मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया साहसाङ्क ॥ ३ ॥
कालिदासाद्यैर्महाकविभिरित्थं संस्तूयमानश्चिरं प्राज्यं साम्राज्यं बुभुजे।

६—वन्यो हस्ती से आरंभ होने वाला यह श्लोक श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत में भी पाया जाता है। उसका पाठ निम्नलिखित है—

वन्यो हस्ती स्फटिकघटिते भित्तिभागे स्वबिम्बं दृष्ट्वा रुष्टः प्रतिगज इति त्वद्द्विषां मन्दिरेषु।
दन्ताघाताकुलितदशनस्तत्पुनर्वीक्ष्यमाणो मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया साहसाङ्क ॥
वेतालस्य।[1]

सदुक्तिकर्णामृत ग्रंथ शक ११२७ अथवा संवत् १२६२ का लिखा हुआ है।

यह ग्रंथ प्रबंधचिंतामणि से ९९ वर्ष पहले लिखा गया था। इस ग्रन्थ में यह श्लोक वेताल-रचित कहा गया है। प्रबंधचिंतामणि में यही श्लोक कालिदास आदि के नाम से उद्धृत है। परंपरा के अनुसार वेताल कवि विक्रम का राजकवि था। इस प्रकार वेताल, कालिदास और साहसांक अथवा विक्रम समकालिक ही थे।

७—यही श्लोक संवत् १४२० के समीप लिखी गई शार्ङ्गधरपद्धति में पाया जाता है। वहां इसका पाठ अधिक अशुद्ध है। देखिए विशिष्ट राजप्रकरण ७३—

हस्ती वन्यः स्फटिकघटिते भित्तिभागे स्वबिम्बं दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रतिगज इति त्वद्द्विषां मन्दिरेषु।
दन्ताघाताद् गलितदशनस्तं पुनर्वीक्ष्य सद्यो मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया विक्रमार्क ॥ ४ ॥
कयोरप्येतौ।

शार्ङ्गधरपद्धति के मुद्रित संस्करण में इस श्लोक के कर्ता का नाम नहीं लिखा है। परन्तु शार्ङ्गधर के पाठ से एक बात स्पष्ट हो जाती है। मेरुतुंग और श्रीधरदास के पाठों में जो व्यक्ति साहसांक पद से सम्बोधित किया गया है, वही व्यक्ति शार्ङ्गधर के पाठ में विक्रमार्क नाम से पुकारा गया है। मेरुतुंग के इस प्रबन्ध के आरम्भ में भी उसे विक्रमार्क कहा है। वस्तुतः साहसांक और विक्रमार्क नाम पर्याय थे।

८—विक्रमार्क और विक्रमादित्य नाम में भी कोई भेद नहीं था। अर्क और आदित्य पद भी पर्यायवाची हैं। ग्वालियर के एक शिलालेख में लिखा है—

श्रीविक्रमार्कनृपकालातीतसंवत्सराणाम्मेकषष्ठ्यधिकायामेकादशशत्यां माघशुक्लः...।

---

१. लाहौर संस्करण, पृ० २१९।

अर्थात् विक्रमार्क या विक्रमादित्य के ११६१ वर्ष में···। यहां विक्रमार्क पद से विक्रमादित्य के ही संवत् का नामोल्लेख किया गया है।

विक्रम संवत् ही साहसांक संवत् कहा जाता था

९—विक्रमादित्य का संवत् साहसांक संवत् भी कहा जाता था। इस कथन की पुष्टि में निम्नलिखित तीन प्रमाण देखने योग्य हैं—

(क) व्योमार्णवार्कसंख्याते साहसाङ्कस्य वत्सरे। महोबा दुर्ग का शिलालेख।

संयुक्त प्रांत के हमीरपुर जिले में महोबा है। यह शिलालेख कनिंघम द्वारा आर्कियोलाजिकल सर्वे आव इंडिया रिपोर्ट भाग २१, पृ० ७२ पर छपा है। पत्र-संख्या २२ पर इस की प्रतिलिपि है। इंडियन एंटीक्वेरी भाग १९, पृ० १७९ पर भी इस लेख का विवरण है। इस में साहसांक 'संवत् १२४० आषाढ़ बदी ९, सोम' भी लिखा है।

यह संवत् निश्चय ही विक्रम संवत् है।

(ख) नवभिरथ मुनीन्द्रैर्वासराणामधीशैः परिकलयति संख्यां वत्सरे साहसाङ्के।

महाराज प्रताप के काल का रोहतासगढ़ शैल का लेख।

रोहतासगढ़ शैल बिहार-उड़ीसा प्रांत के शाहाबाद जिले में है। यह शिलालेख एपिग्राफिया इंडिका भाग ४, पृ० ३११ पर छपा है। इस में साहसांक संवत् १२७९ का अभिप्राय है।

यह साहसांक संवत् भी निश्चय ही विक्रम संवत् है।

(ग) चतुर्भूतारिशीतांशु (१६५२)[1] भिरभिगणिते साहसाङ्कस्य वर्षे
वर्षे जल्लादीन्द्रक्षितिमुकुटमणेरप्यनन्तागभा(४०) भ्याम्।

पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नभसि गुरुदिने रामदासेन राज्ञा
विज्ञेनापूरितोऽयं तिथितुलितशिखो रामसेतुप्रदीपः॥

यह लेख रामदासकृत सेतुबंधटीका के अंत में मिलता है।[2] रामदास जयपुर राज्यांतर्गत वोली नगराधीश था। यह जलालुद्दीन अकबर महाराज के काल में हुआ। उसने विक्रम संवत् के लिये ही साहसांक सवंत् का प्रयोग किया है। यही बात पूर्वोद्धृत क, ख, प्रमाणों से भी स्पष्ट हो जाती है। कनिंघम का भी यही मत था कि "क" और "ख" में वर्णित शिलालेखों में साहसांक वत्सर से विक्रम सवंत् का ही ग्रहण होता है।

अतएव हारितांबर, रत्नेश्वरमिश्र, शार्ङ्गधर, मेरुतुंग, वररुचि और रामदास के लेखों से तथा शिलालेखों के प्रमाणों से यह बात निर्विवाद ठहरती है कि साहसांक, विक्रमादित्य और विक्रमार्क एक ही व्यक्ति के नाम थे।

---

१. १६५४ ?

२. निर्णयसागर, मुंबई का संस्करण, १९३५ ईसवीवर्ष, पृ० ५८४।

संस्कृत वाङ्मय में विक्रम-साहसांक के उत्तरकालीन अन्य साहसांक

१०—संस्कृत साहित्य के पाठ से पता लगता है कि विक्रम-साहसांक के उत्तरवर्ती कई अन्य राजाओं ने भी साहसांक की उपाधि धारण की थी।

(क) भोजराज के पिता महाराज मुंज (संवत् १०३१-१०५१) के नाम थे—वाक्पतिराज प्रथम, साहसांक, सिंधुराज, उत्पलराज इत्यादि।[1]

(ख) चालुक्य विक्रमादित्य भी साहसांक कहाया। उसका कवि बिल्हण लिखता है—

श्रीविक्रमादित्यमथावलोक्य स चिन्तयामास नृपः कदाचित्। अलङ्करोत्यद्भुतसाहसाङ्कः सिंहासनं चेदयमेकवीरः॥ विक्रमांकचरित ३।२६,२७।

इन पंक्तियों में चालुक्य विक्रम के पिता के विचार उल्लिखित हैं। वह अपने पुत्र को विक्रमादित्य और साहसांक नामों से स्मरण करता है। बिल्हण ने फिर लिखा है—

त्वद्भिया गिरिगुहाश्रये स्थिताः साहसांकगलितत्रपा नृपाः। विक्रमांकचरित ५।४०॥

यहाँ कवि ने साहसांक पद से चालुक्य विक्रम का संबोधन किया है।

मुंज तो स्पष्ट ही नवसाहसांक भी कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि उससे पहले एक मूल साहसांक हो चुका था। चालुक्य विक्रमादित्य को उसके कवि बिल्हण ने विक्रमादित्य नाम के कारण ही साहसांक कहा।

परलोकगत श्री राखालदास वंद्योपाध्याय की भूल

११—एपिग्राफिया इंडिका भाग १४ के संख्या १० के लेख की विवेचना में श्री राखालदास से एक भूल हुई है। वे समझते हैं कि सेन-वंश के राजा विजयसेन ने एक साहसांक को पराजित किया—

......'इन् वर्स ७, व्हेयर इट इज स्टेटिड दैट विजयसेन डिफीटेड ए किंग नेम्ड साहसांक'।

इस सातवें श्लोक का पाठ निम्नलिखित है—

तस्मादभूद् अखिलपार्थिव-चक्रवर्ती निर्व्याज-विक्रम-तिरस्कृत-साहसाङ्कः।
दिक्पालचक्र-पुटभेदन-गीतकीर्तिः पृथ्वीपतिर्विजयसेनपदप्रकाशः॥ ७॥[2]

इसका सीधा अर्थ यह है—जिस विजयसेन ने अपने निर्व्याज-विक्रम से साहसांक को भी तिरस्कृत किया, अथवा जो साहसांक से भी बढ़ गया। अर्थ तो राखालदास जी ने भी यही किया है—'हू हैड आउटशोन साहसांक,' परन्तु भाव अशुद्ध निकला है। इसका अभि-

१. पद्मगुप्त का साहसांकचरित।

२. एपिग्राफिया इंडिका, भाग १४, पृ० १५९, १६०।

प्राय इतना ही है कि उक्त शिलालेख के लिखनेवाले के मत में विजयसेन साहसांक से भी बड़ा राजा था। यह साहसांक पुरातन साहसांक ही था। विजयसेन के काल का कोई साहसांक नहीं था।

साहसांक नाम का एक ही व्यक्ति था

पूर्वोक्त जितने प्रमाणों में साहसांक शब्द आया है उनके देखने से यह निश्चय हो जाता है कि भारतीय इतिहास में साहसांक नाम का एक ही व्यक्ति था। सब प्रमाणों में साहसांक पद एकवचन में आया है। उसके उत्तरवर्ती राजा या तो नव-साहसांक आदि हुए या उन्होंने अपनी तुलना साहसांक से की।

संवत्-प्रवर्तक विक्रम-साहसांक ही विक्रम भी था

१२—एक शिलालेख में निम्नलिखित संवत् पढ़ा गया है—

विक्रमांक-नरनाथ-वत्सर।[1]

इस शिलालेख का संवत् भी विक्रम-संवत् ही माना जाता है।

१३—संस्कृत वाङ्मय में एक कालिदास और एक विक्रम की समकालिकता अत्यंत प्रसिद्ध रही है। १५वीं शती ईसा के पूर्वार्द्ध में संकलित सुभाषितावलि ग्रन्थ में किसी कवि का एक श्लोकांश है—

व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः।

इस पंक्ति से ज्ञात होता है कि विक्रम का विक्रमांक नाम बहुत विख्यात हो चुका था।

१४—संख्या १३ तक के लेख से यह स्पष्ट विदित होता है कि विक्रमादित्य, विक्रमार्क, साहसांक और विक्रमांक नाम एक ही व्यक्ति के थे। आश्चर्य है कि महाराज चन्द्रगुप्त गुप्त की अनेक उपलब्ध मुद्राओं पर श्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्यः, श्रीविक्रमादित्यः, विक्रमादित्य और श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमांक लिखा मिलता है। चन्द्रगुप्त-विक्रम के लिये विक्रम पद उपाधिमात्र नहीं रहा था। वह तो उसका एक प्रिय नाम हो चुका था। इसी लिये उसकी मुद्राओं पर केवल विक्रमादित्यः भी लिखा मिला है। उसके उत्तरवर्ती कुछ एक राजाओं ने विक्रम की उपाधि मात्र धारण की।

संवत्-प्रवर्तक साहसांक-विक्रम गुप्त-वंश का चन्द्रगुप्त-विक्रम ही था

१५—राष्ट्रकूट गोविंद चतुर्थ के शक ७९३ (=संवत् ९२८) के एक ताम्रपत्र में लिखा है—

सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजे क्रूरता बन्धुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः।
शौचाशौचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमङ्गीकृतं त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसाङ्कोऽभवत्॥[2]

---

१. प्रोसीडिंग्स् आव् दि ए० एस्० बी०, १८८०, पृ० ७७, तथा ए० इ०, भाग २०, संख्या ४०१।

२. एपिग्राफिया इंडिका, भाग ७, खंभात के ताम्रपत्र, पृ० ३८।

अर्थात् राष्ट्रकूट गोविंद चतुर्थ ने साहसांक के दुर्गुण तो नहीं अपनाए, परन्तु त्याग और असम साहस से वह संसार में साहसांक प्रसिद्ध हो गया।

इस श्लोक में यदि मूल साहसांक के दोष न गिनाए गए होते, तो कोई कह सकता था कि गोविंद चतुर्थ ही साहसांक था, परन्तु दैवयोग से वे दोष यहां स्फुट रूप में लिखे गए हैं। वे दोष हैं—ज्येष्ठभ्राता के प्रति क्रूर कर्म। ज्येष्ठभ्राता की स्त्री के साथ अपना विवाह कर लेना। भय से उन्मत्त बनना अथवा पैशाच्य अंगीकार करना। इन दोषों के साथ त्याग और असम साहस के दो गुण भी वर्णन किए गए हैं।

अगले लेख से यह स्पष्ट हो जायगा कि जिस साहसांक के गुण-दोष उपर्युक्त ताम्रपत्र पर अंकित किए गए थे, वह साहसांक गुप्त-कुल का सुप्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था।

१६—इन्हीं घटनाओं को पुष्ट करने वाला शक ७९५ (संवत् ९३०) का निम्नलिखित लेख है—

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।[1]

अर्थात् उस राजा ने भाई को मारकर राज्य हरा और उसकी देवी को ले लिया। लाख दान के स्थान पर उसने कोटि लिखा दिया। कलि में वह (विलक्षण) दाता गुप्तवंशीय हुआ।

१७—साहसांक चन्द्रगुप्त-विक्रम सम्बन्धी जो घटनाएं पुरातन लेखों के आधार पर ऊपर लिखी गई हैं, उनका सविस्तर वर्णन कवि विशाखदेव-प्रणीत देवीचन्द्रगुप्त नाटक के उद्धरणों में भी मिलता है। उन उद्धरणों की ऐतिहासिक बातों का उल्लेख अन्यत्र होगा।

१८—देवीचंद्रगुप्त में वर्णित मुख्य घटनाएं ऐतिहासिक थीं। इस बात का प्रमाण चरकसंहिता-व्याख्याकार चक्रपाणिदत्त भी देता है। चक्रपाणिदत्त का काल लगभग विक्रम की बारहवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है। वह लिखता है—

उपेत्य धीयते इति उपधिश्छद्म इत्यर्थः। तमनु'''उत्तरकालं हि भ्रात्रादिवधेन फलेन ज्ञायते—यदयमुन्मत्तश्छद्मप्रचारी चन्द्रगुप्त इति। विमानस्थान ४।८॥

चक्रपाणिदत्त किसी काल्पनिक घटना का वर्णन नहीं कर सकता था। चन्द्रगुप्त का कृतक उन्माद एक ऐतिहासिक घटना थी और उसी का उल्लेख चक्र ने किया। बहुत संभव है चक्र ने यह बात अपने से पूर्व काल के टीकाकारों से ली हो।

१९—अध्यापक अल्टेकर ने मजमल-उत-तवारीख से एक उद्धरण दिया है।[2] उनके

---

१. एपिग्राफिया इंडिका, भाग १८, संजान ताम्रपत्र, पृ० २४८।

२. जर्नल ऑव् बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी। ए हिस्ट्री ऑव् दि गुप्ताज आर० एन० दाँडेकर रचित, पृ० ७२, ७३ पर उद्धृत। यह फारसी ग्रंथ तेरहवीं शती का है, ग्यारहवीं का नहीं। मूल ग्रंथ के हस्तलेख ब्रिटिश अद्भुतालय और आक्सफोर्ड में हैं।

अनुसार यह ग्रंथ ११ वीं शताब्दी विक्रम में रचा गया था। इस ग्रंथ का आधार एक अरबी ग्रंथ था, और उस अरबी ग्रंथ का आधर कोई भारतीय ग्रंथ था। मजमल-उत-तवारीख में चंद्रगुप्त-विक्रम के उन्मत्त बनने और अपने भाई को मारने आदि की सारी कथा का उल्लेख है।

२०—यह कथा देवीचन्द्रगुप्त नाटक, चक्रपाणिदत्त की चरकटीका, मजमल-उत-तवारीख और राष्ट्रकूटों के संजान आदि के ताम्रपत्रों में पाई जाती है। विद्वान् पाठकों को ध्यान रहे कि भरत मुनि के अनुसार नाटक की कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक होता है। विशाखदेव ने इस बात का अवश्य ध्यान रखा है और चक्रपाणि का प्रमाण यह निश्चित कराता है कि उन्मत्त चन्द्रगुप्त की कथा ऐतिहासिक थी।

मजमल-उत तवारीख में वर्णित घटना कभी बहुत प्रसिद्ध थी। कैपटन विल्फर्ड ने लिखा है—"लोगों का विचार है, विक्रमादित्य ने अपने भाई शकादित्य अथवा भर्तृहरि को एक निकम्मे और छोटे से चाकू द्वारा शनैः २ और निर्दयता से उसका सिर काट कर मारा।[1]

चंद्रगुप्त-सहसांक और भट्टार हरिचन्द्र

२१—शक १०३३ (संवत् ११६८ का वैद्यराज तथा गद्य-पद्य कवि महेश्वर अपने विश्व-प्रकाश कोश की भूमिका में लिखता है—

श्रीसाहसाङ्कनृपतेरनवद्यवैद्यविद्यातरङ्गपदमद्वयमेव बिभ्रत् ।
यश्चन्द्रचारुचरितो हरिचन्द्रनामा स्वव्याख्यया चरकतन्त्रमलश्चकार ॥५॥

आसीदसीम-वसुधाधिप-वन्दनीये तस्यान्वये सकलवैद्यकलावतंसः ।
शक्रस्य दस्र इव गाधिपुराधिपस्य श्रीकृष्ण इत्यमलकीर्तिलतावितानः ॥६॥

अर्थात् चरकतंत्र पर व्याख्या लिखनेवाला हरिचंद्र वैद्य महाराज श्रीसाहसांक का वैद्य था। उसके असीम राजाओं से वंदनीय कुल में श्रीकृष्ण वैद्य हुआ। श्रीकृष्ण गाधिपुर अथवा कन्नौज के राजा का वैद्य था।

इससे आगे श्लोक १२ में महेश्वर अपने साहसांकचरित नामक एक महाप्रबंध रचने का उल्लेख करता है। श्लोक १६ में लिखा है—साहसांक एक कोशकार भी था।

२२—महेश्वर ने शब्दप्रभेद नाम का ग्रंथ भी लिखा था। उसमें वह साहसांकचरित का कथन करता है। शब्द-प्रभेद की एक हस्तलिखित प्रति अलवर के राजकीय पुस्तकालय में विद्यमान है।[2]

२३—वैद्य हरिचंद्र अथवा भट्टारहरिचंद्र की चरकटीका का कुछ भाग अब भी संप्राप्त है।[3]

---

१. एशियाटिक रिसर्चिज़, भाग ९, पृ० १५२।

२. अलवर राजकीय हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, पृ० १०२, संक्षिप्त अवतरण।

३. पं० मस्तराम का संस्करण, लाहौर, संवत् १९८९।

आयुर्वेदीय ग्रंथों की टीकाओं में तो भट्टार हरिचन्द्र की चरक-व्याख्या के उद्धरण भरे पड़े हैं।

२४—वाग्भट-विरचित अष्टांग-संग्रह का व्याख्याता वाग्भट-शिष्य इंदु लिखता है—

(क) या च खरणादसंहिता भट्टारहरिचन्द्रकृता श्रूयते।[1]

(ख) भट्टारहरिचन्द्रेण खरणादे प्रकीर्तिता।४५।[2]

इन लेखों से ज्ञात होता है कि साहसांक का समकालीन भट्टार हरिचन्द्र खरणाद-संहिता का कर्ता था। क्या इस खरनाद शब्द का सम्बन्ध गर्दभिल्ल नाम से हो सकता है। स्मरण रहे खरनादिन् शब्द गणपाठ ४।१।९६ में पढ़ा गया है।

२५—वृंदमाधव नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ की श्रीकण्ठदत्तविरचित कुसुमावली-टीका में हरिचन्द्र के ग्रन्थ का एक श्लोक उद्धृत है—

केचिदिह सैन्धवादीनां मानभेदार्थं नातिप्रसिद्धं हरिश्चन्द्रमतमुपदर्शयन्ति—

हरीतकी हरिहिहरतुल्यषड्गुणां चतुर्गुणां चतुरहिविलासपिप्पली।
द्विचित्रकं वरदवरैकसैन्धवं रसायनं कुरु नृप वह्निदीपनम् ॥इति॥[3]

इस श्लोक में हरिचन्द्र एक नृप को संबोधन करके कहता है। यह नृप या तो कोई गर्दभिल्ल होगा या साहसांक-विक्रम।

हरिचन्द्र और साहसांक-विक्रम अथवा चन्द्रगुप्त का संबंध अन्यत्र भी प्रसिद्ध है—

२६—संवत् ९५० के समीप का महाकवि राजशेखर अपनी काव्यमीमांसा में लिखता है—

श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—

इह कालिदासमेण्ठावत्रामर-सूर-भारवयः। हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥[4]

अर्थात् काव्यकार हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त उज्जयिनी में परीक्षित हुए। यह हरिचन्द्र भट्टार हरिचन्द्र है और चन्द्रगुप्त निश्चय ही साहसांक विक्रमादित्य है।

क्या चन्द्रगुप्त की राजधानी उज्जयिनी हो गई थी।

२७—एक हरिचन्द्र किसी प्रतापी राजा की कीर्ति गाता है—

वक्त्रे साक्षात्सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपि भवतो नैव मुञ्चन्ति राजन्
स्वच्छेऽतो मानसेऽस्मिन्नवतरति-कथं तोयलेशाभिलाषः ॥ ४ ॥ हरिचन्द्रस्य[5]

---

१. कल्पस्थान, आठवां अध्याय।
२. वही आठवें अध्याय का अन्त।
३. षष्ठः, अजीर्णरोगाधिकारः, पृ० १०६।
४. दशम अध्याय।
५. सदुक्तिकर्णामृत, प्रवाहः तृतीयः, ५४।४॥

यह श्लोक स्वल्प पाठांतरों के साथ प्रबन्धचिंतामणि में दो स्थानों पर मिलता है। पहला स्थान है विक्रमार्कप्रबन्ध[1] और दूसरा स्थान है भोजभीमप्रबन्ध।[2] दूसरे प्रबन्ध में लिखा है कि यह श्लोक श्रीविक्रमार्क की धर्मवहिका पर लिखा था।

यह श्लोक साहसांक-चन्द्रगुप्त की स्तुति में ही कहा गया था और इसका कहने वाला हरिचन्द्र चन्द्रगुप्त का साथी भट्टार हरिचन्द्र ही था।

सदुक्तिकर्णामृत का लेखक धन्यवाद का पात्र है जिसने इस श्लोक के कर्ता हरिचन्द्र का नाम सुरक्षित कर दिया।

२८. संभवतः भट्टार हरिचन्द्र इस साहसाङ्क=चन्द्रगुप्त का भाई था। आयुर्वेद के सब ग्रन्थों में उसे भट्टार अथवा भट्टारक[3] लिखा है। विश्वप्रकाश कोश में लिखा है कि भट्टारक पद राजा में भी प्रयुक्त होता है।[4] गुप्त शिलालेखों में इस पद का बहु-प्रयोग हुआ है। अतः भट्टार या भट्टारक हरिचन्द्र चन्द्रगुप्त का भाई या निकटतम सम्बन्धी होगा। महेश्वर का एक वचन संख्या २१ में उद्धृत किया गया है। तदनुसार हरिचन्द्र का वंश अनेक राजाओं से वन्दनीय था। यह संकेत गुप्त-वंश की ओर ही है।

२९. भट्ट बाण का स्मरण किया हुआ हरिचन्द्र यही हरिचन्द्र प्रतीत होता है—

भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।[5]

चरक व्याख्या और खरणाद-संहिता के अतिरिक्त हरिचन्द्र का यह तीसरा ग्रन्थ होगा। संभव है वह साहसांक-चरित हो और उसी को आदर्श मान कर बाण ने हर्षचरित की रचना की हो।

३०—सुदक्तिकर्णामृत में साहसांक के नामसे एक सूक्ति उद्धृत की गई है।[6]

३१—जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का निम्नलिखित वचन है—

शूरः शास्त्रविधेर्ज्ञाता साहसाङ्कः स भूपतिः। सेव्यं सकललोकस्य विदधे गन्धमादनम्॥[7]

अर्थात् शूर और शास्त्रज्ञ महाराज साहसांक ने गंधमादन ग्रन्थ रचा।

आचार्य दंडी की अवंतिसुन्दरीकथा में किसी ग्रन्थ गंध० का नामोल्लेख है।[8]

३२—अमरकोश पर लिखे गए टीकासर्वस्व में विक्रमादित्य-कोश का प्रमाण उद्धृत किया गया है।[9] पुरुषोत्तम अपनी हारावलि के अंत में विक्रमादित्य और उसके कोश

---

१. सिंघी ग्रन्थमाला संस्करण, पृ० ८ पर D कोश का अधिक पाठ, संख्या १५।

२. वही, पृ० २७।

३. अष्टाङ्गसंग्रह, निदानस्थान, इन्दु की टीका, अध्याय २, पृ० १२।

४. कान्तवर्ग, १८९।

५. हर्षचरित की भूमिका।

६. ५।१५।३॥ लाहौर संस्करण, पृ० २८८।

७. ४।५७॥

८. पृ० ७।

९. २।५।४॥

संसारावर्त का नाम स्मरण करता है। महेश्वर से स्मरण किए गए साहसांक कोश का उल्लेख हम पहले कर आए हैं। यह संसारावर्त कोश विक्रमादित्य-साहसांक की कृति था।

अतः संख्या २६ में लिखी गई राजशेखर की बात कि चन्द्रगुप्त (साहसांक) एक विद्वान् काव्यकार था, उपर्युक्त तीनों प्रमाणों से सिद्ध होती है।

३३—सेतुबन्ध पर किसी साहसांक की भी एक टीका थी।[1] ऐतिहासिक अध्ययन के लिये उस टीका का अन्वेषण अत्यन्त आवश्यक है।

३४—राजशेखर काव्यमीमांसा अध्याय १० में लिखता है—

श्रूयते चोजयिन्यां साहसाङ्को नाम राजा। तेन च संस्कृतभाषात्मकमन्तःपुर एव प्रवर्तितो नियमः।

३५—राजशेखर के अनुसार यही साहसांक अपनी ब्रह्मसभा का सभापति हुआ करता था।[2]

शकांतक अथवा शकारि-विक्रम अथवा चन्द्रगुप्त

भारतीय इतिहास में शकों का प्रथम नाशक श्रीहर्षविक्रम अथवा शूद्रक था।[3] उसके पश्चात् शक फिर प्रबल हो गए। उनका नाश चन्द्रगुप्त-विक्रम ने किया।

३६—सदुक्तिकर्णामृत में कवि अमरु के तीन श्लोक एक स्थान पर उद्धृत हैं। उन में से तीसरे श्लोक में लिखा है—

श्लोकोऽयं हरिषाभिधानकविना देवस्य तस्याग्रतो यावद्यावदुदीरितः शकवधूवैधव्यदीक्षागुरोः।

यह श्लोक महाराज भोज के शृंगारप्रकाश अध्याय २० में भी मिलता है। यहा 'शकवधूवैधव्यदीक्षागुरु' शकरिपु अथवा शकारि का विशेषण है, क्योंकि सुदुक्तिकर्णामृत में उद्धृत अमरु के इससे पूर्व श्लोक में शकरिपु प्रयोग स्पष्ट मिलता है। इसलिये यह ज्ञात होता है कि शकवधू० प्रयोग चन्द्रगुप्त के लिये एक उचित विशेषण है।

क्या हरिषाभिधान कवि समुद्रगुप्त की प्रशस्ति वाला हरिषेण कवि था। सम्भव है इस श्लोक के पाठ में कभी हरिषेणनामकविना पाठ हो।

जैन आचार्य सिद्धसेन और विक्रमादित्य

३७—यही साहसाङ्क-विक्रमार्क आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का समकालीन था। अगली गाथा बहुत पुरातन काल से जैन ग्रंथों में वर्णित आ रही है—

धर्मलाभ इति प्रोक्ते दूरादुच्छ्रितपाणये। सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः॥[4]

---

१. ओरियंटल कान्फरेंस वृत्त, लाहौर, भाग प्रथम, पृ० ६६४,६६५।

२. का० मी० अ० १०॥ ३. पूर्व अध्याय ४३।

४. प्रभावकचरित, वृद्धवादिसूरिचरित, श्लोक ६४। प्रबन्ध-चिन्तामणि, पृ० ७।

तब राजा विक्रमार्क-साहसाङ्क ने आचार्य सिद्धसेन से पूछा कि मेरे समान कोई जैन राजा आगे होगा। इस पर सिद्धसेनसूरि ने उत्तर दिया—

पुन्ने वाससहस्से सयम्मि वरिसाण नवनवई अहिए। होही कुमरनरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो ॥[1]

अर्थात्—हे विक्रमराज तेरे ११६६ वर्ष पश्चात् नरेन्द्र कुमार (पाल) होगा।

अब यदि यह गाथा पुरातन और सत्य है, तो मानना पड़ेगा कि विक्रमसाहसाङ्क के ११९९ वर्ष के पश्चात् कुमारपाल राजा हुआ। कुमारपाल का काल विक्रम संवत् ११९९ के समीप है। अतः इस जैन परंपरा के अनुसार यह साहसाङ्क ही विक्रमसंवत् का प्रवर्तक विक्रमार्क था। जैन अनुश्रुति में प्रसिद्ध है कि यह गाथा कुडङ्गेश्वर प्रासाद की प्रशस्तिपट्टिका पर लिखी थी।[2]

३८. शत्रुञ्जय तीर्थ पर सुप्रसिद्ध जावडि नामक श्रेष्ठी का स्थापित कराया एक बिम्ब था। उस बिम्ब के स्थान का वर्णन शत्रुञ्जय माहात्म्य और उसके पश्चात् रचे हुए शत्रुञ्जय तीर्थकल्प में मिलता है। तीर्थकल्प के विविध लेख संवत् १३६४-१३८९ तक लिखे गये थे। संवत् १३६९ में जावड़ि-स्थापित बिम्ब म्लेच्छों से नष्ट किया गया—

ह्रीग्रहर्तुक्रियास्थान (१३६९) संख्ये विक्रमवत्सरे। जावडिस्थापितं बिम्बं म्लेच्छैर्भग्नं कलेर्वशात् ॥[3]

जिनप्रभसूरि ने यह कल्प संवत् १३८५ में लिखा था। शत्रुञ्जय माहात्म्य उस से पूर्व की रचना है। जावडि के इस बिम्ब के सम्बन्ध में तीर्थकल्प आदि में लिखा है—

अष्टोत्तरे वर्षशतेऽतीते श्रीविक्रमादिह। बहुद्रव्यव्ययाद् बिम्बं जावडिः स न्यवीविशत् ॥७१॥[4]

यह तिथि अवश्य उस बिम्ब पर थी। यह विक्रम साहसाङ्क-चन्द्रगुप्त ही था। अतः निश्चित होता है कि विक्रम-संवत् चन्द्रगुप्त (द्वितीय) साहसाङ्क से सम्बन्ध रखता था।

३९. धनेश्वरसूरि विरचित शत्रुञ्जय माहात्म्य (४७७ विक्रम संवत्) में इसी भाव का श्लोक है—

विक्रमादित्यतस्तीर्थे जावडस्य महात्मनः। अष्टोत्तरशताब्दान्ते भाविन्युद्धृतिरुत्तमा ॥[5]

४०. सिद्धसेन दिवाकर के समकालीन विक्रमादित्य-साहसाङ्क की एक शासनपट्टीका कभी विद्यमान थी। वह संभवतः शक-विजय के कुछ दिन पश्चात् लिखी गई थी। उस पर लिखा था—

श्रीमदुज्जयिन्यां संवत् १, चैत्रसुदी १, गुरौ भाटदेशीय-महाक्षपटलिक-परमार्हत-श्वेताम्बरोपासक-ब्राह्मणगौतमसुतकात्यायनेन राजाऽलेखयत्।[6]

---

१. प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० ८ तथा ७८। प्रबन्धकोश, पृ० १७ विविधतीर्थ कल्प पृ० ८९।

२. प्र० चिन्तामणि, पृ० ७८।

३. विविधतीर्थकल्प, पृ० ५ श्लोक ११९।

४. विविधतीर्थकल्प, पृ० ,३। तथा देखो, पुरातनप्रबन्धसंग्रह, पृ १०१।

५. सर्ग १५, श्लोक ८१।

६. विविधतीर्थकल्प, पृ० ८८, ८९।

इस से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् चैत्र मास से आरम्भ हुआ था। विक्रमादित्य ने यह पट्टिका श्री सिद्धसेन दिवाकर की सम्मति से लिखवाई थी, अतः यह विक्रम वही साहसाङ्क है।

४१. पुरातनप्रबन्धसंग्रह के विक्रमार्क-प्रबन्ध में लिखा है—

अकार्षीदनृणामुर्वीं विक्रमादित्यभूपतिः। स्वर्णे प्राप्ते तु हैरंकस्तुरुष्काकुलितां व्यधात्॥

हूणवंशे समुत्पन्नो विक्रमादित्यभूपतिः। गन्धर्वसेनतनयः पृथिवीमनृणां व्यधात्॥

अर्थात्—विक्रमादित्य हूणवंशीय था और गन्धर्वसेन का पुत्र था। गुप्तों का कुल पार्वतीय कुल था। अतः लेखक ने उसे ही हूणवंश लिखा है। गन्धर्वसेन समुद्रगुप्त का दूसरा नाम है। महाराज समुद्रगुप्त संगीतप्रिय था। उसकी वीणा-वादन की मूर्ति वाली मुद्राएँ सुप्रसिद्ध हैं। इसलिए महाराज समुद्रगुप्त को गन्धर्वसेन कहते होंगे।

४२. गन्धर्वसेन का गर्दभिल-वंश से कोई सम्बन्ध नहीं था। कई ग्रन्थकारों ने भूल से यह समझ लिया है। नये जैन ग्रन्थों का मत है कि नरवाहण अथवा नखाहण ? के पश्चात्—

तेरस गद्दभिल्लस्स चत्तारि सगस्स तओ विक्कमाइच्चो।[1]

अर्थात् १३ वर्ष गर्दभिल, चार वर्ष शक और तत्पश्चात् विक्रमादित्य राजा होगा।

त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति का मत है कि चष्टणों या शकों के पश्चात् गुप्तों का राज्य होगा। इस प्रज्ञप्ति में विक्रमादित्य का नाम नहीं। कारण यह है कि गुप्त साहसाङ्क-विक्रमादित्य ही जैनों का विक्रमादित्य था। जब प्रज्ञप्तिकार ने गुप्तों का उल्लेख कर दिया, तो उसने विक्रम नाम लेने की आवश्यकता नहीं समझी।

४३. मुञ्ज दूसरा साहसाङ्क था, अतः उसके कवि पद्मगुप्त ने दशम शताब्दी ईसा के अन्त में नव-साहसाङ्क-चरित लिखा। पहला साहसांक प्रसिद्ध विक्रम हो चुका था।

४४. साहसांक के चरित देर तक प्रसिद्ध रहे। जगद्देव (१२ वीं शती विक्रम) का कवि कहता है कि जगद्देव के सामने लोग उन में भी मन्दादर हुए—

लोकः सम्प्रति साहसाङ्कचरिताश्चर्येऽपि मन्दादरः।[2]

शकारि विक्रम

संस्कृत वाङ्मय में शकारि विक्रम अत्यन्त प्रसिद्ध है। शकारि विक्रम सम्बन्धी लेख आगे लिखे जाते हैं।

४५. शकारि का प्रधान अर्थ शकों का शत्रु नहीं, प्रत्युत शक-राज का शत्रु है—आठवीं शताब्दी ईसा के अन्त वा नवम शताब्दी के आरम्भ का ग्रन्थकार अभिनन्द अपने रामचरित में लिखता है—

शकभूपरिपोरनन्तरं कवयः कुत्र पवित्रसंकथाः। युवराज इवायमीक्षितो नृपतिः काव्यकलाकुतूहली॥[3]

---

१. विविधतीर्थकल्प, पृ० ३९। २. प्रबन्धचिन्तामणि पृ० ११५। ३. २२ सर्ग का आरम्भ।

अर्थात्—शक-राज के शत्रु (विक्रम) के पश्चात् कवि कहाँ पवित्र कथाएँ कहते हैं।

४६. इसी भाव का स्पष्टीकरण वह अगले श्लोकार्ध में करता है—

हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना।

अर्थात्—कालिदास की कृतियाँ शकारि विक्रम ने प्रसिद्ध कीं।

४७. वैसे तो महाराज समुद्रगुप्त ने भी शकों से युद्ध किए थे। प्रयाग की प्रशस्ति में लिखा है कि समुद्रगुप्त शक-मुरुण्डों से पूजित था। पुनः विक्रम शकाराति इस लिए कहाया कि उसने शक-भूप को विशेष प्रकार से मारा।

४८. उस विशेष-प्रकार का उल्लेख भट्ट बाण ने किया है—

अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्।[1]

इस वाक्य की टीका करता हुआ शंकरार्य लिखता है—

शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः।

अर्थात्—चंद्रगुप्त ने स्त्रीवेष धारण करके अपने भाई की स्त्री ध्रुवदेवी को मांगने वाले शकपति को मारा।

इस साहस के कारण चन्द्रगुप्त साहसांक कहाया और इसी कारण वह शकारि प्रसिद्ध हुआ। भारतीय इतिहास का शकारिविशेष अथवा शकाराति यही चन्द्रगुप्त था।

४९. ध्रुवदेवी के पति की क्लीवता देवीचन्द्रगुप्त के निम्नलिखित श्लोकार्ध से स्पष्ट होती है—पत्युः क्लीवजनोचितेन यदि तेनानेन पुंसः सतः।[2]

इस घटना की पुष्टि शक ७९५ के संख्या १६ के निम्नलिखित लेख से होती है—

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्तो लक्षं कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।[3]

अर्थात्—उस गुप्तकुल के राजा ने भाई को मार कर राज्य हरा और उस की देवी को भी ले लिया।

५०. संख्या १५ वाले ताम्रपत्र के श्लोक से यही भाव टपकता है कि साहसांक ने अपने बंधु की स्त्री को ले लिया।

यह गुप्तान्वय चंद्रगुप्त, साहसांक या विक्रमादित्य ही था।

५१. चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य ग्रंथ के लेखक महाशय गंगाप्रसाद मेहता इन घटनाओं को

---

१. हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ६९६।

२. Classical Sanskrit Literature, by M. Krishnamachariar, p. 609.

३. एपिग्राफिया इंडिका, भाग १८, पृ० २४८।

सत्य नहीं समझते ।[१] उन्होंने इतिहास का सारा क्रम नहीं जोड़ा, अन्यथा वे ऐसा न लिखते । हम उन से सहमत नहीं ।

५२. मुद्राराक्षस नाटक का कर्ता कवि विशाखदत्त एक राजा था । वह चन्द्रगुप्त का समकालीन था । उस ने देवीचन्द्रगुप्त नाटक इसी घटना पर लिखा । उस के विषय में अभिनवगुप्त लिखता है—

यथा देवीचन्द्रगुप्ते शकपतिना परं कृच्छ्रमापादितं रामगुप्तस्कन्धावारमनुजिघृक्षुरुपायान्तरागोचरे प्रतीकारे निशि वेतालसाधनमध्यवसन् कुमारचन्द्रगुप्त आत्रेयेण विदूषकेणोक्तः ।[२]

समकालीन लेखक का कथन शीघ्रता से परे नहीं फेंका जा सकता । देवीचन्द्रगुप्त नाटक सर्वथा ऐतिहासिक नाटक था । उस का आधार एक सत्य इतिहास था ।

५३. मुद्राराक्षस नाटक का भरतवाक्य इस प्रकार का है—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।
म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ॥१९॥

अर्थात्—जिस प्रकार विष्णु ने पृथिवी को आश्रय दिया था. उसी प्रकार महाराज चन्द्रगुप्त ने म्लेच्छों से तपी हुई पृथ्वी को अपने बाहु-युगल का आश्रय दिया ।

विशाखदत्त वस्तुतः अपने महाराज चन्द्रगुप्त का वर्णन यहां कर रहा है । उसी के बाहुयुगल अपार साहस दिखाते थे । इसी कारण चन्द्रगुप्त साहसांक कहाया ।

५४. देवीचन्द्रगुप्त का कर्ता विशाखदेव लिखा गया है । विशाखदत्त और विशाखदेव एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं । अयोध्या के किसी विशाखदेव राजा की मुद्राएं मिलती हैं ।[३] विशाखदत्त मुद्राराक्षस नाटक के आरम्भ में अपने आप को सामन्त वटेश्वरदत्त का पौत्र और महाराज पृथु का पुत्र लिखता है । संभव है विशाखदेव वाली मुद्राएं इस की अथवा इसी कुल के किसी पूर्ववर्ती विशाखदेव की हों । एलन महाशय के अनुसार वे मुद्राएं ईसापूर्व पहली शताब्दी की हैं ।

५५. राजतरंगिणी में कल्हण लिखता है कि कश्मीर मण्डल में प्रतापादित्य नाम का राजा था । वह किसी विक्रमादित्य राजा का सम्बन्धी था । कई लेखक इस विक्रमादित्य को भूल से शकारि विक्रमादित्य समझते हैं —

शकारिविक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः । अन्यैरत्रान्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् ॥६॥[४]

---

१. पृ० १५४, १५५ । २. बनारस हिन्दू यूनि० जर्नल में डा० वि० राघवन का लेख पृ० २५ ।

३. Catalogue of Coins of Ancient India, by John Allan, 1936, p. 131.

४. दूसरा तरंग ।

विक्रम और वररुचि

ज्योतिर्विदाभरण के अनुसार विक्रम की सभा में नौ विद्वान् थे । वररुचि उन में से एक था ।[1]

५६. वररुचि और साहसांक-विक्रम की समकालिकता पूर्व संख्या ४ में पूरी स्पष्ट की गई है ।

५७. सिद्धसेन दिवाकर के कल्याणमन्दिर का टीकाकार तपाचार्य लिखता है—श्री उज्जयिन्यां श्रीविक्रमस्य पुरोधसः पुत्रो देवसिका-कुक्षिभूः सिद्धसेनो वादीन्द्रो वादार्थं भृगुकच्छपुरं गतः ।

५८. इस वचन का स्पष्टीकरण प्रबन्धकोश के निम्नस्थ वचन से होता है —......आवन्त्यां विक्रमादित्यो राजा ।...... तस्य राज्ये मान्यः कात्यायनगोत्रावतंसो देवर्षिर्द्विजः । तत्पत्नी देवसिका । तयोः सिद्धसेनो नाम पुत्रः ।[2]

५९. हमारा विचार है कि सिद्धसेन का पिता कात्यायनगोत्री था, और आचार्य वररुचि उस से भिन्न व्यक्ति था ।

६०. सिद्धसेन दिवाकर को श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के लोग आरम्भ से मानते आए हैं । अतः उस का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी के पश्चात् का नहीं हो सकता । उस के पश्चात् दोनों सम्प्रदायों के आचार्य पृथक् पृथक् हुए ।

६१. आचार्य वररुचि अमरसिंह का पूर्वज अथवा समकालीन था । अमर ने उस के ग्रन्थ का प्रयोग किया है । अमर लिखता है—

संमाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः ।

इस पर टीकासर्वस्वकार लिखता है—

व्याडि-वररुचि-प्रभृतीनां तन्त्राणि समाहृत्य ।

६२. अतः वररुचि का काल नया नहीं । इस वररुचि के अनेक ग्रन्थ अब भी मिलते हैं । वाररुच-निरुक्त समुच्चय ग्रन्थ स्कन्दस्वामी (संवत् ६८७) से बहुत पहले का ग्रन्थ है ।

६३. धोयी अपरनाम श्रुतिधर जो राजा लक्ष्मणसेन (वि० सं० ११७२) का सभापण्डित था, लिखता है—

ख्यातो यश्च श्रुतिधरतया, विक्रमादित्यगोष्ठी-विद्याभर्तुः खलु वररुचेरास्साद प्रतिष्ठाम् ॥[3]

अर्थात्—श्रुतिधर ने लक्ष्मणसेन की सभा में वही प्रतिष्ठा प्राप्त की, जो विक्रमादित्य की सभा में वररुचि ने की थी ।

६४. इन अनेक प्रमाणों से निश्चित होता है कि किसी महाप्रतापी महाराज विक्रम का वररुचि से सम्बन्ध था । यह वररुचि अमर आदि से पहले कई ग्रन्थ रच चुका था और विक्रम तो प्रसिद्ध विक्रम था ।

---

१. ज्योतिर्विदाभरण २२।१०॥ २. प्रबन्धकोश पृ० १५ । ३. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० २९७ ।

६५. वररुचि के सूत्र शर्ववर्मा के कातन्त्र व्याकरण में सम्मिलित हुए हैं । अतः वररुचि दूसरी शताब्दी विक्रम का अथवा उस से पहले का ग्रन्थकार था। उस का आश्रयदाता साहसांक भी तभी हुआ था।

कालिदास और विक्रम चन्द्रगुप्त

६६. संख्या २५ में उल्लिखित अभिनन्द के प्रमाण से लिखा जा चुका है कि शकाराति ने कालिदास की कृतियां बहुत प्रसिद्ध कीं।

६७. कहते हैं बौद्ध-आचार्य दिङ्नाग आचार्य वसुबन्धु का शिष्य था। विनयतोष भट्टाचार्य महाशय ने तत्त्वसंग्रह की अंग्रेजी भूमिका में लिखा है—

"He was born of a Brahmin family in Simhavaktra near Kanchi...... he became the desciple of Vasubandhu,... ..he was known as the Fighting bull or a Bull in Discussion He travelled from place to place and was mainly engaged in defeating Tirtha logicians and converting them to Buddhist faith."[1]

यह वर्णन तिब्बती ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। इस की तुलना मूलकल्प के निम्नलिखित श्लोक से करनी चाहिए—

अपरः प्रव्रजितः श्रेष्ठः सैह्मिकापुरवास्तवी । अनार्या आर्यसंज्ञी च सिंहलद्वीपवासिन् ॥९४३॥

परप्रवादिनिषेद्धासौ तीर्थ्यानामतदूषकः ।९४।

यदि हम भूल नहीं करते तो ये दोनों लेख परस्पर बहुत सदृशता रखते हैं।

६८. परमार्थ (सन् ४९९—५६०) ने आचार्य वसुबन्धु के जीवनचरित में लिखा है कि वसुबन्धु और विक्रमादित्य समकालिक थे। वसुबन्धु के गुरु बुद्धमित्र को विन्ध्यवासी ने एक वाद में पराजित किया था विंसेण्ट स्मिथ का विचार है कि वसुबन्धु गुप्त-कुल के चन्द्रगुप्त प्रथम का समकालीन था। और उसका काल सन् २८० से ३६० तक था। स्मिथ महाशय की इस कल्पना का कारण डा० फ्लीट का लेख है। डा० फ्लीट ने गुप्त-संवत का आरम्भ सन् ३१९ से माना है। स्मिथ ने फ्लीट की तिथि को ठीक मान कर सारी कल्पना की है।

६९. हमारा विचार है कि वसुबन्धु और उसका शिष्य दिङ्नाग चन्द्रगुप्त द्वितीय उपनाम साहसांक-विक्रम के समकालिक थे। इसी कारण से कालिदास ने मेघदूत के श्लोक में श्लेष द्वारा दिङ्नाग का उल्लेख किया है—

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पततोदङ्मुखः खं दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥

इन पर मल्लिनाथ लिखता है—

दिङ्नागानां पूजायां बहुवचनम् । दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन् ।

---

1. Foreward, p. XXXIV.

हम समझते हैं कि मल्लिनाथ ने इस श्लोक के अर्थ में दिङ्नागाचार्य का संकेत ठीक समझा है। उस को किसी परम्परा से यह अर्थ अवगत था।

७०. कालिदास, चन्द्रगुप्त-विक्रम, सुबन्धु और दिङ्नाग की इस समकालिकता से और भी कई सत्य परिणाम निकलते हैं।

७१. वासवदत्ता का कर्ता सुबन्धु भट्ट बाण से बहुत पहले हो चुका था। वह सुबन्धु अपने सुन्दर ग्रन्थ के रचने पर दुःखित हो रहा है। सुबन्धु को इस बात का महान् शोक है कि संसार से विक्रमादित्य उठ गया और उसके उठते ही संसार से काव्य का रस भी उठ गया—

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः। सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥१०॥

इस श्लोक के पाठ से प्रतीत होता है कि अभी विक्रमादित्य को काल-वश में गए हुए कोई अत्यधिक समय नहीं हुआ था। यह घटना विक्रमादित्य के १०० वर्ष के अन्दर ही अन्दर की स्मृति दिलाती है।

७२. उतने ही काल में आचार्य उद्योतकर ने दिङ्नाग के वादों-का कड़ा खंडन कर दिया था। उद्योतकर कहता है—

कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुः करिष्यते तस्य मया निबन्धः।

इस पर वाचस्पतिमिश्र कहता है—

तथापि दिङ्नागप्रभृतिभिरर्वाचीनैः कुहेतुसन्तम्।

अर्थात् दिङ्नाग आदि कुतार्किकों के खण्डन में उद्योतकर ने ग्रन्थ रचा। उस उद्योतकर का स्मरण सुबंधु करता है।[1]

अनेक पाश्चत्य-विचार वाले लेखकों ने इन सब लेखकों की तिथियां पलट दी हैं। संस्कृत ग्रन्थों के पाठ से सब समस्याएं पूरित हो जाती हैं।

७३. हम जानते हैं कि विक्रम-साहसांक चन्द्रगुप्त ही प्रसिद्ध विक्रम था, अतः सुबन्धु आदि का काल विक्रम-संवत् वाले प्रसिद्ध विक्रम का ही काल था।

७४. भोज-रचित शृङ्गारप्रकाश के अष्टम प्रकाश में विक्रम और कालिदास के वार्तालाप का उल्लेख मिलता है। विक्रम पूछता है—किं कुन्तलेश्वरः करोति। इस पर कालिदास कहता है—

पिबति मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणां त्वयि विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः।[2]

अर्थात्—कुन्तलाधीश आप पर सब भार डाल कर विलास में रत है।

यही वचन काव्यमीमांसा के एकादशाध्याय में राजशेखर ने बिना विक्रम और कालिदास

---

१. न्यायविद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्। वासवदत्ता, कृष्णमाचार्य का संस्करण पृ० ३०२।

२. तथा देखो मङ्खुक-कृत साहित्यमीमांसा, पृ० ९।

का नाम स्मरण किए उद्धृत किया है। औचित्यविचारचर्चा में क्षेमेन्द्र ने किसी कुन्तलेश्वर-दौत्य से एक श्लोक उद्धृत किया है।[1]

इन से ज्ञात होता है कि कालिदास और विक्रम समकालिक थे।

७५. विद्वानों का मत है कि सेतुबन्धकाव्य का कर्ता साहित्य ग्रन्थों में कुन्तलेश कहा गया है। उस का नाम प्रवरसेन था। परम्परा में प्रसिद्ध है कि कालिदास ने सेतुबन्ध की रचना में सहायता की थी। अतः विक्रम, कालिदास और कुन्तलेश-प्रवरसेन समकालीन थे।[2] मिराशी महाशय का अनुमान है कि यह प्रवरसेन वाकाटक था।[2]

७६. सगाथिक लङ्कावतारसूत्र का एक चीनी अनुवाद सन् ५१३ में हुआ। हमारा विचार है कि इस सूत्र का गाथा भाग पहले चीनी अनुवादक गुणभद्र (सन् ४४३) के काल में भी था। पुनरुक्ति के कारण से उस ने इस का अनुवाद नहीं किया।

इन गाथाओं से ज्ञात होता है कि उनकी रचना से पहले ही गुप्त-राज्य समाप्त हो गया था। यही नहीं म्लेच्छ—हूण राज्य की भी इतिश्री हो चुकी थी देखिए—

मौर्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः। ६७६।

हम आगे लिखेंगे कि गुप्त-राज्य लगभग २५० वर्ष तक रहा। यदि ये गाथाएं सन् ४०० तक भी लिखी गई हों, तो गुप्त-काल उन से कम से कम २५० वर्ष पहले होगा। परन्तु उन के मध्य में म्लेच्छ-राज्य का भी कुछ काल छोड़ना पड़ेगा। अतः गुप्त-काल विक्रम की पहली शताब्दी के समीप ही पड़ेगा।

लंकावतारसूत्र के कई पढ़ने वाले, जो फ्लीट की गुप्त-संवत् के आरम्भ की तिथि को ठीक मानते हैं, इस प्रसंग से घबराते हैं।[3] उन्हें अपने विचार में परिवर्तन कर लेना चाहिए।

७७. श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं—

गुत्तल के गुप्तवंशी अपने को उज्जयिनी के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) के वंशज और सोमवंशी मानते थे (बंबई गैज़ेटियर, जि० १, भाग २, पृ० ५७८, टिप्पण ३। पाली संस्कृत एंड ओल्ड कैनेरीज़ इन्स्क्रिप्शन्स, संख्या १०८)।[4]

इस प्रमाण से निश्चित होता है कि प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त ही उज्जयिनी का विक्रमादित्य था।

विक्रम संवत् के सम्बन्ध में अलबेरूनी का मत

७८. प्रसिद्ध मुसलमान यात्री अलबेरूनी लिखता है—

श्रुधव ग्रन्थ में महादेव लिखता है कि संवत् वाले विक्रमादित्य का नाम चन्द्रबीज था।[5]

---

१. पृ० १४०।

२. कालिदास, रचयिता वासुदेव विष्णु मिराशी, लाहौर सन् १९३८, पृ० ३८, ३९।

३. Studies in The Lankavatara Sutra, by Daisetz Teitaro Suzuki, London, 1930, p. 22.

४. राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ११३।

५. अध्याय ४९।

अलबेरूनी के ग्रन्थ के सम्पादक और अनुवादक डा० ज़खाऊ ने चन्द्रबीज शब्द पर एक टिप्पणी करते हुए लिखा है कि मूल का पाठ संदिग्ध सा है। पहले वह चन्द्रबीर पढ़ा गया था, फिर चन्द्रबीज पढ़ा गया। बहुत संभव है यह नाम चन्द्रगुप्त हो।

अलबेरुनी और शक-अब्द—शकाब्द के सम्बन्ध में अलबेरुनी लिखता है कि शककाल विक्रम संवत् के १३५ वर्ष पश्चात् आरम्भ हुआ। यह संवत् शक-नाश से आरम्भ हुआ। पूर्व से विक्रमादित्य ने आ कर मुलतान और लोनी-दुर्ग के मध्यवर्ती करुर नामक प्रदेश में इस शक को पराजित किया। यही शक-नाश का अब्द ज्योतिषियों द्वारा प्रयुक्त हो रहा है। अलबेरुनी आगे लिखता है कि यह विक्रमादित्य संवत् वाले विक्रमादित्य से भिन्न कोई दूसरा व्यक्ति होगा।

अलबेरूनी और गुप्तकाल—गुप्तकाल के सम्बन्ध में अलबेरुनी लिखता है—गुप्त दुष्ट और शक्तिशाली थे। जब उन का अन्त हो गया तब उन की समाप्ति से उन का संवत्सर चला। वलभी संवत् के समान गुप्तसंवत् शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् चला।

अलबेरूनी का भाव स्पष्ट है कि गुप्तों की समाप्ति पर गुप्त-संवत् चला।

अलबेरूनी-मत का उलटा अर्थ करने वाले—श्रीगंगाप्रसाद मेहता ने लिखा हैं—गुप्त लोग दुष्ट और पराक्रमी थे और उन के नष्ट होने पर भी लोग उनका संवत् लिखते रहे।[1]

ऐसा भाव फ्लीट आदि ने भी लिया है। परन्तु यह नितान्त खेंचातानी है। अलबेरूनी का लेख अति स्पष्ट है कि गुप्त संवत्सर आरंभ होने पर गुप्त नष्ट हो चुके थे। मेहता ने न जाने किन शब्दों का ऐसा मन-माना अर्थ किया है।

७९. गुप्तवलभी संवत्—यह संवत् गुप्तों की समाप्ति पर चला। मूल गुप्तसंवत् इस से बहुत पहले चला था। यदि गुप्त राज्य २४१ वर्ष रहा हो, तो अलबेरूनी के अनुसार गुप्त संवत् और शककाल जो शक राज्य की समाप्ति पर चला एक थे।

अस्तु इस सम्बन्ध में संख्या ७९ तक जो कुछ लिखा गया है, उस का स्पष्ट सारांश नीचे दिया जाता है। विद्वान् लोग अपने अपने परिणाम स्वयं निकाल सकते हैं—

(क) विक्रमादित्य, साहसांक और शकान्तक एक व्यक्ति थे।

(ख) चन्द्रगुप्त द्वितीय साहसाङ्क और शकान्तक एक व्यक्ति थे।

(ग) साहसांक और भट्टारक हरिचन्द्र साथ साथ थे।

(घ) चन्द्रगुप्त और हरिचन्द्र भी साथ साथ थे।

(ङ) अतः विक्रम-साहसांक और विक्रम-चन्द्रगुप्त निश्चय ही एक थे।

(च) चन्द्रगुप्त विद्वान् और कवि था।

(छ) विक्रमादित्य सूक्तिकार और कोशकार तथा साहसांक कोशकार था।

---

१. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, पृ० १५८,१५९।

(ज) इस प्रकार भी विक्रम-चन्द्रगुप्त और साहसांक एक थे।

(झ) यह विक्रम जैन साहित्य का प्रसिद्ध विक्रम और संवत्-प्रवर्तक था। अतः विक्रम संवत् चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध रखता है। तथा यही संवत कभी साहसांकसंवत्सर भी कहता था।

(ञ) इसी विक्रम-चन्द्रगुप्त का वररुचि, हरिचन्द्र, सिद्धसेन दिवाकर, विशाखदत्त और एक कालिदास से सम्बन्ध था। वसुबन्धु और उस का शिष्य दिङ्नाग भी उसी के काल में हुए।

ये हैं कुछ स्थूल-परिणाम। हम ने उदार-भाव से इन बातों का यहां संग्रह मात्र कर दिया है। आशा है विद्वान् लोग पक्षपात-रहित हो कर गुप्त संवत् और गुप्त-काल का फिर एक बार विचार करगें। इस विषय में हमारे मित्र श्री धीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने भी अनेक लेख लिखे हैं। उनकी कई बातें मौलिक, सारगर्भित और विचारपूर्ण हैं। उन के मतानुसार गुप्त-संवत् और विक्रम-संवत् का प्रारम्भ एक समान है। हम ने स्थानाभाव से उन के विचारों का यहां वर्णन नहीं किया। इतिहास-शोधन बड़े महत्त्व का कार्य है। उस में सब विचारों का निःसङ्कोच वर्णन करना चाहिए। दुःख से देखा जाता है कि अनेक वर्तमान लेखक इस से भय खाते हैं। वे आर्य जनता को तथ्य तक नहीं ले जा सकेंगे।

हम अभी तक इतना कह सकते हैं कि गुप्त-संवत् ७८ सन् ईसा से पहले आरम्भ हुआ था। ऐसा आभास कल्हण आदि के लेख से पड़ता है। अलबेरूनी को यद्यपि इस बात का आभास था, तथापि उसे इस विषय की निश्चित सामग्री नहीं मिल सकी।

फ्लीट-मत के माननेवालों से प्रश्न

साहित्यिक और ताम्रपत्रादिकों के इतने साक्ष्य के होने पर भी जो महानुभाव चंद्रगुप्त-विक्रम को प्रसिद्ध विक्रम संवत् से संबंध रखने वाला सम्राट् नहीं मानते, उन्हें निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर खोजना चाहिए—

(१) यदि संवत्-प्रवर्तक साहसांक-विक्रम कोई अन्य व्यक्ति था और चंद्रगुप्त-विक्रम नहीं, तो उसकी एक भी मुद्रा आज तक क्यों नहीं मिली ? निश्चय ही उस विक्रम के काल में मुद्राओं पर अक्षरांकित नाम मिलते थे। उतने प्रतापी राजा की मुद्रा अवश्य प्रचलित हुई होगी।

(२) पुराणों के श्रीपार्वतीय राजा कौन थे ? हम लिख चुके हैं कि गुप्त ही श्रीपार्वतीय थे। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि गुप्तों की मुद्राओं पर लक्ष्मी अथवा श्री का चिह्न विद्यमान है।

इस का एक और प्रमाण श्रीपर्वत के स्थलमाहात्म्य में है—

(क) "गुप्तराज चंद्रगुप्त की कन्या चंद्रावती श्रीशैल के देवता से प्रेम करने लग पड़ी। अंततः राजकुमारी ने उससे विवाह किया।"[1]

(ख) श्रीशैल के समीप की नदी के पार एक चन्द्रगुप्त पट्टण है।[2]

(ग) पूर्वोक्त बात सन् १८०९ में कर्नल विलफर्ड को ज्ञात थी। उस ने लिखा है—"परम्परा के अनुसार उस (चन्द्रगुप्त) ने दक्षिण में एक नगर बसाया। इस का नाम चन्द्रगुप्त के नाम पर था। कुछ दिन पूर्व परिश्रमी मेजर मकैन्जी ने उसे ढूंढ निकाला। उन का कहना है कि यह नगर श्रीशैल अथवा श्रीपर्वत के कुछ नीचे कृष्णा नदी के तट पर था। अब उस के भग्नावशेष हैं।[3]

महाशय बी० वी० कृष्णराव आदि का मत है कि इक्ष्वाकुराजा ही श्रीपार्वतीय थे।[4] उन्हें विचार कर देखना चाहिए कि क्या पुराणों में इतने सुदूर दक्षिण के किसी और राजवंश का उल्लेख भी है या नहीं।

(३) साहसांक कितने थे? यदि साहसांक एक था, तो वह चन्द्रगुप्त-विक्रम था। यदि दो थे, तो दूसरा कौन था? दो साहसांक मानने वालों को स्मरण रखना चाहिए कि पुरातन लेखों में साहसांक एक ही है।

मुंमुणीराज का शक संवत् ९७१ का एक ताम्रपत्र है। उस में इस वंश के मूल पुरुष कपर्दी का वर्णन है। कपर्दी का पुत्र पुलशक्ति शक ७६५ के अमोघवर्ष का सामंत था। अतः कपर्दी शक ७५० के समीप हुआ होगा। प्रस्तुत ताम्रपत्र में कपर्दी की तुलना साहसांक से की गई है—

तस्यान्वये निखिलभूपतिमौलिभूतरत्नद्युतिच्छुरितनिर्म्मलपादपीठः।
श्रीसाहसाङ्क इव साहसिकः कपर्दी सीलारवंशतिलको नृपतिर्बभूव ॥[5]

इस ताम्रपत्र के पाठ में और दूसरे लेखों में साहसांक पद एकवचन में मिलता है। इससे निश्चय होता है कि साहसांक नाम का मूल में एक ही राजा था। उसके कई सौ वर्ष पश्चात् तक कोई अन्य राजा अपना नाम वैसा नहीं रख सका।

(४) साहसांक-विक्रम के साथी आचार्य वररुचि का काल कातंत्र व्याकरण से पहले का है। कातंत्र में इस वररुचि के सूत्रों का प्रयोग किया गया है। कातंत्र लगभग दूसरी शती विक्रम का ग्रंथ है। अतः दूसरी शती विक्रम से पहले साहसांक चन्द्रगुप्त ही था।

---

१. श्रीकृष्ण शास्त्री का लेख, ऐनुअल रिपोर्ट ऑव् दि आर्कियॉलॉजिकल डिपार्टमेंट, सदर्न सर्कल, मद्रास, १९१७-१८ में उद्धृत।

२. आर० सर्वे आफ इण्डिया, भाग १, पृ० ७। अर्लि हि० आन्ध्रास पृ०१२६ पर उद्धृत।

३. एशियाटिक रीसर्चिज़, भाग ९, पृ० ९९।

४. इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, कलकत्ता, पृ० ८०।

५. ए० इ०, भाग २५, पृ० ५८, पंक्ति ४।

विद्वानों को आग्रह-रहित होकर इन बातों पर विचार करना चाहिए।

गुप्त संवत् और विक्रम संवत् का ऐक्य—चामुण्डराज का गुप्तसंवत् १०३३ का एक ताम्रशासन भारतीयविद्यापत्र कार्तिक संवत् १९९६, पृ० ८०, ८१ पर छपा है। चामुण्डराज के अन्य शासन १०३३ के आस पास के विक्रम संवतों में हैं। अतः १०३३ गुप्तसंवत् विक्रम संवत् है। इस आपत्ति को देख कर अध्यापक वि० वि० मिराशी ने एक लेख लिखा है। उस में उन्होंने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि प्रस्तुत ताम्रशासन में गौप्ते पद भूल से लिखा गया है।[1] अध्यापक मिराशी का यह कथन युक्ति-युक्त नहीं है। फ्लीटानुयायी लेखकों के अनुसार विक्रम और गुप्त संवत् का अन्तर ३७५ वर्ष का है। चामुण्डराज का कार्यालय जहां प्रति दिन लेख लिखे जाते थे, इतने अन्तर वाले संवतों को भूल से भी एक नहीं लिख सकता था। उन स्वर्गगत लेखकों के नाम पर ऐसी भूल का मढ़ना एक बलात्कार है।

उदयगिरि गुहा का शिलालेख—यह शिलालेख संवत् १०९३ का है। उस वर्ष में इस स्थान का जीर्णोद्धार हुआ। उस पर लिखा है—चन्द्रगुप्तेन कीर्तनं कीर्तितं पश्चात् विक्रमादित्यराज्यं।[2] इस पाठ में अनुस्वारादि शुद्ध कर दिए गए हैं। इसके अनुसार चन्द्रगुप्त (प्रथम) के पश्चात् प्रसिद्ध विक्रमादित्य हुआ। उसका संवत् १०९३ लिखा गया है। इस लेख पर अधिक विचार पुनः करेंगे।

---

१. भारतीयविद्या, अंग्रेजी में, अङ्क मई १९४५, पृ० ९०–९३।

२. इण्डियन अण्टिक्वेरी, भाग १३, पृ० १८५। लखनउ के अध्यापक श्री चरणदास चटोपाध्याय ने इस लेख की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया था।

अड़तालीसवां अध्याय

गुप्तराज्यकाल की अवधि

इस सबन्ध में पुराण-मत बड़ा अस्पष्ट है। उसके सब रूप नीचे लिखे जाते हैं । वायु और ब्रह्माण्ड में लिखा है—[1]

अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं वै । शते द्वे ऽर्धशतञ्च वै । इ. वायु पाठान्तर ।

मत्स्य में लिखता है —

आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्विपंचाशतं समाः ॥[2] द्वे पञ्चशतं समाः । पाठान्तर ।

वायु के अनुसार आन्ध्रभृत्य=गुप्तों का राज्य ३०० अथवा २५० वर्ष का और मत्स्य के अनुसार आन्ध्रभृत्य अथवा श्रीपार्वतीयों का राज्य ५२ वर्ष अथवा १०० वर्ष का था। परन्तु ये दोनों पाठ अत्यन्त विकृत प्रतीत होते हैं। और यदि मत्स्य का पाठान्तर देखा जाए तो आन्ध्र और गुप्त दोनों ने ५०० वर्ष राज्य किया ।

कलियुगराजवृत्तांत के अनुसार—

एते प्रणतसामन्ताः श्रीमद्गुप्तकुलोद्भवाः । श्रीपार्वतीयान्ध्रभृत्यनामानश्चक्रवर्तिनः ॥
महाराजाधिराजादि विरुदावल्यलंकृताः । भोक्ष्यन्ति द्वे शते पंचचत्वारिंशाच्च वै समाः ॥

अर्थात्—गुप्त अथवा श्रीपार्वतीय राजा २४५ वर्ष तक राज्य करेंगे।

त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति में लिखा है—

दोण्णिसदा पणवण्णा गुत्ताण चउमुहस्स बादलं ॥९४॥

अर्थात् २५५ वर्ष गुप्त-राज्य और उसके पश्चात् ४२ वर्ष तक चतुर्मुख (कल्की) का राज्य है। इस से आगे पुनः लिखा है—

भच्छट्ठणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति बादाला ॥ तत्तो गुत्ता ताणं रज्जं दोण्णिय सयाम इगितीसा ॥९८॥

अर्थात्—चष्टणों का काल २४२ वर्ष और तब गुप्त, उनका राज्य २३१ वर्ष था।

जैन-काल गणना में वीर-निर्वाण से लेकर शक-काल तक का ब्योरा भिन्न-भिन्न प्रकार से है । त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति की ८६—८९ और ९३ गाथाओं में ही कितने मत लिखे हैं । इस का कारण यह है कि जैन लोग वास्तविक गणना भूल गए थे । हम ने सारी जैन गणना का सारांश यह निकाला है कि जिस शक को विक्रम-चंद्रगुप्त ने मारा, वह कोई चष्टण-शक

---

१. वायु ९९।३६१॥ ब्रह्माण्ड ३।७४।७३॥

२. मत्स्य २७३।२३॥

था और उस के पश्चात् चष्टणों का कुल गौण-कुल हो गया। तब गुप्तों ने प्रधानता प्राप्त कर ली। चष्टण कुछ काल तक उन के सामंत बने रहे। तत्पश्चात् उन्हों ने फिर सत्ता प्राप्त की। तब गुप्तों और शकों के महान् युद्ध हुए। अन्त में स्कन्दगुप्त ने शक सत्ता का सम्पूर्ण नाश कर दिया। उस शक नाश पर शक शालिवाहन वर्ष गणना आरम्भ हुई। शक नृपकालातीत संवत्सर का अर्थ है, जो संवत्सर शकनृपकाल की समाप्ति पर चला हो।

ये हैं भिन्न-भिन्न मत गुप्त-राज्य-काल की अवधि के सम्बन्ध में। इन से हम इतना जान सकते हैं कि गुप्त-राज्य लगभग २५० वर्ष तक रहा। पुराणों ने एक बात स्पष्ट कर दी है। तदनुसार इस आंध्रभृत्य श्रीपार्वतीय कुल में सात राजा थे। यह काल उन सात राजाओं का है।

उनचासवां अध्याय

गुप्त साम्राज्य

यजन्ते ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः।[1]

गुप्त वंश का मूल स्थान—पुराणों में गुप्तों को आन्ध्रभृत्य अथवा श्रीपार्वतीय लिखा गया है। इस से निश्चय होता है कि गुप्त लोग श्रीपर्वत के निवासी थे। नंदुलाल दे के भौगोलिक कोश में किसी श्रीशैल का वर्णन है। उन के अनुसार यही श्रीपर्वत था। इस की स्थिति कृष्णा नदी की दक्षिण-ओर करनूल प्रदेश में है। गुप्त कुल के चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध उस श्रीपर्वत से था, ऐसा पूर्व पृ० ३४७ पर लिखा जा चुका है।

श्रीपर्वत के कारण ही गुप्त राजा श्री के उपासक हुए। इसी कारण उनकी मुद्राओं की पीठ पर श्री अर्थात् लक्ष्मी का चित्र बहुधा रहता है।

सिंहवंश—तिब्बत के ग्रन्थों में गुप्तवंश को सिंहवंश कहा है। अनेक गुप्त राजाओं की मुद्राओं पर राजा के नाम के पहले व्याघ्र अथवा सिंह शब्द जुड़ा है।

श्रीगुप्त

गुप्तकुल का आरम्भ श्रीगुप्त से होता है। गुप्त शिलालेखों में उसे महाराज लिखा है। यहां भी श्री पद ध्यान में रखने योग्य है।

घटोत्कच

श्रीगुप्त का पुत्र घटोत्कच गुप्त था। उसे भी शिलालेखों में महाराज उपाधि से स्मरण किया है।

१. महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त प्रथम

कलियुगराजवृत्तान्त के अनुसार इस का एक नाम विजयादित्य था। इस की प्रधान पत्नी अथवा महादेवी लिच्छिवि-कुमारी कुमारदेवी थी। यह बात शिलालेखों से प्रमाणित होती है। चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर उसकी महाराणी कुमारदेवी की भी मूर्ति मिलती है।[2] महाराज और महाराणी साथ साथ खड़े हैं। मुद्राओं की पीठ पर सिंहारूढ लक्ष्मी=श्री की मूर्ति है। संभव है इस से श्रीपर्वत का संकेत अभिप्रेत हो। श्री-पर्वत का लक्ष्मी के साथ सम्बन्ध तो था ही। पीठ पर लेख है—लिच्छवयः। चन्द्रगुप्त ने अपनी सुवर्ण-मुद्रा भी चलाई। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

---

१. मत्स्य १४४।४३॥

२. जान एलन का मत है कि ये मुद्राएं समुद्रगुप्त की हैं। गुप्त-मुद्राओं की भूमिका पृ० १७।

राज्यकाल—कलि० रा० वृ० के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सात वर्ष तक राज्य किया। यह काल गुप्त-संवत् चलाने से गिना गया होगा।

कच=काच

कलि० रा० वृ० में चन्द्रगुप्त प्रथम के एक पुत्र का नाम कच लिखा है। काच नामांकित कुछ मुद्राएं सुलभ हैं। उन पर लिखा है—काचो गामविजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्जयति। पीठ पर सर्वराजोच्छेता। जान एलन[1] और राय चौधरी[2] आदि का मत है कि ये मुद्राएं समुद्रगुप्त की हैं। वे समझते हैं कि समुद्रगुप्त का पहला नाम काच था। काच समुद्रगुप्त का एक भाई था, इस पक्ष की सिद्धि में श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने न्यूमिस्मैटिक सोसायटी के जर्नल में एक लेख लिखा है।[3] उस में मञ्जुश्रीमूलकल्प का प्रमाण है। तदनुसार समुद्र का भाई भस्म था। भस्म और काच पर्याय माने गए हैं। मञ्जुश्रीमूलकल्प का वह प्रमाण किस समुद्र के विषय में है, यह हम निश्चय नहीं कर सके। इन मुद्राओं की पीठ पर भी लक्ष्मी अर्थात् श्री का चित्र है।

२. महाराजाधिराज समुद्रगुप्त=पराक्रमाङ्क

नाम तथा विरुद—समुद्रगुप्त सम्बन्धी लेखों में उस के जो विविध नाम अथवा विरुद मिलते हैं, वे नीचे लिखे जाते हैं—

१. अशोकादित्य	कलि० रा० वृ०	२. पराक्रमः	मुद्रा
३. व्याघ्रपराक्रमः	मुद्रा	४. पराक्रमांकः	प्रयाग-प्रशस्ति
५. श्रीविक्रमः	मुद्रा[4]	६. श्रीविक्रमांक	कृष्णचरित
७. अप्रतिरथः	मुद्रा	८. कृतान्तपरशुः	मुद्रा
९. अप्रतिवार्यवीर्यः	मुद्रा	१०. अश्वमेधपराक्रमः	मुद्रा
११. कविराज	प्रयाग प्रशस्ति		
१२. समरशतविततविजयो जितरिपुरजितः	मुद्रा		

इन के अतिरिक्त जैन ग्रन्थों के आधार पर हम उसका गन्धर्वसेन भी एक नाम अनुमानित कर चुके हैं। प्रयाग की महादण्ड-नायक हरिषेण-लिखित प्रशस्ति इस बात को बहुत प्रमाणित करती है। उस के तत्सम्बन्धी प्रसंग का अनुवाद नीचे लिखा जाता है—

"जिसने अपनी निशित तथा विदग्ध-मति और गान्धर्व-ललितों से त्रिदशपति-गुरु, तुम्बुरु और नारद आदि को लज्जित किया।"

हम पहले पृ० २४४ पर एक जैन ग्रन्थ के प्रमाण से लिख चुके हैं कि वत्सराज उदयन का एक नाम नादसमुद्र था। उसी प्रकार संगीत-विशारद होने से समुद्रगुप्त का नाम गन्धर्वसेन होना बहुत संभव है।

---

१. गुप्त-मुद्राएं, भूमिका पृ० ७४।
२. पो० हि० ए० इ० चतुर्थ संस्करण, पृ० ४४७।
३. भाग ५, अङ्क २, पृ० ४६।
४. न्यूमि० ज० भाग ५, अङ्क २, पृ० १४०।

चक्रवर्ती समुद्रगुप्त—प्रयाग की प्रशस्ति से समुद्रगुप्त की चतुर्दिग्विजय का अपूर्व वृत्तान्त ज्ञात होता है। समुद्रगुप्त के शासन को देवपुत्र शाहानुशाही भी मानते थे। सैंहलक लोग भी समुद्रगुप्त को आत्मसमर्पण कर चुके थे। इन विजयों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में अब लिखा जा रहा है। हम ने स्थानाभाव से उसका विस्तार नहीं किया।

अश्वमेध—इस महान् विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने अश्वमेध-यज्ञ किया। इस यज्ञ के अवसर की सुवर्ण-मुद्राएं अधिक-संख्या में मिल चुकी हैं। निश्चय ही समुद्रगुप्त ने ब्राह्मणों को भारी दक्षिणा दी होगी।

राज्यकाल—कलि० रा० वृ० में समुद्रगुप्त का राज्यकाल ५१ वर्ष का लिखा हुआ है। समुद्रगुप्त के शिलालेखों वा सिक्कों पर कोई राज-वर्ष न रहने से हम इसका निर्णय नहीं कर पाए।

समुद्रगुप्तकृत कृष्णचरित—गोण्डल काठियावाड़ से इस ग्रन्थ के कुछ पत्रे छपे हैं। डाक्टर दिनेशचन्द्र सरकार ने इस ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार के परिचय वाले वचनों को जालरचना बताया है।[1] इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार समुद्रगुप्त का एक विशेषण विक्रमांक लिखा है। यह बात सन् १९४४ में एक मुद्रा से प्रमाणित हो गई है। सन् १९४१ में जब कृष्णचरित—छपा, तब यह बात किसी को ज्ञात न थी। अतः यह ग्रन्थ जालरचना नहीं है। संभव है सम्पादक मूलहस्तलेख का कोई पाठ शुद्ध न पढ़ सका हो, पर ग्रन्थ या ग्रन्थकार विषयक लेख को उस ने कल्पित नहीं किया। डा० सरकार के विचार के प्रति शोक प्रकट करने के अतिरिक्त और हम क्या कहें।

प्राचीन वंशावलियां—कर्नल विलफर्ड द्वारा प्रकाशित और सत्यार्थप्रकाशस्थ वंशावलि में समुद्रगुप्त का उल्लेख समुद्रपाल नाम से है। वहां समुद्रगुप्त के उत्तरवर्ती कई गुप्त राजाओं का भी उल्लेख है।[2]

३. महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त द्वितीय=विक्रमादित्य

नाम तथा विरुद—निम्नलिखित नाम और विशेषण मुद्राओं पर मिलते हैं—

१. देव श्री महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः
२. श्री विक्रमः
३. विक्रमादित्यः
४. रूपाकृतिः
५. नरेन्द्रचन्द्रः
६. सिंहविक्रमः
७. नरेन्द्रसिंहः
८. सिंहचन्द्रः
९. अजितविक्रमः
१०. श्रीविक्रमादित्यः
११. श्री चन्द्रगुप्तः
१२. चन्द्र
१३. परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः
१४. परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्यः
१५. श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त-विक्रमांकः

---

१. न्यूमि. ज. जून १९४४, पृ० ३४। २. शकास इन इण्डिया, सत्यश्रवाकृत, पृ० १०१।

सांची के शिलालेख में देवराज पद भी प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत साहित्य और जैन-परंपरा में महाराज चन्द्रगुप्त को साहसाङ्क नाम से स्मरण किया गया है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में इसे विक्रम लिखा है—समुद्राख्यो नृपश्चैव विक्रमश्चैव कीर्तितः ॥६४६॥

रामगुप्त का वृत्त—देवीचन्द्रगुप्त नाटक से पता चलता है कि रामगुप्त चन्द्रगुप्त-साहसाङ्क का भाई था। उसकी स्त्री ध्रुवदेवी थी। वह शकों से बहुत विवश किया गया। उस ने ध्रुवदेवी को शकपति के लिए देना स्वीकार कर लिया। चन्द्रगुप्त को यह बात अखरी। उस ने स्त्री-वेश में जाकर शकपति को मार दिया।

इस के पश्चात् उस ने रामगुप्त को भी मार दिया और ध्रुवदेवी को अपनी पत्नी बना लिया। अब तो कई पुरातनलेख भी इस घटना को प्रमाणित करते हैं।

चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य सम्बन्धी दूसरी अनेक घटनाओं का उल्लेख सैंतालीसवें अध्याय में सविस्तर हो चुका है। उन का यहां दोहराना आवश्यक नहीं।

सन्तति—ध्रुवदेवी से चन्द्रगुप्त के दो पुत्र थे, गोविन्दगुप्त और कुमारगुप्त प्रथम। दूसरी रानी कुवेरनागा से उस की एक कन्या प्रभावती थी। यह कन्या वाकाटक प्रवरसेन=कुन्तलेश से ब्याही गई। जैन ग्रन्थों में विक्रम के एक पुत्र का नाम विक्रमसेन लिखा है।

राज्यकाल—चन्द्रगुप्त-विक्रम का सब से प्रथम संवत्सर का उपलब्ध शिलालेख मथुरा से प्राप्त हुआ था। उस पर ६१ वर्ष उत्कीर्ण है। सांची के चन्द्रगुप्तकालीन शिलालेख पर ९३ सम् उत्कीर्ण है। इस से निश्चय होता है कि उस ने ३२ वर्ष तक अवश्य राज्य किया। कलि० रा० वृ० में उस का राज्य ३६ वर्ष का लिखा है।

४. महाराजाधिराज कुमारगुप्त=महेन्द्रादित्य

नाम तथा विरुद—मुद्राओं पर इस के निम्नलिखित नाम अंकित हैं—

१. कुमारगुप्तः	२. श्री महेन्द्रः
३. परम राजाधिराज श्री कुमारगुप्तः	४. महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः
५. गुणेश	६. श्री कुमारगुप्तः
७. श्री अश्वमेध महेन्द्रः	८. अजितमहेन्द्रः
९. महेंद्रसिंह	१०. श्री महेंद्रसिंह
११. सिंहमहेंद्रः	१२. गुप्तकुल-व्योमशशी-अजेयः
१३. गुप्तकुलामलचंद्र महेंद्रकर्म	१४. सिंहविक्रमः
१५. श्रीमान् व्याघ्रबलपराक्रमः	१६. महेंद्रकुमारः

१७. परमभागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेंद्रादित्यः

अश्वमेध-यज्ञ—कुमारगुप्त-महेंद्रादित्य के अश्वमेध का पता उस की अश्वमेध वाली सुवर्ण-मुद्राओं से ही मिलता है।

सन्तति—कुमारगुप्त की महादेवी अनन्तदेवी थी। इस का पुत्र पुरगुप्त था। कुमारगुप्त के दूसरे पुत्र स्कन्दगुप्त की माता का नाम अभी अज्ञात है।

राज्यकाल—कुमारगुप्त अथवा उस के काल के शिलालेख संवत्सर ९६-१३६ तक के मिलते हैं। इन से ज्ञात होता है कि उसका राज्यकाल ४० वर्ष का अवश्य था। कलि० रा० वृ० में उस का राज्यकाल ४२ वर्ष लिखा है।

९. महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त=विक्रमादित्य

नाम तथा विरुद—मुद्राओं पर इसके निम्नलिखित नाम अङ्कित हैं—

१. श्री स्कन्दगुप्तः २. श्री क्रमादित्यः
३. परमभागवत महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त क्रमादित्यः
४. परमभागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः

मञ्जुश्री में इसी के लिए लिखा है—

महेन्द्रनृपवरो मुख्य सकाराद्यो मतः परम् ॥६४६॥ देवराजाख्यनामासौ भविष्यति युगाधमे।
विविधाख्यो नृपः श्रेष्ठः बुद्धिमान् धर्मवत्सलः ॥६४७॥

अर्थात्—स्कन्दगुप्त के अनेक नाम थे। देवराज भी उस का एक नाम था। आश्चर्य से लिखना पड़ता है कि स्कन्दगुप्त की उपलब्ध मुद्राओं पर उस के अधिक नाम या विरुद नहीं मिलते।

स्कन्द का पहला हूण-युद्ध और राज्य-प्राप्ति—चन्द्रगर्भ सूत्र में लिखा है—महाराज महेन्द्रसेन (कुमारगुप्त) कौशाम्बी में जन्मा था। उस का एक पुत्र अप्रतिहत बाहुबलवाला था। जब वह १२ वर्ष का हो चुका तो तीन विदेशीय शक्तियों—यवनों, पल्हिकों और शकुनों (कुशनों ?) ने मिल कर महेन्द्र-राज्य पर आक्रमण किया। उन्होंने गान्धार ले लिया और गङ्गा के उत्तर प्रदेश जीत लिए। महेन्द्रसेन के युवाकुमार ने, जिस के हाथ सशक्त थे, और जिस के शरीर पर शूरता के दूसरे चिह्न थे, अपने पिता से सेना-संचालन की आज्ञा चाही। शत्रु-सेना तीन लाख थी। उस का संचालन विदेशी राजा करते थे। उन का महासेनापति यवन था। महेन्द्र के कुमार की सेना दो लाख थी। उस का संचालन ५०० सामन्त करते थे। वे सब कट्टर हिन्दू तथा मंत्री-मण्डल के सदस्यों के पुत्र आदि थे। असाधारण वेग और भयानक गति से उस ने शत्रु-सेना पर आक्रमण किया। क्रोधाविष्ट कुमार के माथे की नाड़ियां तिलक के समान जंचती थीं। उस का शरीर लोहवत् हो गया। कुमार ने शत्रु-सेना को छिन्न भिन्न कर दिया और विजय प्राप्त की। लौटने पर पिता ने उसका अभिषेक कर दिया और कहा—अब तुम राज्य करो, वह स्वयं धर्मपरायण हो गया। इस के पश्चात् बारह वर्ष तक वह इन विदेशी शक्तियों से लड़ता रहा। अन्ततः उस ने तीनों राजाओं को पकड़ा और उन्हें प्राण-दण्ड दिया। तत्पश्चात् उस ने शान्ति-पूर्वक सम्राट्-रूप से जम्बूद्वीप का शासन किया।[1]

---

१. Imperial History of India, Jayaswal. पृ० ३६।

कलियुगराजवृत्तान्त में लिखा है—

स्कन्दगुप्तोऽपि तत्पुत्रः साक्षात् स्कन्द इवापरः। हूणदर्पहरश्चण्डः पुष्यसेननिषूदनः॥
पराक्रमादित्य नाम्ना विख्यातो धरणीतले। शासिष्यति महीं कृत्स्नां पंचविंशतिवत्सरान्॥

कलियुग रा० वृ० का हूण-दर्प-हर और चण्ड ही चन्द्रगर्भसूत्र में चित्रित किया गया है। संभव है चन्द्रगर्भसूत्र का यवन कोई हूण हो। क्या हूण का नाम पुष्यसेन हो सकता है? परन्तु पुष्यसेन स्कन्दगुप्त के शत्रुओं अर्थात् पुष्यमित्रों में से भी कोई हो सकता है।

यही गुप्त-हूण वैर था, जिस के कारण गुप्त-साम्राज्य अन्त में छिन्न भिन्न हुआ।

राज्यकाल—कलि० रा० वृ० में उस का राज्यकाल २५ वर्ष का लिखा है।

६. नृसिंहगुप्त=बालादित्य

कलियुगराजवृत्तान्त से पता लगता है कि स्कन्दगुप्त के कोई पुत्र नहीं हुआ। उस का एक भ्राता प्रकाशादित्य=स्थिरगुप्त था। श्री प्रकाशादित्य की कुछ मुद्राएं एलन ने मुद्रित की हैं। इस प्रकाशादित्य ने स्कन्दगुप्त के जीवन काल में ही स्कन्द की सम्मति से अपने पुत्र नृसिंहगुप्त=बालादित्य को भारत-सम्राट् अभिषिक्त किया। राजवृत्तान्त के तत्सम्बन्धी श्लोक आगे लिखे जाते हैं—

ततो नृसिंहगुप्तश्च बालादित्य इति श्रुतः। पुत्रः प्रकाशादित्यस्य स्थिरगुप्तस्य भूपतेः॥
नियुक्तः स्वपितृव्येन स्कन्दगुप्तेन जीवता। पित्रैव सार्कं भविता चत्वारिंशत् समा नृपः॥

अर्थात्—नृसिंहगुप्त अपने पिता प्रकाशादित्य के साथ ४० वर्ष तक राज्य करता रहा।

तिब्बतीय ग्रन्थों में प्रकाश—राजा प्रकाश का ज्येष्ठ भ्राता शाक्य महाबल था। उस ने हरिद्वार और कश्मीर के मध्य का सारा प्रदेश जीता।[1] यह शाक्य महाबल स्कन्दगुप्त हो सकता है।

यदि मञ्जुश्री (६४८-६५२) का कोई अर्थ निकल सकता है तो वह यह है कि देवराज-स्कन्दगुप्त का अनुज (=प्रकाशादित्य?) बलाध्यक्ष था। उसने दूर तक प्राची दिशा जीती। स्कन्दगुप्त ३६ वर्ष तक जीता रहा। स्कन्द का पुत्र मर गया था। उस ने यतिवृत्ति धारण कर ली थी। इसी शोक में स्कन्दगुप्त मर गया। उस के पश्चात् बाल नाम (६७१) राजा हुआ।

७. महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त द्वितीय=क्रमादित्य

इस के विषय में कलि० रा० वृ० में लिखा है—

अन्यः कुमारगुप्तोऽपि पुत्रस्तस्य महायशाः। क्रमादित्य इति ख्यातो हूणैर्युद्धं समाचरन्॥
विजित्येशानवर्मादीन् भटार्केणानुसेवितः। चतुश्चत्वारिंशदेव समा भोक्ष्यति मेदिनीम्॥

---

१. बि० ओ० रि० सो० जर्नल, भाग २७, पृ० २२६। इस लेख के लेखक का मत है कि शाक्यमहाबल शक्रमहेंद्र था।

अर्थात् उस बालादित्य का पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय अथवा क्रमादित्य था। उसने हूणों से युद्ध किए। उस ने ईशानवर्मा को जीता और भटार्क उसका अनुसेवी रहा। उस का राज्य ४४ वर्ष तक रहा।

इस के पश्चात् गुप्त साम्राज्य नष्ट हो कर छोटे छोटे भागों में बंट गया। कलि० रा० वृ० के अनुसार प्रत्येक गुप्त राजा का राज्यकाल निम्नलिखित है—

चन्द्रगुप्त	७ वर्ष
समुद्रगुप्त	५१ ,,
चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य	३६ ,,
कुमारगुप्त-महेन्द्रादित्य	४० ,,
स्कन्दगुप्त-विक्रमादित्य	२५ ,,
नृसिंहगुप्त-बालादित्य	४० ,,
कुमारगुप्त-क्रमादित्य	४४ ,,
पूर्णयोग	२४३ ,,

इस प्रकार लगभग २४३ वर्ष राज्य कर के ये गुप्त अथवा श्री-पार्वतीय राजा समाप्त हुए। इन की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति उन के श्री-पर्वत वासी होने का चिन्ह है।

वायुपुराण का प्रसिद्ध श्लोक—**वायुपुराण में महाराज विश्वस्फाणि के वर्णन के पश्चात् लिखा है—**

अनुगङ्गं प्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा। एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥९९।३८३॥

हमारा विचार है कि यह श्लोक जिस परिस्थिति का उल्लेख करता है, वह गुप्तसाम्राज्य के नाश के पश्चात् गुप्तों के खण्ड खण्ड होने की है। पुराण-प्रकरण इसी बात का संकेत करता है। वर्तमान लेखक इस बात को अन्यथा लिखते हैं, उन्हें प्रकरण देखना चाहिए।

श्यामिलकविरचित पादताडितकम्—**इस नाम के भाण में गुप्तकुल के युवराज[1] और सौराष्ट्रिक शककुमार[2] का एक काल में उल्लेख है। इस संकेत का ऐतिहासिक मूल्य निर्धारित करना चाहिए।**

॥ शुभं भूयात् ॥

१. पृ० २३। २. पृ० ३१।